CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेवाड़ का संस्कृत साहित्य

डॉ० चन्द्रशेखर पुरोहित

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेवाड़ का संस्कृत साहित्य

डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेवाड़ का संस्कृत साहित्य

डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित

एम. ए., पी-एच. डी.

साहित्याचार्य, साहित्यरत्न

संस्थापक, निदेशक

प्राच्य विद्यापीठ, उदयपुर (राज.)

Bharatiya Vidya Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya

409

NAG PUBLISHERS

नाग प्रकाशक

११ ए, यू.ए, जवाहर नगर दिल्ली-७

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

© लेखकाधीन

(१) ११ए/यू. ए. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७

(२) संस्कृत भवन, १२,१५ फ्लेट, संस्कृत नगर, प्लाट नं० ३, सेक्टर-१४, रोहिणी, नई दिल्ली-११००८५.

(३) जलालपुर माफी (चुनार-मिर्जापुर) उ० प्र०

ISBN 81-7081-312-3

प्रथम संस्करण: १९९५

(द्वितीय संस्करण : २००४

मूल्यम्: 200.00

श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा नाग प्रकाशक, ११ए, यू. ए., जवाहर नगर, दिल्ली ११०००७, द्वारा प्रकाशित तथा जी. प्रिंट प्रासेस, ३०८/२, शहजादा बाग, दंयाबस्ती, दिल्ली ११००३५ द्वारा मुद्रित।

अक्षरयोजक तथा मुद्रक :

अमर प्रिंटिंग प्रेस,

८/२५, विजय नगर, दिल्ली-११०००९

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समर्पणम्

वात्सल्य मूर्त्ति दिवङ्गता जननी

'जिया'

के

आत्मविश्वास और प्रेरणा का

यह पुष्प उन्हीं के श्री चरणों में

पावन-स्मृति-स्वरूप श्रद्धावनत

समर्पित

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुरोवाक्

संस्कृत भाषा के संरक्षण और विकास के क्षेत्र में वीरप्रसविनी राजस्थान की भूमि अतिविशिष्ट महत्त्व रखती है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान आदि संस्थाओं के प्रयास से राजस्थान प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में तथा सरस्वती समुपासकों के घरों में चिरकाल से संरक्षित संस्कृत पाण्डुलिपियों के अद्यावधि किये गये संकलन द्वारा जिस विशाल संस्कृत वाङ्मय को सूचीबद्ध किया गया है, उसे देखकर विश्व के सभी सुधीजन आश्चर्य प्रकट करते हैं। चिरकाल तक अपनी गौरव रक्षा के संघर्ष में उलझे हुए इस प्रदेश के विद्वानों एवं शासकों ने संस्कृत साहित्य की संरचना और संरक्षण में जो योगदान किया है, वह कल्पनातीत है।

राजस्थान प्रदेश की सभी रियासतों के शासक अदम्य साहस के धनी होने के साथ-साथ साहित्य संरक्षण में भी पर्याप्त प्रतिस्पर्धा रखते थे। उनकी इस साहित्य संरक्षण एवं विद्वत्सम्मान विषयक प्रतिस्पर्धा के कारण महनीय संस्कृत वाङ्मय का निर्माण हो सका। उन राजाओं के संरक्षण में रचा गया वह संस्कृत वाङ्मय भारतीय संस्कृति की चिरन्तनता एवं व्यापकता को भली प्रकार दर्शाता है, इसके साथ-साथ राजपुताने में रचा हुआ यह संस्कृत साहित्य उन रियासतों के इतिहास एवं समाज व्यवस्था का परिचायक भी है। कर्नल टाड आदि इतिहासकारों ने राजस्थान के इतिहास को लिखते समय उस संस्कृत साहित्य के कुछ ही अंश को आधार बनाया है, किन्तु राजपुताना का वास्तविक इतिहास इस विशाल संस्कृत वाङ्मय के प्रकाश में आने के अनन्तर ही पहचाना जा सकेगा।

राजस्थान की रियासतों में मेवाड़ का एक विशिष्ट स्थान है। इस राज्य के शासक राणा सांगा, (संग्राम सिंह) महाराणा प्रताप आदि की शौर्यपूर्ण जीवनगाथाओं का भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। बड़ी से बड़ी सैन्य शक्ति के सामने न झुकने वाले मेवाड़ के इन महाराणाओं के शासन काल में भी संस्कृत साहित्य साधना का प्रवाह निरन्तर अबाध गति से आगे बढ़ता रहा है। इस राज्य के विद्वानों ने जिन ग्रन्थरत्नों को प्रस्तुत किया है उनका भारतीय साहित्य सम्पदा में विशेष स्थान है। मेवाड़ निवासी सरस्वती समुपासक रणछोड़ भट्ट ने सं. १७१८ में तत्कालीन शासक राजसिंह (प्रथम) की प्रेरणा से चौबीस सर्गों वाले "राजप्रशस्ति"

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नामक विशिष्ट संस्कृत महाकाव्य की रचना की। इस विशाल महाकाव्य को महाराजा राजसिंह(प्रथम) ने राजसमन्द नामक झील के तट पर पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण करवाया। यह ऐतिहासिक संस्कृत महाकाव्य विश्व का विशालतम शिलालेख माना जाता है। शिलालेख साहित्य में राजसमन्द झील पर उट्टंकित यह संस्कृत महाकाव्य मेवाड़ के संस्कृत साहित्य की महत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। चौबीस सर्गों वाले इस महाकाव्य का प्रत्येक सर्ग एक एक शिला पर तथा महाकाव्य के राम, भवानी, विनायक एवं सूर्य की स्तुति प्रस्तुत करने वाले मंगलात्मक पद्यों को एक अलग शिला पर उट्टंकित किया गया है। इस विशालतम शिलालेख के रूप में प्रसिद्ध राजप्रशस्ति नामक संस्कृत महाकाव्य की रचना को मेवाड़ राज्य की अनुपम देन सभी सुधीजन मानते हैं। इसी प्रकार रणछोड़ भट्ट द्वारा रचित 'राजारत्नाकर' नामक अन्य संस्कृत महाकाव्य मेवाड़ राज्य की संस्कृत सम्पदा का एक महनीय भाग है।

रणछोड़ भट्ट के समान सैकड़ों संस्कृत सुकवियों ने मेवाड़ राज्य में आश्रय प्राप्त करते हुए विशाल संस्कृत साहित्य की रचना की। मेवाड़ राज्य में विगत एक हजार वर्षों से संस्कृत ग्रन्थ रचना का कार्य निरन्तर चल रहा है। इस विशाल संस्कृत वाङ्मय की संरचना से प्रमाणित होता है कि संस्कृत साहित्य के सम्वर्द्धन में राष्ट्र के अन्य प्रान्तों के समान राजस्थान प्रदेश के निवासी सारस्वत साधक सदैव विशेष रुचि रखते रहे हैं। मेवाड़ राज्य में रचित संस्कृत वाङ्मय को देखने से यह बात विशेष रूप से परिलक्षित होती है कि सनातन धर्म के अनुयायियों के साथ साथ जैन विद्वानों ने भी संस्कृत ग्रन्थ रचना में अपना कीर्तिमान स्थापित किया है।

मेवाड़ राज्य में संरचित संस्कृत वाङ्मय में सम्मिलित महाकाव्यों के साथ-साथ दार्शनिक ग्रन्थरत्नों की पर्याप्त संख्या है। उनमें निम्बार्क सम्प्रदाय के आचार्यों का चिन्तन विशेष रूप से प्रकाशित हुआ है। भारतीय चिन्तन परम्परा में निम्बार्क सम्प्रदाय का विशेष स्थान होते हुए भी इस सम्प्रदाय के चिन्तन को प्रकट करने वाले साहित्य का यथोचित प्रकाशन अद्यावधि नहीं हो पाया है। डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित द्वारा किये गये प्रस्तुत अनुसंधान से निम्बार्क सम्प्रदाय सम्बन्धी महनीय चिन्तन परम्परा का परिचय प्राप्त होता है। इस राज्य के शासकों के संस्कृत साहित्य के ज्ञान से विदित होता है कि मेवाड़ के शासकों में बहुत से व्यक्ति स्वयं संस्कृत के सुकवि थे। इनमें महाराणा कुम्भा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिनमें संगीत विषयक ग्रन्थ संगीतराज का विशेष महत्त्व है। जयदेव विरचित 'गीतगोविन्द' नामक ग्रन्थ पर महाराणा कुम्भा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने रसिकप्रिया नामक संस्कृत टीका का प्रणयन किया। यह ग्रन्थ मेवाड़ के शासकों की संस्कृत विद्वत्ता का साक्षी है।

राजस्थान की विभिन्न रियासतों द्वारा संस्कृत साहित्य के संरक्षण व संवर्धन में किये गये योगदान को प्रकाश में लाने में विभिन्न संस्कृत गवेषक संलग्न हैं। शोधकार्यों द्वारा जयपुर, जोधपुर एवं बीकानेर जैसी रियासतों में रचे गये संस्कृत वाङ्मय के विषय में यथोचित जानकारी प्राप्त हो सकी थी। किन्तु मेवाड़ राज्य के विद्वानों की साहित्य साधना के विषय में यथोचित प्रयत्न नहीं हुए थे। सौभाग्य का विषय है कि इस अभाव की पूर्ति डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित की 'मेवाड़ का संस्कृत साहित्य' नामक रचना से हो सकी है।

डॉ. पुरोहित की इस कृति द्वारा मेवाड़ में विगत सहस्राब्दी में रचे गये संस्कृत ग्रन्थरत्नों के विषय में व्यवस्थित एवं प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराई गयी है। निश्चय ही यह कृति संस्कृत वाङ्मय के गौरवसूचक होने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति व भारतीय इतिहास के परिचय में विशेष सहायक सिद्ध होगी।

मेरे लिए यह सौभाग्य का विषय है कि मुझे आस्ट्रेलिया में संपन्न विश्व संस्कृत सम्मेलन में इस विषय पर डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित जी को साक्षात् सुनने का अवसर मिला था। उनकी सारगर्भित प्रस्तुति ने सभी सम्मेलन के प्रतिनिधियों को मन्त्रमुग्ध कर दिया था। इसके साथ-साथ दूसरा स्वर्णिम सुयोग यह है कि श्री पुरोहित जी के पूज्य पिता श्री श्रद्धेय स्व. आचार्य श्री लक्ष्मी नारायण जी पुरोहित का मैं स्नेहभाजन रहा हूँ। उनकी साहित्य-साधना और शिष्य-परम्परा से समस्त राजस्थान गौरवान्वित है। डॉ. चन्द्रशेखर जी ने उस पैतृक-सम्पदा में वृद्धि की है, इसलिए वे विशेष रूप से अभिनन्दनीय हैं।

इस ग्रन्थ के प्रकाशक नाग प्रकाशक के संस्थापक, संस्कृत के अनन्य सेवक, विद्वानों के परम उपासक और संस्कृत-पुराणों एवं विभिन्न शास्त्रों के यशस्वी प्रकाशक, मित्रवर स्वर्गीय श्री नाग शरण सिंह जी का स्मरण करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। जिन्होंने दुर्लभ ग्रन्थों की उपलब्धि और नये-नये लेखकों को प्रोत्साहित करने के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उनके दोनों पुत्र श्री सुरेन्द्र प्रताप और श्री नरेन्द्र प्रताप अपने पिता के यश को उनके पदचिन्हों पर चल कर बढ़ा रहे हैं-इसके लिए मैं उनको हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ।

जन्माष्टमी। **डॉ. मण्डन मिश्र**

१९९५

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

DEPARTMENT OF SANSKRIT
RABINDRA BHARATI UNIVERSITY
56-A, Barrackpore Trunk Road, Calcutta-700 050
State Of West Bengal, Republic Of India

Residence :
38, Gopimohan Dutta Lane
Bhuvan Villa (Second Floor)
Calcutta-700 003, INDIA

SATYANARAYAN CHAKRABORTY
M.A., Ph.D., Kavya-Vyakarana-Upanisat-tirtha

Sanskrit literature is a symbol of Indian culture. It is the one common national inheritence. The South and the North, the East and the West have equally contributed to it. Therefore an acquaintance with the Sanskrit works, composed for over three thousand years, is a pre-condition for a thorough knowledge of Indian culture and tradition. So far an exhaustive account of Sanskrit literature has not come to light, although on several occasions in national and international conferences proposals for the preparation of the same, at the begining on regional basic, were taken and highly appreciated by scholars. But as it happens in most cases, we adopt pious resolution and forget them easily. Proposals are never translated into work. Fortunately Professor Dr. Chandra Shekhar Purohit, Founder-Director of Prachya Vidyapeeth, Udaipur (Rajasthan) is an exception to this common Indian character, He took up the project of preparing an account of the contribution of Mewar to Sanskrit literature and now that is being published. I welcome Professor Purohit's

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

effort and express my deep gratitude for this fine piece of work, he is going to present to the scholarly world. Readers will find here detailed account of Sanskrit epics and other works on different branches of science prepared under the patronage of Suryavanshi Kings, Kumbha, Pratap, Amarsingh, Raj Singh and others. The work as a whole is an excellent undertaking so successfully carried out and I am cock-sure that the present publication makes a very useful addition contributing to the advancement of learning. Thank you Professor once again.

—Satyanarayan Chakraborti

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आमुख

सुहृद्वर डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित की महत्त्वपूर्ण कृति 'मेवाड़ का संस्कृत साहित्य' प्रकाशित हो रही है, यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई । इसमें डॉ. पुरोहित ने विस्तृत अध्ययन व शोध के पश्चात् मेवाड़ में आदिकाल से लेकर २०वीं शताब्दी ई. पर्यन्त रचित संस्कृत साहित्य की समृद्ध परंपरा को पहली बार प्रकाश में लाने का सराहनीय कार्य किया है ।

संस्कृत प्राचीन काल से ही संपूर्ण भारतवर्ष की भाषा रही है । भारत के विभिन्न प्रदेशों व क्षेत्रों के रचनाकारों ने इस भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर एवं विशाल वाङ्मय की सृष्टि की हैं, जिसकी इयत्ता और ईदृक्ता का लेखा-जोखा लगाना आसान नहीं है । इस वाङ्मय में विभिन्न विषयों की सैकड़ों-हजारों कृतियों का समावेश है, जिनमें से अधिकतर अभी तक अप्रकाशित हैं । संस्कृत साहित्य के विभिन्न इतिहासकारों ने अपनी कृतियों में इस विराट वाङ्मय की अधिकाधिक कृतियों का विवरण, परिचय या संकेत देने का प्रयत्न किया है, तथापि उसके समग्र विस्तार को किसी एक ग्रंथ के कलेवर में समेट कर उसका परिचय देना लगभग असंभव ही रहा है । यही कारण है कि संस्कृत साहित्य के अनेक विस्तृत इतिहास ग्रंथों के होते हुए भी इस वाङ्मय का एक बहुत बड़ा अंश अभी तक अविज्ञात और अपरिचित ही है ।

भारत के विभिन्न प्रदेशों या जनपदों में अभी तक संस्कृत का विपुल साहित्य छिपा पड़ा है, जिसे प्रकाश में लाकर उसका अध्ययन व मूल्यांकन करना शेष है । इसी आवश्यकता का अनुभव करते हुए अनेक विद्वानों ने संस्कृत वाङ्मय के क्षेत्रीय अध्ययन की परम्परा का सूत्रपात किया । अब तक केरल, काश्मीर, उड़ीसा आदि प्रदेशों के संस्कृत साहित्य पर शोध -कृतियाँ प्रकाश में आचुकी हैं । इसी क्रम में राजस्थान प्रदेश के जयपुर व बीकानेर क्षेत्रों की संस्कृत साहित्य को देन का भी अनुशीलन किया गया है । डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित ने इसी अध्ययन व शोध परम्परा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को आगे बढ़ाते हुए दक्षिण राजस्थान के मेवाड़ जनपद द्वारा संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में किये गये योगदान का 'मेवाड़ का संस्कृत साहित्य' नामक इस कृति में विस्तृत विवेचन किया है।

दक्षिण-राजस्थान के मेवाड़ अञ्चल का भारतीय इतिहास में अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान रहा है। यह प्रदेश शौर्य, स्वातंत्र्य-प्रेम, त्याग व बलिदान के लिए तो प्रसिद्ध ही है; साहित्य, कला, धर्म व संस्कृति के संरक्षण व उन्नयन की दृष्टि से भी इसका अपरिमित महत्त्व है। डॉ. पुरोहित ने इसी इतिहास-प्रसिद्ध मेवाड़ भूमि की ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए अपनी इस कृति में छठी शताब्दी ई. से लेकर आधुनिक काल तक यहाँ रचे गये संस्कृत साहित्य की सुदीर्घ परम्परा का विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धान किया है। आपने दिखाया है कि विभिन्न युगों में स्वतंत्रता और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्षरत रहते हुए भी मेवाड़ के शासकों ने सदैव विद्वानों और साहित्यकारों को संरक्षण प्रदान किया, जिसके फलस्वरूप यहाँ साहित्य के विविध रूपों का निरन्तर सृजन होता रहा। महाराणा कुंम्भा के रूप में एक ऐसा शासक भी हुआ जो अनेक शास्त्रों का विद्वान् और उच्च्च कोटि का लेखक था। डॉ. पुरोहित ने इस ग्रंथ में आठ अध्यायों के अन्तर्गत भूतपूर्व मेवाड़ राज्य की भौगोलिक सीमाओं के भीतर प्राचीन काल से आज तक संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्रणीत कृतियों के लेखक, विषयवस्तु, काव्य-सौन्दर्य तथा ग्रन्थ विशेषताओं का विशद परिचय देते हुए उनका समीक्षात्मक अनुशीलन किया है। मेवाड़ के विभिन्न स्थानों पर पाये जाने वाले संस्कृत अभिलेखों का भी एक स्वतंत्र अध्याय में अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार एक अध्याय में मेवाड़ में रचित शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय साहित्य की तथा एक अन्य अध्याय में जैन संस्कृत साहित्य की भी विस्तार से विवेचना की गई है। महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक-काव्य आदि ललित साहित्य के साथ-साथ मेवाड़ में रचे गये वैज्ञानिक एवं शास्त्रीय साहित्य का भी इस कृति में विस्तार से परिचय दिया गया है। इस प्रकार मेवाड़ अञ्चल के अद्यावधि अधिकांशतः अविज्ञात व अप्रकाशित संस्कृत वाङ्मय की समृद्ध परम्परा तथा उसकी विपुल ग्रंथ राशि को प्रकाश में लाकर डॉ. पुरोहित ने निश्चय ही संस्कृत साहित्य के सर्वांगपूर्ण इतिहास के निर्माण की महत्त्वपूर्ण सामग्री इस ग्रंथ में एकत्र की है। आशा है भावी शोधकर्ताओं तथा संस्कृत साहित्य के भावी इतिहासकारों के लिए यह सामग्री अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत ग्रन्थ 'उदयपुर विश्वविद्यालय' में संस्कृत विभाग के तत्कालीन आचार्य एवं अध्यक्ष विद्वद्वर्य डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी की प्रेरणा व मार्गदर्शन में लिखा गया था। दुर्भाग्य से आज डॉ. द्विवेदी हमारे बीच विद्यमान नहीं हैं। मुझे विश्वास है कि डॉ. द्विवेदी आज जीवित होते तो अपने शिष्य के इस ग्रंथ को मुद्रित रूप में देख कर अत्यन्त आनन्दित होते।

अन्त में डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित को संस्कृत साहित्य के समस्त अध्येताओं की ओर से इस महत्त्वपूर्ण कृति के प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई देना चाहता हूँ। मुझे आशा है कि उनकी यह कृति संस्कृत साहित्य को राजस्थान की, विशेषतः उसके मेवाड़ अञ्चल की देन के विषय में अखिल भारतीय स्तर पर एक अभिज्ञता उत्पन्न करने में सहायक होगी।

उदयपुर दि० २८.७.९४ **डॉ. मूलचन्द्र पाठक**

भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष

संस्कृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शुभाशंसा

डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित, संस्थापक एवं निदेशक 'प्राच्य विद्यापीठ, उदयपुर' द्वारा लिखित पुस्तक 'मेवाड़ का संस्कृत साहित्य' का शुभाशंसात्मक आलेख लिखते हुए मुझे अपार हर्ष की अनुभूति हो रही है, विशेषतः इसलिये भी कि मैं डॉ. पुरोहित की इस कृति में निहित सामग्री की खोज और संकलन में आदि से अन्त पर्यन्त उनके श्रम और लगन का प्रत्यक्षदर्शी और कुछ अंश तक सहयोगी भी रहा हूँ।

जननी, जन्मभूमि कृतज्ञ मानव के लिये स्वर्ग से अधिक प्रिय होती है, उनकी मिट्टी से प्रस्फुटित गन्ध के साथ उसकी गहरी आत्मीयता होती है। उसके अस्तित्व और पुरावृत्त के ज्ञान और गौरव में वृद्धि करने के लिये उसमें समर्पण का भाव होना आवश्यक है। डॉ. पुरोहित के अन्तर्मन में निवसित इसी ललक ने उन्हें अपनी मातृभूमि मेवाड़ में विरचित साहित्य की खोज के लिये प्रेरित किया और उसकी परिणति यह पुस्तक है, जिसके माध्यम से उन्हें इस धरा के ऋणोद्धरण के प्रति अपने जन्म की सार्थकता सिद्ध करने की स्वर्ग से भी अधिक प्रीतिकर आनन्द की अनुभूति हो रही है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में डॉ. पुरोहित ने राजस्थान प्रान्तान्तर्गत मेवाड़-मण्डल, जिसमें उदयपुर, चित्तौड़, भीलवाड़ा और नवगठित राजसमन्द जिला सम्मिलित है, के प्राचीन इतिहास से संबन्धित साक्ष्यों पर प्रकाश डालते हुए उसमें विक्रम की छठी शताब्दी से अद्यावधि रचे गये संस्कृत भाषा-निबद्ध विविध विषयात्मक शिलोत्कीर्ण अथवा कृतक पत्रों पर लिखित और मुद्रित साहित्य पर श्रद्धाभाव सहित खोज करके उसका सर्वाङ्गीण अनुशीलन प्रस्तुत किया है। इस रचना में निहित निष्कर्ष अपने आप में व्यापक सर्वेक्षण और अध्ययन द्वारा मथकर निकाला

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया नवनीत है । आशा है अन्य विद्वानों के लिये भी संस्कृत वाङ्मय के अनुसन्धान और अनुशीलन हेतु उदाहरण-रूप में यह ग्रन्थ मार्गदर्शक सिद्ध होगा ।

मुझे विश्वास है कि डॉ. पुरोहित अपनी अनुसंधान-परक प्रवृत्ति को सदैव सजीव रखेंगे और विद्वज्जगत में अपना यश चिरस्थायी बनायेंगे ।

डॉ. ब्रजमोहन जावलिया

पूर्वअध्यक्ष, पोथीखाना, महाराजा सवाई

मानसिंह (द्वितीय) पुस्तकालय, जयपुर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आत्म-निवेदन

परमपावन देववाणी संस्कृत आर्य संस्कृति के गौरवास्पद ग्रन्थ वेद, वेदाङ्ग, पुराण और परवर्ती आर्ष साहित्य की भाषा है । प्रायः समस्त भारतीय भाषाओं की तो जननी है ही पर भारत से बाहर व्यवहृत भारोपीय भाषा परिवार, ईरानदेशीय पारसीकों के धर्मग्रन्थ छन्दावस्ता की आवेस्तिका, प्राचीन पारसी, पहलवी, आधुनिक फारसी, मध्य एशिया, उत्तर पश्चिमी एशिया तथा दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की भाषाओं की प्राणरूप रही है ।

भारत के विभिन्न खण्डों में इस भाषा को दिये गये सम्मान की भाँति ही राजस्थान के क्षत्रिय राज्यों ने भी राज्याश्रय देकर इस भाषा में निष्णात मनीषियों को सम्मानित करते हुए उनके द्वारा विभिन्न विषयक साहित्य का प्रणयन कराया है ।

वीरप्रसविनी 'मेवाड़' धरा के शासकों ने भी सुर भारती के उपासक सरस्वती पुत्रों को संरक्षण देकर महाकाव्य, एकार्थीकाव्य, ख़ण्डकाव्य, प्रशस्ति काव्य, नाटक, कोश, संगीत, शिल्प, आयुर्वेद एवं अन्य अनेक विधाओं में साहित्य-संरचना में प्रभूत योग दिया है । प्रशस्त्यात्मक काव्यों का प्रणयनकर रावल राणाओं ने उन्हें स्वयं की कीर्ति को चिरस्थायी बनाये रखने हेतु शिलाओं पर अंकित करवाया । शासकीय उपयोग हेतु भी उन्होंने संस्कृत भाषा को प्रमुखता देकर सुरभिलेख, उदकपत्र, पट्टे परवाने, ताम्रपत्रादिक को मेवाड़ी भाषा के साथ साथ संस्कृत में भी उत्कीर्ण करवाया या लिखवाया ।

इन शासकों में स्वनाम धन्य सर्व श्री महाराणा कुम्भकर्ण, राजसिंह और जयसिंह तथा महाराणा फतहसिंह के नाम विशेषरूप में उल्लेखनीय हैं । महाराणा कुंभकर्ण स्वयं संस्कृत का महान् विद्वान् था । उसने संगीतराज, चण्डीशतक की वृत्ति, कामराज रतिसार शतक, शिल्प शास्त्रीयग्रन्थ, नाटक, संगीत मीमांसा, कुंभस्वामिमंदार, गीत गोविन्द पर रसिकप्रिया टीका, सूड़प्रबन्ध, संगीत रत्नाकर पर टीका, एकलिंगाश्रय, नव्यगीतगोविन्दम् आदि अनेक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्कृत के अतिरिक्त भी कर्नाटी, महाराष्ट्री, तैलंग भाषाओं में नाटकों की रचना की। मेवाड़ी भाषा में भी जयदेव कृत गीतगोविन्द पर टीका लिखी और अनेक स्फुट गीतात्मक स्तुतियों की भी रचना की। उनके आश्रित झोटिङ्ग भट्ट, अत्रिभट्ट, महेश भट्ट, कन्ह व्यास आदि से प्रशस्ति काव्य की रचना और मंडन, नाथा, गोविन्द प्रभृति सूत्रधार विद्वानों से शिल्प स्थापत्य विषयक ग्रन्थों का निर्माण करवाया। महाराणा राजसिंह ने रणछोड़ भट्ट, सदाशिव नागर जैसे विद्वानों को आमंत्रित कर उनसे बृहद् प्रबन्धकाव्यात्मक रचनाओं का निर्माण कराया। कुंभकर्ण ने अपनी प्रशंसा में लिखे काव्यों को शिलाओं पर उत्कीर्ण करवाकर कुम्भलगढ़ में और चित्तौड़गढ़ स्थित कीर्तिस्तम्भ में स्थपित करवाया, तो राजसिंह ने अपनी ख्याति में लिखे 'राजप्रशस्ति' महाकाव्य को २५ शिलाओं पर उत्कीर्ण करवाकर राजसमुद्र की नौचोकी नामक पाल की ताकों में स्थापित करवाया जो विश्व का एकमात्र शिलाओं पर उत्कीर्ण संस्कृत का महाकाव्य है। जैन और हिन्दू मन्दिरों में लगवाये गये शिलाभिलेख भी मेवाड़ में संस्कृत भाषा और साहित्य रचना में विद्वानों की रुचि को प्रदर्शित कर रहे हैं। स्वतन्त्ररूप से भी अनेक अन्य विद्वानों ने राज्याश्रय या पुरस्कार की अभिलाषा के बिना साहित्य की रचना की, वह सर्वथा श्लाघ्य है।

मैंने मेवाड़ में विरचित संस्कृत की ६ठी शताब्दी से, जब से प्रथमतः साहित्यिक संरचना के पुष्ट पत्थरिया प्रमाण उपलब्ध होने लगते है, २०वीं शताब्दी पर्यन्त विरचित संस्कृत साहित्य को काव्य शास्त्रीय, ऐतिहासिक, दृष्टि से वर्गीकृत कर विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ में किया है। इस कार्य के प्रेरणा के स्रोत रहे हैं डॉ. मूलचन्द पाठक, जिन्होंने 'सुखाड़िया विश्वविद्यालय' उदयपुर के संस्कृत विभागाध्यक्ष और कार्यवाहक कुलपति के पदों पर आसीन रहकर विश्वविद्यालय की गरिमा में वृद्धि की है, उनकी प्रेरणा, मार्गदर्शन और सहयोग के लिये मैं अन्तःकरण से उनका आभारी हूँ और आजीवन रहूँगा।

इसको सम्पन्न करने में मेरे मित्र और बन्धुवत् डॉ. ब्रजमोहन जावलिया, वरिष्ठ अनुसन्धान और प्रभारी अधिकारी, 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर और राजकीय सेवा निवृत्ति के उपरान्त जो म. स. मा. सिंह (द्वि.) संग्रहालय में पोथीखाना के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रहे, का उनके द्वारा प्राचीन पाण्डुलिपियों को पढने और अन्य अनेक संस्कृत साहित्य के लेखकों और ज्ञात अज्ञात रचनाओं की खोज में सहयोग देने के लिये हृदय से आभारी हूँ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्व. डॉ. रामचन्द्र द्विवेदी, तत्कालीन संस्कृत विभागाध्यक्ष, 'सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर' और कालान्तर में 'राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर' के अध्यक्ष का निर्देशन मुझे इस कार्य में प्रवृत्त होने के समय से ही मिलता रहा है। वे आत्मीयतावश मुझे सदा लेखन कार्य में प्रोत्साहित करते रहे। उनके सौहार्द्र एवं स्नेह के कारण सामग्री संकलन के साथ साथ इस ग्रन्थ के लेखन का कार्य शीघ्र संपन्न हो सका। स्व. गुरुदेव के प्रति आभार प्रकट करने हेतु मेरे पास शब्दों का अभाव है। मेरी उनके प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जली समर्पित है। मैं उनका जन्म जन्मान्तर तक ऋणी रहूँगा।

डॉ. मण्डन मिश्र, पूर्व. कुलपति, 'श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय), नई दिल्ली, का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने आत्मिक स्नेह का भाजन बनाकर मेरी इस कृति को प्रकाशित रूप में विद्वानों के हाथों में पहुँचाने में पूर्ण योग दिया।

पितृस्वसा माणकबाई, अनुज प्रो. महेशचन्द्र, मेरी अर्धाङ्गिनी श्रीमती केशर पुरोहित, आत्मज प्रो. जयन्त, डॉ. अनिरुद्ध, न्यूरोसर्जन, नि. इ. ऑफ मे. सा. हैदराबाद, चि. शरच्चन्द्र, आत्मजा सुश्री शची (स्वीटी), पौत्र चि. मयङ्क दिव्य, अभिषेक, अभिनव, पौत्री, अभिलेखा, पुत्रवधुओं श्रीमती यमुना, डा. अरुणप्रभा, श्रीमती शालिनि पुरोहित ने मुझे गृहस्थ के कार्यभार से मुक्ति देकर सतत रूप से अनुसन्धान और लेखन कार्य करने का अवसर दिया, तदर्थ इन सभी को धन्यवाद, आशीर्वाद।

भारत सरकार के 'मानव संसाधन मन्त्रालय' के अधीन 'राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली' की ओर से प्राप्त आर्थिक अनुदान के फलस्वरुप इस ग्रन्थ का प्रकाशन संभव हो सका है। इस सहायता के लिये मैं 'राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली' का आभारी हूँ। नाग प्रकाशक बन्धुओं को भी धन्यवाद अर्पित करता हूँ, जिन्होंने आकर्षक साजसज्जा युक्त आवरण और सुन्दर छपाई के साथ समय पर पुस्तक को प्रकाशित किया है।

देववाणी संस्कृत मेरे परिवार की पैतृक भाषा रही है। उसमें रचित साहित्य में निहित गूढ़ तत्वों के अध्ययन उद्घाटन में मेरी प्रारम्भ से ही रुचि रही है। उसी के फलस्वरूप मैं अपनी मातृभूमि मेवाड़ में प्रणीत संस्कृत-साहित्य के सर्वेक्षण और अनुशीलन के योग्य हुआ। मेरी दिवंगता मातुश्री का आत्मविश्वास था कि उसका पुत्र उसकी और मातृभूमि की सेवा निष्ठा पूर्वक करेगा। मुझे प्रसन्नता है

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कि मैं अपनी माताजी के विश्वास को साकार रूप देने में सक्षम हो पाया हूँ। मैं अपनी मातृभाषा संस्कृत, जन्मभूमि मेवाड़ और मेरी जन्मदात्री मातुश्री के प्रति प्राचीनों की सूक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' को स्मरण करता हुआ कृतज्ञता समर्पित करता हूँ।

मेरा विद्वज्जनों से विनम्र निवेदन है कि यदि किन्हीं विद्वानों की रचना का, प्राप्त न होने के कारण इस 'प्राच्य विद्यापीठ' के प्रथम पुष्प रूपी ग्रन्थ में उल्लेख नहीं हो पाया हो तो 'गच्छतः स्खलनं क्वापि—' उक्ति को ध्यान में रखते हुए, मुझे अपना सहृदय बन्धु मानकर, ऐसी रचनाओं की जानकारी देने की कृपा करेंगे, जिसका भविष्य में उपयोग किया जा सके, इसी विश्वास के साथ—

प्राच्यविद्यापीठ —विनयावनत

सरदारपुरा, उदयपुर **डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित**

(राजस्थान) ३१००१

(भारत) दि. २७.२.१९९५

श्रीमहाशिवरात्रि

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रस्तावना

वीर प्रसविनी मेवाड़ भूमि सदैव ही भारतीय संस्कृति की पोषक एवं संरक्षक रही है। इस दृष्टि से भारतीय इतिहास में मेवाड़ का विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान है। मेवाड़ का राजवंश अपने शौर्य एवं त्यागमय जीवन के लिये तो भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है ही, भारतीय संस्कृति की प्रतीक देववाणी संस्कृत के कवियों और लेखकों को राज्याश्रय प्राप्त होता रहा है, फलस्वरूप उन राज्याश्रित लेखकों ने विविध विषयों पर संस्कृत में ग्रन्थों का प्रणयन कर संस्कृत साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि की है। मेवाड़ में जो संस्कृत साहित्य उपलब्ध है, वह परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से उत्कृष्ट और महत्त्वपूर्ण है। यहां के संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक दृष्टि से अपरिमेय महत्त्व है, किन्तु मेवाड़ के लिखित इतिहास में उद्धरण देने के रूप में इसका स्वल्प उपयोग ही अभी तक किया गया है। साहित्यिक पक्ष के अनुशीलन एवं विभन्न कृतियों में निहित सम्पूर्ण विषयवस्तु के ज्ञान की ओर विद्वानों का समुचित ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। मेवाड़ के संस्कृत साहित्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य के अतिरिक्त ज्योतिष, संगीत, शिल्पशास्त्र, कामशास्त्र, टीकाग्रन्थ एवं कोश आदि से संबंधित अनेकानेक रचनाएं सम्मिलित हैं।

मेवाड़ में उपलब्ध अधिकतर महाकाव्य व खण्डकाव्य ऐतिहासिक विषयवस्तु पर आधारित हैं। ऐतिहासिक महाकाव्य दो उपलब्ध हैं, एक तो रणछोड़ भट्ट द्वारा विरचित, "राजप्रशस्ति" दूसरा सदाशिव नागर द्वारा प्रणीत "राजरत्नाकर"। "राजप्रशस्ति" राजसमुद्र की नौचोकी नामक पाल पर पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण है और "राजरत्नाकर" की पाण्डुलिपि राजस्थान-प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान उदयपुर में सुरक्षित है। ये साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महाकाव्य राणा राजसिंह (प्रथम) ने अपने शासनकाल में उक्त दोनों विद्वान् कवियों को अपने आश्रय में रखकर लिखवाये। राजप्रशस्ति का मूल तो प्रकाशित हो चुका है[१] पर राजरत्नाकर का प्रकाशन अभी भी शेष है। इस ग्रन्थ का संपादन डॉ मूलचन्द्र पाठक ने किया है। इनके अतिरिक्त अमरसार,

१. ए० इ० भा० २९ परिशिष्ट १० पृ० २, वी० वि० भा० २ पृ० ५७८-श्यामलदासकृत

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संग्रामसिंहमहोदय, जगत्सिंहकाव्य, अमरकाव्य, अमरसिंहाभिषेककाव्य (अमरसिंह द्वि०), वीरतरंगरंग, वीरवंशवर्णन, वीरभूमि खण्डकाव्य हैं, जिनमें से प्रथम तीन अप्रकाशित हैं और अन्तिम पाँच प्रकाशित। मुक्तककाव्यों में से जगत्सिंहाष्टक, राजसिंहाष्टक, शोध-पत्रिका में प्रकाशित हैं, किन्तु राजसिंह प्रभोर्वर्णन नामक मुक्तक काव्य अप्रकाशित है। राज्याभिषेकपद्धति, वेदोपनिषद् पुराणादि ग्रन्थों से संकलित कर बनाई गई है।

एकलिंग प्रभु के माहात्म्य एवं पूजा पद्धति विषयक स्तोत्रों के रूप में धार्मिक काव्यों का प्रणयन कुम्भाकालीन कन्हं व्यास कवि के द्वारा किया गया है। इन काव्यों में सन्निहित विषयवस्तु एवं पौराणिक आख्यानों का दिग्दर्शन कराना मेरा ध्येय रहा है।

मेवाड़ की इन साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त विद्यानुरागी विद्वान् महाराणा कुम्भा ने स्वयं संगीतशास्त्र विषयक "संगीतराज" जैसे महाकाव्य ग्रन्थ का प्रणयन किया, जिसका सम्पादन हिन्दूविश्वविद्यालय, बनारस से डॉ० प्रेमलता ने किया है।[१] जयदेवकृत कृष्ण विषयक सरस, मधुर, मञ्जुल शब्दावली में गुम्फित गीत गोविन्द की "रसिकप्रिया" टीका तथा बाणभट्ट विरचित चण्डीशतक की व्याख्या कुम्भा के द्वारा लिखी गई। कुंभा की छत्रछाया में रहते हुए मण्डन ने शिल्पशास्त्र विषयक "प्रासादमण्डन" और "राजवल्लभ" लिखे, जो प्रकाशित हो चुके हैं।

"रूपमण्डन" मूल रूप से "देवतामूर्तिप्रकरण" के साथ प्रकाशित हो चुका है। "देवतामूर्ति प्रकरण" का ही अपरनाम "रूपावतार" है। वि. सं. १७५६ और १७६८ की लिखित ऐसियाटिक सोसाइटी बंगाल की प्रति से इसका संपादन उपेन्द्रमोहन सांख्यतीर्थ ने किया है। इसकी अन्य प्रति भंडारकर इन्स्टिट्यूट पूना के सन् १८६६-६८ के संग्रह में भी पाई जाती है। इसके प्रकाशित संस्करण का विश्वभारती शान्तिनिकेतन के अध्यापक "हरिदासमित्र" ने विद्वत्तापूर्ण संपादन किया।[२] वास्तुमण्डन, वास्तुशास्त्र, वास्तुसार, का पूर्ण प्रकाशन अभी तक नहीं

---

१. इसके एक अंश "नृत्यरत्नकोश" का प्रथम द्वितीय भाग में प्रकाशन, राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर से रसिकलाल छोटेलाल परीख ने किया।

२. शो. प., भा. २, अं. २,। प्राप्ति स्थान-शिवनाथ गांगुली १०५६ वर्ष तल्ला स्ट्रीट कलकत्ता।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हुआ। मण्डन के भाई "नाथा" के द्वारा वास्तुमंजरी और पुत्र गोविन्द के द्वारा उद्धारधोरणी, कलानिधि, द्वारदीपिका, सारसमुच्चय कृतियों की रचना का उल्लेख मिलता है। इन सभी का विवरण देना मेरे लिए अभीष्ट रहा, जिनका मैंने यथानिर्दिष्ट अध्याय में योगदानात्मक परिचय के रूप में उल्लेख किया है। मेवाड़ में "संस्कृत-कोश" के निर्माता पं. सुखानन्द नाथ यति हुए, जिन्होंने चार बड़े भागों में विभाजित कोश की रचना की, जिसे उदार हृदय महाराणा सज्जनसिंह ने आर्थिक सहायता प्रदान कर अपने ही मुद्रणालय से मुद्रित करवाया।

काल चक्र की गति के अनुरूप आर्यावर्त में अनेक राजवंशों का उत्थान और पतन होता रहा। उनमें अनेक विद्वान् राजा सुरभारती के उपासक रहे तथा उसके साहित्य की अभिवृद्धि में योग देते रहे, इनकी कीर्तिकौमुदी चिरस्थायिनी बनी रहे, तदर्थ विद्याप्रेमी नृपगण अनेक विद्वान् कवियों को अपने आश्रय में रखा करते थे। वे विद्वान् स्वररचित काव्यकृतियों एवं प्रशस्तियों के माध्यम से राजाओं के गुण तथा यशोगाथाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन किया करते थे। इस प्रकार से सरस्वती के उन वरदपुत्रों के द्वारा रची गई प्रशस्तियों की सुरक्षा कालान्तर में भी बनी रहे, इसके लिए राजन्यवर्ग शिलाओं पर प्रशस्तियाँ उत्कीर्ण करवाते रहे, क्योंकि शिला पर उत्कीर्ण प्रशस्ति-साहित्य की सुरक्षा शताब्दियों तक आसानी से की जा सकती है। अतएव यह प्रथा मेवाड़ में भी आदि काल से दृष्टिगोचर होती है। मेवाड़ प्रदेश में चित्तौड़ के आसपास के स्थान को "शिविजनपद" कहते थे इसकी राजधानी "मज्झमिका" थी, जिसे आजकल (नगरी) कहते हैं। यह वहां से उपलब्ध सिक्कों से ज्ञात हो चुका है। उस काल से लेकर समय समय पर आज तक विरचित प्रशस्ति साहित्य शिलाओं पर उत्कीर्ण किये जाते रहे, जो राजा महाराज़ाओं के दया दाक्षिण्यादि गुणों का यशोगान आज भी प्रतिध्वनित करते हैं। इन प्रशस्तियों में मुख्यत: भ्रमरमाता का शिलालेख (वि. सं. ५४७), राजा शीलादित्यकालीन सामोली का शिलालेख (७०३), अपराजित कालीन (७१८) का शिलालेख, महारावल आलू (अल्लट) के समय का शिलालेख (१०१०), नरवाहन के राज्यकाल का शिलालेख (१०२८), ये शिलालेख मेवाड़ संस्कृत साहित्य की प्राचीनता के प्रमुख प्रतीक हैं। इनके अध्ययन से हमें तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक ओर राजनीतिक आदर्श एवं व्यवस्थाओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता हैं। इनके अनन्तर विक्रमाब्द १३३० "चीरवा" गांव का शिलालेख, रसिया की छतरी चित्तौड़ का लेख (१३३१), शृंगीऋषि एवं समिद्धेश्वर महादेव, चित्तौड़ के शिलालेख (१४८५), चित्तौड़ की

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रशस्ति (१४९५), कुम्भलगढ़ अभिलेख (१५१७), अनुमानत: इसी के समीपवर्ती कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति, तथा एकलिंगजी के दक्षिण द्वार के सामने भित्ति पर उत्कीर्ण अभिलेख विस्तारयुक्त सरस तथा काव्यात्मक हैं । ये प्रशस्ति अभिलेख बड़ी बड़ी शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं, जो साहित्यक वैशिष्ट्य के साथ साथ मेवाड़ के ऐतिहासिक और भौगोलिक ज्ञान के लिए पर्याप्त मात्रा में सामग्री प्रस्तुत करते हैं । इनके पश्चात् जगदीश मन्दिर, उदयपुर, का शिलालेख (१७०९), देबारी की "जया" (त्रिमुखी) नामक वापी की प्रशस्ति (१७३३), वैद्यनाथ महादेव, सीसारमा का शिलालेख (१७७६), भीमपद्मेश्वर महादेव(१८८५), जगत् शिरोमणि (१९०४), गोकुलचन्द्रमाजी (१९३३) के मन्दिर उदयपुर, में लम्बी चौड़ी बृहदाकार शिलाओं पर उत्कीर्ण प्रशस्तियां यथा स्थान लगी हुई हैं । इनमें सम्बन्धित मन्दिरों और वापिकाओं के इतिवृत्त के साथ मेवाड़ राजवंश की वंशावली तथा कुम्भा, सांगा, प्रताप, अमरसिंह, जगत्सिंह, और राजसिंह राणाओं की जननी एवं जन्मभूमि के प्रति निष्ठा, आत्मगौरव, त्याग एवं उनके पौरुष का विस्तार से वर्णन किया गया है । इन प्रमुख शिलालेखों के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में अनेक शिलालेख विद्यमान हैं, जिनका विवरण प्रशस्ति-साहित्य के अर्न्तगत किया गया है । मेवाड़ के इस विपुल प्रशस्ति-साहित्य के अवलोकनमात्र से विदित होता है कि यहां इस प्रकार शिलाओं पर प्रशस्तियों को उत्कीर्ण करवाने की एक सुदीर्घ परम्परा रही, जिसके परिणामस्वरूप यवन आक्रान्ताओं के द्वारा अनेक शिलाओं को क्षति पहुंचाने पर भी आज तक मेवाड़ का संस्कृत साहित्य इनके माध्यम से अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं ।

राणा राजसिंह (प्र.) के राज्यकाल में व्रजमण्डल से शुद्धाद्वैत वैष्णव संप्रदाय के आचार्य श्रीनाथजी और द्वारकाधीश प्रभु को मेवाड़ में लाये । उस समय दुर्दान्त बादशाह औरंगजेब का देश में आतंक छाया हुआ था । वह हिन्दू- सभ्यता और संस्कृति का परम शत्रु था । अपनी धार्मिक असहिष्णुता के कारण आर्य-संस्कृति के प्रतीक देवी देवताओं की प्रतिमाओं एवं मन्दिरों को वह देखना ही नहीं चाहता था । ऐसे संकीर्ण मनोवृत्ति वाले शासक के राज्य में राणा राजसिंह ने उक्त दोनों दिव्य प्रतिमाओं को अपनी वीर भूमि मेवाड़ के नाथद्वारा और कांकरोली नामक नगरों में स्थापित कर अपनी धर्मनिष्ठ प्रवृत्ति का परिचय दिया । इन मूर्तियों की यहां स्थापना, प्रतिष्ठा होने के अनन्तर शुद्धाद्वैत वैष्णव सम्प्रदाय नाथद्वारा के आचार्य श्री गौवर्धनलालजी तथा उनके पुत्र दामोदरलालजी इस सम्प्रदाय के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाण्ड विद्वान् हुए। कांकरौली में श्री ब्रजभूषण जी (द्वि.) संस्कृत तथा हिन्दी (ब्रजभाषा) साहित्य के परम विद्वान् एवं लेखक हुए। इस सम्प्रदाय में ऐसे अनेक विद्वान् मनीषी हुए, जिन्होंने मेवाड़ में संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि में अपना मनोयोग पूर्वक सहयोग देते हुए इसका सरंक्षण किया। श्री हरिरायजी ने भक्ति-परक उपदेशात्मक लगभग ४१ शिक्षा पत्र संस्कृत में लिखे, जो इस संप्रदाय में बड़े ही प्रसिद्ध हैं। गोस्वामी बालकों में श्री गोवर्धनजी (गट्टूलालाजी) उद्भट विद्वान् एवं कवि हुए, जिन्होंने इस सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्षों का अनुशीलन कर विपक्षी लक्ष्मणगिरि नामक दण्डी स्वामी द्वारा प्रेषित प्रश्नों का सम्यक् विश्लेषण कर प्रतिवाद किया। इनके द्वारा दिये गये प्रत्युत्तरों का विशद विवेचन सत्सिद्धान्त मार्त्तण्ड नामक ग्रन्थ में प्रकाशित है। इन्होंने "वेदान्त चिन्तामणि" ग्रन्थ तथा मारुत शक्ति, सत्स्नेहभाजन आदि कई टीकाएं आचार्यों द्वारा लिखे गये ग्रन्थों पर लिखीं। यह सभी लेखन कार्य नाथद्वारा में विराजते हुए किया गया जो संस्कृत साहित्य की विकासशील परम्परा में पूर्ण योगदान के रूप में रहा है। इनके अतिरिक्त संस्कृत के अनेक विद्वान् कवियों का यहां निवास रहा, जो सम्प्रदाय के महोत्सव एवं आचार्यों के जन्म दिवस के उपलक्ष पर उनकी मंगलकामना के लिये रचनाएं करते रहे, वे सभी रचनाएं "मंगलमणिमाला" के नाम से पत्रिका में प्रति वर्ष प्रकाशित होती रही हैं। यहां पर संस्कृत में रचना करने वाले नाथद्वारा के पंडितो में तैलंग श्री बालकृष्ण शास्त्री, रमानाथ शास्त्री, त्रिगृहबलभद्र भट्ट, आशु कवि श्री नन्दकिशोर भट्ट, दामोदर शास्त्री, के. लक्ष्मीनारायण शास्त्री, वामनाचार्य, सदानन्द झा, श्रीमार्कण्डेयमिश्र, गिरिनारा श्री श्यामजी, रविशास्त्री, पं. आनन्दीलालजी शास्त्री, ब्रह्मचारी शंकरलाल, त्रिपाठी श्रीनारायण शास्त्री आदि विद्वानों की रचनाएं मंगलमणिमाला में प्रति वर्ष मुद्रित होती रही थी। उदयपुर निवासी दिवंगत पं. बिट्ठलनाथ शास्त्री साहित्याचार्य, काव्य सौष्ठव पूर्ण रचना करते रहे। कांकरोली निवासी पं. कण्ठमणिजी शास्त्री, पं. लक्ष्मीनारायणजी शास्त्री पुरोहित; उदयपुर में पं. गिरिधरजी व्यास शास्त्री, पं. बिहारीलालजी दशोरा शास्त्री, पं. बिहारीलाल जी व्यास (मनोज) साहित्य सृजन करते रहे। एवं पं. बालकृष्णजी शास्त्री संस्कृत में मौलिक रचनाएं प्रस्तुत कर रहे हैं। अपनी वृद्धावस्था में शारीरिक शक्ति सामर्थ्य के अभाव में भी ये लेखनी के धनी मानी विद्वान् स्वतन्त्र रूप में संस्कृत साहित्य की अनवरत रचना करते रहे हैं, तथा संस्कृत के श्लोकों का हिन्दी और मेवाड़ी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाषा में समश्लोकी अनुवाद कर संस्कृत, हिन्दी और मेवाड़ी इन तीनों भाषाओं के त्रिवेणी संगम में अपना योग देकर सरस्वती की सेवा शुश्रूषा में निरत रहे हैं।

प्राचीनकाल से ही चित्तौड़, नागदा, देलवाड़ा और आहड़, आदि प्राचीन स्थानों में वीतरागी जैन साधु संतों का मेवाड़ में प्रभाव रहा है। इनके द्वारा संस्कृत साहित्य के माध्यम से उपदेशात्मक नीतिवाक्यामृतों एवं जैन दर्शन सम्बन्धी ज्ञान का प्रचार प्रसार होता रहा। उनकी संस्कृत साहित्य की विविध रचनाएं जैन भण्डारों में यत्र तत्र प्रकाशित एवं अप्रकाशित रूप में विद्यमान हैं। महान् दार्शनिक सिद्धसेन दिवाकर ई. सन् ५३३ के आसपास हुए। जिनका प्रसिद्ध तार्किक ग्रन्थ "न्यायावतार" पद्यबद्ध है। ये तर्क शास्त्र के दिग्गज विद्वान् थे। विक्रम की ८ वीं शताब्दि के लगभग आचार्य हरिभद्र सूरि हुए, जो व्याकरण, दर्शन एवं साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने अनेकान्तजयपताका, अनेकान्तवाद, षड्दर्शन-समुच्चय, तत्वार्थसूत्र लघुवृत्ति आदि दार्शनिक, योगबिन्दु, षोडश प्रकरण, योगदृष्टिसमुच्चय आदि योग विषयक मौलिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। "संसारदावानल" संस्कृत-प्राकृत भाषा में लिखा गया। इनके अतिरिक्त आवश्यक बृहद्टीका, आवश्यक सूत्र विवृत्ति, प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या आदि कई टीका ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे। चित्तौड़ में सुप्रसिद्ध जैनाचार्य जिनवल्लभसूरि द्वारा धर्मशिक्षाप्रकरण, संघपट्टक, भावारिवारणस्तोत्र, पंचकल्याण, भारती, सर्वजिन, पार्श्वजिन और पार्श्वनाथस्तोत्रों की रचनाएं की गई। इस साहित्य के अतिरिक्त शृंगारशतक, चित्रकूटीय वीरचैत्यप्रशस्ति भी लिखी गई। इनके उत्तराधिकारी शिष्य जिनदत्तसूरि द्वारा "सर्वजिन स्तुति" की रचना की गई। भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा रचित मूलाचार प्रदीप आदि पुराण, उत्तरपुराण, वर्धमान-चरित्र, यशोधरचरित्र, आदि लगभग ११ चरित्रों का और सिद्धान्तसारदीपक, तत्वार्थसारदीपक, कर्मविपाक, आगमसार, परमात्मराज संग्रह, पुराणसंग्रह, सारचतुर्विंशतिका आदि करीब २५ कृतियां संस्कृत साहित्य के भण्डार को समृद्ध करती है। इनके अनुज एवं शिष्य ब्रह्मजिनदास १५ वीं शताब्दी के विद्वान् साधु थे। इन्होंने रामचरित्र (पद्मपुराण), हरिवंशपुराण, जम्बूस्वामी चरित्र, पूजा पद्धति व्रत कथाएं आदि लगभग बारह संस्कृत की रचनाएं की। इन जैन मुनियों ने मेवाड़ साहित्य की विकासशील परम्परा को बनाये रखा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जैन मुनियों द्वारा प्रणीत रचनाओं के लिए निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये आद्योपान्त एक स्थान पर ही लिखी गई थी, क्योंकि साधुसंत अपने आचारानुकूल विभिन्न स्थानों पर विहार करते रहे हैं, अतः ये जिस कृति को मेवाड़ में लिखना आरम्भ करते उसे अन्यत्र किसी भी स्थान पर (विशेषतः) गुजरात आदि प्रदेशों में) जाकर समाप्त करते रहे हैं। इनके एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार करते रहने के कारण ऐसा होना नैसर्गिक भी है, एतदर्थ मैंने उन्हीं जैन साधुओं एवं ठनकी कृतियों को अपने अध्ययन में लिया है, जिन्होंने कि विशेषरूप से मेवाड़ में निवास कर अपनी कृतियों की रचना के लिये यहां कालयापन किया।

मेरे अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य आदिकाल से लेकर मेवाड़ में रचित संस्कृत साहित्य, जो विक्रम की २० वीं शताब्दी पर्यन्त विशृंखलित अवस्था में है, उसे विषयानुरूप सुव्यवस्थित रूप देना तथा उसका साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मूल्यांकन करना रहा, जिसके लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहा हूं। इसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि काल, विषय एवं क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण हो। काल की दृष्टि से मैंने मेवाड़ प्रदेश, जब से वह अपने आप में एक स्थिर राज्य के रूप में सम्मुख आया, तब से इसके प्राचीनतम इतिहास के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए अपने अध्ययन का लक्ष्य बिन्दु बनाया है।

संस्कृत में मेवाड़ का प्राचीनतम शिलालेख वि.सं. ५४७ का भ्रमरमाता छोटी सादड़ी का मिलता है जो प्रताप संग्रहालय में सुरक्षित हैं। मेवाड़ के राजवंश का मूल पुरुष गुहिल (गुहदत्त) का पांचवा वंशज राजा शिलादित्य (शील) वि. सं. ७०३ में विद्यमान था, जिसका इसी संवत् का सामौली का शिलालेख मिलता है। इन दोनों शिलालेखों से लेकर विक्रम की २०वीं शती पर्यन्त जिन जिन प्रशस्ति साहित्य, काव्यग्रन्थ आदि संस्कृत के विविध विषयों में कृतियों का निर्माण हुआ, उन सबकी श्रृंखलाबद्ध सुनियोजित रूप देना मेरे इस अध्ययन का उद्देश्य रहा है। महाराणा फतहसिंह का राज्याभिषेक वि. सं, १९४१ में हुआ। उसके पश्चात् २० वीं शताब्दी तक मेवाड़ में जितना प्रचुर मात्रा में साहित्य रचा गया उसका विवेचन वर्गीकरण इस प्रबन्ध में समाविष्ट किया गया है। क्योंकि देश की स्वतन्त्रता के पूर्व तक ही देश में राज्यों का अस्तित्व रहा, एतदर्थ मेवाड़ राज्य के रूप में अब तक इस प्रदेश को पाते हैं तभी तक उसका विवेचन होना युक्तियुक्त प्रतीत होता हैं। सम्पूर्ण प्रबन्ध में विक्रम संवत्सर के अंकों का उल्लेख किया गया है, फिर भी यदि

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहीं ईस्वीय आदि वर्षों का उल्लेख है तो वहां ही सम्बन्धित निर्देश दे दिया गया है। काल और विषय के पश्चात् मेवाड़ की भौगोलिक सीमा, जहां तक मैंने अपने अध्ययन की परिधि मानी, के लिए यह स्पष्ट है कि देश की स्वतन्त्रता के पूर्व "मेवाड़-राज्य" की जितनी लम्बाई, चीड़ाई, क्षेत्रफल तथा उसके सीमावर्ती अन्य राज्यों को संलग्न मानचित्र में प्रदर्शित किया गया है, अर्थात् "उदयपुर मण्डल", जो कि मेवाड़ के नाम से अभिहित था, वही मेरे इस प्रबन्ध के अध्ययन की भौगोलिक सीमा निर्धारित करता है, जो साथ में दिये गये मानचित्र से स्वत: ही स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार इस परिधि एवं कालावधि के मध्य मेवाड़ में संस्कृत-साहित्य का निर्माण हुआ, उसको यथा साध्य इसमें अन्तर्भूत करने का प्रयास किया गया है।

शस्त्रों के संघर्ष से पवित्र यह देश शास्त्र के प्रणयन की भी लीलाभूमि रहा है। "शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्र चिन्ता प्रवर्तते" की सूक्ति संस्कृत में प्रसिद्ध है। निरन्तर संघर्ष की ज्वाला में आहुति देने के साथ सृजन एवं चिन्तन का यज्ञ भी यहां चलता रहा, जिससे वीरता वैदुष्य का मणिकांचन संयोग प्रमाणित होता है। यहां के समग्र संस्कृत साहित्य का उत्तुंग शिखर भले ही प्रमाणित न हो, पर इसका एक अमूल्य राष्ट्रीय महत्त्व है। जब देश की धर्मदम्भिनी प्रतिभा भी विधर्मियों के स्तुतिगान में अपने को बेच चुकी थी और पण्डितराज भी "जगदीश्वर" से पूर्व "दिल्लीश्वर" को अपने मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ मानते थे "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थ:", उसी युग में इस मेवाड़ भूमि के अनेक ऐसे साहित्यकार भी थे जो "प्रताप" के शौर्य का यशोगान करते रहे—भले ही उन्हें "पण्डितराज" की प्रतिभा न प्राप्त हो और इसी कारण मैं मानता हूं कि यहां के कविगण का स्वल्प प्रतिभा प्रासाद भी अधिक यशस्वी, अमर, स्तुत्य एवं वन्दनीय हैं। प्रताप की आंशिक पराजय अकबर की विजय से अधिक महनीय है। उसी दृष्टि से उस युग में राष्ट्रीयता का प्रतीक, आर्यत्व का गौरवगान करने वाला साहित्य भी अधिक महिमामण्डित होने लगता है। जनश्रुति के अनुसार "सन्तन को कहा सीकरी से काम" कहकर अकबर के दरबार को ठुकराने वाला सन्त कवि तुलसी जिस प्रकार एक साहित्येतर दृष्टि से भी महान् है, उसी प्रकार राजप्रशस्ति आदि संस्कृत साहित्य के रचयिता भी।

मेवाड़ के इस गौरवशाली साहित्य का आकलन आलोचनात्मक अन्वीक्षा एवं मूल्यांकन प्रस्तुत ग्रन्थ का क्षेत्र एवं उपलब्धि है। केरल, काश्मीर, जयपुर,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बीकानेर आदि क्षेत्रों को लेकर उनके संस्कृत योगदान पर अनुसन्धान हो चुका था, पर इस चिर उपेक्षिता मेदपाट भूमि का जिस प्रकार विकास न हो सका, उसी प्रकार इसके सर्वतोन्मुखी संस्कृत साहित्य पर अनुसन्धान भी न हो सका। यह उपेक्षा इस ग्रन्थ के माध्यम से दूर होकर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट कर सके, तो मेरा परिश्रम तो सफल होगा ही, साथ ही संस्कृत साहित्य के अधूरे पृष्ठ भी अंशतः पूरे हो सकेंगे।

डॉ. चन्द्रशेखर पुरोहित

सरदारपुरा उदयपुर

(राजस्थान) ३१३००१

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेवाड़ राज्य का मानचित्र

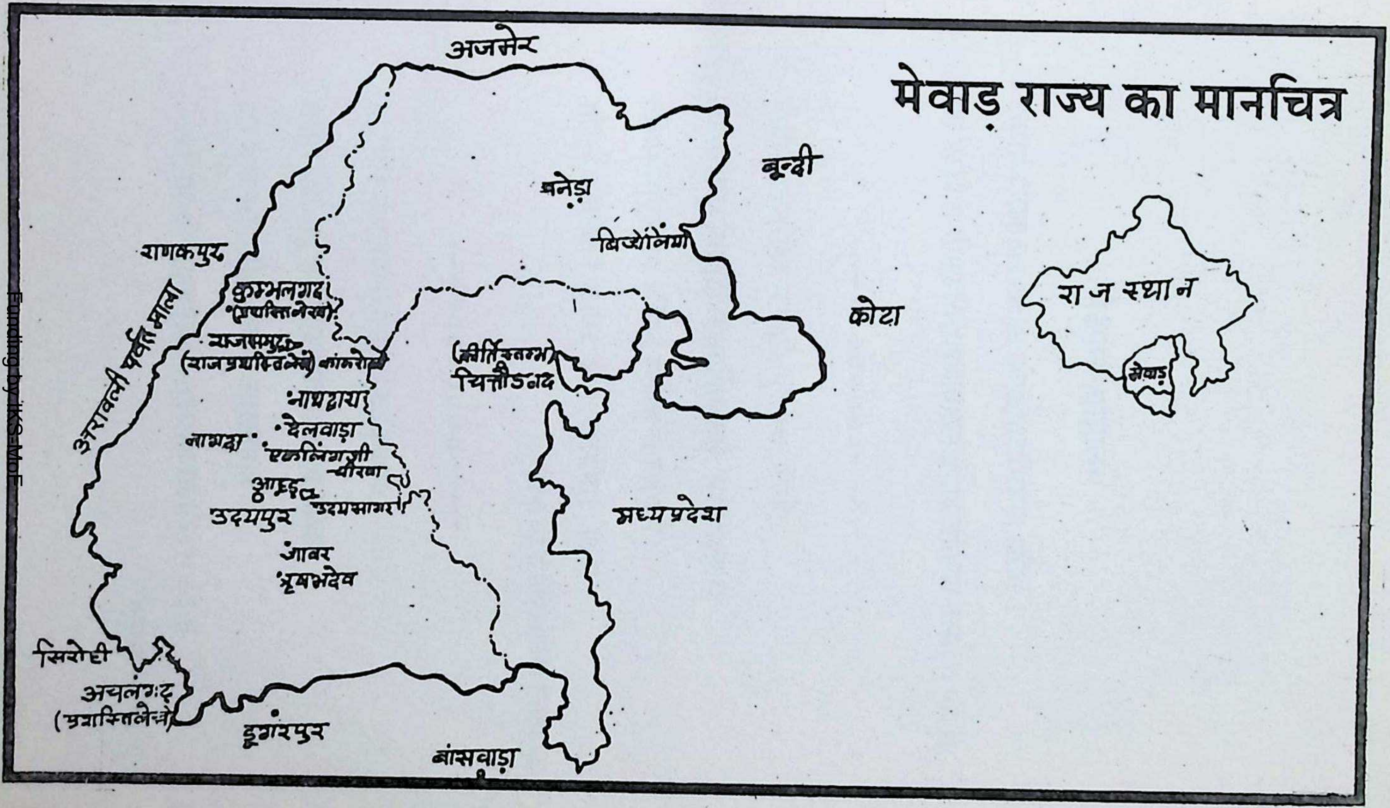

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेदपाट-माहात्म्य

अथास्ति देशः प्रवरप्रदेशः श्रीमेदपाटाभिधया प्रतीतः ।

स्वर्गोऽपि यं वीक्ष्य विलक्षभावादलक्षभावं प्रतिपद्य तस्थौ ॥ ५८ ॥

———-ooooooo———-

तीर्थैर्मंदरकंदरैरिव मनोहृद्यैः पुरैः स्वः श्रियो,

लावण्यैरिव विस्तृतैः सितमणिस्वच्छैः सरोभिश्च यः

व्योमश्रीर्मुकुरैरिव प्रतिपदं स्फीतो जयत्यंगना

सौन्दर्यैकनिकेतनं जनपदः श्रीमेदपाटाभिधः ॥६ ॥

रसिया की छत्रीशिलालेख चित्तौड़गढ़

———-ooooooo———-

धीरं नीरं कमलममलंमञ्जुला वञ्जुलाली,

स्फीतं गीतं मृदु मधुलिहां वीतशोकाश्च कोकाः ।

यत्रागाधे सरसरसितं जृम्भते सारसानाम्

काम्यां याम्यां दिशमनुसरः शंकरात्तच्चकास्ति ॥ ३८ ॥

कुम्भलगढ़ प्रशस्ति ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संकेत सूची

वी. वि.	वीर विनोद
उ.रा.इ.	उदयपुर राज्य का इतिहास
मे.रा.इ.	मेवाड़ राज्य का इतिहास
मे.प.	मेवाड़ परिचय
म.कु.	महाराणा कुम्भा
वी.भू.चि.	वीरभूमि चित्तौड़
रा.जै.संत व्य. एवं कृ.	राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व
ए.ग्रा.इ.	एपिग्राफिया इण्डिका
रा.प्रा.वि.प्र.	राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान
शो.प.	शोध पत्रिका
प्र. च.	प्रबन्ध चिन्तामणि
प्रा. म.	प्रासादमण्डन

शिलालेख चित्रसूची

	पृ.
१. राजप्रशस्ति शिलालेख	३५

चित्र सूची

१. श्री महाराणा राजसिंह	३०
२. श्री एकलिङ्ग महादेव (मेवाड़ के स्वामी)	१७९
३. श्री महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा)	२०१
४. श्री महाराणा प्रताप सिंह	२३०
५. श्री बापा रावल	२४३
६. पं श्री लक्ष्मी नारायण पुरोहित	३१७

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषय सूची

प्रस्तावना : xi

मेवाड़ का मानचित्र xxi

प्रथम अध्याय—ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि : पृष्ठ १-२७

मेवाड़ राज्य की भौगोलिक सीमा, ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि, ऐतिहासिक अध्ययन के आधार स्तम्भ, मेवाड़ के राजवंश की स्थापना, वैदिक एवं वैष्णव धर्म, श्रीनाथ जी, द्वारकाधीश, ऋषभदेव, शैवधर्म, लकुलीश (शैवमत), शक्ति की उपासना, जैन धर्म—दिगम्बर सम्प्रदाय, श्वेताम्बर सम्प्रदाय, इतर सम्प्रदाय।

द्वितीय अध्याय—राजप्रशस्ति एवं राजरत्नाकर ऐतिहासिक महाकाव्य २८-९२

राजप्रशस्ति महाकाव्य

रणछोड़ भट्ट का परिचय व वंशवृक्ष, रणछोंड़ भट्ट का पाण्डित्य, राजप्रशस्ति कथावस्तु-शिला प्रथम, द्वितीय शिला (प्रथम सर्ग) से पंचविंशति शिला (चतुर्विंशति सर्ग) पर्यन्त, राजप्रशस्ति का चरित नायक राजसिंह, राजप्रशस्ति एक महाकाव्य, राजप्रशस्ति में लौकिक, देशीय भाषा के शब्दों का प्रयोग, राजप्रशस्ति महाकाव्य में अलंकार प्रयोग, राजप्रशस्ति के कुछ छन्द, राजप्रशस्ति महाकाव्य में प्रयुक्त छन्दों का विवरण।

राजरत्नाकर महाकाव्य

कवि सदाशिव नागर का परिचय, सदाशिव नागर का वैदुष्य, संक्षिप्त कथावस्तु—प्रथम सर्ग से त्रयोविंशति सर्ग तक, राजरत्नाकर का महाकाव्यत्व, काव्यात्मक विशेषताएं—राजरत्नाकर में अलंकार प्रयोग, राजरत्नाकर महाकाव्य का वृत्तानुसारी विवरण, ऐतिहासिक ऊहापोह, राजरत्नाकर में एक विशिष्ट ऐतिहासिक अज्ञात वृत्त, राजप्रशस्ति और राजरत्नाकर में इतिवृत्त वर्णन-साम्य, राजप्रशस्ति और राजरत्नाकर महाकाव्यों की तुलना ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीय अध्याय—खण्डकाव्य एवं मुक्तककाव्य : ९३-१७८

अमरसार काव्य

कवि जीवंधर, मंत्री डूंगरसिंह, राजपुरोहित काशीदास, धन्वन्तरि वैद्य, सेनापति हरिदास, अमरसार का खण्डानुसार संक्षिप्त वृत्त, यशोवर्णनाधिकार, नीतिखण्ड, धर्मखण्ड, साहित्यिक सौन्दर्य ।

श्रीजगत्सिंह काव्य संक्षिप्त विषयवस्तु काव्य दृष्टि से उत्कृष्ट कुछ पद्य ।

जगत् सिंहाष्टक

राजसिंहाष्टक

राज्याभिषेक पद्धति

राजपट्टाभिषेक पद्धति

राजसिंहप्रभोर्वर्णनम्

अमरकाव्य

रणछोड़भट्ट, विषय वस्तु, रचनाकाल, कवि के प्रिय अलंकार ।

अमरसिंहाभिषेककाव्य

अमरसिंहाभिषेक काव्य का वृत्तानुसारी विवरण-

संग्रामसिंह महोदय काव्य

संग्रामसिंह महोदय काव्य की सर्गानुसार संक्षिप्त विषयवस्तु प्रथमसर्ग से एकादश सर्ग तक, कृपाराम, राजपुरोहित सुखाराम, काव्यात्मक वैशिष्ट्य ।

वीरतरंगरंग

पं० यमुनादत्तषड्शास्त्री, वीरतरंगरंग की संक्षिप्त कथावस्तु ।

वीरवंशवर्णन

भौगोलिक वर्णन, पं० नगजीराम, रचनाकाल, वीरवंश वर्णन काव्य की संक्षिप्त कथावस्तु प्रथम पर्व से तृतीय पर्व तक, पिता और पुत्र का एक कुटुम्ब में वैवाहिक सम्बन्ध, कथावस्तु चतुर्थपर्व से चतुर्दश पर्व तक ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वीरभूमि

पं० शोभालाल शास्त्री, वीरभूमि काव्य की संक्षिप्त विषयवस्तु, साहित्यिक विशेषताएं।

चतुर्थ अध्याय—धार्मिक काव्य, स्तोत्र, टीका १७९-१९९

एकलिंग माहात्म्य

संक्षिप्त कथावस्तु-कामधेनुवरदान अध्याय, इन्द्रवरप्रदान अध्याय, राजवंश वर्णन।

एकलिंग माहात्म्य (पुराण)

कथासार

एकलिंग स्तोत्र

एकलिंग पूजापद्धति

चण्डीशतक टीका

कुम्भाकृत व्याख्या

गंगा भक्तानन्द सिन्धु

पंचम अध्याय—वैज्ञानिक-साहित्य : २००-२३५

संगीतराज

१ पाठ्यरत्न कोश, गीतरत्नकोश, वाद्यरत्नकोश, नृत्यरत्नकोश, रसरत्नकोश।

सूड प्रबन्ध

वाद्यप्रबन्ध

गीत गोविन्द की 'रसिक प्रिया टीका'

संगीत रत्नाकर टीका

संगीत क्रम दीपिका

गीत गोविन्द

नाटक ग्रन्थ

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ

सूत्रधारमण्डन

सूत्रधार जइता

प्रासादमण्डन

राजवल्लभमण्डन

देवतामूर्तिप्रकरण एवं रूपमण्डन

रूपावतार

वास्तुमंजरी

उद्धारधोरणी, कलानिधि, द्वारदीपिका

कामराजरतिसार शतक

विश्ववल्लभ

मुहूर्तमाला

राजरत्नाकर

रुक्मिणी विवाह कौतुक

शब्दार्थ चिन्तामणि कोश

षष्ठ अध्याय-प्रशस्तिसाहित्य (शिलालेख) वि. सं. ५४७ से २००० पर्यन्त: २३६-२९६

बाह्य भौगोलिक ज्ञान, आन्तरिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, छोटी सादड़ी भंवरमाता के मन्दिर का शिलालेख, सामोली का शिलालेख, कूंडा ग्राम का अभिलेख, मौर्यराजा मानमोरी का लेख, बापा रावल, सारणेश्वर (षाण्नाथ), महादेव के मन्दिर का शिलालेख, लकुलीश मन्दिर की प्रशस्ति, कुमारपाल का चित्तौड़ का शिलालेख, घाघसा का शिलालेख, वि. सं. १३२४ का शिलालेख, बिजौलिया के पास जैन मन्दिर का शिलालेख, चीरवा गांव का शिलालेख, रसिया की छतरी चित्तौड़गढ़ का शिलालेख, शृंगी ऋषि का शिलालेख, समिद्धेश्वर महादेव चित्तौड़ के मन्दिर की प्रशस्ति, महावीर प्रासाद प्रशस्ति, राणकपुर जैन मन्दिर की प्रशस्ति, कड़िया ग्राम की प्रशस्ति, कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति, प्रथमशिला, प्रथम शिलालेख

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सारांश, प्रथम शिला में प्रयुक्त छन्दों का विवरण , द्वितीय शिला, तृतीय शिला, तृतीय शिला सारांश, तृतीय शिला का वृत्तानुसारी विवरण, चतुर्थ शिला, चतुर्थ शिला का सार, काव्यात्मक विशेषताएं, कुम्भलगढ़ की इतर प्रशस्ति, कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़ की प्रशस्ति, प्रशस्ति का रचनाकाल, प्रशस्तिकार अत्रि और महेश, काव्य सौष्ठव, श्री एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, जावर की प्रशस्ति, वि. सं. १५५६ का चित्तौड़ का शिलालेख, नारलाईगांव आदिनाथ जैन मन्दिर का शिलालेख, रामेश्वर प्रासाद प्रशस्ति, ओंकारनाथ की प्रशस्ति, जगन्नाथराय (जगदीश) मन्दिर, उदयपुर की प्रशस्ति, प्रथम शिला की संक्षिप्त विषय वस्तु, शिला द्वितीय, शिला तृतीय, शिला चतुर्थ, त्रिमुखी वापी की प्रशस्ति, जनासागर (बड़ी का तालाब) की प्रशस्ति, उदयपुर (दक्षिणा मूर्ति महादेव) की प्रशस्ति, वैद्यनाथ प्रासाद प्रशस्ति, उदयपुर (श्री हरबेन के द्वारा निर्मित शिवालय) की प्रशस्ति, उदयपुर (गोवर्धन विलास कुण्ड) की प्रशस्ति (पंचोलियों के मन्दिर) की प्रशस्ति, प्रभुनारायण की वापी और मन्दिर की प्रशस्ति, उदयपुर, रामप्यारी वाटिका के मन्दिर की प्रशस्ति उदयपुर, सीता माता के मन्दिर की प्रशस्ति उदयपुर, भीम पद्मेश्वर महादेव मन्दिर, उदयपुर की प्रशस्ति, प्रभु श्री जगत् शिरोमणि के मन्दिर की प्रशस्ति, उदयपुर, प्रभु श्री गोकुलचन्द्रमा के मन्दिर की प्रशस्ति, उदयपुर, विभिन्न प्रशस्तियां और काव्य ग्रन्थों के आधार पर मेवाड़ राज्य की वंशावली ।

सप्तम अध्याय-शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय संस्कृत साहित्यः २९७-३२२

श्रीनाथजी का मेवाड़ में आगमन, श्री हरिरायजी, श्री गोवर्धन (गट्टूलाला जी, सत् स्नेह भाजन, आशुकवि नन्दकिशोर भट्ट, गिरिनारा श्रीश्यामजी, रविशास्त्री, पं. बालकृष्ण शास्त्री, रमानाथ शास्त्री, दामोदर शास्त्री, वामनाचार्य, त्रिगृह बलभद्र, सदानन्द झा, के. लक्ष्मीनारायण शास्त्री, पं. श्री पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी, पं. श्रीकण्ठमणिशास्त्री, पं. श्री बिहारीलाल दशोरा, ब्रह्मचारी शंकरलाल जी, पं. आनन्दीलाल शास्त्री, पं. मार्कण्डेय मिश्र, पं. गिरिधर व्यास शास्त्री, समश्लोकी मेवाड़ी भाषा में अनुवाद, त्रिपाठी नारायण शास्त्री, पं. श्री लक्ष्मीनारायण पुरोहित, पं० बालकृष्ण व्यास ।

अष्टम अध्याय-जैन संस्कृत साहित्य : ३२३-३४७

जैन साहित्य (श्वेताम्बर) सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र सूरि, प्रद्युम्न सूरि, बलभद्रसूरि, आचार्य जिनवल्लभ सूरि ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(धर्मशिक्षा प्रकरण, संघपट्टक, भावारिवारण स्तोत्र, पंचकल्याण स्तोत्र, कल्याण स्तोत्र, भारतीय (सरस्वती) स्तोत्र, सर्वजिन स्तोत्र, पार्श्वजिन स्तोत्र, पार्श्वस्तोत्र, श्रृंगार शतक, जिनदत्तसूरि, सर्वजिन स्तुति, रत्नप्रभसूरि, आचार्य हीरानन्द सूरि, सोमसुन्दर, मुनिसुन्दर, सोमदेववाचक, माणिक्यसुन्दरगणि, खरतरगच्छ के आचार्य, सोमसौभाग्य काव्य, दानप्रदीप, वस्तुपाल चरित, दिगम्बर जैन साहित्यकार, भट्टारकसकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ब्रह्मजिनदास, जैनेतर महाकवि माहुक, उपलब्ध संस्कृत साहित्य का आकलन एवं उपसंहार ।

परिशिष्ट-१ अधीत अप्रकाशित पाण्डुलिपियां : ३४८

परिशिष्ट-२ अधीत प्रकाशित ग्रन्थ सूची : ३४९-३५०

परिशिष्ट-३ सहायक ग्रन्थों की सूची : ३५१-३५५

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि

मेवाड़ राज्य की भौगोलिक सीमा:—

भारतवर्ष के सभी राज्यों में मेवाड़-राज्य सबसे प्राचीन एवं लब्ध- प्रतिष्ठ है। वह राजस्थान के दक्षिणी विभाग में २३ अंश ४९ कला से २५ अंश ५९ कला उत्तर अक्षांश और ७३ अंश १ कला से ७५ अंश ४९ कला पूर्व देशान्तर के मध्य, विस्तार युक्त पूर्वोत्तर कोण से पश्चिम दक्षिण कोण तक लगभग ३०१.५ कि.मी. लम्बा और पश्चिमोत्तर कोण से पूर्व दक्षिण कोण तक करीब १८९.५ कि. मी. चौड़ा है। इसका क्षेत्रफल २०५५९.४५ कि. मी. है। कविराजा श्यामदास के वीरविनोद में मेवाड़ राज्य के अंश, कला, क्षेत्रफल आदि अंकों में कुछ अन्तर है।[१]

इसकी उत्तरी सीमा में अजमेर-मेरवाड़ा, पूर्व में कोटा बूंदी, निम्बाहेड़ा, जावद, नीमच और टोंक हैं। दक्षिण में डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ पश्चिम में जोधपुर और सिरोही है।[२]

उत्तरी सीमा को छोड़कर मेवाड़ के तीनों ओर अरावती पर्वतमालाएं है, जो अजमेर-मेरवाड़ा में होती हुई दीवेर के समीप मेवाड़ में प्रवेश करती है। वहां इनकी ऊंचाई, चौड़ाई न्यून दी है, परन्तु आगे आकर मारवाड़ के निकट बढ़ती गई है। कुम्भलगढ़ पर इनकी ऊंचाई ३५६८ फीट तक पहुंच गई है। गोगुन्दा से १५ मील उत्तर में "जर्गा" नामक पर्वत की ऊंचाई ४३१५ फीट है। यह मेवाड़ के पर्वतों में से सबसे ऊँचा है। यह पर्वतमाला मेवाड़ के वायव्य कोण से लेकर सम्पूर्ण पश्चिमी

---

१. मे.रा.इ., पृ.१,२- दूगड़; उ.रा.इ.पृ.-ओझा; मे.प.पृ.१; वी.वि. भाग १ पृ.१००

२. वही ,, ,, ,,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

और दक्षिणी भाग में फैली हुई हैं । द्वितीय पर्वत श्रेणी मेवाड़ के ईशान कोण में देवली के पास से आरम्भ होकर भीलवाड़ा तक गई है । तृतीय श्रेणी देवली के समीप से राज्य के पूर्व भाग में जहाजपुर, मांडलगढ़ बीजोल्यां, भैंसरोड़ग़ढ़ और मैनाल होती हुई चित्तौड़ से दक्षिण तक चली गई है । इसकी ऊंचाई २०० फीट से अधिक नहीं है । !१

ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठ भूमिः—

"मेवाड़" के लिए संस्कृत-साहित्य में प्राय: "मेदपाट" शब्द व्यवहृत हुआ है । यत्र तत्र "मेवाड़" शब्द का भी प्रयोग किया गया है । यह प्रदेश पहले "मेद" अर्थात् "मेव" अथवा "मेर" जाति के अधिकृत था, अत: इसका नामकरण "मेदपाट" (मेवाड़) दशवीं शताब्दी के आस-पास से प्रारम्भ हुआ प्रतीत होता है । मेवाड़ का एक भूभाग अब तक भी "मेवल" के नाम से पुकारा जाता है । विभिन्न शिलालेखों एवं काव्य ग्रन्थों में "मेदपाट" (मेवाड़) शब्द का प्रयोग निम्न उल्लेखानुसार हुआ है । !२

मेवाड़ के लिए "मेदपाट" शब्द का प्राचीन उल्लेख वि. सं. १०५३ के "हटुंडी" के शिलालेख में हुआ है । !३

चित्तौड़ निवासी धाकट वंशीय गोवर्धन के पुत्र हरषेण द्वारा वि. सं. १०४४ में लिखित "धम्मपरिक्खा" नामक अपभ्रंश ग्रन्थ में "मेवाड़" शब्द का प्रयोग किया गया है । !४

---

१. मे.प.-पृ.१,२-वाजपेयी

२. उ.रा.इ., भा.१ पृ.३०५ टिप्पणी १-ओझा

३. भंक्त्वा घाटमघटाभि: प्रकटमिवमिदं मेदपाटे भटानां,
जन्ये राजन्य जन्ये जनयति जनताजं (?)रणे मुंजराजे ।
श्री-माणे प्रणष्टे हरिण इव भिया गुर्जरेश निनष्टे,
त(?)सेन्यानां शरण्यो हरिरिव शरणे यः सुराणां बभूव ॥ ॥ ए.इ. भाग १० ॥

४. इय मेवाड़देसेजणसंकुले सिरी,
उजपुरणिग्गय धक्कड़ कुलि ।
पावकरिंद कुंभदारण हरि,
जाऊ कुलादि कुसलाणमें हरि ॥
धम्म परिक्खा-अन्तिम प्रशस्ति

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वैसे संस्कृत में भी "मेवाड़" शब्द का प्रयोग किया गया है । यथा कुमारपाल द्वारा विजित प्रदेशों में "मेवाड़" का नाम प्रबन्धचिन्तामणि के चतुर्थ प्रकाश में हुआ हैं । !१

महारावल समरसिंह कालीन वि. सं. १३३१ का रसिया की छत्तरी चित्तौड़ के लेख में मेवाड़ शब्द का प्रयोग और वि. सं. १३४२ आबू के अभिलेख में मेवाड़ शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है । संग्राम भूमि में दुर्जनों के "मेद" के क्लेद से सम्पूर्ण प्रदेश आप्लावित हो गया । अनुमानतः "मेद" अथवा "मेव" या "मेर" जाति के लोगों का यहां निवास होने के कारण इस देश का नाम "मेवाड़" पड़ा । इसके पश्चात् कुम्भाकालीन कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति वि. सं. १५१७ में मेदपाट शब्द प्रयुक्त हुआ है । राणा रायमल्ल के समय वि. सं. १५४५ में श्रीएकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में "मेदपाट" शब्द का उल्लेख मिलता है । !२

---

१. कोंकणे तु तथा राष्ट्रे कीरे (च) जांगले पुनः ।
सपादलक्षे मेवाड़े जालंधरेऽपिच ॥ प्र.चि.पृ.९५ ॥

२. बप्पारब्यः स पुरा पुराणपुरुष प्रारम्भनिर्वाहना ।
तुल्योत्साहगुणो बभूव जगति श्रीमेदपाटामिधः ॥ १० ॥

रसिया की छतरी चित्तौड़गड़ प्रशस्ति ॥

मेदः क्लेदभरेण दुर्जन जनस्याप्लावितस्संगरे,
देशक्लेशकथापकर्षणपटु यो बप्पकेनोच्चकैः ।
लावण्योत्करनिर्जितामरपुरः श्रीमेदपाटाभिधा
माधत्ते स्म स एष शेषनगर श्रीगर्वसर्वंकषः ॥ ७ ॥ —
मेदपाट मही पश्चात् पालिता लालितापि च ॥ ४० ॥

आबू अचलेश्वर मन्दिर प्रशस्ति ।

मेदानां उन्मदानां वै मेदक्लेदेन पाटितः ।
सार्थकीकृत नामासौ मेदपाटो विराजते ॥

मेदपाट महिमा-अप्रकाशित पं. गिरिधरजी शास्त्री

विभ्राजते सकलभूवलयैकवीरः,
श्रीमेदपाटवसुधोद्धरणैकधीरः ॥ २२९ ॥ **कुम्भलगढ़ प्रशस्ति च. शि. ।**
अस्ति स्वस्तिमती सुपर्वजगती सौन्दर्यसर्वस्वभू
भूरि श्रीर्महतीमहो विदधती श्रीमेदपाटावनिः ॥ ६ ॥
मेदपाटवसुधा वसुधाधिपत्य
चिंहंबभार मुकुटं किल चित्रकूटम् ॥ ७ ॥ **श्री एकलिंग दक्षिण द्वार प्रशस्ति**

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महारावल समरसिंह के समकालीन जिनप्रभसूरि के ग्रंथ तीर्थकल्प के सत्यपुर कल्प में मेवाड़ शब्द प्रयुक्त हुआ है । इसमें सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के छोटे भाई उलूगखां द्वारा गुजरात पर वि. सं. १३५६ में आक्रमण करने का एक प्रसंग वर्णित है ।[१]

मेव + वाड़ या मेवों का स्थान । मेद या मेव जाति उत्तरी भारत से आई हुई अनार्य जातियों में से है । संस्कृत कोषों में उनको म्लेच्छ और महाभारत में ऐरावत कुल के नागवंशी लिखा है । मेवात और मेवल प्रदेश अब भी मेवों के नाम से विख्यात है, किन्तु वे लोग अब यवन हो गये है । जनरल कन्हिंघम लिखते है कि "मेव" अपने आपको राजपूत बतलाते हैं और कहते हैं कि भड़ोंच के शहीदसालार ने हमको मुलसलमान बनाया । इनकी १२ शाखाएं है—५ यादव, ५ तंवर, १ कछवाहा, १ बडगूजर ।[२]

इस प्रकार से विभिन्न ग्रन्थों में "मेवाड़" और "मेदपाट" का उल्लेख मिलता है, जो इसकी प्राचीनता को सिद्ध करता है ।

वैसे तो समस्त प्राचीन आर्यावर्त का इतिहास गौरवमय ही रहा है । तथापि वीरप्रसविनी मेवाड़ के इतिहास में त्याग, बलिदान और स्वातन्त्र्य-प्रेम के जो उदाहरण मिलते हैं वे श्लाघनीय ही नहीं अपितु अनुकरणीय हैं । एक छोटा सा अल्प-संख्यक जनसंख्या वाला राज्य होने पर भी मेवाड़ ने अपनी मातृभूमि के स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए शक्ति- सम्पन्न साम्राज्य का सामना कर जिस आत्मोत्सर्ग का आदर्श प्रस्तुत किया, वह इसको भारतीय इतिहास में सर्वोच्च गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किये हुए है । इस मेवाड़ मां के चरणारविन्द में अनायास ही श्रद्धा और भक्ति के साथ सुदूर से आये हुए मानव नतमस्तक हो जाते हैं ।

"मेवाड़" में ऐसे अनेक प्राचीन एवं समृद्ध नगर रहे हैं, जो संस्कृत साहित्य. शिल्प और कला की दृष्टि से अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं । चित्तौड़गढ़ के ११.३४ कि.मी. उत्तर में "मध्यमिका" नामक स्थान भारतवर्ष के प्राचीन नगरों में से एक समृद्धिशाली नगर था । "मध्यमिका"से कई संस्कृत प्राचीन शिलालेख और

---

१. चितकुडाहि बई समसरेरिहेणं दडं दाडं मेवाड़देसो तथा रखियो ॥

तीर्थ कल्प में सत्यपुरकल्प पृ. ९५

२. आर्कियालॉजिकल सर्वे रिपोर्ट २० पत्र २२ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सिक्के मिले हैं। विक्रम सम्वत् के पूर्व तृतीय शताब्दी के आसपास की ब्राह्मी लिपि में लिखित सिक्कों पर "मज्झिमिकाय शिविजनपदस" लेख अंकित है, जिसका अर्थ है कि यह शिवि देश के मध्यमिका नगरी का सिक्का है। इससे यह प्रकट होता है कि मेवाड़ या चित्तौड़ का समीपवर्ती भूभाग "शिवि" देश के नाम से विख्यात था।

यह इस बात के प्रतीक है कि विक्रम शताब्दी के चार सौ वर्ष पूर्व यह नगर तथा मेवाड़ का संस्कृत साहित्य कितनी समृद्ध अवस्था में था। बड़ली गांव (अजमेर जिले में) से उपलब्ध वीर सं. ८४ (वि.सं. पूर्व ३८६, ई. सन् पूर्व ४४३) के शिलालेखों में मझमिका (मध्यमिका) का उल्लेख है। उसी "मध्यमिका" को इस समय "नगरी" नाम से पुकारते है। प्राचीन एवं समृद्ध इस नगरी को देखकर अन्यान्य राज्यों के राजा भी इस पर आक्रमण के लिए सदैव ही उद्यत रहते थे। उदाहरणार्थ "पतंजलि" ने अपने महाभाष्य में "मध्यमिका" पर यवनों (यूनानियों) द्वारा किये गये आक्रमणों का उल्लेख किया है। नगरी से प्राप्त शिलालेखों में से तीन वि. सं. के पूर्व लगभग तीसरी शताब्दी के आसपास की लिपि में है। इन शिलालेखों में से एक पर दो पंक्तियों में लिखा मिलता है कि "सर्वभूतों (जीवों) की दया के निमित्त बनवाया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह लेख जैनियों या बौद्धों से सम्बन्धित है। ईशा की तीसरी शताब्दी पूर्व इस प्रदेश पर जैन और बौद्ध धर्मका प्रचार प्रसार दृष्टिगत होता है। इस प्रकार की लिपि से मेल रखता हुआ दूसरा शिलालेख "घोसुंडी" की बावड़ी में लगा हुआ। जिसके संवत् का पता नहीं लगता है। यह "घोसुंड़ी" की वापी (बावड़ी) राणा रायमल्ल की रानी श्रृंगारदेवी द्वारा बनवाई गई थी। बावड़ी के बनवाने में "नगरी" से पत्थर मंगवाये गये थे। उनके साथ ही सम्भवतः यह शिलालेख भी आ गया और इसमें लगवा दिया हो। शिलालेख दोनों ओर से खंडित है। उस पर बड़े बड़े अक्षरों में तीन पंक्तियां खुदी हुई। हैं। प्रथम पंक्ति का आशय "पाराशरी पुत्र गजायन ने", द्वितीय का—"भगवान् संकर्षण और वासुदेव के निमित्त" तथा तृतीय का—"पूजा के निमित्त नारायण वट (स्थान) पर शिला प्राकार बनवाया गया है।" इससे विदित होता है कि वि. सं. के पूर्व की तृतीय शताब्दी के समीपवर्ती विष्णु की पूजा का भी प्रचार इस स्थान पर था और उनके मन्दिरों का निर्माण भी होता रहा था।

उसी लिपि के तृतीय लेख का छोटा सा शिलाखण्ड घोसुंडी और बसी की सीमा पर मिला, जिसका संवत् ज्ञात नहीं होता है। उस पर एक ही पंक्ति है"(ते) न

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वतातेन अश्वमेध" अर्थात् उस सर्वतात ने अश्वमेधयज्ञ किया। अश्वमेध यज्ञ बहुत बड़ा सम्राट् ही कर सकता था। यह सर्वतात के महान् होने का द्योतक है। अश्वमेध-यज्ञ-यागादि प्राचीन आर्यावर्त की संस्कृति के प्रतीक रहे हैं। वि. सं. चतुर्थ शताब्दी की लिपि का दोनों किनारों से त्रुटित एक लेख का टुकड़ा "नगरी" से उपलब्ध हुआ। इस लेख से भी ज्ञात होता है कि वहां—(?) ने वाजपेय यज्ञ किया था। वि. सं. ४८१ का एक पांचवा शिलालेख भी वहां से प्राप्त हुआ, जिसमें विष्णु मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है।[१]

चित्तौड़गढ़ राजस्थान का ही नहीं अपितु सम्पूर्ण आर्यावर्त का प्रख्यात दुर्ग है। यहां की पवित्र भूमि में अगणित राजपूत वीर एवं वीरांगनाओं ने जन्म लिया, जिन्होंने अपने देश एवं हिन्दुत्व की रक्षा के लिए प्राणों की आहुति देकर असिधारा रूपी पुनीत तीर्थ में स्नान किया। वीरांगनाओं ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिये धधकती जौहर की ज्वालाओं में प्रवेश लेकर त्याग एवं बलिदान का जो ज्वलन्त आदर्श उपस्थित किया, वह सदैव ही मानव मस्तिष्क को श्रद्धा और भक्ति-भाव से अवनत करता रहेगा। चित्तौड़ का रजकण पद्मिनी, पन्ना और मीरा आदि नारी रत्नों की कीर्ति को विख्यात करता हुआ इस समय भी वीर, करुण और भक्ति रस से हमारे मन को आप्यायित कर देता है। क्षत्रियों के रक्त से रंजित यहां का रजकण प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी के लिए पवित्र तीर्थ के तुल्य है, जिसे सदैव ही बड़ी आस्था एवं विश्वास के साथ शिरोधार्य किया जाता है। शौर्य और त्याग से परिपूर्ण जननी जन्मभूमि के लिये आत्मोत्सर्ग करने वाली इस वीर प्रसविनी मेवाड़ भूमि का इतिहास सर्वदा के लिए प्रेरणा का स्रोत रहा और रहेगा। इस प्रकार का लिखित मेवाड़ का संस्कृत साहित्य यहां की अमूल्य धरोहर के रूप में उन वीर एवं वीरांगनाओं की स्मृति को चिरस्मरणीय करता रहेगा।

चित्तौड़ दुर्ग मौर्यवंश के राजा चित्रांगद के द्वारा बनवाया गया था। वि. संवत् आठवीं शताब्दी के अन्त में मेवाड़ के गुहिलवंशी "बापा" कालभोज ने मौर्यवंश के अन्तिम सम्राट् "मान मौरी" से दुर्ग को अपने पराक्रम से हस्तगत किया। उसके अनन्तर मध्यकाल में मालवे के परमार राजा मुंज ने लिया। धारानरेश भोज भी कुछ वर्षों तक यहां रहे। बारहवीं शताब्दी के अन्त में गुजरात के सोलंकी राजा जयसिंह (सिद्धराज) ने दुर्ग को अपने अधिकार में किया। पश्चात्

१. उ.रा.इ.भा.१ पृ.३५८—ओझा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल के भतीजे अजयपाल को परास्त कर मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा सामन्तसिंह ने वि. सं. १२३१ के समीप ही अपना आधिपत्य जमाया तब से बीच बीच में थोड़े समय को छोड़कर स्वतन्त्रता-प्राप्ति पर्यन्त चित्तौड़गढ़ पर गुहिलवंशी नरेशों का अधिकार बना रहा ।[१]

मानमोरी, कुमारपाल एवं सामन्तसिंह के राज्यकाल में मेवाड़ के संस्कृत साहित्य की सतत श्रीवृद्धि होती गई । महाराणा कुम्भा कालीन "कीर्तिस्तम्भ" की प्रशस्ति जिसमें मेवाड़ के भौगोलिक एवं ऐतिहासिक वर्णन बड़े ही महत्व के हैं । सरस मंजुल शब्दावली में गुम्फित सुन्दर काव्यात्मक रूप में लिखी गई है । समय समय पर लिखा गया संस्कृत साहित्य आज जो भी उपलब्ध होता है उनका यथास्थान निर्देश किया गया है ।

जनश्रुति के अनुसार सबसे पहिले गुहिलवंशियों की राजधानी एकलिंग जी के समीप नागदा ग्राम में थी, जिसका स्मरण बापा का बनवाया हुआ एकलिंग जी का मन्दिर आज भी करवा रहा है । नागदा के पश्चात् मेवाड़ की प्राचीन राजधानी "आघाटपुर" (आहड़ या आयड़) रही । यह वहां से प्राप्त संस्कृत के शिलालेखों से प्रमाणित होता है । उसीके पास प्राचीन "तांबावती" नगरी थी । राजा अल्लट ने अपनी राजधानी नागह्द (नागदा) से आघाटपुर (आहड़) में परिवर्तित कर इस नगर को बसाया था । इस विषय में विद्वानों का अनुमान है कि अल्लट का नागदा और आहड़ दोनों स्थानों पर निवास था । आहड़ में गंगोद्भेद नामक तीर्थ कुण्ड के कारण वह यहां भी रहा करता था । अल्लटकालीन आहड़ के निकट सारणेश्वर महादेव के मन्दिर में लगा हुआ वि. सं. १०१० का संस्कृत भाषा में लिखित शिलालेख समसामयिक वराहमन्दिर एवं ऐतिहासिक विवरण को प्रस्तुत करता है । यह शिलालेख ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । कर्णाट, मध्यप्रदेश, लाट और टक्क देश के व्यापारी जो भी यहां निवास करते थे अपनी अपनी ओर से मन्दिर के निर्वाहार्थ कर दिया करते थे । इससे विदित होता है । कि आहड़ एक अच्छा सम्पन्न नगर था । यहां गंगोद्भेद (गंगोद्भव) नामक एक पुरातन तीर्थ स्वरूप चतुरस्त्र सुन्दर कुण्ड बना हुआ है, जिसके मध्य में एक प्राचीन छत्तरी बनी हुई है, जिसको उज्जयिनी के विख्यात राजा विक्रमादित्य के पिता गंधर्वसेन का स्मारक बताया जाता है ।

---

१. उ.रा.इ., भा.१ पृ.३४९,३५०

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि. सं. १०३० के आसपास मालवे के परमार राजा मुंज (वाक्पतिराज, अमोघ वर्ष) ने आहड़ पर आक्रमण कर इसे क्षति पहुंचाई। इसके पश्चात् भूकम्प के कारण यह नगर सर्वथा नष्ट हो गया। धूलकोट नामक एक ऊंचे स्थान पर केन्द्रीय पुरातत्व विभाग की ओर से उत्खनन का कार्य यथा समय हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी बड़ी ईटें, मूर्तियां एवं प्राचीन सिक्के उपलब्ध हुए हैं।

अल्लट के राज्यकाल में संस्कृत साहित्य के शिलालेखों का निर्माण हुआ। भर्तृभट्ट (द्वितीय) के समय वि.सं. १००० का शिलालेख उपर्युक्त दूसरे कुंड की दीवार में लगाया गया। एक प्राचीन शिलालेख से जैन मन्दिर की और दूसरे से हस्तिमाता के मंदिर की सीढ़ियां बनवाई गई। वि. सं. १०१० का शिलालेख सारणेश्वर के महादेव के मन्दिर के द्वार पर अन्दर की ओर ऊपर छावणे के स्थान पर लगा हुआ है। संस्कृत साहित्य का प्रचार एवं प्रसार अल्लट के राज्यकाल में भी दृष्टिगत होता है।[१]

उदयपुर से २१.६ कि. मी. उत्तर की ओर श्रीएकलिंग महादेव का बड़ा प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर के कारण उस ग्राम को एकलिंग पुरी कहते हैं, महाराणा फतहसिंह ने इसका नाम कैलाशपुरी रख दिया है। श्रीएकलिंगजी महाराणा के आराध्य इष्टदेव और मेवाड़ के स्वामी माने जाते हैं।

महाराणा उनके मंत्री (दीवाण) कहलाते है, जिसका उल्लेख पट्टे परवानों में होता रहा है। सर्वप्रथम इस मंदिर का निर्माण किसने करवाया, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता है, किन्तु किंवदन्ती के अनुसार प्रसिद्ध हैं कि बापा रावल (कालभोज) ने इसका निर्माण करवाया था। अनन्तर यवनों के आक्रमण से जो कुछ भी इसकी शिल्पकला कृति को क्षति हुई, उसका जीर्णोद्धार मोकल, कुंभा और रायमल्ल ने समय समय पर करवाया। एकलिंगजी की प्रतिमा श्यामवर्ण चतुर्मुखी है। विशेष तान्त्रिक पद्धति एवं वैदिक प्रणाली के अनुसार विशिष्ट पूजा पद्धति से इनकी अर्चना की जाती है। मेवाड़ के इतिहास और मन्दिर संबन्धी वृत्त की जानकारी के लिये प्रमुख मन्दिर के दक्षिण द्वार की ओर लगी हुई रायमल्ल कालीन वि. सं. १५४५ की संस्कृत भाषा में निबद्ध प्रशस्ति महत्वपूर्ण है। इसी समय संस्कृत में "एकलिंगपुराण" नामक ग्रन्थ की रचना हुई। इसमें एकलिंग विषयक पौराणिक

१: उ.रा.इ., भा.१, पृ.३३५,४२६,२७,२८—ओझा
मे.इ.पृ.३९—दूगड़

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आख्यान सविस्तृत बताया गया है । प्राचीन काल से संस्कृत-साहित्य के निर्माण की अजस्र धारा चली आई, वह अविच्छिन्न रूप से उत्तरोत्तर विकसित होती रही, वह सभी उल्लिखित प्रशस्तियों, पुराण एवं पूजा पद्धतियों की रचनाओं से ही अवगत हो जाता है ।

एकलिंग प्रभु की अर्चना "बापारावल" के गुरु "हारीतराशि"किया करते थे । "हारीतराशि" प्राचीन पाशुपत (शैव) सम्प्रदायों में "लकुलीश" सम्प्रदाय के अनुयायी थे । एकलिंग मन्दिर के दक्षिण की ओर कुछ ऊंचाई पर वि.सं. १०२८ का लकुलीश मन्दिर भी बना हुआ है । जो इस समय "नाथों का मन्दिर" नाम से पुकारा जाता है । एकलिंगजी की पूजा आर्य संस्कृति के उपासक मुनि "हारीतराशि" के शिष्य परम्पराओं के अधीन रही । ये ब्रह्मचारी के रूप में अपना जीवनयापन तपस्वी की तरह करते रहे हैं और मेवाड़ के महाराणाओं के कुल गुरु माने गये हैं ।[१]

एकलिंगजी से कुछ ही दूरी पर मेवाड़ की प्राचीन राजधानी "नागदा" गांव है । नागदा को संस्कृत के शिलालेखों, काव्यादि में "नागहृद" लिखा गया है । मेवाड़ की प्राचीन राजधानी रहने के कारण यह बड़ा ही समृद्ध नगर था । आज भी इसके खण्डहरों में उस समय के निर्मित शैव, वैष्णव एवं जैन मन्दिरों के ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होते हैं । जो कुछ भी मन्दिर अवशिष्ट हैं, उनमें से दो मन्दिर संगमरमर के बने हुए "सास बहू के मन्दिर" के नाम से विख्यात हैं । "सास बहू के मन्दिर" की शिल्पकला कृति प्राचीन खजुराहों की कलाकृतियों से साम्य रखती हैं । एक दो जैन मन्दिर भी अपनी जीर्ण शीर्ण अवस्था में विद्यमान है । एक तो " खुंमाण रावल का देवरा" ओर दूसरा "अदबदजी" का मन्दिर कहलाता है "अदबदजी" (अद्भुतजी) के मन्दिर में ९ फुट ऊंची शान्तिनाथ की पद्मासनासीन श्याम प्रतिमा विद्यमान हैं । प्रतिमा का अवलोकन करने से वस्तुत: "यथा नाम तथा गुण:" के अनुरूप हीअद्भुत दृष्टिगत होती हैं ।

उदयपुर से उत्तर की ओर लगभग ८९ कि. मी. दूर अर्वली (अरावली) उपत्यकाओं से मण्डित महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) द्वारा वि० सं० १५१५ में

---

१. उ.राइ., भा.१ पृ.३३६,३७— ओझा
हारीतराशि और लकुटीश संप्रदाय विषयक विशेष जानकारी के लिये मेरा लेख "श्रमण परम्परा" का मन्दिर या हारीत राशि की गुफा" शोध पत्रिका में द्रष्टव्य है । शोध पत्रिका वर्ष ८ अंक २ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बनवाया गया कुंभलमेरु (कुम्भलगढ़) नामक दुर्ग है ।[१] समुद्र की सतह से इसकी ऊंचाई ३५६८ फुट है । सामरिक महत्त्व की दृष्टि से निर्मित कुम्भलगढ़ अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है । इस दुर्ग के स्मृति-स्वरूप कुम्भा ने सिक्के भी बनवाये, जिन पर इसका नाम भी संस्कृत में अंकित किया गया था[२] ।

विद्वान् महाराणा कुम्भा ने कुम्भलगढ़ विषयक संस्कृत भाषा में प्रणीत "कुम्भलगढ़-प्रशस्ति" की रचना करवाकर बड़े-बड़े पांच शिलापट्टों पर उत्कीर्ण करवाई । "कुम्भलगढ़-प्रशस्ति" विषय एवं ऐतिहासिक वृत्त के अनुसार सुव्यवस्थित रूप में लिखी हुई है, जो एक अच्छा सरस काव्य है । पांच शिलालेखों में से तीन अपनी त्रुटित अवस्था में प्रताप संग्रहालय उदयपुर में विद्यमान है । द्वितीय शिलापट्ट का छोटा सा प्रस्तर खण्ड मात्र है । इसी विषय का एक शिलालेख और भी है, जिसकी विषय वस्तु एवं उत्कीर्णित अक्षर आधे से अधिक नष्ट हैं । इनका विस्तृत उल्लेख प्रशस्तियों के अध्याय में किया जाएगा ।

महाराणा कुम्भा स्वयं भी संस्कृत साहित्य में निष्णात था । इनके द्वारा रचित संगीत विषयक ग्रन्थ "संगीतराज"आदि मिलते हैं । जो खण्ड रूप में प्रकाशित हो चुके हैं[३] जयदेव विरचित गीत गोविन्द की "रसिक-प्रिया" नामक संस्कृत टीका कुम्भा के द्वारा लिखी गई जो प्रकाशित हो चुकी है ।[४]

ऐतिहासिक अध्ययन के आधार स्तम्भ :—

मेवाड़ का प्राचीन ऐतिहासिक साहित्य विशेष एवं पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं होता है । प्राचीन लिखित इतिहास के अभाव में जो कुछ भी किंवदन्तियां प्रचलित हो चलीं, उन्हीं की गणना इतिहास के अध्ययन के उपकरण में होने लगी । मेवाड़ के प्राचीन ऐतिहासिक ज्ञान के स्रोत अधिकांश रूप में प्राचीन शिलालोखों, सिक्कों, ताम्रपत्रों तथा कुछ उपलब्ध पुरातन संस्कृत पाण्डुलिपियों, ग्रन्थों, मुहणोत नैणसी की ख्यात एवं फारसी तवारीखों में आये हुए कुछ उल्लेख आदि के रूप में मिलते हैं ।

---

१. कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति श्लोक १८४

२. उ० रा० इ०, भा० १ पृ० ३४१—ओझा

३. प्रेमलता-संगीतराज–

४. गीत गोविन्द, रसिकप्रिया टीका-निर्णय सागर प्रेस बम्बई सन् १९२९ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इन्हीं के आधार पर पीछे के कविराजा श्यामलदास, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, रामनारायण दूगड़, देवनाथ पुरोहित आदि इतिहासकारों के द्वारा मेवाड़ के इतिहास की रचना की गई। मेवाड़ में रचित संस्कृत साहित्य विशेषत: शिलालेखों और पाण्डुलिपियों के रूप में प्राप्त होता है। मेवाड़ राजवंश के आश्रय में रहते हुए अनेक कवि तथा विद्वानों ने संस्कृत में ऐतिहासिक काव्य एवं महाकाव्यों की भी रचना की, जिसमें तत्कालीन आश्रयदाताओं के दान, शौर्य, त्याग एवं जन्मभूमि के प्रति निष्ठा आदि का उल्लेख मिलता है। मेवाड़ के संस्कृत काव्य ग्रन्थ अधिकतर पाण्डुलिपियों के रूप में अप्रकाशित विद्यमान हैं।

मेवाड़ का राजवंश:—

अनेक बार किये गये आक्रमण और प्रत्याक्रमणों के फलस्वरूप भी मेवाड़ तथा यहां का राजवंश स्थिर एवं अतिप्राचीन है। भारत के इतिहास में गुहिल या गुहदत्त किस जाति में उत्पन्न हुआ और उसका आदि स्थान कहां था? यह इतिहासकारों के लिए बड़ा ही विवादास्पद विषय रहा है। भिन्न भिन्न ऐतिहासिकों ने अपने अपने मतानुसार बताने का प्रयास किया है। अकबर के मंत्री व मुवर्रख अबुलफज़ल ने लिखा है कि "उदयपुर वाले अपने को नोशेरवां आदिल की सन्तान में समझते है।" इसके पश्चात् कितने ही फारसी मुवर्रखों ने इसी बात को पकड़कर उदयपुर के उच्च सूर्यवंश को ईरान के ससानियन वंशी सिद्ध करने की कपोलं कल्पना की और उन्हीं के आधार पर कर्नलटॉड ने भी कुछ अपनी ओर से मिलाकर इसी बात को पुष्ट करने का और गुहलवंशियों को ईसाई माता की संतान बताने का असफल परिश्रम किया।[१] गुहिल को वलभी के राजा शिलादित्य का पुत्र बताया गया है। रामकृष्ण भण्डारकर ने उसे ब्राह्मण सिद्ध करने की चेष्टा की है।[२]

गुलिहवंश के अनेक प्राचीन संस्कृत के शिलालेखों में ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं, अट्ठारहवीं शताब्दी और आगे तक के शिलालेखों में इस वंश की उत्पत्ति के संबंध में वर्णन मिलता है।

कुल क्रमागत कथा के अनुसार इनके मूलस्थान के सम्बन्ध में अभी तक यही माना जाता रहा है कि गुहिल के पूर्वजों का राज्य सौराष्ट्र प्रान्त में वलभीपुर में था। शत्रुओं के आक्रमण के फलस्वरूप वलभी नष्ट भ्रष्ट हो चुकी तो शिलादित्य

---

१. मे.इ.- प्रकरण-२,पृ.१९ दूगड़।

२. मे.प.-पृ.१०-वाजपेयी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की सगर्भा रानी पुष्पावती ने ईडर के समीपवर्ती पर्वतों में आकर शरण ली। वहां पर्वतों की कन्दरा(गुहा,गुफा) में गुहदत्त उत्पन्न हुआ। गुहा में उत्पन्न होने के कारण वह गुहिल कहलाया। निश्चयात्मक निर्णय के लिए कोई भी प्राचीन शिलालेखादि का प्रमाण नहीं मिलता कि गुहदत्त ईडर की ओर से आया था। गुहिल वंश के प्राचीन शिलालेखों पर दृष्टिपात करे तो शिलादित्य के वि.सं. ७०३ के शिलालेख में उस राजा को न ब्राह्मण लिखा है और न नागर केवल इतर विशेषणों के साथ उसको देव द्विज तथा गुरुजनों का आनन्ददायक कहा गया है।[१] द्वितीय चाटसू का भर्तृपट्ट (भट) के वंशज का लेख, जिसमें संवत् दिया हुआ नहीं है, के अनुसार सम्भवत: भर्तृपट्ट मत्तट का पुत्र हो। उसमें भर्तृभट को ब्रह्मक्षत्रवंशी लिखा हैं। तृतीय शिलालेख आघाटपुर (आहड़) शक्तिकुमार के वि.स. १०३४ के लेख में श्लोक आया है कि "आनन्दपुर विनिर्गत: विप्रकुलानन्दी महीदेव:। जयति श्री गुहदत्त प्रभव: श्री गुहिलवंशस्य "आनन्दपुर से निकला हुआ विप्रुकल को आनन्द देंने वाला श्री गुहद्त्त महीदेव श्री गुहिलवंश का उत्पादक विजय को प्राप्त होता है"। इस अर्थ से यह निश्चित नहीं होता कि गुहदत्त ब्राह्मण वंश का था। "विप्रकुलानन्दन" अनेक क्षत्रिय राजाओं का विशेषण भी रहा है। अत: गुहिल का स्वयं ब्राह्मण होना प्रमाणित नहीं होता। द्वितीय विशेषण "महीदेव" योगिक शब्द है, जिसकी रूढि ब्राह्मण अर्थ में मानना कठिन है। कोई भी कोश महीदेव का अर्थ ब्राह्मण नहीं बतलाता। अमरकोशादि में भी महीदेव शब्द के लिए मुख्यत: ब्राह्मण अर्थ को नहीं बतलाया गया है। "भूदेव शब्द ब्राह्मण का द्योतक है। हां, इतना अवश्य है कि किसी ने "भू" का पर्यायवाची "मही" होने से "महीदेव" शब्द का ब्राह्मण अर्थ ले लिया हो। यदि हम "भू"या "मही"को पृथग् कर दें तो अन्त का देव शब्द ब्राह्मण और क्षत्रिय राजा दोनों का वाचक हो सकता है। प्राचीन कोशकारों ने देव का अर्थ राजा लिया है अत:"महीदेव"से क्षत्रिय राजा का ग्रहण हो सकता है।[२]

कर्नलटॉड आदि के अनुसार मेवाड़ के राजाओं का संबंध वलभी से मानना असंगत है। वलभी के अन्तिम राजा शीलादित्य (छठे) का "अलीना दानपत्र" वलभी में प्रचलित संवत् ४४७ (तदनुसार वि.सं.८२३ ई. स. ७६६) का प्राप्त हो

१. उ.रा.इ.,भा.१.पृ.३८२ ओझा
२. मे.इ.पृ.१९-२४,दूगड़

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चुका है। उसके पश्चात् वलभी राज्य का पतन हुआ होगा। जैन लेखकों को वलभी के नष्ट होने का उचित संवत् मालूम न था। उन्होंने घटनाकाल के मनमाने संवत् लगाये। तदनुसार टॉड ने भी लिख दिया। किन्तु वलभी में शीलादित्य नाम के ६ राजा हो गये, जिनमें से अंतिम राजा शीलादित्य वि.सं. ८२३ में विद्यमान था। मेवाड़ का राजा शीलादित्य उक्त वलभी के शीलादित्य से भिन्न था। सामोली के वि. सं. ७०३ के शिलालेखानुसार मेवाड़ में राजा शीलादित्य राज्य कर रहा था, एतदर्थ गुहिल शीलादित्य का पांचवा पूर्वपुरुष होने से उसका समय वि.सं. ६२५ के लगभग स्थिर होता है। ऐसी अवस्था में गुहिल को वलभी के अन्तिम शासक शीलादित्य का पुत्र मानना अप्रामाणिक ही है।[१]

प्रश्न वाचक चिन्ह हमारे सामने फिर भी बना हुआ ही है कि मेवाड़ के राजाओं का मूलपुरूष वलभीपुर से नहीं आया तो फिर कहां से और किधर से आया? यह तों पुष्ट प्रमाणों के अभाव में कहना और निर्णय लेना कठिन ही है, किन्तु राजागुहिल के २००० चांदी के सिक्के वि.सं. १९२२ में आगरे से मिले, एवं चाटसू से उपलब्ध बालादित्य के शिलालेखों के अनुसार गुहिलवंशी राजा भर्तृभट (प्रथम) के वंशज वि० सं० १००० के आसपास चाटसू तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश पर राज्य करते थे। अपि च अजमेर जिले के "नासूण" गांव से प्राप्त वि.सं.८८७ के शिलालेखानुसार अनुमानतः चाटसू के गुहिलवंशियों की शाखा का अधिकार अजमेर के निकटवर्ती और आगरे के आसपास के प्रदेशों पर रहा हो। और वहीं से गुहिल का मेवाड़ में आना संभव हो सकता है।[२]

"आनन्दपुरविनिर्गत" शब्द से गुजरात का आनन्दपुर (बड़नगर) मान लेना भी उचित प्रतीत नहीं होता। "मुंहणोतनैणसी" की ख्यातानुसार, तथा मेवाड़ में वैसे भी जनश्रुति रही है कि मेवाड़ के राजा गुहिलोत कहलाये और इनका पहले राज्य दक्षिण भारत में "नासिक त्र्यम्बक" की ओर था। राजप्रशस्ति के अनुसार भी इन अयोध्यावासी राजाओं का अन्तिम राजा विजयभूप अयोध्या को छोड़कर दक्षिण में गया। उपर्युक्त उल्लेखानुसार यह मान्यता बन गई है कि दक्षिण में भी इनका राज्य था। हो सकता है उधर भी राज्य रहा हो, किन्तु गुजरात का आनन्दपुर (बड़नगर) लेना कपोल-कल्पना है। अमरकाव्य में आनन्दपुर के लिए स्पष्ट उल्लेख

---

१. उ.रा.इ.,भा.१, पृ. ३८८-३८९ ओझा

२. उ.रा.इ.,भा.१ प. ३८८-३८९ ओझा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि केशवादित्य चित्रकूट (चित्तौड़) के निकट आनन्दपुर (आनन्दपुर) से आया जो इस समय "अर्णोद" के नाम से अभिहित है। अतः चित्तोड़ के निकटस्थ ग्राम अर्णोद को ही आनन्दपुर मानना अधिक प्रामाणिक है।[१] बापारावल (कालभोज) के स्वर्ण निर्मित सिक्कों पर सूर्य का चिन्ह होना,[२] तथा वि.सं. १०२८ के शिलालेख में मेवाड़ के राजाओं को रघुवंशी मानना, वि.सं. १०३४ के शिलालेख में उनको क्षत्रियों का उत्पत्ति स्थान स्वीकार करना, रावल समरसिंह कालीन आबू के वि.सं. १३४२ के लेख में उन राजाओं को "मूर्तिमान् क्षात्रधर्म" मानना, रावल समरसिंह की माता जयतल्लदेवी के वि.सं. १३३५ के लेख में क्षत्रिय होने का निर्देश मिलना, वि.सं. १४८५ के शिलालेख में "क्षत्रियवंश का मण्डनमणि" कहना, राणा रायमल्ल के काल के वि.सं. १५५७ के शिलालेख में मेवाड़ के राजवंश का सूर्यवंशी क्षत्रिय स्वीकार करना आदि से मेवाड़ के राजवंश का सूर्यवंशी होने के लिए पर्याप्त पुष्ट प्रमाण हैं। इतिहास की तिमिराछन्न दशा में कतिपय जनश्रुतियां और गाथाएं चल पड़ती हैं जो कोई अर्थ नहीं रखती।[३]

वैदिक एवं वैष्णव धर्मः—

मेवाड़ प्रदेश विभिन्न धर्म और संस्कृतियों का केन्द्र रहा है। मानव ऐन्द्रिय सुख का परित्याग कर सतत आध्यात्मिक चिन्तन की ओर अग्रसर रहा।

मेवाड़ के घोसुण्डी नामक ग्राम से मिले हुए वि.सं.से पूर्व लगभग द्वितीय शताब्दी के लेख से विदित होता है कि वर्तमान "नगरी" नामक स्थान पर जो कि प्राचीन काल में "मध्यमिका" के नाम से ख्याति प्राप्त थी। वहां राजा "सर्वतात" ने अश्वमेध यज्ञ कियाथा।[४]

नगरी से उपलब्ध वि.सं.४८१ के लेख में भगवान् विष्णु का मन्दिर बनाये जाने का विवरण है। यह शिलालेख अजमेर संग्रहालय में विद्यमान है। इस लेख में सत्यसूर्य श्री गंधदास और वसु आदि निर्माताओं का नाम है। इससे ज्ञात होता है कि वहां भगवान् विष्णु की पूजा का प्रचलन था। ६ठीं शताब्दी के एक इतर लेख में वराह के पौत्र विष्णुदत्त के पुत्र ने विष्णु-मन्दिर का निर्माण करवाया था।

---

१. अमरकाव्य-रा.प्र.वि.प्र.,उदयपुर-ग्रन्थ सं.७२० पत्रसं.७।
२. "बापा के सोने के सिक्के" के लिए दृष्टव्य-ना.प्र.प.भा.१ पृ.२४१-२८५
३. उ.रा.इ.-भा.१ पृ. ३८४-ओझा
४. एइ.भाग ३० पृ.३४

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसका नाम शिलालेख में नष्टप्राय है ।[१] गुहिलवंशी राजा अपराजित के सेनापति "वराह" की स्त्री लक्ष्मी ने यौवन और धन को क्षणिक एवं नश्वर समझकर विष्णु मन्दिर बनवाया । वि.सं.१००१ के "आहड़" लेख में वराह मूर्ति स्थापित कराने का तथा १०१० के सारणेश्वर के शिलालेख से भी इसी प्रकार का वराह-मन्दिर बनाने का विवरण मिलता है ।

चित्तौड़ पर कई बार आक्रमण होने के फलस्वरूप देव-मन्दिर नष्ट हो गये । कुम्भ स्वामी के मन्दिर का नीचे का भाग अति प्राचीन बना हुआ दृष्टिगत होता है । ब्रह्मा की, राम-लक्ष्मण की धनुष वाण सहित एवं हरिहर आदि की प्रतिमाएं विशेष उल्लेखनीय है । कुमारपाल के एक अप्रकाशित लेख में विष्णु-मन्दिर बनवाने का संकेत मिलता है । कीर्तिस्तम्भ के पूर्वीय भाग में प्राचीन एक विष्णु मन्दिर है, जिस पर वि.सं. १३२७ का लघुलेख है । राणा हमीर से लेकर सभी राणाओं ने देव मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाना प्रारम्भ किया प्रतीत होता है । महाराणा लक्षसिंह (लाखा) ने विशेष रुचि के साथ मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया. मोकल ने चित्तौड़ में द्वाराकाधीश के मन्दिर का निर्माण करवाया ।[२] विष्णु मन्दिर के लिए स्वर्ण का गरुड़ बनवाकर उपहार में दिया[३] एवं स्वर्ण का तुलादान कर उसकी सम्पूर्ण राशि पुष्कर के आदिवराह के मन्दिर में लगा दी गई ।[४] कुम्भाकालीन निर्मित वैष्णव मन्दिरों में सबसे उत्कृष्ट कलात्मक कुम्भ श्याम का देवालय है । इस मन्दिर में वराह भगवान् की प्रतिमा पूजा निमित्त स्थापित की गई प्रतीत होती है ।[५] कीर्त्तिस्तम्भ पर अनेक देवी देवताओं की प्रतिमाएं उत्कीर्णित हैं जिनमें विष्णु के सभी अवतारों की मूर्तियां हैं । इससे प्रतीत होता है कि मेवाड़ में वैष्णवधर्म की भी प्रधानता थी ।

---

१. उ.रा.इ.,पृ.१४१३-ओझा

२. आसाद्यातिथिमाश्रयं त्रिजगतां श्री द्वारिकानायकं,
प्रासादं रचितोपचारमकरोद्भूमिपतिमोकलः ।— ॥६१ ॥
समिद्धेश्वर महादेव चित्तौड वि.सं.१४८५ की प्रश.।

३. यः सुधांशु मुकुटप्रियांगणे वाहनं मृगपतिं मनोरमं ॥ २२४
निर्मितं सकलधातुभक्तिभिःपीठरक्षणविधाविव व्यधात्
पक्षिराजमपि चक्रपाणये हेमनिर्मितमसौ दधौ नृपः ॥ २२५ ॥ (कुम्भलगढ़ प्रशस्ति)

४. शृंगी ऋषि का लेख पृ.१७

५. विष्णुर्यत्र विराजते स भगवानाद्योवराहाकृतिः ॥ ५६ ॥ (कुम्भगढ़ प्रशस्ति)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शृंगार चंवरी नामक जैन मन्दिर चित्तौड़ में विष्णु के विभिन्न रूपों की प्रतिमाएं अलंकरणार्थ निर्मित की गई ऐसा विदित होता है ।

मानव ऐहिक सुख की अपेक्षा पारलौकिक सुख, सद्गति और आत्मा के मोक्ष की चिन्ता में विशेष रहता है । इस दृष्टिकोण से वह अनवरत आध्यात्मिक चिन्तन की ओर अग्रसर होता है । धार्मिक प्रवृत्ति की ओर आस्थावान् रहता हुआ सुकृत कार्य, दान, पुण्य, मूर्तिपूजा आदि की ओर अपनी प्रवृत्ति रखता है । इस भौतिक शरीर को नश्वर समझता हुआ आत्मा के कल्याण की कामना करता रहता है । इस दृष्टि से मेवाड़ एक धर्म-प्राण देश रहा । यहां के राणा मेदपाटेश्वर सर्वदा धर्म, मातृभूमि एवं हिन्दुत्व की रक्षा के लिए ऐहिक शारीरिक सुख को तिलांजलि देकर "हिन्दुआँ सूर्य" की उपाधि से विभूषित रहे हैं ।

मेवाड़ में रचित संस्कृत के शिलालेखों में यत्र तत्र मूर्ति पूजा का उल्लेख मिलता है । विष्णु, शिव और शक्ति के निमित्त बड़े-बड़े प्रासादों और मन्दिरों का निर्माण होता रहा है । वि० सं० पूर्व की तृतीय शताब्दी के समीप ही विष्णु संकर्षण, वासुदेव की अर्चना सर्वतात के द्वारा अश्वमेघ, वाजपेय यज्ञ इस देश में हुआ करते थे । यह सभी नगरी से उपलब्ध शिलालेखों से अवगत होता है ।[१] मेवाड़ में वैदिक धर्म के पुनरुत्थान-स्वरूप यज्ञों की परम्परा चल पड़ी । जैन राजा खारवेल तक ने राजसूय यज्ञ किया । मेवाड़ में एक विशिष्ट यज्ञ नान्दशा में हुआ था । चित्तौड़ से उत्तर पश्चिम में ३२ मील की दूरी पर नान्दशा गांव है । वहां वि० सं० २८२ का स्तम्भ लेख मिला, जिसमें मालववंशी पोरप सोम का उल्लेख है, जिसने अपने पूर्वजों के उद्धारार्थ हवन कर यज्ञ-यूप खड़ा क . . था, जिसका यश द्यावा भूमि के अन्तराल में आच्छन्न था ।[२]

---

१. भगवदभ्यां संकर्षण-वासुदेवाभ्यां (अनहितभ्यां सर्वेश्वरभ्यां) पूजाशिलाप्राकारो-नारायणवाटिका ।
घोसुंडी का शिलालेख-२०० शताब्दी ई० पू० भा० १६,२२ । तेन सर्वतातेन अश्वमेघं एव स्य(?) यज्ञेवाजपेयेयपो तस्य पुत्रे—नगरी के लघुलेख, वी० भू० चि०, पृ० १४१, रा० व० सोमानी ।

२. एकषष्टिरात्रमतिसत्रमपरिमित धर्ममात्रं समद्धृत्यपितृपैतामहीं धुरमावृत्य सुविपुलं द्यावापृथिव्योरंतरनुत्तमेन यशसास्वकर्मसम्पदया विपुलां समुपगतामृद्धिमात्म-सिद्धिवितत्य मायामिव सत्रभूमौ सर्वकामौघधारां वसोर्द्धारा ब्राह्मणाग्निवैश्वानरेप, हुत्वा ब्रह्मेन्द्रप्रजापतिमहर्षिविष्णुस्थानेपु कृतावैकाशस्य—'नान्दशा का शिलालेख) वी० चि० पृ० १४० सोम ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"कीर्तिस्तम्भ" हिन्दू ज़ाति की कीर्ति का जाज्वल्यमान अलौकिक स्तम्भ है। इसमें विष्णु की विभिन्न प्रतिमाएं अपनी ही विशिष्ट कलाकृति के साथ निर्मित हैं। विष्णु के दस अवतारों की प्रतिमाएं तथा हरिहर चन्द्रार्क पितामह आदि की मूर्तियां बनी हुई है।[१]

श्री नाथ जी

उदयपुर से उत्तर में ५० कि. मी. दूर नाथद्वारा नगर है। वहां वल्लभ सम्प्रदाय के श्रीनाथजी का मन्दिर है।

शुद्धाद्वैत वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य गिरिधरजी के पुत्र दामोदरजी (बड़े दाऊजी) श्रीनाथजी की प्रतिमा को लेकर वि. सं. १७२६ में गोवर्धन पर्वत से निकल कर आगरा, बूंदी, कोटा, पुष्कर, कृष्णगढ़ होते हुए जोधपुर से तीन कोस दूर चोपासणी गांव में पधार गये। तत्कालीन जोधपुर नरेश के अधिकारी वर्ग की भक्ति भावना दृढ़ न देखकर गोस्वामी जी के काका गोपीनाथजी महाराणा राजसिंह के पास आये। वीर साहसी धर्मनिष्ठ महाराणा ने अपनी वीरभूमि मेवाड़ में वि,सं. १७२८ फाल्गुन कृष्णा सप्तमी को श्रीनाथजी की प्रतिमा की स्थापना बनास नदी के तट पर सिंहाड़ गांव में करवाई। इससे पूर्व "घसार" गांव में भी कुछ दिन श्री नाथजी का विराजना रहा। तब से लेकर आज तक दूर दूर से देश के असंख्य व्यक्तियों का दर्शनार्थ समागम होता रहता है। पुष्टिमार्गीय पद्धति के अनुसार दिन में आठ बार झांकियां होती हैं।[२]

श्रीद्वारकाधीश

कांकरौली नगर नाथद्वारा से १५ कि. मी. उत्तर में राजसमुद्र की पाल पर स्थित है। वहां वल्लभ सम्प्रदाय के द्वारकाधीश का भव्य विशाल मन्दिर बना हुआ है। श्रीद्वारकाधीश अहमदाबाद से वि. सं. १७२६ के अन्तिम मास में मेवाड़ के बड़ीसादडी नामक ग्राम में पधारने के लिए प्रस्थान किया। वि. सं. १७२७ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को नये वर्ष के दिन बड़ी सादडी में पधारे। जन्माष्टमी तक वहां विराजे। जन्माष्टमी उत्सव की झांकी के दर्शनकर सादड़ी का राजा आश्चर्यान्वित हो गया और तीनें गांव प्रभु के सेवार्पित कर दिये। तत्कालीन ब्रजभूषण जी.महाराज

---

१. वी. भू. चि-पृ. १५४-रा. व. सोमानी

२. उ. रा. इ., भा. १ पृ. ३५—ओझा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से कण्ठी बंधाकर शिष्यत्व स्वीकार कर इस संप्रदाय का अनुयायी बन गया। सादड़ी से वि. सं. १७२७ भाद्रपद शुक्ला सप्तमी के दिन कांकरोली के समीप आसोटिया ग्राम में पधारे। राजसमुद्र के भरजाने के पश्चात् अधिक जल बाहर निकलने के कारण आसोटिया के चारों ओर जल ही जल हो गया। यह घटना देख आसोटिया से वि. सं. १७७६ चैत्र कृष्णा नवमी के दिन कांकरोली पधारे।[१]

ऋषभदेवः—

उदयपुर से लगभग ६५ कि. मी. दक्षिण में भगवान् ऋषभदेव का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मूर्ति पर अत्यधिक "केशर" चढ़ाई जाती है, अतएव इन्हें "केशरियाजी" के नाम से भी पुकारते हैं। प्रस्तर-प्रतिमा कृष्ण वर्ण की होने के कारण भीलों के वर्ग में "कालाजी" के नाम से विख्यात है।

ऋषभदेव को विष्णु के २४ अवतारों में से आठवां अवतार मानते हैं। आर्य संस्कृति के उपासक इन्हें वैष्णव मूर्ति के रूप में मानकर पूजा करते हैं। इस पुनीत तीर्थ स्थान पर श्वेताम्बर तथा दिगम्बर जैन एवं मेवाड़, मारवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, ईडर आदि स्थानों के अगणित यात्री प्रतिवर्ष इनको अपने इष्टदेव मानकर आते रहते हैं। मन्दिर के पास में नौ चौकी मंडप के दक्षिण तरफ बने हुए एक पाषाण स्तम्भ पर दस ताकें खुदी हुई हैं जिससे उस स्थान को मस्जिद के रूप में ही मानकर पूजा आराधना करते हैं।

मन्दिर में स्थित शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मन्दिर के विभिन्न भाग अलग अलग समय में बनकर तैयार हुए। मंडप की दीवाल पर लगे हुए वि. सं. १४३१ वैशाख शुक्ला ३ के लेख से ज्ञात होता है कि दिगम्बर काष्ठासंघ के भट्टारक श्रीधर्मकीर्ति के उपदेश से सेठ बीसा के बेटे हरदान ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया। वहीं पर १५७२ वैशाख शुक्ला ५ के शिलालेख से मालूम होता है कि काष्ठासंघ के अनुयायी काछलू. गोत्र के कड़िया, पोइया और उसकी स्त्री भरमी के पुत्र हांसा ने ऋषभनाथ को प्रणाम कर भट्टारक यशकीर्ति के समय मंडप तथा नौ चौकी बनवाई। इस तरह अनेक धार्मिक व्यक्तियों ने मन्दिर बनवाने में अपना अपना योग दिया।

१. श्री द्वारकाधीश प्राकट्य की वार्ता पृ. ६६, ६७, ६८

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऋषभदेव की प्रतिमा अति प्राचीन है । वह प्रतिमा डूंगरपुर राज्य की प्राचीन राजधानी बड़ौदा (वटपद्रक) के जैन मन्दिर से लाकर वहां पधराई गई है । प्रतिमा भव्य एवं विशाल है ।[१]

शैव धर्मः—

शैव धर्म का प्रचलन मेवाड़ क्षेत्र में किस समय से हुआ यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता, किन्तु वि. सं. ५४७ के छोटी सादड़ी के लेख में अर्द्ध नारीश्वर की स्तुति होने से उस समय में भी इसकी उपासना रही । मानमोरी राजा ने शंकर घट्टा में शिव मन्दिर का निर्माण करवाया । चित्तौड़गढ़ पर अतिप्राचीनतम मन्दिर कुकड़ेश्वर महादेव के मन्दिर का निर्माता राजा कुकडेश्वर द्वारा माना जाय तो इसका निर्माण काल ८ वीं शताब्दी ठहरता है ।[२] समिद्धेश्वर का मन्दिर परमार राजा भोज का बनाया हुआ माना जाता है ।[३] कुमारपाल जब अर्णोराव पर विजय प्राप्त कर लौट रहा था तब वि. सं. १२०७ में इस मन्दिर में दर्शनार्थ गया और एक ग्राम भेंट किया ।[४] दिगम्बर जैन मुनि जयकीर्ति के शिष्य रामकीर्ति द्वारा प्रशस्ति का निर्माण हुआ । महारावल समरसिंह कालीन तलारक्ष मदन समिद्धेश्वर के मन्दिर में आराधना करता था, यह भी चीरवा की प्रशस्ति में वर्णित है । वि. सं. १३५८ में महारावल पाता के पुत्र धीरसिंह ने इसका जीर्णोद्धार कराया ।[५] अन्तिम रूप से इस शैव मन्दिर का जीर्णोद्धार वि. सं. १४८५ के पूर्व महाराणा मोकल नें करवाया था ।[६]

---

१. उ.रा.इ.भा.१ पृ.४०-४३, ओझा

२. वी.भू.चि., पृ.१४६ । रा.व.सोमानी

३. श्री चित्रकूटे तलारक्षां यः पितृक्रमायातां
श्री समरसिंह राज प्रसादातः प्राप निःपापः ॥ ३० ॥
श्री भोजराज रचित त्रिभुवन नारायणाख्य देव गृहे,
यो विरचयति स्म शिवपरिचर्यां स्व शिवलिप्सुः । (३१) चीरवालेख
श्री चित्रकूट गिरि पुष्कल शोभां-श्री समिद्धेश्वरदेव प्रसिद्ध जगतीं कुमारपाल देवोदादग्रामम् । (१२०७ का कुमारपाल का लेख)

४. ए.इ.भा.२ पृ.४२१-४२४

५. वरदा वर्ष ९ अंक १ पृ.६४-६५ पर दिया हुआ लेख ।

६. कु.प्र.श्लोक २२२ । चित्तौड़ की वि.सं. १४८५ की प्रशस्ति

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दुर्ग एवं तलहटी में कई शिव मन्दिर आज भी विद्यमान है। मेवाड़ में ये ही शैवधर्म के प्राचीन प्रतीक है। इनमें शंकर घट्टा के शिव मन्दिर (८ वीं शताब्दी) का उल्लेख हुआ है, जहां के समाट् मानमोरी का शिलालेख मिल चुका है।

लकुलीश (शैव) मत:—

एकलिंग के प्राचीन अर्चक, महंत, साधु, बापा कालभोज का गुरु, हारीतराशि था। ये हारीतराशि लकुलीश सम्प्रदाय के अनुयायी थे। लकुलीश संप्रदाय पाशुपत (शैव) सम्प्रदायों में अधिक प्रसिद्ध था। लकुलीश को शिव के १८ अवतारों में से एक अवतार माना गया है। सम्पूर्ण राजस्थान, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिण आदि में लकुलीश की प्रतिमाएं पाई जाती हैं। लकुलीश की मूर्ति के शिर पर जैन मूर्तियों की तरह केश होते हैं। पद्मासनस्थ होती है। भ्रमवश उसे कोई कोई जैन मूर्ति मान लेते हैं। द्विभुज होती हैं, बायें हाथ में लकुट (दंड) रहता है, एतदर्थ उसे लकुटीश अथवा लकुलीश नाम से अभिहित करते हैं। दाहीने हाथ में बीजौरा नामक फल होता है—

न (ल) कुलीशं ऊर्ध्वमेढ्रं पद्मासनसुसंस्थितं।
दक्षिणे मातुलिंगं च वामे दण्डं प्रकीर्तितम्॥
विश्व कर्मावतार-वास्तुशास्त्र।

लकुलीश की किसी मूर्ति के नीचे नदी और कहीं दोनों ओर एक एक जटाचारी साधु भी दृष्टिगोचर होता हैं। लकुलीश ऊर्ध्वरिता (वीर्यस्खलन न हुआ हो) माना जाता हैं, जिसका लक्षण (उर्ध्वलिंग) प्रतिमा पर स्पष्ट परिलक्षित होता है। वर्तमानकाल में इसके मतानुयायी अल्पमात्रा में दृष्टिगत होते हैं। प्राचीन समय में इस संप्रदाय का अधिक प्रचार था। इस संप्रदाय के सिद्धान्तों का विवेचन माधवाचार्य रचित "सर्वदर्शन संग्रह" में मिलता है। विशेष इतिवृत्त प्राचीन शिलालेखों तथा विष्णुपुराण आदि में उपलब्ध होता हैं। सामान्यत: इसके मतानुयायी कनफड़े साधु (नाथ बाबा) होते है।[१]

शक्ति की उपासना

मेवाड़ में सरस्वती के साथ साथ शक्ति की उपासना प्राचीनकाल से चली आई है। राजपूतों के शासनकाल में शक्ति की आराधना का विशेष प्राबल्य बढ़ गया था। वि. सं. ५४७ के भ्रमरमाता छोटी सादड़ी के मन्दिर के शिलालेख से

१. उ.रा.इति.१पृ.३३७, टिप्पणी Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गौरवंशी यशगुप्त द्वारा देवी के लिए मन्दिर बनवाने का विवरण है, वि. सं. ७०३ के राजा शीलादित्य राज्यकालीन "सामौली" शिलालेखानुसार जेंतक श्रेष्ठि ने अरण्यवासिनी चामुण्डा देवी के मन्दिर का निर्माण करवाया। खरतरगच्छ पट्टावली में जिन वल्लभसूरि के वर्णन में चित्तौड़ में चण्डिका के स्थान का उल्लेख है।[१] मेवाड़ के महाराणा अपनी कुल देवी के रूप में शक्ति की उपासना, आराधना करते आये हैं और अपनी इष्टदेवी मानते रहे हैं। महाराणा कुम्भा देवी का परम भक्त था। "भगवती चरण किंकरेण नृप" उसके विरुद का सूचक है। महाराणा हमीर, सांगा और बनवीर के बनवाये हुए जगज्जननी देवी के मन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं। अष्टगौरी और नवदुर्गा की प्रतिमाओं के बनाने का विशेष प्रचलन था। विख्यात कीर्तिस्तम्भ में उत्कीर्ण कई देवियों की प्रतिमाएं विद्यमान हैं जो शिल्पकला की दृष्टि से अपना एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है"। शिल्पियों ने सुविधापूर्वक जानकारी के लिए देवियों की मूर्तियों के नीचे उनके नाम भी दे दिये हैं। ये प्रतिमाएं प्रमुख रूप से चौथी मंजिल पर है, उनके नाम यथा—क्षेमंकरी, त्रिपुरा, लक्ष्मी, नन्दा, त्रिखंडा, सर्वती, भ्रामणी, तोतला, पद्मडा, रेवती, लीला, सुलीला, लीलांगी, लीलावती, सर्वमंगला, हरसिद्धि, उमा, पार्वती, गौरी, हिंगलाज आदि मिलते हैं। मेवाड़ के प्रसिद्ध शिल्पकार विद्वान् मण्डन द्वारा १३ गौरियों की, ९ दुर्गा की, ८ अष्टमातृकाओं, १२ सरस्वती, भद्रकाली, चण्डी आदि देवियों की प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है।[२] चित्तोड़ के समीपवर्ती क्षेत्र में सुप्रसिद्ध आवरीमाता का मन्दिर तथा झांतला, लालबाई, फूलबाई, के मन्दिर हैं, वहां प्रतिवर्ष लाखों दर्शनार्थी आते रहते हैं। चित्तौड़ दुर्ग पर निर्मित बाणमाता, अन्नपूर्णा के मन्दिर प्राचीन दृष्टि से उल्लेखनीय है। इनकी प्राचीनता गर्भगृह के बाहर लगे हुए लेखों से ही सिद्ध होती है। वहीं पर नीचे की ओर वि. सं. १७८१ आषाढ़ शुक्ला का महाराणा जगत्सिंह (प्रथम) के शासनकाल का लेख उत्कीर्ण है। इसके अनुसार महाराणा कुम्भा ने मन्दिर के लिये कुण्डला ग्राम, रायमल्ल ने खेड़ी ग्राम, सांगाने चोगावड़ी ओर रत्नसिंह ने पनोत्या ग्राम भेंट किये। विशिष्ट उल्लेखनीय मन्दिरो में कालिका माता का मन्दिर है। इतिहासकारों का अनुमान है कि प्राचीन काल में यह सूर्यमन्दिर था। इसके स्तम्भों

---

१. खरतरगच्छ पट्टावली पृ. १०

२. म.कु., पृ. २९८—रा.व. सोमानी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर वि. सं. १८६३ के ३ शैव, १८६४ का लेख और वि. सं. १८४४ का एक लेख उत्कीर्ण है ।[१] इस तरह मेवाड़ में शक्ति की उपासना का भी प्राधान्य रहा है ।

जैनधर्मः—

मेवाड़ में जैन धर्म का प्रचार प्रसार होता रहा, तथा इसके अनुयायी प्राचीन काल से रहते आये हैं । बड़ली के वीर संवत् ८४ के लेख में मध्यमिका नगरी का उल्लेख मिलता है ।[२] कल्पसूत्र स्थिरावली में " मज्झिमिआ" शाखा का विवरण है ।[३] मथुरा से उपलब्ध लेखों में "मज्झिमआशाखा" के साधु सन्तों का संकेत है ।[४] ऐसी मान्यता रही है कि आर्य सुस्थित और सुप्रतिबुद्धगणि से कोडिय[५] गण निकला, जिसके चार कुल हुए और फिर उनकी शाखाएं हुई । "मज्झिमिआ" भी एक शाखा है । एतदर्थ प्रतीत होता है कि चित्तौड़ के निकटवर्ती नगरी का सम्बन्ध मथुरा से रहा होगा । दिगम्बर जैन मुनियों ने मथुरा से ही इस मेवाड़ क्षेत्र में प्रवेश लिया हो तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं । अर्थूणा के वि. सं. ११३६ वैशाख शुल्का तृतीया के लेख में छत्रसेन[६] नामक एक साधु "मथुरान्वय" कहा गया है । श्वेताम्बर परम्परानुसार वहां कई विशिष्ट विद्वान् साधुसंत हुए । इनमें से सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र सूरि विशिष्ट वैदुष्य के कारण उल्लेखनीय है । जैनाचार्य देवगुप्त सूरि (७९ वि. पू.) यज्ञदेव सूरि (२१५ से २३५ तक वि. सं.) आदि का इस क्षेत्र में विचरण एवं शिक्षा के प्रचार का विवरण मिलता है, परन्तु इनकी प्राथमिकता के सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से पुष्ट प्रमाण सुलभ नहीं है[७] जैनधर्म दो भागों में विभक्त है दिगम्बर और श्वेताम्बर" ।

---

१. वी. भू. चि. पृ. १५०—रा. व. सोमानी

२. नाहजैन लेख संग्रह भाग १ पृ. ९७ ।

३. समदर्शी आचार्य हरिभद्र सूरि पृ. ६ ।

४. विजयमूर्ती जैन लेख संग्रह भाग २ ले. सं. ६६ ।

५. थेरे हितो सुट्ठियं सुपडिबुद्धेहिंतो कोडिय
काकदएहिंतो बग्घावच्चसगुत्तेहिंतौ
इत्थण कोडियगणेणाम गणे णिग्गए । —तंजहां उच्चानागरी विज्जाहरी
बदूरी व मज्झिमिल्लाय" (१ कल्पसूत्र)

६. नो मथुरान्वय नभस्तल तिग्गमभानो व्याख्यानरंजित समस्त सभा
जनस्य श्री छत्रसेन सुगुरोश्चरणारविंदसेवापरो भवदनन्यमनाः सदैव ॥ ११ ॥ अर्थूणा
का लेख-जैन हितेपी भागः १३ अंक ८ पृ. ३३२

Funding by IKS-MoE

७. वी, भू. चि. पृ. १५२ रा. व. सोमानी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिगम्बर सम्प्रदायः—

सुदीर्घकाल से मेवाड़ जैन साहित्य और संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहां विख्यात विद्वान् "एलाचार्य" हुए जिनके पास शिक्षा प्राप्ति के निमित्त "वीरसेन"[१] साधु आये थे। चित्तौड़ से ही आकर बड़ोदा में इन्होंने[२] धवला टीका समाप्त की। इनके सुप्रसिद्ध शिष्य जिनसेन और गुणभद्राचार्य हुए। चित्तौड़ के दिगम्बर साधुसंतों का सम्पर्क[३] दक्षिण भारत से बना हुआ था। उधर से यहां बराबर साधुओं का समागम होता रहता था। प्राचीन दिगम्बर ग्रन्थों में चित्तौड़ का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है। "पउम चरिउ" नामक[४] अपभ्रंश ग्रन्थ में इसका उल्लेख कई बार आया है। स्त्रियों के सन्दर्भ का वर्णन करते हुए चित्तौड़ और उज्जयिनी की तुलना की गई। अन्य स्थल पर चित्तौड़ और दशपुर का साथ साथ वर्णन मिलता है। सोमसूरि[५] सूरि रचित "नीतिवाक्यामृत" में इसी प्रकार का एक प्रसंग वर्णित है कि हूण राजा ने व्यापारी का वेष बनाकर छल छद्म से चित्रकूट पर अधिकार कर लिया था। चित्रकूट नामक दो दुर्ग एक तो बुन्देलखण्ड और दूसरा मेवाड़ में है। सोमदेव सूरि द्वारा वर्णित चित्रकूट मेवाड़ का चित्तौड़ ही है।

अल्लट के राज्यकाल में श्वेताम्बर सूत्रानुसार एक शास्त्रार्थ श्वेताम्बरों और दिगम्बरों[६] के मध्य हुआ था जिसमें श्वेताम्बर साधु प्रद्युम्नसूरि की विजय हुई।

---

१. कालगते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूट परवासी।
श्रीमानेलाचार्यों बभूव सिध्दान्ततत्वज्ञैः ॥ १९६ ॥
तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरु।
उपरितमनिबन्धनायधिधाकारानष्टं लिलेख" ॥ १७७ ॥ श्रुतावतार।

२. उपर्युक्त श्लोक १७८-१७९

३. नागरी अक्षरों में बलगाम्बे (दक्षिणी भारत) में कन्नड का एक शिलालेख इस प्रकार है। जिसमें चित्रकूटाम्नाय के साधुओं का उल्लेख है। स्वस्ति श्री चित्रकूटाम्नायदावली मालवद शान्तिनाथ देव सम्बन्ध श्री बलात्कार गण मुनिचन्द्र सिद्धान्त-देवर-शिसिनु-अनन्त-कीर्ति देवरु हेग्गडे केसव देवंगे धारापूर्वक माडि कोटे बु प्रविष्टे पुण्य सान्ति। (एपिग्राफ़िया कर्नाटिका वोल्युम III पृ. सं. १३४)

४. उपरोक्त अध्याय १ फु. नो.

५. श्रूयते किल हूणाधिपतिः पुष्पपुटा वाहिभिः सुभटे चित्रकूटं जग्राह। ८ (दुर्ग समुदेश)

६. वादजित्वा उल्लुकक्ष्मा सभायां तलपाटके।
आत्तेकं पटो यस्य श्री प्रद्युम्न पूर्वज स्तुवै ॥
(समरादित्य संक्षेप का प्रस्तावना श्लोक)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री कीर्ति नामक दिगम्बर आचार्य[१] का होना भी पाया जाता है। चित्तौड़ से ये नेमिनाथ की यात्रार्थ जाते समय इन्होंने पाटन में विश्राम किया, तब वहां के राजा ने इन्हें मण्डलाचार्य का विरुद और एक सुखासन भेंट किया। अपभ्रंश कथा कोश के रचयिता श्रीचन्द्र ने अपनी गुरु परम्परा में श्रीकीर्ति नामक आचार्य का विवरण दिया है, जिनके शिष्य आचार्य श्रुतकीर्ति परमार राजा भोज के द्वारा लब्ध प्रतिष्ठित, सम्मानित व्यक्ति थे। राजा भोज का राज्य चित्तौड़ में रहा यह स्मरणीय है।

चित्तौड़ में दिगम्बर जैन सम्प्रदाय की प्राचीनता की द्योतक तीन प्रमुख कृतियां हैं। प्रथम तो-हरिषेण की धर्म परीक्षा, द्वितीय-जैनकीर्ति स्तम्भ और तृतीय-महाकवि डड्ढा की कृतियां। इन रचनाओं से ज्ञात होता है कि उस समय में दिगम्बरों का विशेष प्रचार प्रसार एवं प्राबल्य था। काष्टासंघ के लाट-बागड़ के पुन्नाट गच्छ में "महेन्द्र सेन" नामक एक आचार्य का उल्लेख आता है। जिन्होंने त्रिषष्टि शलाका पुरुष[२] चरित नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जो इस समय उपलब्ध नहीं है। वि. सं. १२०७ की चित्तौड़[३] की प्रशस्ति के लेखक दिगम्बर साधु जयकीर्ति के शिष्य रामकीर्ति थे। इसके अनन्तर वि. सं. १३७५ और १३७६ के दो लेख निषेदिकाओं के श्री रामवल्लभ सोमाणी को गंगराल में मिले, जिनको वीर वाणी जयपुर से प्रकाशित करवाया हैं।[४] इसके अतिरिक्त दो लेख वि. सं. १३७५ और

---

१. श्री कीर्ति प्राप्यत कीर्ति सूरि सूरिगणं ततः॥ १९ ॥
तदीयं देशना वारि सम्यग्—चित्रकूटाच्चचाल सः
श्री मन्नेमि जिनाधीश तीर्थयात्रा किमिततः॥ २१ ॥
अणहिलपुरं रम्यमाजगाम-मुन्निन्द्राय ददौ नृपः।
विरुदं मंडलार्यः स छत्रं सुखासनम्॥ २३ ॥
अनेकान्तवर्ष १६ अंक २ पृ,७२ ॥

२. त्रिषष्टिपुराणपुरुषचरित्रकर्ता
स्वकीयतपस्तपनप्रकटान्भ्रमभावान् मेदपाटदेशेप्रकटप्रभाव क्षेत्रपाल
संवोध्य सकलमहिमंडल्लेश्वष्वाश्चयं चकार तेषां
श्रीमहेन्द्रसैन देवाना (भट्टारक सम्प्रदाय पृ. २५१)

३. श्री जयकीर्ति शिष्येण दिगम्बरगणेशिना।
प्रशस्तिरीदृशी चक्रे श्री रामकीर्तिना॥ (ए.इ॥ सं.३३)।

४. वी.भू.वि.पृ.१५५,रा.व.सोमानी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३८८ के निषेदिकाओं [१] के उपलब्ध हुए हैं। इन अभिलेखों से अवगत होता है कि इस देश में दिगम्बर साधु रहा करते थे और इनका विशेष प्रभाव था।

चित्तौड़ के समीपवर्ती "गंगराल" ग्राम के मध्य प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर और वैष्णव मन्दिर निर्मित है जो अतिप्राचीन है। महाराणा सांगा के प्रशासन तक दिगम्बर साधु संतों का विवरण मिलता है। उनके राज्यकाल में कई ग्रन्थों की यहां प्रतिलिपियां भी करवाई गई जो राजस्थान के विभिन्न भण्डारों में विद्यमान हैं।[२]

श्वेताम्बर सम्प्रदायः—

मेवाड़ में जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी कई विशिष्ट विद्वान हुए। प्रकाण्ड विद्वानों में से सिद्धसेन दिवाकर हुए, जिनका सम्बन्ध चित्तौड़ से रहा था। हरिभद्र सूरि अपने उद्‌भट पाण्डित्य के कारण सुप्रसिद्ध हो गये। पाटन के सिंघवी पाड़ा के जैन भण्डार में चैत्यवन्दन टीका (ललित विस्तरा) की प्रतिलिपी की वि. सं. ११८५ की प्रशस्ति में हरिभद्रसूरि को चित्तौड़ निवासी लिखा है।[३] कृष्णर्षि नामक साधु विक्रम की नवीं शताब्दी में विख्यात हुए, चित्तौड़ में कई लोगों को शिक्षा देकर दीक्षित किया था। इनके शिष्य जससिंह सूरि ने "धर्मपदेश माला" की टीका लिखी थी। इसकी प्रशस्ति की गाथा १३ और १४ में कृष्णर्षि के लिए विवरण है कि गुजरात से नागौर तक की यात्रा में कई जैन मन्दिरों का निर्माण करवाया। राजा अल्लट के समय में श्वेताम्बरों को राज्याश्रय मिला। विमलचन्द्र नामक जैन साधु इसी काल में चित्तौड़ में हुए है।[४] अल्लट के कई मन्दिरों का जैन होना पाया जाता है जिन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये और प्रतिष्ठा संडेरगच्छ के यशोभद्र सूरि ने की थी। इन्हीं के द्वारा प्रतिष्ठित एक प्रतिमा करेड़ा के जैन मन्दिर में है। उन दिनों में विख्यात विद्वान् प्रद्युम्नसूरि हुए थे। यह श्वेताम्बरों को राज्याश्रय मिलने का श्री गणेश था, किन्तु चैत्यवासियों का प्राधान्य बना रहा जिनवल्लभ सूरि के साथ इनका

---

१. शोध पत्रिका वर्ष ८ अंक १ और २, पृ. २३-२४।
यह लेख चित्तौड़ से ६ मील दूर सैंणवा ग्राम में लगरहा है। शिव मन्दिर में लगे हुए होने से ऐसा प्रतीत होता है कि निषेदिकाओं को शिवमन्दिर में परिवर्तित कर दिया गया था। रा. व. सोमाणी-उपर्युक्त-वही

२. वी. भू. चि., पृ. १५५-५६। रा. व. सोमानी

३. "कृतिः चतुर्दशशत प्रबन्धकर्तुं" विरिहांकस्य चित्रकूटाचल
निवासिनः हरिभद्र सूरेः" ए डिस्क्रप्टीव केटलोग आफ मैन्युस्क्रिप्ट पृ. २४।

४. शोध पत्रिका वर्ष १ अंक ४ में श्रीनाहटाजी का लेख।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संवाद किया था। इन्होंने विचिचैत्यों की स्थापना करवाई। चैत्यवासियों से इनका संघर्ष बना रहा तथा इनको चैत्यवासियों के अशास्त्रीय कार्यों पर बड़ी अश्रद्धा थी, इसी कारण इन्होंने चैत्यवासियों का त्याग कर दिया[१] जबकि पहिले ये इसमें दीक्षित भी हो चुके थे। जिनवल्लभसूरि के पश्चात् जिनदत्तसूरि को चित्तौड़ में इनका उत्तराधिकारी बनवाया था। चैत्यवासियों ने इनका भी डटकर विरोध किया। मेवाड़ में उस समय व्यापक रूप से जैन धर्म का विकास हो रहा था। चित्तौड़ के साथ नागदा, आघाट (आहड़, आयड़) भी इसके केन्द्र थे। जैसलमेर भंडार में संग्रहीत कर्मविपाक ग्रन्थ की वि. सं. १२९५ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि चित्तौड़ के निवासी श्रेष्ठी राल्हा जिनेश्वर सूरि के दर्शनार्थ जयतुगिन के राज्य मालवा में गया था।[२]

चैत्रसिंह के पश्चात् तेजसिंह मेवाड़ राज्य का अधिपति बना। इसके राज्यकाल में जैन धर्मकी अभूतपूर्व उन्नति हुई। वि.सं. १३०९ में पाक्षिक वृत्ति नामक पुस्तक की प्रतिलिपि ठाकुर वयजल ने माघ कृष्णा १४ को आहड़ में समाप्त की। इसमें तेजसिंह दक्षिण उत्तर के राजाओं का मानमर्दन करनेवाला कहा गया है। द्वितीय ग्रन्थ वि.सं. १३१७ में "श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र चूर्णि" लिखा गया था। इसमें तेजसिंह के महामात्य समुद्धर का उल्लेख है।

चित्तौड़ के महलों के चौक में गड़ा हुआ वि. सं. १३३५ का एक लेख मिला था, जिसे ओझाजी ने प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित करवाया। इसमें भी भर्तृपुरीयगच्छ के आचार्य प्रद्युम्न सूरि के उपदेश से रावल समरसिंह की माता जयतल्ल देवी का श्याम पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाने का उल्लेख है।[३] आंचलगच्छ की पट्टावली से विदित होता है कि उस गच्छ के साधु अमितसिंह सूरि के उपदेश से रावल समरसिंह ने अपने राज्य में जीवहिंसा बन्द करवा दी थी। वि.सं. १३५८ का एक अप्रकाशित लेख श्रृंगार चंवरी में भी विद्यमान है। इस तरह श्वेताम्बर शाखा के साधु संतों का मेवाड़ में विहार होता रहा था।

---

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी भूमिका

२. वरदा वर्ष ९ अंक पृ. ६-७ लेख रामवल्लभ सोमानी
और वर्ष ९ अंक ४ में डा. दशरथ शर्मा द्वारा प्रस्तुत किया संशोधन।

३. वरदा वर्ष ९ अंक १ पृ., ६२ Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इतर सम्प्रदायः—

मेवाड़ में बौद्धधर्म के अवशेष कुछ उपलब्ध हुए हैं। नगरी से प्राप्त लघुलेख में "सब जीवों की दया के निमित्त" शब्द लिखे हुए हैं। जीवदया जैन बौद्ध दोनों धर्मों में मान्य हैं। विद्वानों ने नगरी में बौद्ध मठ के ध्वंसावशेष" की पुष्टि की है। जयमल पत्ता की हवेली के समीप ही चित्तौड़ में बौद्ध स्तूप के खण्डहर प्राप्त हुए हैं। सूर्योपासना की पुष्टि नगरी से प्राप्त रेवन्तक की प्रतिमा और कालिका माता के सूर्यमंदिर और गंगराल के सूर्यमन्दिर से होती है। चित्तौड़ के कालिका माता का मन्दिर पहिले सूर्यमन्दिर था। इस मन्दिर में सूर्य का अंकन कई स्थलों पर हो रहा है। धूर्ताखान में पीपल के पेड़ के नीचे पक्षी की पूजा का उल्लेख है।[१]

प्रातः सभी प्रमुख धार्मिक सम्प्रदायों के प्रचार एवं प्रसार का केन्द्र होने के साथ ही इस भूमि की एक प्रधान विशेषता धार्मिक समन्वय एवं सहिष्णुता ही रही है। इसका एक सुन्दर उदाहरण केसरियाजी का प्राचीन मन्दिर है, जिसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर का समन्वय तो है ही (प्रातः वही मूर्ति दिगम्बर रहती है और उसके बाद श्वेताम्बर) किन्तु साथ ही उसमें प्रायः सभी प्रमुख आर्य देवी-देवताओं को भी स्थान मिला है, यहां तक कि बाद में मस्जिद के रूप में स्थान विशेष मान्य रहा है।

धार्मिक समन्वय की इस सुन्दर परम्परा का ही परिणाम था कि इसे यवन आक्रान्ता भी कभी नष्ट भ्रष्ट करने की न सोच सके और इस समन्वय भावना का इतना प्रभाव बना रहा कि सर्वत्र साम्प्रदायिक दंगे होने पर भी स्वतन्त्रता के समय तक इस प्रकार के दंगे उदयपुर में नहीं हुए।

---

१. वी.भू.चि., पृ.१६७,६८.रा.व.सोमानी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वितीय अध्याय

राजप्रशस्ति एवं राजरत्नाकर

ऐतिहासिक-महाकाव्य

राजप्रशस्ति महाकाव्य

"रणछोड़ भट्ट" द्वारा विरचित "राजप्रशस्ति महाकाव्य" मेवाड़ संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक महाकाव्य है। महाराणा राजसिंह (प्रथम) ने "राजसमुद्र" निर्माण का आदेश वि. सं. १७१८ माघ कृष्णा सप्तमी के दिन दिया था, उसके साथ साथ ही "रणछोड़ भट्ट" को भी "राजप्रशस्ति" लिखने के लिए कहा। उस समय राणा राजसिंह "गोगुन्दा" गांव में स्थित थे।[१]

"राजसमुद्र" के निर्माणानन्तर उसका प्रतिष्ठा महोत्सव वि. सं. १७३२ के माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन हुआ, उस दिन "रणछोड़ भट्ट" ने भी "राजप्रशस्ति महाकाव्य" सम्पूर्ण रूप से लिखकर समर्पित कर दिया, अतः इसका रचना-काल वि. सं. १७१८ से १७३२ तक का निश्चित होता है।[२]

विस्तृत इतिवृत्त से युक्त, नागरी लिपि में पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण, आद्योपान्त संस्कृत भाषा का वह असाधारण "ऐतिहासिक महाकाव्य" विश्व का सबसे बड़ा शिलालेख है। इसमें २४ सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग एक-एक शिला पर उट्टंकित है। प्रारम्भ में मंगलाचरण स्वरूप राम, शिव, भवानी, विनायक, और सूर्य की स्तुति के श्लोकों की एक शिला है। इस तरह कुल पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण

---

१. पूर्णे सप्तदशे शते समतनोत् स्वष्टादशाख्येऽब्दके,
माघे श्यामलपक्षके नरपतिः सत्सप्तमीवासरे।
घोघुंदा वसतिर्जलाशयमहारंभं च तस्याज्ञया,
प्रारम्भं रणछोड़ एष कृतवांस्तस्य प्रशतेस्तथा ॥ राजप्र. सर्ग १ श्लोक ॥ १० ॥

२. पूर्णे सप्तदशे शते तपसि वा सत्पूर्णिमाख्ये दिने,
द्वात्रिंशन्मितवत्सरे नरपतेः श्रीराजसिंहप्रभोः।
काव्यं राजसमुद्रमिष्टजलधेरुत्सर्गसद्वर्णना,
संपूर्णं रणछोड़भट्टरचितं राजप्रशस्त्याह्वयम्।
राजप्र. सर्ग. श्लोक ८५४,५।५२, २४।१३

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया हुआ है, जो क्रमशः पूर्व से पश्चिम की ओर है । यह ऐतिहासिक महाकाव्य है । इसकी प्रत्येक शिला की ऊंचाई तीन फुट और चौड़ाई ढाई फुट की है । ये उत्कीर्ण शिलाएं "राजसमुद्र" के नौचौकी घाट की ताकों में क्रमशः लगी हुई है । "राजसमुद्र" का निर्माण कार्य पूर्ण रूप से सम्पन्न हो गया, राजप्रशस्ति लिखकर पूर्ण हो चुकी एवं शिलाओं पर उत्कीर्ण भी करादी गई, पश्चात् महाराणा राजसिंह के पुत्र जयसिंह ने नौ चौकी घाट पर इनको लगवाकर अपनी पूर्ण साहित्यिक अभिरुचि का परिचय दिया ।[१]

रणछोड़ भट्ट का परिचय व वंशवृक्ष

राजप्रशस्ति के प्रणेता कवि रणछोड़ भट्ट आंध्र, तैलंग ब्राह्मण थे । ये कठोड़ी कुल में उत्पन्न हुए । इस वंश की कोई परम्परा इस समय विद्यमान नहीं है, एक प्रकार से लुप्त प्राय ही है । गोस्वामीजी के द्वारा स्थापित आश्रित कुटुम्ब होने के कारण इनको अच्छा राज्याश्रय प्राप्त था । इसी कारण नाथद्वारा और काँकरोली से आपका पूरा सम्बन्ध था । कवि के पूर्वजों के नाम निम्न प्रकार से वंशावली के रूप में है ।[२] इनके पिता का नाम मधुसूदन और माता का नाम वेणी था ।[३]

---

१. श्रीराणोदयसिंहसूनुरभवत् श्रीमत्प्रतापस्सुत
स्तस्य श्रीअमरेश्वरोऽस्य तनयः श्री कर्णसिंहोऽस्य वा ।
पुत्रो रान जगत्पतिश्च तनयोऽस्माद्राजसिंहोऽस्यवा,
पुत्रः श्रीजयसिंह एष कृतवान् सत्प्रस्तराऽऽ लेखितम् ॥ राज प्र. ५-५१,
पाठान्तर-वीरः शिलाऽऽलेखितम् ॥". " ८-५३ ।
श्रीमान् प्रताप सुतः १८-३९ ।२४-१२ ।
राजसमुद्र उदयपुर से ६५ कि. मी. उत्तर की ओर है । इसके तट पर "कांकरोली" नगर बसा हुआ है, वहां शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय के श्री द्वारकाधीश प्रभु का मन्दिर है । यह स्थान वल्लभ संप्रदाय के सात प्रमुख स्थानों में से एक मुख्यपीठ है ।

२. आसीद्भास्करतस्तु माधव बुधोऽस्माद्रामचंद्रस्ततः,
सत्सर्वेश्वरकः कठोड़िकुलजो लक्ष्म्यादिनाथः सुतः ।
तैलंगोऽस्य तु रामचन्द्र इति वा कृष्णोऽस्य माधवः,
पुत्रोऽभून् मधुसूदनस्त्रय इमे ब्रह्मेश विष्णूपमाः ॥ प्रथम स. श्लो. सं. ३० ।

३. यस्यासीन् मधुसूदनस्तु जनको जातः कठोड़ी कुले,
तैलंगः कविपंडितः सुजननी वेणी च गोस्वामिजा ॥
कुर्वे राजसमुद्रनामकजलाधारप्रशस्तिं त्वहम्,
सौंदर्यं रणछोड़ एष भरताद्यं लक्ष्मणं शिक्षयन् ॥ स. १ श्लो. सं. ०९ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महाराणा राजसिंह

राज्यकाल (१७०९ से १७३७)

यह उल्लेखनीय है कि दक्षिण के अनेक विद्वान् ब्राह्मणों को इस राज्य में आश्रय मिला था, जिनके वंशज आज भी राजस्थान के विभिन्न भागों में उपलब्ध होते हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रणछोड़ भट्ट का वंशवृक्ष

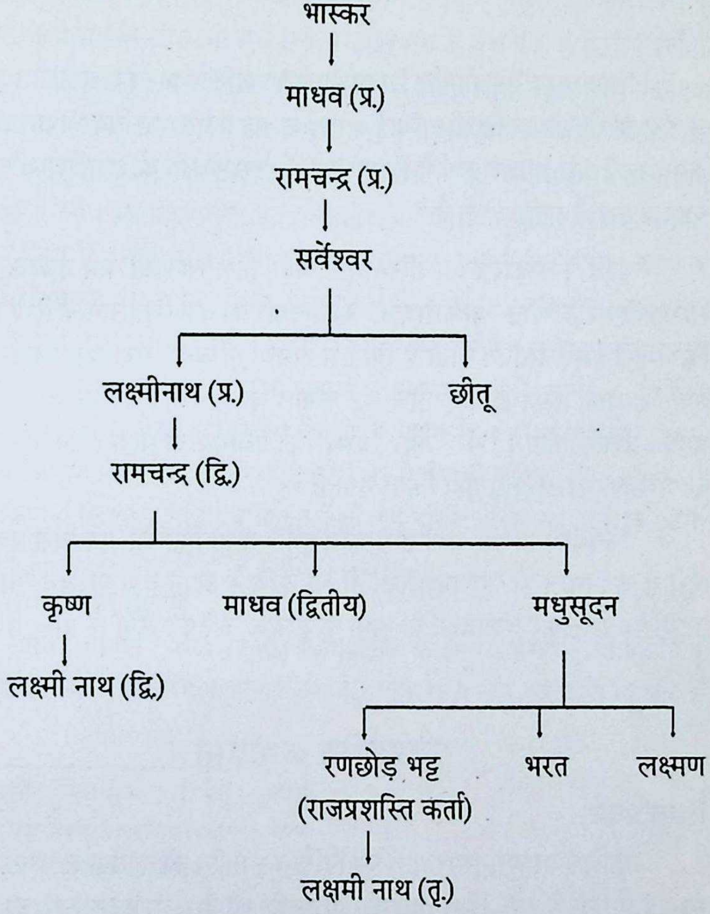

जो गोस्वामी यदुराय की पुत्री थी । शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे, सर्वदा से इनके पूर्वज इस सम्प्रदाय के अनुयायी थे ।

रणछोड़ भट्ट का पाण्डित्य

कवि द्वारा रचित "राजप्रशस्ति महाकाव्य" के अवलोकन से विदित होता है कि कवि उद्‌भट विद्वान् था । "राजप्रशस्ति" में किये गये भवानी, विनायक और सूर्यस्तोत्र के रूप में विस्तृत मंगलाचरण की रचना शैली कवि के प्रौढ़ पाण्डित्य

Funding by IKS-MoE

809

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का परिचायक है[१] शिला प्रथम श्लोक अष्टम "रुचैंगालः खड्गे—" में तान्त्रिक मंत्रों का स्मरण काव्य की भाषा में करने से इनका तन्त्रशास्त्र का वेत्ता होना भी पाया जाता है।

"राजसमुद्र" का निर्माण शिल्पशास्त्रीय पद्धति के अनुकूल हुआ है। इसकी पाल, छतरियों, सोपानादि की लम्बाई चौड़ाई के नाम का विस्तृत विवरण राजप्रशस्ति के ग्यारहवें और बारहवें सर्ग में किया गया है। इससे कवि का शिल्पशास्त्रीय ज्ञान व्यापक रूप से प्रतीत होता है।

कवि ने तत्कालीन प्रचलित मुद्रा, माप, तोल सम्बन्धी नाम ढब्बुक, प्रस्थ, सेर आदि का उल्लेख "बाप्पारावल" की तलवार का वजन बतलाने के लिए प्रयोग किया है। इससे विदित होता है कि उस समय "ढ्ब्बुक" मुद्रा का प्रचलन था। एक "ढब्बुक" सिक्का ढाई तोले का माना गया था। ३२ ढब्बुक = १ सेर १ प्रस्थ। प्रशस्तिकार ने "सेर" और "प्रस्थ" को पर्यायवाची माना है, किन्तु "प्रस्थ" के परिमाण का उल्लेख नहीं किया गया है।[२]

"नैषधीय चरित" सर्गान्त में कवि हर्ष ने माता-पिता के नाम जिस प्रकार से दिये हैं, तदनुकूल ही "राजप्रशस्ति" में भी कवि ने अपने वंश परिचय एवं राणा उदयसिंह से लेकर वंशावली के नामों के श्लोक कतिपय सर्गों के अन्त में लिखे हैं।

राजप्रशस्ति कथावस्तु

शिला प्रथम

कवि ने परम्परानुसार ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से मंगलाचरण स्वरूप प्रारम्भ में राम, शिव, भवानी, की स्तुति की है। "राजप्रशस्ति" का मुख्य वर्ण्य विषय मेवाड़ के महाराणा की वंशावली, मातृभूमि के प्रति उत्कृष्ट भक्ति

---

१. राजप्रशस्ति-प्रथम शिला।

२. द्वात्रिंशदुद्यत्तमढब्बुकाद्यैः प्रस्थाभिधैः शेरवरैः कृतस्य। (वृ २)
मणस्य चैकस्य भरं हि चत्वारिंशन्मितै बिभ्रदसिं दधानम् ॥ राजप्र.सर्ग ३—१६ ॥ "शोध पत्रिका" विद्यापीठ उदयपुर द्वारा प्रकाशित, भाग १० अंक,१२।
इसके लिये विशेष दृष्टव्य "राजप्रशस्ति महाकाव्य में ढब्बुक मुद्रा" विषयक लेख रतनचन्द्रअग्रवाल का है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भावना, शौर्य, पराक्रम तथा राजसमुद्र का निर्माण सम्बन्धी इतिवृत्त है । कवि ने मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् "राम" का स्मरण किया है, क्योंकि मेवाड़ के महाराणा सूर्यवंशी भगवान् राम के वंशज हैं ।[१] द्वितीय श्लोक में महाराणा के इष्टदेव भगवान् एकलिंग शिव की स्तुति की है,[२] तदनुसार एकादश श्लोक भवानी स्तोत्र के रूप में है । आगे के नौ श्लोक विघ्नविनायक "गणेश" की प्रार्थना के दिये गये हैं, मंगलाचरण के अंतिम आठ श्लोक भगवान् सूर्य की स्तुति में लिखे गये हैं । इस प्रकार कुल ३० श्लोकों में कवि ने विस्तृत रूप से मंगलाचरण सम्पन्न किया है । वैसे कवि ने अधिकांशत: सर्ग का प्रथम श्लोक मंगलाचरण के रूप में लिखकर मंगलपाठ भी किया है, किन्तु फिर भी सर्वप्रथम विस्तृत रूप से विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति प्रथम शिला में की गई है । राजप्रशस्ति सम्पूर्ण लिखने के पश्चात् जयसिंह के राज्यकाल में मंगलाचरण की शिला के इन श्लोकों की रचना की गई हो, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि श्लोक में जयसिंह के लिये "राणा" शब्द का प्रयोग किया है और इस शिला पर उत्कीर्ण सभी श्लोकों में राजसिंह का नाम तक नहीं लिखा है,[३] द्वितीय शिला में तो कई बार राजसिंह का उल्लेख आया है ।

प्रथम सर्ग, शिला द्वितीय

सर्वप्रथम कवि ने दो श्लोकों में महाराणा के इष्टदेव भगवान् श्री एकलिंग महादेव का स्मरण कर मंगलाचरण किया है । मुनि, राजा और साधारण मनुष्यों के

---

१. यशोहेतुं सेतुं सुकृतिकृतिसेतुं जलनिधौ,
सुवद्धं यश्चक्रे धरणिधरचक्रेण रुचिरम् ।
रुचा कामः कामं जनकतनयावामनयना,
सुविश्रामः कामं कलयतु स रामः कृतजयः ॥ राज प्र.शि., श्लोक. १ ॥

२. स्मितज्योत्स्नालेपोज्वलललितकंठः कचचयः,
शिखिस्फूर्जत्पक्षेक्षणगलितनागो विभसितः ।
मुदे चेलांदोलांशुगत इति भूषाप्रतिकृते,
धृते गौर्याः शम्भुः स्फटिकरुचिदेहेऽतिरुचिरः ॥ शि.प्र., श्लो. २ ॥

३. शिवे राजन्यानां जयसि समरादौ जयकरी,
शतायुष्यं राणं कलय जयसिंहं सतनयम् ।
स्थिरं राणाराज्यं जगति रचयाऽऽचन्द्रतपनम्,
प्रशस्तेःस्थैर्यत्वं मम सुतगिरायुर्धनसुखम् ॥ रा.प्र.शि.प्र.श्लो.११ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दर्शनार्थ दया से द्रवित होकर भगवान् श्रीएकलिंग कैलाश पर्वत से आकर इस "कुटिला" नदी के तट पर विराजमान है, जो महाराणा राजसिंह की रक्षा करें।[१] महाराणा के इष्टदेव श्रीएकलिंग महादेव का मन्दिर उदयपुर से १४ कि. मी. उत्तर की ओर "कुटिला" नदी के किनारे स्थित है। तृतीय श्लोक में चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रदाता भगवान् विष्णु का स्मरण किया गया है। चतुर्थ श्लोक में सम्पूर्ण विश्व का पालन करने वाली माता जगदम्बिका की स्तुति की गई है। आगे के श्लोक में विघ्न विनायक गणेश की प्रार्थना कर आठवें श्लोक पर्यन्त पुत्रपौत्रादि सहित राजसिंह के कल्याण की कामना कवि ने विस्तार से की है। श्लोक नवें और दसवें में कवि ने अपने माता, पिता, जाति और वंश का परिचय दिया है। राजसमुद्र का निर्माण कार्य और राजप्रशस्ति लिखने के समय का उल्लेख है। आगे के श्लोकों में कवि अपने गर्व का परिहार करता हुआ कहता है कि "गुणीजनों की सभा में बैठकर अवर्णनीय महाराणा राजसिंह के चरित्र का वर्णन करने को उद्यत हुआ हूं, इस घृष्टता को क्षमा करें। हे राजसिंह ! तेरे गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूं, यदि मैं "शेषनाग" का रूप धारण करूँ (क्योंकि शेषनाग के एक हजार जिह्वाएँ मानी गई है), तभी मैं आपके गुणों का कीर्तन कर सकता हूं।यदि मैं सहस्त्रार्जुन का रूप ग्रहण करलूं (क्योंकि सहस्त्रार्जुन के एक हजार हाथ थे) तो ही तुम्हारे गुणों को लिख सकता हूँ और यदि बुद्धि में देवगुरु बृहस्पति के समान हो जाऊं, तब ही आपके गुणों का वर्णन कर सकता हूं। भगवान् रामचन्द्र की यशोगाथा तो खण्डरूपा है किन्तु हे, राजसिंह ! तेरी अखण्डरूपा प्रशस्ति यावच्चन्द्र दिवाकर रहेगी"।

कवि के वर्णनानुसार वायु पुराणान्तर्गत,[२] मेदपाटीय खण्ड में "एकलिंग माहात्म्य" के छठे अध्याय में उल्लिखित इतिवृत्तानुसार माता जगदम्बा पार्वती के

---

१. मुनिनृपमनुजेभ्यो दर्शनं संप्रदातुं,
परमकरुणयैवागत्य कैलाशशैलात्।
तटभुवि कुटिलाया एकलिंगस्त्रिकूटे,
स्थित इह विवरेऽ द्रौ राजसिंहेशमव्यात् राजप्र. स. १ ॥१ ॥
तुहिनकिरण हीरक्षीरकर्पूरगौरं,
वपुरपि जलदाभं कालिकापांगवल्याः।
प्रतिकृतिघटनाभिर्बिभ्रदभ्रांतभक्तः,
कलयतु तव राजन् मंगलान्येकलिंगः॥ सर्ग. १ श्लोक २ ॥

२. वायु पुराण की सूची में (मेदपाट) उल्लेख नहीं मिलता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजप्रशस्ति महाकाव्य

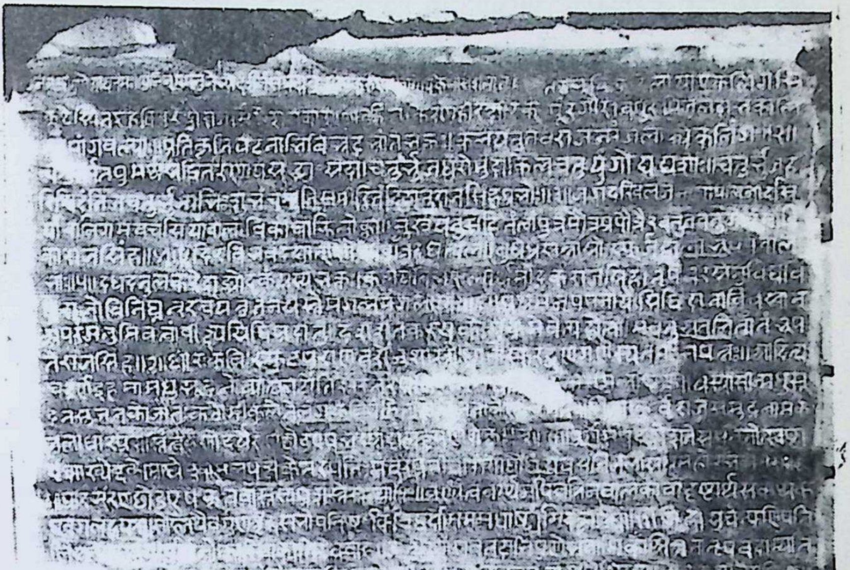

शिला द्वितीय सर्ग प्रथम

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शाप से शिव का पार्षद चण्डगण कलियुग में "हारीतराशि" नामक मुनि हुआ और नंदी "वाष्प" (बाप्पा-भाषा में) नाम का राजा हुआ। "हारीतराशि" भगवान् एकलिंग के आराधक थे। "बाप्पा" भी अपने गुरु "हारीतराशि" के निर्देशानुसार एकलिंग महादेव की आराधना में तत्पर हुआ, पश्चात् उन्हीं के आशीर्वाद से चित्तौड़ को हस्तगत किया। तदन्तर सौ वर्ष से ऊपर राज्यसुख का उपभोग कर स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

कवि राणा राजसिंह के गुणों का उत्कर्ष बतलाता हुआ लिखता है कि "राणा राजसिंह के गुणरूपी सागर को तैरने के लिए मेरी विज्ञान नौका समर्थ नहीं है। अलंकार रूपी मणि, सूक्ति रूपी मोती, अच्छे रस रूपी अमृत के समान यह "राजप्रशस्ति" है, जिसको पढ़ने से वह फल प्राप्त होता है जो कि रामायण और महाभारत के पढ़ने से मिलता है।" सर्ग के अन्तिम दो श्लोक कवि के वंश परिचय से संबन्धित है।

द्वितीय सर्ग, शिला तृतीय

सर्ग के प्रारम्भिक श्लोक में भगवान् गोवर्धननाथ का स्मरण किया गया है। इस जलमय सृष्टि में सर्वप्रथम जगन्नियन्ता विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा से मरीचि, उससे कश्यप और कश्यप से विवस्वान् (सूर्य) की उत्पत्ति बतलाई गई है। विवस्वान् का अर्थ सूर्य होता है, अतः उसके वंशज उदयपुर के महाराणा सूर्यवंशी कहलाये। इस सर्ग में सूर्यवंशी राजाओं की सूची दी गई है। विशेषतः। पौराणिक राजा मनु से लेकर "विजय भूप" तक का नामोल्लेख किया गया है। इसमें उल्लिखित राजाओं की कुल संख्या एक सौ पैंतीस हैं। संभवतः इक्ष्वाकु राजाओं की यह गणना भागवत के नवम स्कन्ध के आधार पर की गई है। श्लोक पैंतीस में इन राजाओं को अयोध्यावासी माना गया है। इस सर्ग में वर्णित अन्तिम राजा "विजय भूप" है, जिसने अयोध्या को छोड़ दक्षिण के शासकों पर विजय प्राप्त कर वहां अपना शासन स्थापित किया। आकाशवाणी के अनुसार विजय भूप ने "राजा" शब्द का परित्याग कर अपने नाम के आगे "आदित्य" शब्द लगाना तथा इक्ष्वाकु और रघुवंशी के बजाय अपने को सूर्यवंशी मानना स्वीकार किया।[१]

१. अभंगसेनस्तस्मात् तु मद्रसेनस्ततोऽभवत्।
भूपःसिंहरथस्त्वेते अयोध्यावासिनो नृपाः॥ ३५ ॥
तस्माद्विजयभूपोऽयं मुक्त्वाऽयोध्यां रणागतान्।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीय सर्ग, शिला चतुर्थ

सर्ग के प्रारम्भ में कृष्ण की स्तुति कर कवि ने सूर्यवंश के राजाओं की नामावली का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है:—विजयभूप, पद्मादित्य, शिवादित्य, हरादित्य, सुजसादित्य, सुमुखादित्य, सोमादित्य (सोमदत्त), शिलादित्य, केशवादित्य, नागादित्य, भोगादित्य, देवादित्य, आशादित्य, कालभोजादित्य, ग्रहादित्य इस प्रकार से १४ आदित्य राजाओं की गणना की गई है ।[१]

ग्रहादित्य (गुहिल) के सभी पुत्र गहलौत कहलाये । उनमें से बड़ा पुत्र "बाष्प" (बाप्पा) नाम का हुआ ।[२] बाप्पा को भगवान् शिव के "नंदी" के अवतार के रूप में माना गया है, जो कि "हारीतराशि" का शिष्य हुआ और नागह्रद (नागदा) में निवास करता था । एकलिंग माहात्म्य के छठे अध्यायानुसार माता पार्वती के शाप से "नंदी" तो बाप्प(बाप्पा) राजा हुआ और "चंडगण" "हारीतराशि" नामक मुनि मेदपाट में हुए । "हारीतराशि" के आदेशानुसार "बाप्पा" ने एकलिंग शिव की पूजा, आराधना की और शिव ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि तू चित्रकूट (चित्तौड़) का स्वामी होगा और तेरे वंशजों का सर्वदा के लिए चित्तौड़ पर आधिपत्य रहेगा । इस वर को प्राप्त करके बापा ने[३] वि.सं. १९१ के माघ शुक्ला सप्तमी के दिन पन्द्रह वर्ष की आयु में एकलिंग भगवान् और हारीतराशि के प्रसाद से राज्य प्राप्त किया ।

बाप्पा का पुत्र खुम्माण था, जिसके गोविन्द और उसके महेन्द्र नामक पुत्र हुए । महेन्द्र के आलू (अल्लट) हुआ, तत्पश्चात् सिंहवर्मा, शक्तिकुमार, शालिवाहन, नरवाहन, अम्बाप्रसाद, कीर्तिवर्मा, नरवर्मा, नरपति, उत्तम, भैरव, पुंजराज, कर्णादित्य, भावसिंह, गोत्रसिंह, हंसराज, शुभयोगराज, वैरट, वैरिसिंह, तेजसिंह और समरसिंह

जित्वा नृपान् दक्षिणस्थानवसद्दक्षिण क्षितौ ॥ ३६ ॥
तत्रास्याकाशवाण्यासीन् मुक्त्वा राजाभिधामथ
आदित्याख्यातु धर्तव्या भवता भवदन्वये ॥ ३७ ॥
जाता विजय भूपांता राजानो मनुपूर्वकाः ।
वीराः संख्येरितास्तेषां पंचत्रिंशद्युतं शतम् ॥ ३८ ॥

१. श्लोक सं. १-६,

२. ग्रहादित्य सुताः सर्वे(गु) गहिलौताभिधायुताः ।
जाता युक्तं तेषु पुत्रो ज्येष्ठो बाप्पाभिधोऽभवत् ॥ ६ ॥

३. वि.सं. १९१ "एके एकाणवे" की जनश्रुति के आधार पर यह वि.सं. कवि ने भी दिया है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्रमशः राजा हुए। समरसिंह बारह हजार योद्धाओं को साथ लेकर गोरी शहाबुद्दीन गजनी को युद्ध में परास्त कर उसे बांधकर लाया, पश्चात् दुर्दैववश समरसिंह दिवगत हो गया। उसका पुत्र रावल कर्णसिंह हुआ। कर्णसिंह के दो पुत्र "राहप" और माहप" हुए। माहप डूंगरपुर का स्वामी हुआ। "राहप" ज्योतिषियों के मुहूर्तानुसार "मंडोवर" (मारवाड़ में) आकर वहां के अधिपति "मोकलसिंह को कैद करके अपने पिता कर्णसिंह के समक्ष उपस्थित किया। मोकलसिंह को भी अपनी "राणा" पदवी छोड़नी पड़ी। कर्णसिंह ने अपने प्रिय पुत्र "राहप"के इस पराक्रम से प्रसन्न हो उसे "राणा" पदवी से अलंकृत किया "रणे साधुः इति राणः"रण में जो कुशल है,वही राणा कहंला सकता है, यह विरुद् "राहप" के लिए सार्थक रहा।

पालीवाल जाति के विद्वान् ब्राह्मण "सरसल" के आशीर्वाद से "राहप" ने (चित्तौड़) का राज्य शत्रुओं को पराजित कर हस्तगत किया। (प्रस्तुत ग्रंथ का लेखक "सरसल" का वंशज है।) पहिले "सिसोदनगर" में निवास करने के कारण राहप के वंशज उदयपुर के राणा "सिसोदिया" भी रहे। "राणा"शब्द का व्यवहार मेवाड़ के शासकों के लिए "राहप" के पराक्रम से ही हुआ तभी, से "राणा" इस विरुद से सम्बोधित किये जाने लगे।[१]

चतुर्थ सर्ग, शिला पंचम

इसमें कृष्ण की स्तुति के अनन्तर राणा राहप से लेकर महाराणा प्रतापसिंह तक की वंशावली दी गई है। इस बीच में रत्नसिंह और अलाउद्दीन के युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध में लक्ष्मणसिंह अपने सात पुत्रों और बारह भाइयों के साथ स्वर्गवासी हुआ, जिसका ऐतिहासिक वृत्त दिया हुआ है। रत्नसिंह के पश्चात् उसके सन्तान नहीं होने के कारण अरिसिंह का पुत्र और लक्ष्मणसिंह पौत्र हमीरसिंह मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर बैठा। राणा हमीर ने ही विद्यमान चतुर्मुख, श्याम वर्ण वाली श्री एकलिंग प्रतिमा स्थापित करवाई। हमीर के क्षेत्रसिंह (खेता), उसके लक्षसिंह (लाखा) और उसका पुत्र मोकल हुआ। मोकल ने अपने भाई बाघसिंह के निःसन्तान होने के कारण उसकी मृत्यु के अनन्तर स्मृति स्वरूप कैलाशपुरी में 'बाघेला' नामक तड़ाग (तालाब) बनवाया, जो एकलिङ्ग जी से पश्चिम में है।

---

१. भव्याशिषा ब्राह्मणपल्लिवाल-ज्ञातीयविद्वच्छरशल्यनाम्नः।
श्रीचित्रकूटे बललब्धराज्यं चक्रे ततो राहप एष वीरः॥ ३१-३४

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राणा मोकल द्वारका यात्रा करने गया। वहाँ पर एक योगी ने उसके वैभव का उपभोग करने की इच्छा से उसकी रानी के गर्भ में योग विद्या द्वारा प्रवेश लिया। ऐसी मान्यता है कि वही राणा कुम्भा के रूप में प्रकट हुआ। कुम्भा ने रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कुम्भलगढ़ दुर्ग बनवाया। इसका पुत्र रायमल्ल और पौत्र संग्रामसिंह हुआ। दोनों ही विख्यात वीरवर हुए। राणा संग्रामसिंह के रत्नसिंह, विक्रमादित्य और उदयसिंह तीन पुत्र थे, जिनमें से रत्नसिंह चित्तौड़ का अधिपति बना। उदयसिंह ने उदयपुर बसाया और उदयसागर का निर्माण करवाया तथा तुलादान कर छीतूभट्ट और उसके भाई लक्ष्मीनाथ के लिए भूरवाड़ा नामक ग्राम दान में दिया।

महाराणा प्रताप के साथ जयपुर के राजा मानसिंह का भीषण युद्ध हल्दीघाटी में हुआ। प्रताप के पुत्र अमरसिंह ने उस युद्ध में अपना अद्‌भुत शौर्य प्रदर्शित किया। अमर ने खानखाना की स्त्रियों का अपहरण किया। कुछ समय पश्चात् उन्हें पुनः ससम्मान लौटा दिया। शेखू(जहांगीर) युद्ध करने की इच्छा से आया, किन्तु अपने पुत्र खुर्रम को छोड़कर चला गया। अमरसिंह ने "चकत्ता" और "सेरिमा" को "दवेर" की घाटी में ही रोक दिया। सेरिमा ने राजकुमार अमरसिंह के शौर्य को देख प्रसन्नता से अपने पास बुलाया। प्रताप ने किसी इतर योद्धा को बता दिया तो उसे विश्वास नहीं हुआ, तब अन्त में अमरसिंह को देख कर वह अत्यन्त ही प्रमुदित हुआ।

पंचम सर्ग, शिला षष्ठ

अमरसिंह ने चौबीस थानों के प्रधान अब्दुल्ला खां को नाकों चने चबाये। राणा अमरसिंह ने अपने गुरु लक्ष्मीनाथ भट्ट को "होली" नामक ग्रामदान में दिया। अमरसिंह का पुत्र कर्णसिंह दान में साक्षात् कर्ण ही था। कर्णसिंह की रानी का नाम जाम्बुवती था। कर्ण के पुत्र जगत्सिंह का जन्म वि.सं. १६६४ भाद्रपद शुक्ला द्वितीया के दिन हुआ। इनका राज्याभिषेक वि.सं. १६८५ वैशाख शुक्ला तृतीया को हुआ। राणा जगतसिंह के आदेश से अखैराज ने डूंगरपुर पर और राठौड़ रामसिंह ने देवलिया पर आक्रमण किया।

राणा जगत्सिंह के पुत्र राजसिंह का जन्म वि. सं. १६८६ कार्तिक कृष्णा द्वितीया को हुआ। राजसिंह की माता का नाम "जनादे" (जनाबाई) था। राणा जगत्सिंह ने पिछोला में मोहन मन्दिर बनवाया। बांसवाडा का रावल समरसिंह औरंगजेब का कृपापात्र था। वह राणा जगत्सिंह के आदेशों की अवज्ञा करता था

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अत: भागचन्द को सैन्य सहित भेजकर उसे अपने वश में किया तथा समरसिंह दो लाख रुपये दण्ड के देकर अनुचर बन गया। जाम्बुवती द्वारका यात्रा के लिए गई, वहां उसने अनेक दान पुण्य किये। जगत्सिंह ने औंकारेश्वर की यात्रा की। वहां पर स्वर्ण का तुला दान किया। उनके द्वारा दिये गये श्रेष्ठ दानों के नाम-कल्पवृक्ष, स्वर्ण पृथ्वी, महासगार, विश्वचक्र आदि हैं।

षष्ठ सर्ग, शिला सप्तम

राजसिंह वि.सं. १७०९ फाल्गुन कृ. द्वितीया को राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। राणा राजसिंह के पुत्र जयसिंह का जन्म वि.सं. १७१० पौष कृ. एकादशी के दिन हुआ। राणा राजसिंह के जयसिंह, भीमसिंह, सूर्यसिंह, इन्द्रसिंह, बहादुरसिंह नामक पुत्र हुए। इनमें से भीमसिंह बनेड़ा राज्य का संस्थापक हुआ। राणा ने सर्वत्रऽतुविलास नामक रमणीय उद्यान बनवाया।

शाहजहां वि.सं. १७११ के आश्विन मास में अजमेर आया और अपने मंत्री सदुल्लाखां को चित्तौड़ भेजा। वहां राणा द्वारा प्रेषित मधुसूदनभट्ट के साथ उसकी बातचीत हुई, जिसमें उसने राणा की सैन्य शक्ति का पता चलाया। इसके पश्चात् खां और राजकुमार जयसिंह में हुई वार्ता का उल्लेख है। राणा राजसिंह ने वेदोक्त विधिपूर्वक वि.सं.१७१३ कार्तिक पूर्णिमा को एकलिंग महादेव के समक्ष ब्रह्माण्डदान किया। वि.सं. १७१९ के पौष शु. एकादशी के शुभ पर्व पर तैलंग मधुसूदन भट्ट को श्वेत अश्व दान में दिया। मधुसूदन भट्ट इस राजप्रशस्ति के लेखक रणछोड़ भट्ट के पिता थे। श्वेत अंश्व दान अश्वमेध यज्ञ के फल प्राप्ति के समान माना गया है।

सप्तम सर्ग, शिला अष्टम

कवि ने राणा राजसिंह की चतुर्दिक विजय यात्रा का वर्णन अत्यन्त कवित्वमय तथा अतिशोक्ति पूर्ण किया है। वि.सं.१७१४ वैशाख शु. दशमी के दिन विजय यात्रा के लिए प्रस्थान किया। दन्दुभियों के फैले हुए शब्द से काहलों के कोलाहल से और घोड़ों के हिनहिनाने से तीनों लोकों के प्राणी त्राहि-त्राहि करने लग गये।

बड़े-बड़े पर्वत असंख्य अश्वों के खुरों से चूर्ण हो गये, जिससे उड़ी हुई रज ने नदियों और जलाशयों को स्थल में परिवर्तित कर दिया। इन्द्र ने जलाभाव के कारण ज्येष्ठ माह में वर्षा कर अपने ... का परिचय दिया। राजसिंह ने अंग,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बंग, कलिंग देश को अपने अधीनस्थ किया। उत्कलवासी चेतना शून्य हो गये। मिथिला शिथिल हो गई। सौराष्ट्र राष्ट्रहीन हो गया। केकरी के निवासी दासत्व की श्रृंखला में आबद्ध हो गये। दरीबा,[1] के मानव गुहावासी हो गये। मांडल, बनेड़ा, शाहपुरा के राजाओं से २२००० रुपये और टोडा के रायसिंह,[2] से ६०००० रुपये दण्ड स्वरूप लिये।

अष्टम सर्ग, शिला नवम

राजसिंह ने औरंगजेब के राज्यारूढ़ होने के अवसर पर अपने अनुज अरिसिंह को दिल्ली भेजा। औरंगजेब ने अपने अधीनस्थ डूंगरपुर को तथा हाथी, घोड़े देकर उसका सम्मान किया। वि. सं. १७१४ में उसके भाई सूजा के साथ युद्ध विषयक विवाद चला, तब राजसिंह ने सिरदारसिंह को भेजा उसे भी गज, अश्वादि देकर सम्मानित किया। रांणा ने वि.सं. १७१६ में रावल गिरधर को डूंगरपुर पर प्रतिष्ठित किया। वसाड़ (मन्दसौर क्षेत्र के अन्तर्गत भू भाग) को अधिकृत किया। देवलिया के प्रतापसिंह को अपने अधीन में लिया। सिरोही के स्वामी अखेराज को स्नेह भाजन होने के कारण प्रेम से अपने वश में रखा। किशनगढ़ के राठौड़ रूपसिंह की रूपवती राजकुमारी चारुमती को उसके निमन्त्रण पर विवाह कर ले आये।

वि.सं. १७२१ मार्गशीर्ष अष्टमी के दिन "रीवा" के शासक अनूपसिंह के पुत्र भावसिंह के साथ अपनी पुत्री अजयकुंवरी का पाणिग्रहण संस्कार करवाया।

वि.सं. १७२५ माघ शु. दशमी को बड़ी गांव के पास अपनी माता "जनादे" के नाम से बनवाये गये "जनासागर" की प्रतिष्ठा करवाई। यह पुण्यकार्य राज पुरोहित गरीबदास के द्वारा सम्पन्न हुआ, जिसके लिए "गुणहंडा" "देवपुर" गांव दिये। "जनासागर" को इस समय बड़ी का तालाब कहते हैं। उस समय ६,८०,००० रुपये इसके निर्माण में व्यय हुए।

नवम सर्ग, शिला दशम

राजा जगत्सिह ने अपने शासनकाल में वि.सं. १६९८ में प्रधान युवराज पद पर राजसिंह को बारह वर्ष की आयु में प्रतिष्ठित किया। उस समय "द्वादश आदित्य के समान" राजसिंह ने विवाह के लिए जैसलमेर जाते हुए मार्ग में धोइन्दा, सनवाड़, सिवाली, भिगावदा, मोरचना, पसूंद, खेड़ी, छापरखेड़ी, तासोल, मंड़ावर,

---

१. दरीबा-कांकरोली रेलवे स्टेशन से १८ कि.मी. उत्तर पूर्व में हैं।

२. जयपुर से ८० कि.मी. दक्षिण की ओर टोडा रायसिंह के नाम से विख्यात है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भाणा, लुहाणा, बाँसोल, गुड़ली और काँकरोली की सीमाओं को देखकर जलाशय बनवाने का दृढ़संकल्प किया। इसके अनन्तर वि.सं. १७१८ के मार्गशीर्ष में रूप-नारायण(चारभुजा के पास का सेवन्त्री पहाड़ों के अन्तर्गत मन्दिर है) के दर्शनार्थ जाते हुए पुन: उसी स्थान का निरीक्षण किया। राजपुरोहित गरीबदास ने राजसमुद्र के निर्माण के लिए तीन परामर्श दिये थे, १. इसके निर्माण के लिए पूर्ण श्रद्धा। २. दिल्लीपति से विरोध न करना ताकि शक्ति और अर्थ का उधर अपव्यय न हो, और ३. प्रचुर द्रव्य का होना। राणा ने उनके तीनों परामर्शों को स्वीकार कर वि.सं. १७१८ माघकृष्णा सप्तमी बुधवार के दिन दो पर्वतों के मध्य "गोमती" नदी को बांधकर राजसमुद्र बनवाने का कार्यारम्भ किया। जिस प्रकार सगर की सन्तानों ने समुद्र का उत्खनन किया, उसी तरह साठ हजार व्यक्ति इसके निर्माण-कार्य में लगाये गये। खोदने पर पृथ्वी के गर्भ से जल निकल आया, उसे बाहर निकालने के लिए अनेक प्रकार के यंत्र लगवाये गये।

राणा राजसिंह ने वि.सं. १७२१ वैशाख शु.त्रयोदशी सोमवार के दिन जब नवग्रहों की पूर्ण शक्ति विद्यमान थी, तब पाल बांधने का मुहूर्त किया। राज पुरोहित गरीबदास और उसके ज्येष्ठ पुत्र रणछोड़राय ने नींव में पांच रत्न रखकर अपना योगदान दिया। हाथियों से सुधाचूर्ण (चूना) मंगवाया गया। बड़ी बड़ी शिलाओं को स्थापित कर छिद्रान्वेषी जल के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया गया।

हे राणेन्द्र राजसिंह ! तू साक्षात् मानो कामदेव है। कामदेव ने शम्बर नामक दैत्य को मारा था और तू ने इस शम्बर (जल) को नियन्त्रित कर दिया। भगवान रामचन्द्र के वंशज होने के कारण तुम्हारे द्वारा सेतु बन्धन का यह कार्य श्लाघनीय एवं युक्तियुक्त ही हुआ।

दशम सर्ग, शिला एकादश

श्री द्वारकाधीश प्रभु स्वर्ण के समान देदीप्यमान द्वारिका में निर्मल जल वाले राजसमुद्र की पाल पर विराजमान है।[१] वि. सं. १७२६ वैसाख शु. त्रयोदशी को कांकरोली की तरफ पाल निर्माण का कार्य आरम्भ किया।

ज्येष्ठ मास में निश्चित समय से पूर्व वर्षा से राजसमुद्र में जल आ गया। राणा राजसिंह ने इसी वर्ष माघ माह में महाभूत घट, और हिरण्याश्व नामक दो दान

१. कवि ने श्री द्वारकाधीश के विराजने के कारण कांकरोली को ही द्वारिका नगरी की उपमा दी है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिये। राजसमुद्र में नौकाविहार हो, इतना पानी नहीं था, इसलिए गरीबदास ने ब्राह्मणों को वरुणसूक्त के जप के लिए बैठा दिया। इन्द्र ने उनकी तपस्या देख वर्षा के जल से राजसमुद्र को परिपूरित कर दिया। राजसिंह ने वि.सं. १७२७ आषाढ़ कृ. चतुर्थी के शुभमुहूर्त पर प्रथमवार राजसमुद्र में नौका विहार किया और राजपुरोहित गरीबदास का स्वप्न साकार हुआ। सूत्रधारों ने वि.सं. १७२८ ज्येष्ठ माह की पूर्णिमा को राणा की आज्ञा से नाले का जो पानी बहकर बाहर की ओर जा रहा था, उसे बन्द कर दिया गया।

राणा ने वि.सं. १७२९ चन्द्रग्रहण के अवसर पर कल्पलता और पंचलांगल दान,[१] तथा मावली गांव दान में दिया।

वि.सं. १७२९ ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी के दिन कैलाशपुरी में इन्द्र सरोवर के तट पर पुरानी चार प्रतोलियों का जीर्णोद्धार करवाया।

एकादश सर्ग, शिला द्वादश

इस सर्ग में राजसमुद्र के शिल्पशास्त्रानुसार बनवाने का वर्णन है। राजसमुद्र के पाल की लम्बाई, चौड़ाई, छतरियों की बनावट, सोपानादि का विवरण नोचौकी, कांकरोली, गौघाट, कमलबुर्ज आदि स्थान कितने परिमाण के अनुसार निर्मित किये गये, उनका उल्लेख है नाप का मापदण्ड गज माना गया है, जो दो फुट का होता है। नींव की लम्बाई पांच सौ पन्द्रह गज, ऊपरी सिरे पर पांच सौ इक्यासी गज और तले की तरफ की चौड़ाई पाट पचपन गज है। निम्नांकित शिल्पशास्त्रीय सीमाएं ध्यान देने योग्य हैं, यद्यपि उनमें से कुछ के नाम स्पष्ट नहीं है: पीठ, तल, मेखला, तिलक, संगीकार्य, सितारे गर्भकोष्ठ, पर्वकोष्ठ और चतुष्की। समीपवर्ती गांव के अनुसार पृथग् पृथग् नाम से राजसमुद्र की पाल व्यवहृत होती रही है यथा-निम्बसेतु, भद्र (भाणा), कांकरोली, असोटिया, बांसोल आदि की सेतु (पाल) कही जाने लगी।

द्वादश सर्ग, शिला त्रयोदश

इस सर्ग में राजसमुद्र के चारों ओर जो मुख्य रूप से निर्माण कार्य हुआ, उसका वर्णन किया गया है। राजसमुद्र में सिवाली भिगावदा, भाणो, लुहाणो, बांसोल, गुड़ली नामक गाँव जलमग्न हो गये।[२] गोमती, ताली और केलवा गांव

---

१. इन महादानों का विशेष विवरण देखिये—"हेमाद्रि" चतुर्वर्ग चिन्तामणि दानखण्ड प्रका. ए.एस. बी. पृ. ३३१,३४२,२७९,२८१,२८७

२. लेख से प्रतीत होता है कि उक्त गांव राजसमुद्र की परिधि में आगये, इसके निर्माण काल

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की नदियां सिन्धु और गंगा की तरह इसके जल में आकर मिल गई। लगभग तीस गांवों के छोटे-मोटे जलाशय, कूप इसके जल में मग्न हो गये।

इसके अनन्तर कवि राणा राजसिंह का श्लाघात्मक वर्णन प्रस्तुत करता है कवि कहता है कि "शिल्प शास्त्र के प्रर्वतक विश्व-कर्मा ने कृत्रिम तालाबों की लम्बाई छः हजार गज ही मानी है, किन्तु हे राजराजेन्द्र राजसिंह ! तेरे द्वारा यह जलाशय सात हजार गज लम्बा बनाया गया है। इसके द्वादश कोष्ठों का दर्शन भागवत के द्वादश स्कन्ध के पाठ का फल देता है।"

"राणा उदयसिंह का विचार भी यहां सागर बनवाने का था, किन्तु वे यहां विषम परिस्थितिवश नहीं बनवा सके और उन्होंने उदयसागर का निर्माण करवाया। अपने पूर्वज के स्वप्न को हे राणेन्द्र ! तुमने साकार किया. सेतुकर्ता रघुवंशी रामचन्द्र और राणा उदयसिंह हुए। उसी कुल क्रमागत यशोगाथा को अक्षुण्ण रखनेवाले हे राजसिंह ! तुम इस धरा पर अवतीर्ण हुए हो"।

वि. सं. १७३० भाद्रपद महीने में ताली नदी,[१] में बाढ़ के कारण नगर जल से आप्लावित हो गया। इसी वर्ष माघ की पूर्णिमा के शुभ पर्व पर राणा ने सुवर्ण पृथ्वी नामक महादान किया।[२]

लाहोर, गुजरात और सूरत से आये हुए शिल्पियों ने वि.सं. १७३१ श्रावण शु. पंचमी के दिन राजसमुद्र के जल में नौका तैराई इसी वर्ष राणा ने अपने जन्म दिवस पर "विश्वचक्र" नामक दान दिया[३]।

त्रयोदश सर्ग, शिला चतुर्दश

राणा ने राजसमुद्र का कार्य सम्पूर्ण रूप से हो जाने के पश्चात् प्रतिष्ठा महोत्सव के लिए सम्बन्धी राजाओं तथा दुर्गरक्षकों को आमान्त्रित किया। उनके निवास स्थानादि की समुचित व्यवस्था करवा दी। रेशमी, जरी, मखमल के वस्त्रों से आवृत, हीरे, मोती, प्रवाल, गारुत्मत, वैदूर्य नामक रत्नों से विशाल मण्डप सुसज्जित किया गया। कस्तूरी, अगरू, चन्दन, पुष्प, कर्पूरादि सुगन्धित पदार्थों से

से समय वे ही बस्तियां इसके समीप में बस गई, जो आजकल भी इन्हीं नामों से पुकारी जाती हैं।

१. इस समय भी "तालेड़ी" नाम से फुकारते है, जो कांकरोली के समीप है।

२. हेमाद्रि-दान खण्ड-पृ. ३०१,३२६

३. वही.——

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्पूर्ण वायुमण्डल सुवासित था। विविध धान्य के आगार दृष्टिगत हो रहे थे। नाना प्रकार के घृत पक्व मिष्टान्न पर्वताकार दीख रहे थे। इस प्रकार की वस्तुओं का अभूतपूर्व प्रसार पहले कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ। ऐसे रत्न उन रत्नराशियों में विद्यमान थे, जिन्हें कभी किसी ने नहीं देखा।

इसकी प्रतिष्ठा महोत्सव पर निमन्त्रित राजाओं महाराजाओं प्रकाण्ड विद्वानों ब्राह्मण वर्गों तथा कवियों को यथायोग्य उपहार मदोन्मत गज, वेगगामीअश्व, उत्तम रथ, बहुमूल्य वस्त्राभरण देकर सम्मानित किया।

राजसिंह की रानी परमार कुलोत्पन्ना "रामरसदे" ने वि. सं. १७३२ माघ शु.द्वितीया के दिन पति की आज्ञा से वापी महोत्सव करवाया, जिसमें ४८००० रुपयों का व्यय हुआ।[१]

प्रतिष्ठा महोत्सव के लिए तीन मंडप और उसमें चार हस्त प्रमाण की नौ यज्ञ वेदियां बनाने का आदेश था। इन वेदियों के दर्शनमात्र से धर्मार्थकाममोक्ष चतुर्वर्ग की प्राप्ति हो. तीनों मण्डपों का निर्माण मानो आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों दु:खों के निवारणार्थ किया हो, ऐसा लगता था। वि. सं. १७३२ के माघ महीने की पांडु दशमी को प्रतिष्ठा का मुहूर्त निकाला गया। इसके पांच दिन पूर्व से ही राणा ने यज्ञादि कार्य आरम्भ करवाने के लिए एक वेदि पर छ: व्यक्ति, प्रतिवेदिअनुसार २४ ऋत्विज एवं एक ब्रह्मा एक आचार्य इस तरह कुल २६ हवन कर्ता वैदिक पद्धति के अनुसार नियुक्त किये गये।

चतुर्दश सर्ग, शिला पंचदश

बिजोलिया राव इन्द्रभान की पुत्री "सदाकुंवरी" राजसिंह की प्रधान महिषी थी। उक्त मण्डप में राणा और रानी ने विधिविधान पूर्वक तुलादान किया। राजपुरोहित गरीबदास ने स्वर्ण तुलादान तथा उसके पुत्र रणछोड़ राय ने रजत तुलादान किया।

रानी चारुमती ने राणा की आज्ञा से राजनगर में एक वापी का निर्माण करवाया, उसकी प्रतिष्ठा में ३०००० रुपये व्यय हुए। उन्नत स्तम्भ वाले महामंडप में रजकणों के अवरोधार्थ एक विस्तृत चन्दुआ लगाया गया। रेशमी आदि बहुमूल्य वस्त्रों से सुसज्जित महामण्डप पर पट्टाम्बरों की विविध पताकाएं लगवाई गई, जो

१. देवारी के पास है, आजकल इसे "त्रिमुखी" बावड़ी के नाम से पुकारते हैं।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राणा के विश्वविजयी होने की परिचायिका थी । विशिष्ट वाद्यों के निनाद से प्रजा अनुरंजित हुई और दशों दिशाएं प्रतिध्वनित हो उठी । राणा ने इसके अनन्तर मण्डप में वेदोक्त विधि से ब्राह्मणों का वरण बन्धन एवं पूजा कर अपने को कृतकृत्य समझा ।

पंचदश सर्ग, शिला षोडश

ब्राह्मणों की पूजा के अनन्तर वाद्यध्वनि से गुंजित कुरंग के समान तीव्रगामी अश्व और हाथियों की घटाओं से मण्डित, जन समूह सहित, उड़ती हुई पताकाओं से सुशोभित मण्डप में तेजस्वी ऋत्विज ब्राह्मणों को अलंकृत कर लोकपालों के समान जितेन्द्रिय राजसिंह दृष्टिगोचर हो रहा था । राजा ने बहुमूल्य अनेक आभूषणों से विभूषित जल पूर्ण कुम्भों को लिये हुए अखण्ड सौभाग्यवती स्त्रियों के साथ विद्वान् राजपुरोहित गरीबदास को आगे करके जलयात्रा आरम्भ की । रुद्रकलश की स्थापना के पश्चात् महोत्सव को देखने के लिए सभी रानियों, राजकुमारों, सम्बन्धियों को बुलाया गया प्रधान रानी सहित सोल्लास वरुण देवता की पूजा कर अन्यान्य सभी देवी देवताओं की अर्चना की । इस जलाशय को मानो द्वितीय समुद्र की संज्ञा देने के निमित्त इसमें दीप्तियुक्त रत्नों का प्रक्षेपण किया । मगर, मत्स्य, कच्छप,जलजन्तु इसके जल में छोडे गये । राजसमुद्र में निधियों का समागम होगा, यह जानकर रत्न इसके जल में डाले गये, निश्चय ही यह समृद्धिकारक होगा । ऐसा समंझ इसका राजसमुद्र, राजसागर नामकरण सार्थक माना गया ।

इसके पश्चात् राणा ने सवत्सा गौ की पूजा की, उस समय एक गाय रंभाती हुई सामने आई, जिसे राजपुरोहित ने मंगलसूचक चिन्ह माना ।

षोडश सर्ग, शिला सप्तदश

राणा राजसिंह ने राजसमुद्र की प्रदक्षिणा एवं सूत्रवेष्टन कार्य की तैयारी की । उस समय रावल जसवन्तसिंह आदिने राणा को बतलाया कि "आपके पूर्वज राणा उदयसिंह ने रानियों सहित पालकी में बैठकर उदयसागर की परिक्रमा की थी, तदनुसार आप भी चाहे किसी वाहन का उपयोग कर परिक्रमा कर सकते हैं, पश्चात् वही सवारी ब्राह्मण को दे दी जाय । यह शास्त्र विहित ही है" । इतना सब कुछ जानते हुए राणा ने सामवेदी ब्राह्मणों को आगे करके चुपचाप पैदल ही प्रदक्षिणा शुरू कर दी ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक ही सूत्र से राजसमुद्र को चारों ओर से वेष्टित करके परिक्रमा का कार्य सम्पन्न किया। देदीप्यमान वस्त्रालंकारों से विभूषित रानियों के मध्य श्वेत वस्त्र धारण किये हुए राणा राजसिंह ताराओं के मध्य चन्द्र की तरह शोभा को प्राप्त हो रहे थे। राजसमुद्र की परिधि चौदह कोस की है। परिक्रमा के समय राणा ने पांच स्थानों पर विश्राम के लिए अपने शिविर लगाये। परिक्रमा छः दिन में पूरी हुई, जो राणा को छः ऋतुओं में नीरोग एवं प्रसन्न रखेगी, यह माना गया।

वि.सं. १७३२ माघ शु.चतुर्दशी को पुष्प पताका और वन्दनवारों से सुसज्जित दो मण्डप स्वर्णतुला और सप्तसागर महादान के लिए बनवाये गये। धरित्री, विनायक और विष्णुपूजा कर वास्तुपूजा की, वेद ध्वनि के उद्‌घोष के साथ होम विधि विधानतः समाप्त हुई।

सप्तदश सर्ग, शिला अष्टादश

प्रतिष्ठा महोत्सव की पूर्णाहुति के समय पूर्णेन्दु की कांति के समान प्रतापी राणा राजसिंह ने मण्डप में प्रवेश किया। उस समय अनुज अरिसिंह पुत्र जयसिंह, भीमसिंह, गजसिंह, सूरजसिंह, इन्द्रसिंह और बहादुरसिंह पौत्र अमरसिंह (जयसिंह का पुत्र) एवं अन्यान्य राजन्य वर्ग उपस्थित थे। राजपुरोहित के पुत्र रणछोड़राय, मंत्री भीखू आदि ने मनोयोग पूर्वक पूर्णाहुति में अपना योग दिया। राणा ने स्वर्ण का सप्तसागर नामक दान कर अपने को कृतकृत्य समझा।

स्वर्ण के सात कुण्ड इस दान के निमित्त बनवाये जो सप्तसागर की समानता रखते थे. सातों कुण्ड पृथग्-पृथग् सात देवताओं के प्रतिनिधित्व स्वरूप थे, जिन्हें अलग-अलग पदार्थों से परिपूर्ण किया गया था। नमक से पूर्ण ब्रह्मा का, दुग्ध से पूरित कृष्ण का, घृत से पूर्ण महेश का, गुड़ से भरा हुआ सूर्य का, दही से पूर्ण महेन्द्र का, घृत और शर्करा से पूर्ण राम का और जल से भरा हुआ गौरी (पार्वती) का प्रतिनिधित्व करता था। राणा ने इन्हें ब्राह्मणों को दानकर राजपुरोहित गरीबदास से आशीर्वाद प्राप्त किया।

इसके पश्चात् राणा ने आत्मीय जनों के साथ तुला मण्डप में प्रवेश कर स्वयं तथा अपने पौत्रअमरसिंह को गोद में बैठाकर दोनों के बराबर स्वर्ण तुलवाकर तुलादान विधि सम्पन्न करवाई।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अष्टादश सर्ग, शिला एकोनविंशति

प्रतिष्ठा महोत्सव के समय राणा राजसिंह ने अपने राज पुरोहित गरीबदास को घांसो, गुढ़ों, सिरतल, सालोल, आलोदक, मझेरा, धनेरिया, झाडोदिका, सादड़ी, अम्बेरी, असरोल, मानसान नामक बारह गांव दिये तथा अन्य अनेक ब्राह्मणों को भूमि दान की ।

प्रधान रानी "सदाकुंवरी" ने रजत तुलादान किया । राजपुरोहित गरीबदास ने स्वर्ण का तुलादान किया, उनके ज्येष्ट पुत्र रणछोड़ राय ने चाँदीं का तुलादान किया । टोडा के प्रधान रायसिंह की माता, सलुम्बर के चौहानवंशी राव केशरीसिंह और प्रसिद्ध कवि चारण बारहठ केसरीसिंह ने रजत तुलादान किया ।[१]

इस दिन से "राजसमुद्र" नाम से यह जलाशय व्यवहृत होने लगा । पर्वत पर राजप्रासाद को राजमन्दिर और गांव का नाम राजनगर रखा गया । दानवीर राजसिंह ने विविध मिष्ठान्नों शर्करा गुड़ और धान्यों की पर्वताकार राशियों को ब्राह्मणों के लिए दान किया, जिससे वह बलि, कर्ण, भोज और विक्रमादित्य के समान यश का भागी हुआ । राजसमुद्र की चंचल तरंगों से मानो याचकों के दारिद्र्य रूपी पंक का प्रक्षालन हो गया । ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर सर्वदा के लिए उन्हें दुःख दरिद्रता से मुक्त कर दिया ।

"सागर के समान राजसमुद्र की उत्ताल तरंगें मानो सभी को आलोड़ित कर रही है । सारस, बकुल इसके तट पर विचरण कर रहे हैं । प्रभु द्वारकाधीश अपने प्रिय ब्रज-मण्डल को छोड़कर इसके तीर पर विराजमान है ।"

एकोनविंशति सर्ग, शिला विंशति

इस सर्ग में कवि ने काव्य सौष्ठव के साथ "राजसमुद्र के निर्माण में जो ग्राम इसके जल में निमग्न हो गये मानो वे वरुण देव के द्वार पर पहुंच गये, जिससे उनके पाप रूपी पंक का प्रक्षालन हो गया । जिन-जिन ग्रामों का भूभाग इस जलाशय के समीपवर्ती है, वह पावन तीर्थ के रूप में परिणत हो गया । जल में स्थित बोधिद्रुम शाखा रूपी अंगुलियों से प्रवाल रत्न की माला द्वारा जप करता हुआ अपनी दुष्कर तपस्या को सार्थक कर रहा है । तटवर्ती वटवृक्ष के नीचे स्थित योगीगण इसके जल में अपने जटाजूट का प्रक्षालन कर रहे हैं । जहां पहले इस जलाशय के स्थान

Funding by IKS-MoE

१. इन्हीं दोनों का विवरण चतुर्दश सर्ग में भी दिया गया है यहां पुनरावृत्ति की गई है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर वन में सिंह की गुरु गम्भीर गर्जना होती रहती थी, वहां अब जल-कल्लोल का मधुर अनवरत शब्द सुना जाता है"। इस प्रकार से कवि ने काव्यात्मक चित्रण उपस्थित किया है।

राणा राजसिंह ने प्रतिष्ठा महोत्सव में आये हुए ४६००० ब्राह्मणों को कई गांव, जमीन,ताम्रपत्र पर अंकित करवाकर दान स्वरूप जागीर के रूप में दे दी।

राजपुरोहित गरीबदास की आज्ञा में कार्यकर्ता अधिकारीगण सदैव ही तत्पर रहते थे। उन्होंने अहर्निश श्रम करके सप्तसागर दान और तुलादान विधि को सम्पन्न कराया। विभिन्न देशों से आये हुए ब्राह्मणों को प्रचुर द्रव्य देकर सन्तुष्ट किया।

विंशति सर्ग, शिला एकविंशति

राणा राजसिंह के द्वारा अपने सम्बन्धियों तथा आमन्त्रित राजाओं को दिये गये हाथी, घोड़े बहुमूल्य वस्त्राभरणों का विस्तार से इतिवृत्त इस सर्ग में अंकित है। इसमें हाथियों और घोड़ों के परमेश्वर प्रसाद, कनक-कलश, सुन्दरगज, छवि सुन्दर मानमूर्ति, तेजनिधान, प्रतापशृंगार आदि नामकरण के साथ उनका मूल्य भी निश्चित किया गया।

तत्कालीन जोधपुर के शासक राठोड़ यशवन्तसिंह, कछवाहा नरेश रामसिंह, बीकानेर के राजा अनूपसिंह, बूंदी के नरेश हाड़ा भावसिंह, रामपुरा के चन्द्रावत राव मुहुकमसिंह, जैसलमेर के रावल अमरसिंह भाटी, डूंगरपुर के रावल यशवन्तसिंह, राणा के मुख्यमंत्री दोसी भीखू, राणावत रामसिंह, जो कि राजसमुद्र के निर्माण कार्य का प्रधान था, रीवा के भावसिंह, टोडा के शासक रायसिंह की माता और उसके कुमारों एवं कुछ अन्यान्य प्रधान कार्याध्यक्ष राजाओं को (जिन्हें निमन्त्रित किया गया था) यथायोग्य उपहार भेजा।

राजपुरोहित के परिवार के व्यक्ति तथा इतर व्यक्ति इन उपहारों को देने के लिए भेजे गये थे। राजा सामन्त आदि जो वहां पर उपस्थित थे, उन्हें वहीं उपहार दे दिया गया।

एकविंशति सर्ग, शिला द्वाविंशति

राजसमुद्र के निर्माण कार्य, प्रतिष्ठा महोत्सव, दान दक्षिणादि में व्यय हुई धन राशि का विस्तार से विवरण दिया गया है। राजसमुद्र बनाने का कार्य वि.सं. १७१८ के माघ कृष्णा सप्तमी बुधवार को प्ररम्भ हुआ था और सम्पूर्ण रूप से

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि.सं. १७३५ के आषाढ़ मास में बनकर तैयार हो गया। इस प्रकार इसके निर्माण में लगभग १७ वर्ष लगे।

कवि ने व्यय सम्बन्धी विवरण दो पक्ष में दिया है। उनमें से भी अलग अलग अधिकारी वर्गों के हाथ से व्यय हुआ, उसका विस्तृत वर्णन दिया है। प्रथम पक्ष का कुल व्यय ५४२६ ३६९१/४ है। द्वितीय पक्ष का १०५०७६०८ कुल व्यय है। वैसे तो राजसमुद्र के निर्माण में जितना व्यय हुआ वह "शेषनाग और सरस्वती से भी वर्णनातीत माना गया है"।

द्वाविंशति सर्ग, शिलात्रयोविंशति

राजकुमार जयसिंह ने राणा की आज्ञा से वि. सं. १७३५ चैत्र शु. एकादशी को औरगंजेब से मिलने के लिए दिल्ली को प्रस्थान किया। दिल्ली से दो कोस दूर उसने शिविर लगाया। बादशाह ने स्वर्णाभरण, मोतियों की माला, बहुमूल्यवस्त्र, मदोन्मत्त हाथी तथा सुन्दर अश्व उपहार में दिये।

जयसिंह ने पतित पावनी गंगा में स्नान किया। गढ़मुक्तेश्वर (शिव)[१] की अर्चना की। कृष्ण की विहार स्थली वृन्दावन मथुरा जाकर परम आह्लाद को प्राप्त किया।

वि.सं. १७३६ पौष कृ. एकादशी को औरंगजेब मांडल से रवाना होकर उदयसागर जाने लगा। उसकी आज्ञा से मार्ग में उसका पुत्र अकबर और तहवर खां उपस्थित थे। उनको रोकने के लिए रमणीय राजसमुद्र के पास महाराज सबलसिंह, भींडर के मुहुकमसिंह शक्तावत एवं विख्यात कई योद्धाओं ने घमासान युद्ध किया।

राणा ने देवारी के मार्ग पर भी अपने योद्धा तैनात कर दिये। दोनों पक्षों में भीषण युद्ध हुआ। राणा के ठाकुर भदेसर वाले "झल्ला"(झाला) ने बादशाह की सेना पर छापा मार कर हाथी घोड़े पकड़ राणा को समर्पित कर दिये। राजकुमार भीमसिंह ने ईडर का विध्वंस किया। इस प्रकार पारस्परिक युद्ध का चित्रण किया गया है।

---

१. "गढ़मुक्तेश्वर" गंगा से ७२ कि.मी. लगभग दूर मेरठ डिस्ट्रिक्ट में है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रयोविंशति सर्ग, शिला चतुर्विंशति

राणा राजसिंह वि.सं. १७३७ के कार्तिक शु.दशमी के दिन असंख्य दानोपहार ब्राह्मणों को देकर, हाथ में जपमाला लिए हरि का ध्यान करते हुए स्वर्गवासी हुए। इनका देहान्त "ओडा" ग्राम में हुआ। उस समय जयाभिलाषी जयसिंह कुरज गांव में मुगल सेना को रोकने के लिए शिविर लगाये हुए थे। तत्कालीन विषम परिस्थिति के कारण पन्द्रह दिनों के पश्चात् जयसिंह का राज्य तिलक हुआ।

जयसिंह ने वि.सं. १७३७ मार्गशीर्ष महिने में "देसुरी" के घाटे की ओर से "तहवर खां" के आने के समाचार सुन उन्होनें अपने अनुज भीमसिंह, को "बीका" सोलंकी को साथ में देकर भेजा। अगणित यवनशत्रुओं का संहार कर तहवरखां को चारों ओर से घेर लिया गया। दलेल खाँ मेवाड़ के पर्वतीय प्रदेश की ओर से आने लगा। वह भी रत्नसिंह चूंडावत द्वारा गोगुन्दे के मार्ग में ही रोक लिया गया। यवन आक्रमणकारी, अन्नाभाव आदि के कारण अत्यन्त ही क्षतिग्रस्त परेशान हो गये, यह सब वृत्तान्त जानकर बादशाह ने अपने पुत्र अकबर को सन्धि के लिए भेजा। उस समय अकबर के बागी होने के कारण उचित समय जानकर राणा ने स्वेच्छा से ससम्मान संधि स्वीकार कर ली।

सर्ग चतुर्विंशति, शिला पंचविंशतिः

इस सर्ग में प्रायशः पीछे की उल्लिखित घटनाओं का ही वर्णन किया गया है। श्लोक सं. १ से ११ तक राणा राजसिंह के द्वारा तथा उसके पौत्र अमरसिंह, रानी सदाकुंवरी, माता जनादे, राजपुरोहित गरीबदास और उसके ज्येष्ठ पुत्र रणछोड़ राय द्वारा तुलादान आदि किये गयेथे, उनकी पुनरावृत्ति की गई है। श्लोक सं. १२-१५ में राणा उदयसिंह से जयसिंह पर्यन्त वंशावली दी गई है। वि.सं. १७३२ माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन राजसमुद्र की एवं राजप्रशस्ति के लेखन कार्य समाप्ति का विवरण दिया गया है। श्लोक सं. १६-२४ तक राजप्रशस्ति के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। श्लोक सं. २५,२६ और २७वें में दयालशाह[१] के द्वारा खेराबाद, बनहेड़ा, (बनेड़ा) धारापुरी और अहमदनगर को लूटना तथा वहां की मस्जिदों को नष्ट-भ्रष्ट करने विषयक संकेत दिया गया है। २८ वां श्लोक जगदीश

---

१. दयालशाह के द्वारा बनवाया गया एक जैन मन्दिर राजसमुद्र से दक्षिण की पहाड़ी पर स्थित है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मिश्र के पुत्र माथुर हीरामनि महामिश्र ने राजसमुद्र के प्रदक्षिणा करते समय सूत्रवेष्टन कार्य संपादित किया, जिसका उल्लेख किया गया है। श्लोक सं. २९-३२ राजा राजसिंह ने प्रतिष्ठा महोत्सव पर रुपया धान्यादि गरीबों के वितरणार्थ मिश्र को नियुक्त किया था, उसका विवरण दिया गया है। श्लोक ३३ से ३६ तक कवि ने समाप्ति पर राणा की वंशावली तथा अपने पूर्वजों के नामों का विवरण तथा राजसमुद्र और राजप्रशस्ति का पुन: उल्लेख कर सर्ग की समाप्ति की है।

राजप्रशस्ति का चरित नायक राजसिंह

राजप्रशस्ति महाकाव्य के चरित नायक राणा राजसिंह है। वह महादानी, धीर, वीर, निर्भीक, धर्मनिष्ठ, मानैकधनी एवं विद्वानों का आश्रयदाता चित्रित किया गया है।

ये वि.सं. १७०९ के कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को राज्यसिंहासन पर आसीन हुए थे। उसी वर्ष मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष में अपने इष्टदेव एकलिंगजी जाकर उन्होंने रत्नों का तुलादान किया,[१] उनके द्वारा किये गये रत्नों के तुलादान का उदाहरण सम्भवत: सम्पूर्ण भारत में एकमात्र यही मिलता है। फाल्गुन कृष्णा द्वितीया को उनका राज्याभिषेकोत्सव हुआ[२] इसके अतिरिक्त राजसमुद्र के प्रतिष्ठा महोत्सव, अपने जन्म दिवस एवं इतर शुभ पर्वों पर "हेमब्रह्माण्डादि" नामक अनेक महादान किया करते थे,[३] इस प्रकार वह परम दानी वर्णित किया गया है।

---

१. —राणा श्री जगत् सिंहात्मज श्रीराजसिंहनृपति ? प्रीत्येकलिंगाग्रतो(?)
रत्नैः पूर्णतुलां कृती व्यरचयत् सच्चित्रकूटाधिपः ॥ १८ ॥
शिलालेख प्रतापसंग्रहालय उदयपुर, उ.रा.इ.-भाग २, पृष्ठ ८४२ फुटनोट-ओझा।

२. वर्षे निध्यम्बरर्षि क्षितिगणनयुते फाल्गुणस्य द्वितीया
तिथ्यांकृष्णाख्य पक्षे सकलनृपमणिःश्रीजगतसिंहपुत्रः।
राज्य श्रीचिन्हभूतं त्रिजगति सुखदं हेमसिंहासने सत्,
सल्लग्नेऽधिष्ठितोऽभूत् सकलरिपुकुलत्रासदो राजसिंहः ॥ १३ ॥
जगन्नाथराय प्रशस्ति, तृतीय शिला ॥

३. कार्तिक्यां पूर्णिमायां श्री एकलिंगशिवांतिके।
दत्वा वेदोक्त विधिना राजसिंहो विराजते ॥ ३१ ॥
पंचमहाभूतमयं ब्रह्माण्डं मृज्जलाढ्यं लघु मूल्यम्।
मत्वा सुवर्णपूर्णं कृत्वा ब्रह्माण्डकं त्वया दत्तम् ॥ ३२-३४ राज प्र. सर्ग ६ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"औरंगजेब" जैसे कट्टर यवन शासक से लोहा लेना आसान बात नहीं थी। उसके द्वारा हिन्दुओं पर लगाये गये "जजिया" कर का उन्होंने विरोध किया,[१] औरंगजेब अपने दुराग्रह से कृष्णगढ़ (किशनगढ़) के नरेश रूपसिंह की रूपवती पुत्री "चारुमती" के साथ विवाह करना चाहता था। राणा राजसिंह ने औरंगजेब के साथ किये गये "चारुमती" के संबंध की अवहेलना कर राजकुमारी की प्रार्थना पर उसको विवाह कर लाये। इस प्रकार से औरंगजेब की इच्छा के विरुद्ध अनेक कार्यों को करके उससे शत्रुता स्थापित कर, तत्कालीन भारत के एक मात्र दुर्जयी यवन से टक्कर लेना, राणा की निर्भीकता का द्योतक है।

संकीर्ण मनोवृत्तिवाला औरंगजेब अपने यवन धर्म की कट्टरता के कारण हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्रतीक मन्दिरों और मूर्तियों का विध्वंस करवाता था, उसका प्रबलतम विरोध कर राणा ने मंदिरों का निर्माण तथा मूर्तियों का संरक्षण किया। औरंगजेब के आतंक से त्रस्त होकर श्रीनाथजी और द्वारकाधीश की मूर्तियों की रक्षा करने के लिए गोस्वामी महाराज दामोदरजी व्रजभूमि छोड़कर इधर आ गये, परन्तु बादशाह के भय से उनको किसी ने स्थायी निवास तक नहीं दिया। परम धार्मिक राणा राजसिंह ने दोनों मूर्तियों को अपने राज्य के अन्तर्गत नाथद्वारा और कांकरोली गांव में प्रतिष्ठापित कर उनके प्रसाद एवं भोग के लिये गाँवों को भेंट किये। गोस्वामीजी को अपना गुरु बनाया, यह राणा की धर्म के प्रति आगाध श्रद्धा एवं निष्ठा का परिचायक है।[२]

---

१. उ.रा.इ., भाग-२, पृ.८५१८८९८५९;-ओझा,
वी.वि., भाग-राजसिंह प्रकरण-पृ.४३७-४५१ श्यामलदास कृत,
शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे सप्तदशे ततः।
गत्वा कृष्णगढ़े दिव्ये महत्या सेनया युतः ॥ २९ ॥
दिल्लीशार्थं रक्षिताया राजसिंहनरेश्वरः।
राठोड़रूपसिंहस्य पुत्र्या पाणिग्रहं व्यघात् ॥ ३० ॥
राज प्रशास्ति सर्ग अष्टम।

२. सुवर्णसत्पूरितभासमानः श्री द्वारिकायां घनभासमानः।
चतुर्भुजो राजसमुद्रतीरे श्रीद्वारिकानाथहरिः सुनीरे ॥
राज प्र. सर्ग १०-१ ॥ पाठान्तर— 'सुवर्णशैलात् पुरि भात्यमानः'
उ.रा.इ. भाग २,पृ.८५७८८९-ओझा।
वीरवि. भाग २, राजसिंहप्रकरण पृ.४५२-श्याम कृत।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राणा राजसिंह ने समीपवर्ती राज्यों के अतिरिक्त सुदूर प्रदेशों को जीत कर अपने राज्य का विस्तार किया । सर्वप्रथम मांडलगढ़, जो कि बादशाह के अधीनस्थ था, उसको अपने अधिकार में कर मांडल, बनेड़ा, शाहपुरा, जहाजपुर, सावर, फूलिया, केकड़ी पर अपना आधिपत्य स्थापित किया,[१] नौ दिन तक "मालपुरा" को लूटकर प्रचुर संपत्ति का अर्जन किया,[२] "टोड़ा को जीतने के लिए कायस्थ "फतहचन्द" को सैन्य देकर भेजा । इस स्थिति का अवलोकन कर टोड़ा के रायसिंह की माता ने उपहार स्वरूप ६०,००० रुपये अर्पित कर अधीनता स्वीकार कर ली ।[३] वीरमदेव के नगर "महीरव" को भस्मसात् कर दिया । टोंक, सांभर, लालसोट, चाटसू आदि राज्यों पर आक्रमण कर वहां के राजाओं से दण्ड वसूल किया ।[४] ऐसे शौर्यपूर्ण कार्यकलाप उनकी वीरता एवं निर्भीकता के ज्वलन्त उदाहरण है ।

शिल्प एवं वास्तुकला के प्रेमी राजसिंह ने "सर्वर्तु-विलास" नामक रमणीय उद्यान एवं वहां पर राजप्रासाद का निर्माण करवाया । इसके अतिरिक्त विख्यात सुरम्य "राजसमुद्र" बनवाया, जिसके नोचौकी नामक पाल पर अत्यन्त ही सूक्ष्म एवं सुन्दर कलात्मक खुदाई का कार्य संगमरमर पर किया हुआ है । उसके ऊपर की ओर राजप्रासाद बनवाया । देवारी के पास "त्रिमुखी" वापी अपनी रानी "रामरसदे" की इच्छा से बनवाई । उदयपुर में अम्बामाता का मन्दिर वि.सं. १७२१ में निर्माण करवाया ।[५] उनकी माता "जनादे" के नाम से "जनासागर" बनवाकर उसका प्रतिष्ठा महोत्सव किया । यह तालाब उदयपुर से पश्चिम की ओर ५ कि. मी. दूर "बड़ी" गांव के पास विद्यमान है ।[६] एकलिंग माहदेव के पास बने हुए "इन्द्र-सरोवर" की जीर्ण- शीर्ण पाल का जीर्णोद्धार करवाया, जो वि. सं. १७२९ के ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को पूर्ण हुआ । इन्द्र सरोवर की पाल और प्रतोलियों के निर्माण में १८००० रुपया व्यय हुआ ।[७] इससे सम्बन्धित प्रशस्ति के निर्माण के

१. राजप्रशस्ति-सर्ग, श्लोक. २१,२७,२८ ।
२. वही. ३१-३४१ ।
३. वही. २० ।
४. वही. सम्पूर्ण ।
५. "अम्बामाता" की चरण चौकी का शिलालेख, उदयपुर ।
६. राजप्रशस्ति सर्ग अष्टम श्लोक ४६-५०. एवं "जनसागर-प्रशस्ति" लक्ष्मीनाथ भट्ट कृत, वीर विनोद-भाग २ पृ. ६३५-६३७ तक मूल पाठ ।
७. राजप्रशस्ति महाकाव्य-सर्ग दशम श्लोक ४०-४३ पर्यन्त ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिए भी राज प्रशस्ति कर्ता रणछोड़ भट्ट को आदेश मिला।[१] इस प्रकार उनके शासन काल में प्रासाद, मन्दिर, वापी जलाशयों आदि कलाकृतियों से परिपूर्ण रचनात्मक कार्य हुए, जो उनकी कलात्मक अभिरुचि को प्रदर्शित करते हैं एवं उनके यश को विस्तारित कर रहे हैं।

विद्याप्रेमी राणा राजसिंह के पास विविध विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् रहते थे। वैद्य गोविन्द, नैयायिक योगेश्वर, पण्डित माधव, श्री गौड़शिवजी, राजरत्नाकर रचयिता कवि सदाशिव नागरएवं राजप्रशस्तिकार रणछोड़ भट्ट उनकी सभा के रत्न थे। इस प्रकार से अनेकानेक विषयों के विद्वानों का आश्रय ही इनके विद्या प्रेम का सूचक है।[२]

उनके राज्यकाल में संस्कृत साहित्य का प्रचार एवं प्रसार पूर्ण रूप से हुआ। संस्कृत साहित्य के दो बड़े ऐतिहासिक महाकाव्य रणछोड़ भट्ट द्वारा "राजप्रशस्ति" एवं सदाशिव नागर द्वारा 'राजरत्नाकर' लिखे गये। रणछोड़ भट्ट द्वारा रचित एक दूसरा "अमरकाव्य" भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण काव्य है। मेवाड़ के इतिहास की सामग्री के लिए ये काव्य संस्कृत-साहित्य की अमूल्य निधि है।

साहित्य एवं संस्कृति के उन्नायक, संरक्षक राणा राजसिंह के आदेश से "त्रिमुखी बावड़ी" की प्रशस्ति लिखने के लिए रणछोड़ भट्ट को कहा गया। तदनुसार वि.सं. १७३२ माघ शुक्ला द्वितीया बृहस्पतिवार को प्रतिष्ठा महोत्सव पर पूर्ण रूप से प्रशस्ति शिला पर उत्कीर्ण करवाकर बावड़ी के "ताक" में लगवा दी गई[३] और भी निम्नलिखित शिलालेख राणा के राज्यकाल में लिखवाये गये।

१. वि.सं. १७१३ (चैत्रादि १७१४) ज्येष्ठवदि १० सोमवार का दान-पत्र उसमें गंधर्व मोहन को "रंगीली" गांव दान देने का उल्लेख है।

---

१. इससे सम्बन्धित यह प्रशस्ति इस समय अनुपलब्ध है।

२. राज रत्नाकर महाकव्य-सदाशिवनागर-सर्ग २३ श्लोक.२-७।

३. शते सप्तदशे पूर्णे वर्षे द्वात्रिंशदाह्वये।
माघशुक्लद्वितीयायां राजसिंहस्य भूपतेः॥ १३-२७॥
परमारकुलोत्पन्ना श्रीरामरसदेववधूः।
राजसिंहनृपाज्ञातो वाप्या उत्सर्गमातनोत्॥ १३-२८॥
राजप्रशस्ति। वीरविनोद-श्यामलदास, भाग २-पृ.६३८-६४० तक मूल मात्र प्रकाशित।

Funding by IKS-MoE.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२. "राणा देवली" नामक स्थान सन्तू की पहाड़ी के स्तम्भ पर वि. सं. १७१६ (चेत्रादि १७१७) वैशाखसुदी १० का लेख है। इस लेख में सांभरी को तीर से मारने का विवरण मिलता है।

३. एकलिंगजी जाने के मार्ग में "भुवाणा" गांव से दक्षिण तरफ की एक बावड़ी वि.सं. १७१७ का शिलालेख है, जिसका विवरण-राणा राजसिंह ने "पारड़ा" गांव में "सुन्दर वापिका" बनवाने के उपलक्ष्य में "बीसलनगरा नागर ब्राह्मण" व्यास बलभद्रगोपाल के पुत्र गोविन्द-राम व्यास को "भुवाणा" गांव में ७५ बीघा भूमि प्रदान करने का उल्लेख है।

४. अम्बामाता की चरण चौकी का (वि.सं. १७२१, चैत्रादि १७२२) ज्येष्ठ शुक्ला १० रविवार का शिलालेख है, जिसमें उक्त माता के मंदिर से सम्बन्धित भूमिदान का विवरण है।

५."बडी" का तालाब (जनासागर) की ऊपर उल्लिखित प्रशस्ति वि. सं. १७२५ वैशाखशुक्ला तृतीया गुरुवार की है।

६."देवारी" के द्वार की उत्तरी शाखा में उत्खनित वि.सं. १७३१ श्रावण शुक्ला पंचमी का लेख है, जिसमें द्वार के लिए कपाट बनवाने का उल्लेख है।

७. गुजरात राज्य के बड़ोदा नगर के समीपवर्ती "छाणी" गांव के जैन मन्दिर में स्थापित आदिनाथ की मूर्ति के आसन पर वि.सं.१७३२ वैशाख शुक्ला सप्तमी गुरुवार का लेख है, जिसमें ओसवाल जाति के "राजा" नामक पुरुष के पुत्र दयालदास द्वारा मूर्ति स्थापित किये जाने के विवरण के अतिरिक्त उसके कटुम्ब का विस्तृत परिचय भी दिया हुआ है।

८-९. "राजसमुद्र" के "नोचोकी" नामक पाल के सामने की पहाड़ी पर मन्त्री दयालदास द्वारा बनवाये गये "दयालशाह किला" (दुर्ग) की चारों "आदिनाथ" की मूर्तियों पर चार लेख हैं जिनका संवत् आशय सातवें लेखानुसार ही है।[१]

उपर्युक्त उदाहरणों से सिद्ध होता है कि उनके राज्यकाल में संस्कृत साहित्य की अत्यधिक श्रीवृद्धि हुई। विद्वानों के आश्रयी राणा की सभा में विविध विषयों के प्रकाण्ड, उत्भट विद्वान् रहते थे और वे उनका पूर्ण सम्मान करते थे। इसके साथ ही राणा राजसिंह स्वयं एक अच्छे कवि भी थे। उदाहरणस्वरूप उनका स्वनिर्मित

१. उ.रा.इ.-भाग २,पृ.८८७-ओझा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एक "छप्पय" राजसमुद्र की पाल पर राजप्रासाद के झरोखे के पूर्वीयपार्श्व में उत्कीर्ण है ।[१] पं. देवीदास के पुत्र श्रीलालभट्ट ने महाराणा राजसिंह के सम्बन्ध में १०१ श्लोकों का लघुकाव्य बनाया, जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । इससे विदित होता है कि राणा राजसिंह शूर,वीर, दानी तथा इतिहास और अश्वविद्या के सम्यग् ज्ञाता थे ।[२]

सारांश यह है कि राणा राजसिंह में धीर, वीर, साहसी, निर्भीक, धर्मनिष्ठ विद्यानुरागी, कलाप्रेमी, एवं विद्वानों के आश्रयदाता के रूप में सभी उत्कृष्ट गुणों का समावेश था । शस्त्रों से मातृभूमि की रक्षा करते हुए सुदूर तक के प्रदेशों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर रखा था । जितना युद्ध में पौरुष प्रदर्शित करते उतनी ही अभिरुचि विद्वानों को आश्रय देने एवं नवीन साहित्य निर्माण की ओर भी रखते थे, जिसका परिणाम है कि उनके शासनकाल में विख्यात ऐतिहासिक महाकाव्य राजप्रशस्ति एवं राजरत्नाकर की रचना हुई तथा अनेक प्रकार का प्रशस्ति साहित्य लिखा गया, जिससे संस्कृत साहित्य के भण्डार में वृद्धि हुई । उपर्युक्त अपने क्रिया-कलापों से सर्वगुण सम्पन्न राणा राजसिंह हिन्दुत्व के प्रतीक सिद्ध होते हैं ।

"राजप्रशस्ति" एक महाकाव्य

प्राचीन आचार्यों के महाकाव्य के लक्षणानुसार रणछोड़ भट्ट विरचित "राजप्रशस्ति" में महाकाव्य के लक्षण प्रायः घटित होते हैं । कथावस्तु किसी उच्चकुलीन ऐतिहासिक राजवंश की होनी चाहिए, तद्नुकूल ही राजप्रशस्ति की

---

१. कहां राम कहां लखण, नाम रहिया रामायण ।
कहां कृष्ण बलदेव, प्रगट भागोत पुरायण ॥
बाल्मीक शुक व्यास, कथा कविता न करंता ।
कुण सरूप सेवता, ध्यान मन कवण धरंता ॥
जग अमर नाम चाहो जिके, सुणो सजीवण आखरां ।
राजसी कहे जगराण रो, पूजौ पांव कवीसरा ॥
उ.रा.इ.-भाग २, पृ८९०-ओझा ।

२. संग्रामे भीमभीमो विविध वितरणे यश्च कर्णोपमेयः,
सत्ये श्री धर्मसूनुः प्रबलरिपुजये पार्थ एवापरोऽयम् ।
श्रीमान् वाजीन्द्र शिक्षा नयविधिकुशलः शास्त्रतत्वेतिहासे,
देवोऽयं राजसिंहों जयतु चिरतरं पुत्रपौत्रैः समेतः ॥ ३९ ॥
रा.पू.इ.-गो. ही.ओझा-भाग २, पृ८९० ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कथावस्तु सूर्यकुलावंतस मेवाड़ के महाराणाओं के त्याग, बलिदान एवं शौर्य की गाथाओं से परिपूर्ण है, इसमें उनके यश का वर्णन किया गया है। प्रमुख रूप से महाराणा राजसिंह (प्रथम) के द्वारा "राजसमुद्र" जैसे विशाल सागर का बनवाना और औरंगजेब एवं इतर अनेकों नरेशों के साथ किये गये युद्ध का वर्णन करना इस महाकाव्य के रचयिता का प्रधान उद्देश्य रहा है।

महाकाव्य के लक्षणानुकूल महाकाव्य की रचना आठ सर्ग से न्यून नहीं होनी चाहिए, इस दृष्टिकोण से "राजप्रशस्ति" की रचना पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण चौबीस सर्गों में की गई है। प्रत्येक सर्ग की रचना किसी एक छन्द में होनी चाहिए और अन्त में छन्द परिवर्तित होना चाहिए। तदनुसार अधिकांश सर्गों में इस बात का ध्यान रखा गया है, किन्तु फिर भी "नानावृत्तमयःक्वापि सर्गःकश्चन दृश्यते" के अनुसार ३,७,१०,१६,१७,१९,२० और २४ वें सर्गों में छन्दों का बाहुल्य विशेष दृष्टिगोचर होता है। सर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन होना आवश्यक है उसका प्रायः परिपालन हुआ है।

"नैषधीय चरित" महाकाव्य के निर्माता श्री हर्ष की तरह रणछोड़ भट्ट ने भी अपने इस महाकाव्य में सर्ग के अन्तिम श्लोकों में माता-पिता के नाम निर्देश के साथ अपने वंश का परिचय दिया है तथा राणा उदयसिंह से लेकर राणाओं की वंशावली के श्लोकों की पुनरावृत्ति की है।

महाकाव्य के लक्षणों में निर्दिष्ट प्रधान धीरोदात्त नायक के अनुसार "राजप्रशस्ति महाकाव्य" का प्रधान नायक हिन्दुत्वाभिमानी, रणकुशल, वीर, साहसी, धर्मनिष्ठ, दानी सूर्यवंशी राणा राजसिंह (प्रथम) है। "राजप्रशस्ति" में कवि ने इनके विविध कार्यों का सविस्तार वर्णन छठे सर्ग से ही प्रारम्भ कर दिया है। महाकाव्य में जो वर्ण्य विषय माने गये हैं उनका वर्णन सर्ग छठे से लेकर चौबीस-सर्ग पर्यन्त इन्हीं राणा राजसिंह की विजययात्रा, महादान, राजसमुद्र का निर्माण, प्रतिष्ठा महोत्सव तथा इसमें व्यय हुई धनराशि का सविस्तार उल्लेख महाकाव्य में अंकित किया गया है।

शृंगार और वीर रसों में से महाकाव्य में एक प्रधान रस अंगी रूप में होना चाहिए। "राजप्रशस्ति" के चतुर्थ सर्ग में महाराणा संग्रामसिंह (सांगा प्रथम) का युद्ध वर्णन और महाराणा प्रताप सिंह (प्रथम) का मानसिंह के साथ खमनोर गाँव के पास हल्दी घाटी में हुये युद्ध का वर्णन किया गया है। सम्पूर्ण सप्तम सर्ग में

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राणा राजसिंह की विस्तार से विजय यात्रा आदि का वर्णन इस महाकाव्य में किया गया है अतः अंगीभूत वीर रस है ।[१] रानियों के साथ राजसमुद्र की प्रदक्षिणा एवं सूत्रवेष्टन कार्य संपादित करते समय वर्षा का वर्णन नौका विहार जलक्रीडा आदि चित्रण महाकाव्य के लक्षण के अनुरूप अंकित किया गया है ।[२] उन्नीसवें सर्ग में राजसमुद्र के जल में स्थित "बोधिद्रुम" वृक्ष के वर्णन से कल्पना प्रसूत काव्यात्मक सौन्दर्य निखर उठा है । उदाहरणस्वरूप "राजसमुद्र" के जल में स्थित बोधिद्रुम अपनी शाखारूपी अंगुलियों से प्रवाल-रत्न की माला द्वारा जप करता हुआ दुःसाध्य तपस्या को सार्थक कर रहा है । राजसागर में स्थित वट वृक्ष रूपी योगी की जटाजूट भी वटवृक्ष के तने हैं, जिनको वह राजसमुद्र के जल में धोता हुआ दुष्कर तप में रत है । इस प्रकार का रूपक शान्त रस का प्रतीक है ।[३]

राजप्रशस्ति में लौकिक, देशीय भाषा के शब्दों का प्रयोग

कवि रणछोड़ भट्ट ने अपने राजप्रशस्ति महाकाव्य में लौकिक, देशीय बोलचाल की व्यावहारिक भाषा के शब्दों का प्रयोग निःसंकोच, अव्याहतरूप से करने के लिए किया है । केवल मात्र संस्कृत की विभक्तियां लगाकर संस्कृत स्वरूप देने का सफल प्रयत्न किया है । ऐसे शब्द अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होते हैं । यथा-राजसमुद्र की पाल पर निर्मित "कमलबुरिज" के लिए (बुरिजस्य, १६-३०) "पादाघात" के लिए बोलचाल में "लात" शब्द का व्यवहार होता है, इसलिए (लत्तां,

---

१. युष्मज्जैत्रप्रयाणश्रवणविगलितत्राणनिष्प्राणकानाम्
म्लेच्छानां छादनार्थं भवति हयखुरोत्खात धूलीसमूहः ।
माद्यन् मातंगगल्लस्थलगलदतुलोद्दामदानाम्बुवृन्दम्,
हिन्दूकानां निवापांजलिसलिल कृतेम्लेच्छपक्षस्थितानाम् ॥
राजप्रशस्ति सर्ग ७, श्लो.१४ ।

२. शुक्लांबरं चंद्रमिव क्षितीशं राज्ञस्तु तारा इव तारहाराः ।
सिंचंत एवेत्युचितं हि गौर्यः सहीरमुक्ताभरणातिरम्याः ॥ सर्ग १६-१५ ॥
तनुलग्नार्द्रपटातिदृष्टदेहघटनानां घटसंनिभस्तनीनाम् ॥
घनधारावलिपूरितांगकानामिव कौतूहलदं जलांगनानाम् ॥
राजप्रशस्ति, सर्ग १६ श्लोक-२० ।

३. बोधिद्रुमो जलस्थायी, तपस्तपति दुष्करम् ।
प्रवालमालया शाखांगुलीभिः सार्थकाह्वयः ॥ १९-१० ॥
वटवृक्षाः स्थितास्तोये, तपंति प्रचुरं तपः ।
क्षालयंति जटाजालं नूनमेतेऽत्र योगिनः ॥ राजप्रशस्ति, सर्ग १९ श्लोक ११ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४-४१) लिखा है। अभिवादनार्थ उर्दू शब्द (सलाम, ४-४८) को लेने में हिचकिचाहट नहीं की है। राजसमुद्र निर्माण कार्य के लिए नियुक्त "अधीक्षक" के लिए "तफेदार" व्यवहार में जाता है, उसके लिए (तफे, २१-४,५) शब्द का कवि ने उपोयग किया है। "डूंगरपुर" नगर के लिए संस्कृत में प्रायः "गिरिपुर" नाम प्रशस्ति साहित्य में मिलता है, उसका प्रयोग न कर (डूंगरपुरं, डूंगरपुरे, ५-१८,१९) बोलचाल के डूंगरपुर शब्द को ही काव्य में ग्रहण किया है। "नवाब" के लिए (नवाबेन, नवायो, नवाबः, २३-२३,२४,२५,२७) लिखा है। राजसमुद्र के पास "कुरज" गांव के लिए (कडंजे, २३३-९,१२) दिया है। हो सकता है उस समय "कडंज" से पुकारा जाता हो, जिसका कालान्तर में व्यवहारिक रूप बोलते-बोलते अब तक "कुरज"हो गया है तो कोई आश्चर्य नहीं। जल निकालने के यंत्र "रेंट" के लिए (आरहट्टक, ११-१६) लिखा है। "लड्डू" के लिए "मोदक" संस्कृत शब्द का प्रयोग कर (लड्डूक-मंगलाचरण-१६,१९) लड्डूक ही अंकित किया है। पुरोहित अवटंक के लिए "पुरोधस्" शब्द का कम प्रयोग कर (पुरोधसा,१४-२५,१५-१५,२९) और (पुरोहितेन पुरोहितः आदि-१४-३३,१५-२२,२७,२८,१७-१,१८-१०) अधिक बार प्रयुक्त हुआ है। राठोड़ (५-२३,१४-११,२२-२३,२३-४०,४७,५९), झाला (२३-१९,५७) चौंड़ावता,(२३-४१,५८) शक्तावत्, (२३-४१,५८), सोलंकी (२३-१४) चौहान (१-४६,१८-१४), बारहट (१८-१५), दुर्गम घाटियों के लिए (घट्टक २३-४०), "मेवाड़ के लिए संस्कृत का प्रचलित शब्द "मेदपाट" उपयोग में न लेकर मेवाड़ (२२-१०) का प्रयोग किया है। कांकरोली (९-६,११-३५,३७,३८,१२-१०, २४-२९) प्रयुक्त है। रतलाम, (२३-४७) धोइन्दा के लिए घोघुन्दा (१-१०,९-५) घोघुन्दा घोलते बोलते "धोइन्दा" कुछ अपभ्रंश शब्द हो सकता है। सनवाड, सिवाली, भिगावदा, मोर्चना, पसोंद, खेडी, छापरखेडिका, तासोल, भाणा, मंडावर, लुहानकः (९-५६,१२-५७,८,१०) आदि ग्रामों का निर्देश संस्कृतीकरण बिना किये लौकिक रूप में ही किया गया है।

राजप्रशस्ति में अधिकांश "च्छ" के स्थान पर "छ" ३१, "ब" की जगह "व" और "ख" के स्थानापन्न "ष" दृष्टिगत होते हैं। शिलाओं पर उत्कीर्ण करते समय इतनी सूक्ष्मता की ओर "गजधरों" का ध्यान नहीं गया हो और उनका पर्याप्त संस्कृत-ज्ञान का अभाव भी इसमें कारण हो सकता है, फलस्वरूप शिलालेख पर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्कीर्ण कार्य करते समय मात्राओं आदि का छूट जाना स्वाभाविक है । राजस्थानी भाषा के कतिपय शब्दों की सूची निम्नांकित है ।

१. लड्डू-मंग.श्लो. १६

२.गहिलोत-सर्ग ३-श्लो.६

३. ढब्बुक ३-१६

४. शेर ३-१६

५. मण ३-१६

६. मोरि-३-१८

७. रावल-३-१९

८. गौरी साहबदीन ३-२५

९. गजनीश ३-२५

१०. गौरी ३-२७

११. भाषा रासा ३-२७

१२. राणा (राना) ३-३०

१३. पल्लिवाल ३-३१

१४. सीसोदिया ३-३२

१५. अल्लाउद्दीन ४-५

१६. रावतबाघ ४-१०

१७. छीतू भट्ट ४-१८

१८. जैमल ४-१९

१९. पत्ता सीसोदिया ४-२०

२०. सुलतान ४-३६

२१. भाट ४-४६ २०-३२

२२. सलाम ४-४८

२३. हिन्दू ४-४९

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२४. साहिबखाँ ५-१४

२५. बाई ५-३१

२७. जगन्नाथ राय ५-४९

२८. खुमानेस ७-२३

२९. छाहनी (नदी)

३०. राव ८-१२

३१. रावत ८-१२

३२. देशदाण ८-१८

३३. मेवल ८-१८

३४. मीणा ८-३२

३५. शरी ९-४३

३६.चौकड़ी १०-२४

३७. नाल १०-३२

३८. गज ११-१

३९. स्थर ११-५

४०. बुरिज ११-७

४१. ओटा १२-१

४२. भाड़, बाड १२-२५

४३. जहाज १२-३५

४४. बार्हट १४-१०

४५. जोधपुरी १४-११

४६. कोयली १७-२४ (दोथला)

४७. तफेह २१-४५

४८. मेवाड़ २२-१०

Funding by IKS-MoE

४९. छप्पन २२-२४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५०. मसीद २२-२९

५१. शासन २०-३९

५२. सेमर ९-४५

५३. पीलियाखाल ४-१६

५४. सल,

५५. तोला

एंगाल अंगार (यह शब्द प्राकृत का है)।

राजप्रशस्ति महाकाव्य में अंलकार प्रयोग

राणा राजसिंह ने अपनी विजय यात्रा में "मालपुरा" के ऐश्वर्य को लूटा, उस प्रसंग में कवि ने 'लाटा -अनुप्रास' का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

गुच्छत् गुच्छाहारास्ते कनकं कनकोपमम्।
प्रवालवत् प्रवालश्च प्राचुर्याल्लुंटने भवत्॥ ७-३४॥

(स्वर्ण, मणि, प्रवालादि इतनी अधिक मात्रा में प्राप्त हुए कि पुष्पों के "गुच्छ" की तरह उनके अनेक गुच्छहार हो गये)

यहां गुच्छ, कनक, प्रवाल शब्दों का आवृत्ति से लाटानुप्रासालंकार है।

और भी:—

श्रीवक्रतुंडस्तव एष तुंडस्थितः सतां मंडितसूक्तिकुंडः।
उद्दंडवेतंडघटाप्रचण्डं विद्यामणी कुंडलदः सदा स्यात्॥ मंग-२२॥

इस श्लोक में "ड" की बार-बार आवृत्ति के कारण अनुप्रासालंकार है।

"सूर्य" की स्तुति के श्लोक में कवि के अनुप्रासालंकार को देखिये ।:—

स्वनामस्त्रजं गायतः स्रस्तरोगानजस्रं जनान्दस्त्रवद्वै वितन्वन्।
जयन्नस्त्रपान् भूषयन् घस्त्रमुच्चैः, सहस्त्रद्युतिस्संमुदेस्तादुदुस्तः॥
मंगलाचरण-२३।

"स्त्र" के पुनः पुनः प्रयोग से अनुप्रास अंलकार बन गया है।

"राजसिंह" की विजय यात्रा के लिए सेना सुसज्जित हुई उसका वर्णन कवि श्लेषालंकार में करता है।

मध्योद्यद्धानुबिंबा द्विजपतिवनुता मंगलाढ्या बुधाति-

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

स्तुत्या जीवाति वंद्याः कविकृतनुतयोऽमंदरूपप्रकाशाः।
विस्फूर्जत् सैंहिकेया विदधति चलनं केतवः किं ग्रहास्ते,
अग्रे सोग्रप्रतापास्तव विजयकृते राजसिंहेति जाने ॥ ७-२ ॥

(राणा राजसिंह की सेना में भानुबिंब सूर्य का चिन्हित राजचिन्ह सेना पक्ष में, ग्रहपक्ष में सूर्य, द्विजपति द्विजों में श्रेष्ठ सेना लिए, ग्रहपक्ष में चन्द्र, (मंगलाद्या बुधातिस्तुत्या) मंगल, बुध पण्डितों द्वारा आशीर्वादात्मक मांगलिक वचनों से स्तुत्य, मंगल, बुध नक्षत्र ग्रह पक्ष में, जीवातिवंद्या सकल प्रणिमात्र से वन्दनीय, जीव बृहस्पति से भी श्लाघनीय ग्रह पक्ष में, कविकृतनुतयः कवियों से जिसका यश गाया गया है, कवि शुक्र से प्रशंसनीय ग्रह पक्ष में अमन्दरूपप्रकाशाः जिसकी सेना का तेज मन्द नहीं है, अमन्दरूप प्रकाश "शनि" ग्रह पक्ष में, सैंहिकेया सिंह के बच्चों के समान पराक्रमी, सिंहिका का अपत्य "राहु" ग्रह पक्ष में, केतवः ध्वजायें, "केतु" ग्रह पक्ष में, अर्थ होता है। इस प्रकार हे राजसिंह ! तेरी सेना अपने विविध सैन्योपकरणों से युक्त है और नवों उपर्युक्त ग्रह भी तेरी सेना में तुम्हारे लिए विजय लाभार्थ उद्यत है।)

श्लेष का अन्य उदाहरण :—

नूनं कामोऽसि राणेन्द्र यत्र तत्रोदितच्छलात्।
शंबरं मुद्रितं तन्वत् युक्तं सेतुप्रबन्धकृत् ॥ ९-४२ ॥

"शंबर" शब्द जल और दैत्य दोनों अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। "काम" शब्द भी द्वयर्थक है। कामरूपी राणा राजसिंह ने शंबर जल को सेतुबन्ध के रूप में बांधा, अन्यत्र काम रूपी प्रद्युम्न ने शंबर दैत्य को मारा। शंबर और काम दोनों शब्द श्लिष्टार्थक होने से इस श्लोक में श्लेषालंकार का चमत्कार है। शब्दालंकार के पश्चात् कवि द्वारा लिखित अर्थालंकार का सौन्दर्य देखिये।

राणा राजसिंह अपनी रानियों एवं पुरनारियों को साथ लेकर राजसमुद्र की प्रदक्षिणा करने निकले उस समय का वर्णन रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है।

वसनग्रन्थिविधानशोभिताभिर्युवतीभिः परिवेष्टितो नरेन्द्रः।
भुवि नानाविधदिव्यसुन्दरीभिः परितो वेष्टित इंद्र एव नूनम् ॥ १६-२५ ॥

(कवि ने दिव्य सुन्दिरयों से व्याप्त राणा राजसिंह को इन्द्र माना है। राणा राजसिंह को इन्द्रत्व के रूप से रूपित करना ही रूपकालंकार है और 'उत्प्रेक्षा' अलंकार भी हो सकता है।)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्प्रेक्षा :—

वसनग्रन्थिविधान भूषिताभिर्वनिताभिर्नृपमावृतं समीक्ष्य।
जनता वक्ति हि रासमंडले श्री हरिरेवं कृतवान् ध्रुवं विहारम्॥ १६-२६॥

(सुन्दर रमणियों से घिरे राणा राजसिंह मानो रासमंडल में कृष्ण ही प्रतीत हो रहे हैं, ऐसा जनता कहती है। कृष्ण की संभावना राणा राजसिंह में करना "उत्प्रेक्षा" अलंकार है।)

राणा राजसिंह ने विजय यात्रार्थ प्रयाण किया, उस समय उनकी सेना की तैयारी और सैन्य संचालन से धरा भी प्रकम्पित हो उठी, इस प्रसंग में कवि का "अतिशयोक्ति" पूर्ण उदाहरण दृष्टव्य है:—

त्रिलोकी महामंडलं यत्त्वखंडं,
जनाः खंडखंडं बभूवेत्यथोचुः।
धरित्री विचित्रीः भवत् कंपानार्ता,
स्फुरद्दिग्गजाः कन्दुकीभावमापुः॥ ७-७॥

(पृथ्वी कंपायमान हो गई और दिग्गज कन्दुक की अवस्था को प्राप्त हो गये)।

और भी :—

रिंगत्तुरंगखुरराजिरजः समूहै,
र्नद्यो जलाशयगणाः स्थलभावमापुः।
दृष्ट्वा जगद्गतजलं सभयो महेन्द्रो,
ज्येष्ठेऽपि वर्षणमहो सहसा चकार॥ ७-१३॥

(सेना के अश्वों के खुरों से उड़े हुए धूलिसमूह से नदियाँ, सरोवर स्थलता को प्राप्त हो गये, ऐसी विषम स्थिति को देख संसार में जल के अभाव को जान इन्द्र ने ज्येष्ठ माह में ही वर्षा कर दी)

ज्येष्ठ मास में अर्थात् ग्रीष्मकाल में वर्षा हो जाना अतिशयोक्तिपूर्ण कथन कवि का है, जो 'अतिशयोक्ति अलंकार' कल्पना प्रसूत है।

उपमा और उत्प्रेक्षा का निम्नांकित उदाहरण अवलोकन कीजिए। :—

स्वीयब्राह्मणमंडली कृतमहाहोमाग्निहोत्रोष्टिभि
र्यज्ञैर्भूरिघृतादिवस्तुरचिताजीर्णस्य शान्त्यै मुखे।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह्नेर्मालपुरं शुभौषधमयं होमीकृतं सृष्टवान्
मन्ये खाण्डवमेष पांडव इव श्रीराजसिंहो नृपः ॥ ७-४१ ॥

(जिस प्रकार पाण्डवों ने खाण्डव वन को भस्मसात् कर दिया, उसी तरह राणा राजसिंह ने मालपुरा का विध्वंस किया। पाण्डव के समान राणा राजसिंह उपमालंकार को बतलाता है कि खाण्डव वन को पाण्डवों ने जला दिया वैसे ही मालपुरा को भी नष्ट कर दिया।)

यहां उत्प्रेक्षा कवि द्वारा प्रदर्शित की है। इस तरह श्लोक में उपमा और उत्प्रेक्षा दोनों अलंकारों का प्रयोग कवि का वैशिष्ट्य है।

अनुप्रासालंकार के साथ-साथ कवि द्वारा अधिक प्रयुक्त दक्षिण शब्द श्लोक में वैचित्र्य प्रकट कर रहा है।—

प्रदक्षिणां दक्षिणतो वितन्वन्
स दक्षिणो दक्षिणमार्गगामी।
प्राचीदिशा दक्षिणदिक्प्रतीची
सौम्यागतान्नृन् बहुदक्षिणाभिः ॥१६-१२ ॥

श्लोक में "दक्षिण" शब्द का भिन्न-भिन्न अर्थ होते हुए इस विभिन्न रूप में "दक्षिण" शब्द का प्रयोग काव्य चमत्कार का आधायक है।

"राजप्रशस्ति" के कुछ उदाहरणार्थ छन्द

उपजातिः—

नवग्रहाँस्तानधिदेवताश्च,
संस्थापयन् प्रत्यधिदेवताश्च।
नवग्रहं साग्रहमेष शत्रु,
श्रियः प्रियोऽक्ष्णां प्रकरिष्यतीशः ॥ १५-११ ॥

वसन्ततिलका :—

सिंहासने स्फुरितचामरवीज्यमानाः,
छत्रोपशोभितशिरा रचिताश्वमेधः ॥
श्रीरामचन्द्र इव भाति सुलक्ष्मणाढ्यः,
श्रीराजसिंह नृपतिर्नृपसिंह एव ॥ ६-४१ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिखरिणी :—

मृदुं वाणीं लज्जां श्रियमपि दधानां मणिलसत्,
किरीटेन्दुद्योतां मणिघटलसत्सव्यचरणान्।
त्रिनेत्रां स्मेरान्यां समणिचषकाब्जोद्यतकराम्,
जपारक्तां भक्ताः भवत भुवनेशीं पृथुकुचाम्॥

मंगलाचरण-श्लोक-७

मालिनी :—

मुनिनृपमनुजेभ्यो दर्शनं सम्प्रदातुम्,
परमकरुणयैवागत्य कैलाशशैलात्।
तटभुवि कुटिलाया एकलिंगस्त्रिकूटे,
स्थित इह विवरेऽद्रौ राजसिंहेशमव्यात्॥ १-१॥

शार्दूलविक्रीडित :—

पूर्णे सप्तदशे शते नरपतिः सत् षोडशाख्येऽब्दके,
आकार्योत्तमठक्कुरै र्गिरिधरं तं डूंगराद्ये पुरे
सद्राज्यं किल रावलं विदधता कृत्वात्मनः सेवकम्,
प्रेम्णास्मै प्रददौ सुयोग्यमखिलं सेवां व्यधाद्रावलः॥ ८-८॥

द्रुतविलम्बित :—

अथ परिक्रमणेषु समागता,
विविधपुष्प विराजितमालिकाः।
सपदि राजसमुद्रवरेऽर्पिता,
वरुणदेवमुदे करुणाभृता॥ १६-२४॥

शालिनी :—

एका कोटिः पंचलक्षाणिरूप्य,
मुद्राणां वा सत् सहस्राणि सप्त।
लग्नान्यस्मिन् षट्शतान्यष्टकं वै,
कार्ये प्रोक्तं पक्ष एतद्द्वितीये॥ २१-२२॥

"राजप्रशस्ति महाकाव्य" में प्रयुक्त छन्दों का विवरण निम्नानुसार है :—

अनुष्टुप् :—१.५, १४, १५, १७-२९, २.२-३८, ३.२-१२, २४-२७, ३२-३४, ४.२-५०, ५.१-३२, ३४-५०, ६.१-२४, २६-३१, ३३, ३४, ४२, ४३, ७.१,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३, ४, १२, २०, २२, २५-२८, ३०, ३१, ३४-३८, ४२, ४३, ८.१-४, ९,-१२-१६, १८-४३, ४६-५२, ९.२-१३, १६, १८-३२, ३६, ३८-४०, ४२, ४३, ४५, ४८, १०.५-७,९,१३-१५,२०,२१, ३३-३६,४०-४३, ११.२-१२,१५-४८,५१,५७,१२.१-१७,१९-२३,२९-३१,३७,३८,१३, २७-२९,४०-४२,१४.११,१२,२४,१६.३,१४,१७.१५,१८,३०,३१,३४, १८.२२-३१,३३,३७,३८,१९.६-११,१४-२०,२२,२३,२०.५४,२१.३-२१,२३-२५,२८-३६,२२.१,२६,३०-४६,२३.१-३,९-४३,४५-६२, २४.१-,१०,१६-२७,

आर्या:—६.२५,१६.३१,२०.४,५,१२,१३,१६,१८,२३,२६,३०,३३,३७,३९,४२ ,४९,२४.२८,

इन्द्रवज्रा:—३.१५,२९,३१,८.७,१०.२६,२९,३२,१२.२४,२५,२८,१३.७,२५, १७.२,१८.४,

इन्द्रवंश :—३.२१,१४.१९,१५.१२,१७.१०,२५,१८.१६,

उद्गीति:—१६.४,३०,२०.३,११,१४,१९,२१,२२,३२,३६,४०,४७,५०,५१,

उपजाति:—मंग.२२,३.१३,१४,१६-२०,२२,२३,३०,७.४०,४४,८.५,६,४४,४५, ९.१७,३४१०.१-४,१०-१२,१६-१९,२२-२५,२७,२८,३०,३१, ३७-३९,११.१,१३,१४,१२.२६,२७,३५,३६,१३.१-४,६,८-१३-१६,२०-२३,२५,२७-२९,३१-३७,३९,४०,१५.१-४,७,९-११,१३-२१,२४, २५,२७,२८,३७,१६.८,११,१२,१५,२७,२९,३२,३३,३५,३६,३८,१७.१ ,५-८,११-१४,२१-२३,२६,२७,२९,३३,३५,३६,३८,१८.३,६,८,११,१३ ,१५,१७,१९.५,३८,४१,२०.१,६-९,१५,२०,२४,२७,२८,३४,३५,३८,४१,५५,२२.२७,२८,२४.११,२९,

उपेन्द्रवज्रा :—१३.६,१४,१४.१०,३०,१६.१३,१७.३६,३९,

औपच्छन्दसिक :—१६.१६-२१,२३,२५,२६,

गाथा :—११.४९,५०,१६.१०,

गीति:—६.३२,९.३३,२०.२,१०,१७,२५,३१,४३-४६,४८,५२,५३,२१.२६, २२.२९,२४.३०-३२,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्रुतविलम्बित :—१६.२,९,२४,१७.४,३२,

पृथ्वी :—१.३,७.४५,१७.२८,

भुजंगप्रयात :—मं २३,७.६,११,१९,२३,८.१०,११,१७,२३.४-८,

मन्दक्रान्ता :—९.४१,

मालिनी :—१.१,२,४,६,७,४.१,१७.४०,१८.३६,

वसन्ततिलका:—१.८,११,१२,१३,५.३३,६.३७-४१,४५,४६,७.१३,१६.१,१९.२,
३,२१.३९,४१,

वैतालीय :—१६.२२,

शार्दूलविक्रीडित:—१.९,१०,३०,३१,३.१,३५,३६,५.५१,५२,७.५,२१,३३,३९,
४१,८.८,५३,५४,९.१,१४,१५,३४,४६,१२.१८,३२,३३,३९,४१,१७.१९,
४१,४२,१८.१,२,३२,३९,४०,१९.४,४२,४३,२१.१,४०,४२-५५,२२.४
७-५०,२३.४४,२४.१२-१५,३३-३६,

शालिनी :—१.१६,२१.२२,

शिखरिणी :—मंग.१-१४,१९.३७,२१.३७,३८,

स्रग्धरा:—मंग.१५-२१,२४-३०,६.३५,३६,४४,७.२,१४-१८,२४,२९,३२,९.४
४,४७,१०.८,१२.३४,४०,१८.३४,१९.१,१२,२१.२,

वंशस्थविला:—१३.२२,१४.२,१५.८,३१,३५,१६.६,७,३९,१८.५,९,१०,१२,१
९,२१,

इन्द्रवंश और वंशस्थविला का उपजाति :—३.२८,१३.२३,३०,३६,३९,१४,
३,६,८,९,१७,२६,३८,१५.५,६,२२,२३,२६,२९,३०,३२-३४,३६,३८,३
९,१६.५,३४,३७,४०,१७.९,१६,१७,२०,२४,३५,

वंशस्थविला, इन्द्रवंश,इन्द्रवज्रा का उपजाति :—१४.१८,

वंशस्थविला, इन्द्रवज्रा,उपेन्द्रवज्रा का उपजाति-१७.३,

वंशस्थविला, इन्द्रवंश उपेन्द्रवज्रा का उपजाति-१८.१८,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजरत्नाकर महाकाव्य

सदाशिव नागर द्वारा प्रणीत "राजरत्नाकर महाकाव्य" में मेवाड़ के महाराणाओं का इतिहास तथा विशेषरूप से महाराणा राजसिंह (प्रथम) के जीवन एवं उनके राज्यकाल की घटनाओं का वर्णन किया गया है।

कवि ने इस महाकाव्य की रचना राणा राजसिंह (प्रथम)के राज्यकाल (वि.सं. १७०९ से १७३७) के मध्य में की है, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि उसने स्वयं लिखा है कि "राणेन्द्र राजसिंह ने मुझे हथिनी पर बैठाकर सम्मानित किया तथा विद्वानों की सभा में उच्च पद प्रदान कर सर्वदा के लिए राज्याश्रय दिया।"[१]

इस महाकाव्य की दो प्रतियां "राजस्थान-प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान-उदयपुर" (ग्रन्थांक-७१८,१५१०) पर सुरक्षित है। इन दोनों में पाठ की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। इनके अवलोकन से विदित होता है कि ये दोनों ही अपूर्ण है। उक्त दोनों प्रतियों में इस काव्य का २३ वें सर्ग के २० वें श्लोक के प्रथम चरण तक का ही पाठ प्राप्त होता है। बीच बीच में कुछ अन्य अंश भी लुप्त है, जिनका विवरण इस प्रकार है।

१. प्रथम सर्ग के सत्रहवें श्लोक से लेकर द्वितीय सर्ग के अन्त तक

२. बारहवें सर्ग के छठे श्लोक के द्वितीय चरण से चौदहवें सर्ग के सत्ताईसवें श्लोक के प्रथम चरण तक १४वें सर्ग का बत्तीसवां श्लोक भी नहीं है।

३. अट्ठारहवें सर्ग के नवें श्लोक के द्वितीय चरण से सत्रहवें श्लोक के प्रथम चरण तक।

कवि सदाशिव नागर का परिचय

"राजरत्नाकर महकाव्य" के रचयिता सदाशिव नागर ने काव्य के प्रारम्भ में अपने वंश तथा गुरु का परिचय दिया है। तदनुसार सदाशिव नागर के पूर्वज "विद्याधर" नाम के महापण्डित हुए, जिनके कण्ठ में सरस्वती सदैव ही निवास करती थी, उनके पुत्र "गोपाल" एक बहुत बड़े कर्मकाण्डी थे, जिन्होंने गंगा के तट

---

१. सद्विप्रः परिपाल्य इत्यभिहितः प्रागेकलिंगेन यः,
सोप्यायात इति सदाशिव कविर्बद्ध प्रबन्धार्णवः।
राणेन्द्रो महतादरेण करिणी पृष्ठे समारोप्य तम्,
यावज्जीवमयं स्वकीय इति संमत्या सदातिष्ठिपत् ॥ २३-७ ॥ राज.रत्ना.।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को यज्ञ-यूपों से अलंकृत कर दिया था । गोपाल का पुत्र "मंडन" अपनी विद्वता के कारण यथार्थतः संसार का मंडन ही था । गोभिल की तरह सामवेद में निष्णात तथा गौतम की तरह न्यायशास्त्र में प्रवीण मंडन के पुत्र "कृष्णजित्" कवि सदाशिव नागर के पिता थे, जो अपने प्रखर पाण्डित्य के कारण बृहस्पति के समान राजाओं की सभा को सुशोभित करते थे ।[१]

कवि ने अपने गुरु का नाम "भानुजित्" बतलाया है । इन "भानुजित्" ने वाराणसी में बाल्यकाल में ही अखिल श्रुति स्मृतियों का अध्ययन कर लिया था । उन्होंने विद्वानों की सभा में सातवार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद की व्याख्या की थी । ये अनेकानेक शिष्यों को भोजन वस्त्रादि देकर उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे । कवि के द्वितीय गुरु "वत्सराज" थे, जिनकी कीर्ति-कौमुदी दिग्दिगन्त में संचरण करती थी ।[२]

महाकवि सदाशिव नागर ने अपने व्यक्तिगत जीवन का विशेष विवरण कुछ भी नहीं दिया है । वे मूलतः कहां के निवासी थे तथा राणा राजसिंह के सम्पर्क में कैसे और कब आये ? इस विषय में भी कोई जानकारी नहीं मिलती है । कवि

---

१. अभूत् सुगोलाक्ष सगोत्र गर्वी विद्याधरो नाम यथार्थनामा ।
उदारचेता किल यस्य कण्ठं सरस्वती संततमध्युवास ॥ ६ ॥
तस्यापत्यं शास्त्रसिद्धान्तवेत्ता, गोपालाख्यः कर्मकांडेरतोऽभूत् ।
विद्याचंचु सत्यवादी वरीयान्, गंगातीरे भूषयन् यज्ञयूपैः ॥ ७ ॥
हाटकेशनगरे प्रियंवदो नागरो, निर्गम निर्णयालयः ।
तस्य सूनुरमेरेज्य (श ?)सन्निभो, मंडनं जगति मंडनोऽभवत् ॥ ८ ॥
गोभिलोन्य इव सामसु विद्वान्, गौतमोऽन्य इव तर्कनयेऽपि ।
कृष्णजिद् विबुधमंडनस्सूनु, वर्सवेज्य (न्द्र,श ?) इव संसदि रेजे ॥ ९ ॥
बृहस्पति समीपगः सदसि नाकपृष्ठौकसां,
प्रभाकरसमप्रभो जयति कृष्णजिन्नागरः ।
यदीय वदनाद्धरिः सरति सामगाने दृशां,
सहस्त्रमपहाय सत् श्रुतिसहस्त्रमेवेप्सति ॥ १० ॥ राज रत्नाकर प्रथम सर्ग ॥

२. वाराणस्यामधीत्य श्रुतिमुखमखिलं वाङ्मयं शैशवे यै-
र्व्याख्याताः सप्तकृत्वः सदसि मतिमतां ऋग्यजुः सामवेदाः ।
दत्वा भक्ष्यं समक्षं सुरवरसरितोऽध्यापिताः शिष्यवर्गा
स्तेभ्यः सद्भ्योनमोऽस्तु प्रतिदिनमनिशं भानुजिद्भ्यो गुरुभ्यः ॥
राजरत्नाकर प्रथम सर्ग ॥१२ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने इतना ही बतलाया है कि राणा राजसिंह ने हथिनी पर बैठाकर उनको सम्मानित किया तथा अपनी विद्वत् सभा में उच्च स्थान देकर उन्हें राज्याश्रय प्रदान कियाथा ।[१]

सदाशिव नागर का वैदुष्य

कवि ने अपनी विद्वत्ता के विषय में स्वयं ही कहा है कि "मैं महाभाष्य का अध्येता, सामवेदी, छन्दःशास्त्र का ज्ञाता, गणितशास्त्र का मर्मज्ञ, सर्वदा सरस्वती के चरण कमलों का सेवी सदाशिव नागर हूं।"[२] वैसे भी "राजरत्नाकर" उनके पाण्डित्य का ज्वलन्त परिचायक है । वे व्याकरण शास्त्र के एक अच्छे विद्वान् मालूम होते हैं । "श्री कंठीयति, मालीयति, कैलासीयति", आदि नाम धातुज रूप यङ्लुङन्त प्रयोग "नौनोमि" तथा गणितशास्त्रज्ञ के लिए प्रयुक्त "गाणितक"(१५.७) आदि शब्द उनके विशिष्ट व्याकरण ज्ञान का परिचय देते हैं ।[३]

कवि को ज्योतिष् शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था, जैसा कि उनके द्वारा किये गये मुहूर्त आदि के उल्लेख से स्पष्ट है—"रवि के घर में बृहस्पति आ जायेगा और शुक्र भी समीप रहेगा, तब शुभ मुहूर्त नहीं होगा ।[४]

---

१. राज रत्नाकर-सर्ग २३वां, श्लोक-७

२. तत् पुत्रोऽहमधीत कैयट महाभाष्यार्णवः सामवित्,
पाटीबीजचतुष्टयादि गणितग्रन्थैक तानाश्रयः ।
मात्रावर्णविचित्रपिंगलकृत प्रस्तारवित् सेवित,
ब्राह्मीपादयुगः सदाशिव सुधीरम्यं तरो नागरः ॥ रा.र.१.११ ॥

३. कैलासीयति सानुमत् कुलमहो दिग्देवतानां वपुः,
श्रीकंठीयति निम्नगापतिकुलं दुग्धोर्मि मालीयति ।
कीर्ति र्यस्य सहस्रधा क्षितितले गंगेव पांडित्यजाम्,
तां नौनोमि सदाशिवोऽन्वहमहं श्रीवत्सराजं गुरुम् ॥ १.१३ ॥
ज्योतिर्वेदविशारदा रविगतिर्गोख्यागजा मध्यमे-,
त्यचुर्गाणितकोत्तमास्तदधुना मा ब्रूत मा ब्रूत हि ।
मेवाडेन्द्रविनिर्मितो ऽद्भुतपयोराशीक्षणप्रागतः,
स्वर्गीयौध विमानरोधित रथः सूर्यः शनैर्यास्यति ॥ १५.७ ॥ रा.र. ।

४. अवनिपाल समेष्यति हायने रविनिकेतनमेष्यति गीष्पतिः ।
उशनसोऽपि रवे बहुनांतरं दशमत्रिरितः शुचितो भवेत् ॥
राज रत्नाकर ॥ १४.२८ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संक्षिप्त कथावस्तु

प्रथम सर्ग–

कवि ने सर्वप्रथम अपने काव्य में मेवाड़ के स्वामी महाराणा के इष्टदेव भगवान् एकलिंग महादेव से कल्याण की कामना है। अनन्तर पार्वती, जगन्नाथ और हरसिद्धि देवी की स्तुति कर मंगलाचरण किया है। श्लोक संख्या ६ से १४ तक कवि ने अपने वंश का परिचय देते हुए गुरुओं के नाम का उल्लेख किया है, फिर भगवान् शिव की कृपा से निश्चला मेवाड़ की राजधानी और मेदपाटेश्वर के ऐश्वर्य को इन्द्र तुल्य बतलाया है।

द्वितीय सर्ग–

कथावस्तु पांडुलिपियों के खंडित होने के कारण अज्ञात है।

तृतीय सर्ग–

प्रारम्भ में रावल रणसिंह (कर्णसिंह) के दोनों राजकुमार "माहप" और "राहप" का वर्णन किया गया है। तदनन्तर राहप के साथ मुनि कश्यप और उनकी पत्नी "वेदवती" की कथा मिलती है। राहप के शिकारी कुत्ते मुनि कश्यप को मार डालते हैं, इस अपराध के लिए राहप मुनि पत्नी वेदवती के पास जाकर पश्चात्ताप पूर्वक क्षमा याचना करता है। वेदवती ब्राह्मण कन्या सुमालिनी तथा उसके पति के इन्द्र द्वारा शापित होने की कथा के रूप में अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाकर उसे शान्त्वना देती है। वेदवती द्वारा निर्दिष्ट पुण्य सलिला वापिका से निकले हुए कुम्भ की पूजा और पल्लीवाल (पालीवाल) वंशोद्भव "सरसल" ब्राह्मण के आशीर्वाद से राहप को चित्रकूट (चित्तौड़) का स्वामित्व मिलने का संकेत प्राप्त होता है। "राहप" "मोकल" नाम के सामन्त को युद्ध में पराजित कर तथा बन्दी बना अपने पिता के सम्मुख प्रस्तुत करता है। "मोकल" की "राणा" पदवी छीनकर "राहप" उसे स्वयं धारण कर लेता है, तभी से राहप के वंशज "राणा" कहलाने लगे। "राहप" "सरसल" को अपना पुरोहित नियुक्त करता है।

"माहप" अपने भाई "राहप" के पराक्रम को देखकर ईर्ष्या करता है। इसी राग द्वेष के कारण राहप को विष देकर मारने के लिए अपनी पत्नी से कहता है, किन्तु "राहप" इस प्रकार के षड्यन्त्र का अपनी भाभी से पता पाते ही चित्तौड़ छोड़ "सीसोदा" ग्राम में आकर अपना नया राज्य स्थापित करता है। कुछ समय के बाद वह पिता के स्वर्गवास के समाचार पाकर सैन्य सहित चित्तौड़ आकर राज्य अधिगत

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर लेता है और माहप सपरिवार वहां से निकलकर "आढ़नगर"(आहड़) में आकर निवास करने लगता है, किन्तु कालान्तर में वह वहां भी स्थिर न रह सका और राहप के व्यक्तियों से सताये जाने के कारण डूंगरपुर की ओर प्रस्थान कर देता है । माहप के आढ़नगर में निवास के कारण उसके वंशज "आढ़ा" क्षत्रिय और "राहप" के "सीसोदा"में रहने के कारण "सीसोदिया" क्षत्रिय कहलाये ।

चतुर्थ सर्ग—

राहप के पश्चात् उनके वंश में क्रमशः यशकर्ण, नागपाल, पूर्णमल्ल, पृथ्वीमल्ल, भुवनसिंह, भीमसिंह, जयसिंह और मानैकधनी लक्ष्मण सिंह हुए। लक्ष्मणसिंह का पुत्र अरिसिंह तथा उसके रणरंगधीर "हम्मीर" हुआ । हम्मीर के क्षेत्रसिंह, उसके लक्षसिंह और उसके पुत्र मोकलसिंह हुआ ।

राणा "मोकल" द्वारिका यात्रा गये । वहां एक सिद्धयोगी के शिष्य ने उनके ऐश्वर्य के उपभोग की इच्छा से उसकी रानी के गर्भ में प्रवेश किया, फलस्वरूप वीरव्रती विद्वान् महाराणा कुम्भकर्ण की उत्पत्ति हुई । महाराणा कुम्भा ने अपने प्राक्तन योगसिद्ध शरीर के कारण अपनी अलौकिक शक्ति से चामुण्डदास चारण को प्रत्येक रानी के पास अपनी उपस्थिति बतलाकर आश्चर्यान्वित कर दिया ।

पंचम सर्ग—

राणा कुम्भा ने मांडव्यपुर (मंडोवर) से हनुमान की मूर्ति लाकर कुम्भगढ़ में स्थापित की । वसन्तपुर (सिरोही जिला) को फिर से आबाद किया, वहां पर भगवान् विष्णु के निमित्त सात सागरों का निर्माण करवाया, आबू को जीता, अचलदुर्ग की प्रतिष्ठा की, कुम्भस्वामी का मन्दिर और पास के सरोवरों का निर्माण करवाया ।

उन्होंने गुजरात, मालवा, नागोर आदि राज्यों को जीता तथा "आसेर" आदि कई दुर्गों को अधीनस्थ किया । पुष्कर में आदिवराह भगवान् के प्रासाद का निर्माण करवाया । पुण्य तीर्थ "गया" में भगवान विष्णु की (मोक्षदायिनी) मूर्ति स्थापित की । चित्तौड़ आदि कई ऐतिहासिक स्थानों पर प्रासाद एवं दुर्गों का निर्माण करवाकर विशाल साम्राज्य का अधिपति राणा कुंभा एक दिन महीरुद्र नामक ब्राह्मण के पुत्र शिवशर्मा के स्मरण दिलाने पर अपने प्राक्तन शरीर को पुनः प्राप्त हो गया ।

महाराणा कुम्भा के पश्चात् उसका पुत्र रायमल्ल शासक बना, जिसने भगवान् भास्कर की तरह अपने प्रचण्ड प्रताप से मेदिनी का पालन करते हुए इष्टदेव भगवान्

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकलिंग महादेव के गगनचुम्बी मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया, तथा एकलिंग महादेव के पूजार्थ अनेक गांवों को भेंट किया।

षष्ठ सर्ग—

रायमल्ल के पश्चात् उसका पुत्र संग्रामसिंह (प्रथम) राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। प्रतापी राणा संग्रामसिंह (सांगा) ने अपने खड्ग के बल से म्लेच्छों का संहार किया। तीन वार मांडव्य दुर्गाधिपति के वैभव का हरण किया। दिल्लीश्वर बाबर के साथ कई बार घमासान युद्ध कर अपनी मातृभूमि को यवनों के पंजों से बचाया। कलिंग, अंग आदि दूर- दूर तक के राज्यों को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया। सांगा के तीन पुत्र रत्नसिंह, विक्रमादित्य और उदयसिंह हुए। रत्नसिंह ने तीन वर्ष तक और विक्रमादित्य ने सात वर्ष पर्यन्त राज्य किया। इसके पश्चात् विक्रमादित्य को मारकर बनवीर चित्तौड़ का स्वामी बन बैठा। बनवीर राणा सांगा के भाई पृथ्वीराज की अपरिणीता स्त्री (पासवान) का लड़का था। राणा सांगा के पुत्र उदयसिंह अपने पूर्वजों के राज्य को पुन: प्राप्त कर चितौड़ के राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। उन्होंने उदयपुर नामक मेवाड़ की नई राजधानी स्थापित की, उदयपुर के पास "उदयसागर" सरोवर का निर्माण भी करवाया तथा अकबर बादशाह के साथ मातृभूमि के रक्षार्थ कई बार युद्ध किया। राणा उदयसिंह का पुत्र सकल भूमण्डल का मणि महाराणा "प्रतापसिंह" (प्रथम) हुआ।

सप्तम सर्ग—

महाराणा प्रतापसिंह ने दीन दु:खियों के लिए अन्नसत्रालय खुलवाये। अपने बाहुबल से अनेक इन्द्र तुल्य पराक्रमी राजाओं को जीतकर दिग् दिगन्त तक अपने यश को स्थापित किया। राजा मानसिंह की "भूवा" की शादी अकबर बादशाह के साथ हुई थी, इस क्षत्रिय मर्यादाहीन कार्य से राजा मानसिंह के साथ महाराणा प्रताप ने भोजन नहीं किया। इस प्रकार की मानहानि से क्रुद्ध हो, वह अपने फूफा अकबर के पास दिल्ली आकर सैन्य सहित युद्ध के लिए तत्पर हुआ। प्रताप ने मानसिंह से किये गये भोजनपात्रों को दूर फिंकवाकर उस स्थान को गंगाजल से पवित्र करवाया और मानसिंह के साथ (हल्दीघाटी में) भीषण युद्ध किया।

अष्टम सर्ग—

राणा प्रताप ने "खानखाना" के साथ युद्ध किया, उनके उनके पुत्र अमरसिंह ने अद्भुत युद्ध-कौशल प्रदर्शित किया। इसका पुत्र कर्णसिंह साक्षात् कर्ण की तरह विख्यात हुआ। कर्णसिंह का पुत्र जगत्सिंह (प्रथम) वि. सं. १६८४ में राज्यसिंहासन

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर आरूढ हुआ, जिसने शत्रु "सूजा" को मारकर गिरिपुर (डूँगरपुर) का विध्वंस किया पुरोहित "रामराय" को मंत्री पद पर अधिष्ठित किया। प्रतिवर्ष अपने जन्मदिवस पर शूकर क्षेत्र (सोरमजी) और मान्धाता नर्मदा तट ओंकारेश्वर में रजत तुलादान करते थे। उदयपुर के जगदीश मन्दिर में भगवान् जगदीश की मूर्ति प्रतिष्ठापित की। वि.सं. १७०९ में रत्न-सेतु नामक दान एवं हजारों घोड़े गाय आदि दान में देकर स्वर्गवासी हुए।

नवम सर्ग—

दानवीर राणा जगत्सिंह के पुत्र हिन्दू धर्मरक्षक, पराक्रमी राणा राजसिंह (प्रथम) का जन्म वि.सं. १६८६ में हुआ। इनके अनुज का नाम अरिसिंह था। राजकुमार राजसिंह ने पवित्र शूकर क्षेत्र गंगा के तट पर तुलादान किया। वि.सं.१७०९ में पिता जगत्सिंह के स्वर्गवासी होने पर राजसिंह राज्य सिंहासन पर आसीन हुए। इनके राज पुरोहित पल्लीवाल (पालीवाल) ब्राह्मण सरसलजी वंशीय यशस्वी गरीबदास थे। ये मन्त्री का कार्य भी करते थे। वि.सं. १७१० के पौष कृष्ण एकादशी को राजकुमार जयसिंह का जन्म हुआ।

दशम सर्ग—

वि.सं. १७१३ में राणा राजसिंह ने राजपुरोहित की अनुमति से एकलिंग महादेव के यहां ब्रह्माण्डदान किया। गोविन्द नामक वैद्य ने राणा की वात व्याधि का शमन किया। वि.सं. १७१४ में औरंगजेब ने जब अपने लड़कों "सूजा" और "मुराद" को विभिन्न दिशाओं में युद्धार्थ भेजा, तब राणा ने भी पुरोहित से मंत्रणा कर सौ हाथी, पांच लाख घोड़े और भीलों की सेना सुसज्जित कर मालपुरा, केकड़ी आदि ग्रामों को लूटकर अपने अधीन किया, इसका कवि ने रोमांचकारी वर्णन किया है। राणा राजसिंह वैदिक धर्म के उपासक थे। वेदों का अनादर करने वालों की सम्पत्ति छीनकर ब्रह्माणों में वितरित कर देते थे। राणा राजसिंह ने रणथंभोर दुर्ग, हम्मीरपुर व टोडापुर को जीतकर अपने यश को चिरस्थायी बनाया।

एकादश सर्ग—

राणा राजसिंह ने अपने राजपुरोहित गरीबदास को पूछा कि चन्द्रवत् धवल कीर्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है ? तब गरीबदास ने भगवान् रामचन्द्र का चरित्र, बादरायण व्यास द्वारा कही गई पौराणिक गाथाएं, ध्रुवचरित, ययाति, नहुष,नल,जनक,कर्ण,युधिष्ठिरादि के कुछ पुनीत कार्यों का दिग्दर्शन कराया। राणा के पूर्वज कुंभा,सांगा, प्रताप,अमरसिंहादि ने रत्नजटित दुर्गों का निर्माण करवाकर अपनी मातृभूमि की प्राणपण से रक्षा की। ऐसे बलिदान पूर्ण कार्यों का राणा के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्मुख गुणानुवाद करके गरीबदास ने बताया कि ऐसे ही कार्यों से इन्दुवत् श्वेत कीर्ति प्राप्त होती है ।

द्वादश सर्ग—

इस सर्ग के पांच श्लोक ही पूर्णतः प्राप्त है, जिनमें भगवान् शिव की स्तुति की गई है । चौदहवें सर्ग के सत्ताइसवें श्लोक तक की कथावस्तु मूल प्रति में अप्राप्त है ।

त्रयोदश सर्ग—

मूल प्रति में अप्राप्त

चतुर्दश—सर्ग

राणा राजसिंह ने शुभ मुहूर्त में राजसमुद्र में नौका विहारोत्सव मनाया । राणावत रामसिंह को राजसमुद्र के निर्माण कार्य का मुख्य अधीक्षक नियुक्त किया ।

पंचदश सर्ग—

तीनों लोकों के प्राणी महाराणा राजसिंह का यशोगान करते थे । उनकी दानवीरता पर रत्नाकर सागर भी मुग्ध था । राजसिंह की दिनचर्या स्नान पूजन, दानादि का तथा इन्द्र की तरह यक्ष किन्नरादि द्वारा उनके कीर्ति गान का कवि ने बड़ा ही हृदयाकर्षक वर्णन किया है । वे प्रतिवर्ष अपने जन्म दिवस पर तथा अन्य पुनीत पर्वों पर रजत तुलादान आदि विविध दानोपहारों से ब्राह्मणों को संतुष्ट करते थे । अपनी माता "जनादे" के नाम से उन्होंने "जनासागर" (बड़ी तालाब) का निर्माण करा उसकी प्रतिष्ठा करवाई ।

षोडश सर्ग—

ज्योतिष शास्त्र में विख्यात मिहिरोपम "मोटा" और "हरदेव" नामक ज्योतिषियों द्वारा निकाले गये मुहूर्त के अनुसार राजसिंह भोजशाला में प्रवेश करते । भोजनोपरान्त ताम्बूलादि का सेवन करते । न्यायशास्त्र में प्रवीण "योगेश्वर" तथा वैद्यवर "वृन्दावन" इनकी सभा के रत्न थे । राठौड़, झाला, चौहान, सोलंकी, परमार, हाड़ा, यदुवंशी, कूर्मकुलावतंस राजन्य-वर्ग सभा में सर्वदा नत-मस्तक रहते । अनुज सत्यव्रती अरिसिंह, प्रतापी जयसिंह और बली भीमसिंह दोनों पुत्र भी इनकी सभा की शोभा को बढ़ाते थे ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सप्तदश सर्ग—

इस सर्ग में राजसमुद्र के तट पर विद्यमान नगरी का[१] सरस रमणीय वर्णन किया हैं। राजसिंह के नगर में अनेक वैयाकरण, गणितज्ञ,विधिशास्त्रवेत्ता, खगोल के ज्ञाता, नैयायिक, मीमांसक, धर्मनिष्णात पण्डित,छन्दशास्त्रज्ञ, संगीत में प्रवीण तथा कुशल नृत्यकार निवास करते थे। दुर्गाष्टमी के दिन विधि विधान से देवी की पूजा का विधान किया है।

अष्टादश सर्ग—

राणा राजसिंह के राजप्रासादों पर मणि, प्रवाल, विद्रुमादि जटित थे, जो मानो उनकी चाकचक्य से बिजली की विडम्बना का आभास कराते थे। रमणियों द्वारा वीणावादन, आसवपान, आदि का उल्लेख किया गया है। "राजसिंह ! तेरे राज्य में वेदों का उद्घोष सुना जाता है, आपके वेदपाठी विद्वानों का परिश्रम सार्थक है।"

एकोनविंशति सर्ग

राणा राजसिंह के राज्य में विविध वन्दनवारों तथा ध्वजाओं से राजमार्ग अलंकृत थे। विविध वाद्ययंत्रों की ध्वनि से दिशाएं मुखरित होती थी। रमणीय उद्यानों, सरोवरों में हरिण हंसादि विहार करते थे।

विंशति सर्ग

वि.सं. १७३२ के फाल्गुन कृष्णा छठ को राणा राजसिंह ने भगवान् विष्णु की आराधना-पूजा की। विधि विधानपूर्वक ऋत्विजों ने यज्ञ और पूजा सम्पन्न करवाई।

एकविंशति सर्ग

प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न होने के अनन्तर राणा राजसिंह ने अपनी राजमहिषियों, राजपुत्र जयसिंह, भीमसिंह और अनुज अरिसिंह के साथ राजसमुद्र के सूत्रबन्धन का पुनीत कार्य प्रारम्भ किया। अधिक चलने से थकावट के कारण क्लान्त अरिसिंह को शिविका (पालकी) में बैठने की अनुमति प्रदान की। राजसमुद्र की परिक्रमा करते हुए वर्षा आगई, मेघों के जल से व्याकुल सकम्पा राजदाराओं ने पटमण्डप में प्रवेश किया। राणा मण्डप से स्नानागार की ओर चले गये, जहां उन्होंने स्नान व जप आदि किया। उदारचेता राणा राजसिंह ने करोड़ों राजपुत्रों तथा

१. इस कवि ने भी कांकरोली गांव जो राजसमुद्र के किनारे बसा है, उसकी उपमा द्वारिका नगरी से दी है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इतर मनुष्यों को भोजन कराकर व्राह्मणों में सैकड़ों स्वर्णमुद्राएं वितरित की। तदनन्तर राणा ने अपनी प्रधान रानी के साथ बछड़े के पी लेने के बाद बचे हुए कपिला गौ का दुग्धपान किया। रात्रिभर राणा ने हरि गुण कथा में ही समय व्यतीत किया। इसके आगे कवि ने भगवान् एकलिंग मुनि हारीतराशि और बाष्प (बापा) की सुप्रसिद्ध कथा देकर सर्ग की समाप्ति की है।

द्वाविंशति सर्ग—

राणा राजसिंह ने गणपति, मातृका, दिग्देवता और वरुणदेव की विधिपूर्वक पूजा की। राजपुरोहित गरीबदास और उनके पुत्र रणछोड़राय ने तुलादान किया। टोड़ा नरेश राजसिंह की माता, राव केसरीसिंह और कविराज चारण केसरीसिंह आदि गण्यमान्य व्यक्तियों ने तुलादान किया। मरुपति यशवंत, बांधवदुर्गवासी भावसिंह, राणावत रामसिंह, बूंदी नरेश भावसिंह आदि राजाओं के लिए राणा राजसिंह द्वारा हाथी घोड़े बहुमूल्य वस्त्राभरण भेजने का कवि ने उल्लेख किया है।

त्रयोविंशति सर्ग—

इस तरह राणा राजसिंह अनेक दानोपहार देकर बंदीगणों से स्तुत्य विद्वानों की सभा में आये। राणा की सभा के लब्ध प्रतिष्ठ वैद्यवर गोविन्द, नैयायिक योगेश्वर, श्रुतिस्मृति पुराणादि में अव्याहत गतिवाला माधव ब्राह्मण, शिवजी गौड आदि विद्वानों के साथ इस प्रवन्ध के रचयिता सदाशिव ने स्वयं अपना भी उल्लेख किया है।

इसके पश्चात् कवि एक अज्ञात ऐतिहासिक वृत्त का उल्लेख करता है, जिसे अन्य किसी इतिहासकार ने अपने इतिहास में नहीं लिखा है। राणा राजसिंह औरंगजेब के सतत आक्रमणों के कारण व्यस्त रहने से अपने पिता जगत्सिह का "गयां" श्राद्ध नहीं कर सके। एक दिन सभा में बैठे हुए उन्होंने ब्रह्मदत्त की कथा के प्रसंग में आए हुए पिपीलिका आख्यान में गयाश्राद्ध की महिमा सुनी, विद्वानों ने भाई और पुरोहित को भी इसका अधिकारी बतालाया। तब राणा ने अपने छोटे भाई अरिसिंह को वि.सं. १७३३ के मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष में अतुल संपत्ति, अगणित हाथी,घोड़ों से युक्त सैन्य देकर और वृन्दावन वैद्य को साथ कर भेजा। अरिसिंह अपनी विशाल सेना के चलने से उड़ी हुई रज के कारण गगन मण्डल को आच्छादित करता और मार्ग में आई हुई यवन सेना को पददलित करता हुआ आगरा पहुंचा। वहां से तीर्थराज (प्रयाग) गया और पच्चीस दिन तक वहां ठहरने के पश्चात् माघ के शुक्ल पक्ष में स्वर्ण मुद्राओं को वितरित करता हुआ गंगा तट पर पहुंचा। पीछे

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वह वाराणसी (काशी) गया, जहां पांच दिन विश्राम करके उन्होंने प्रचुर मात्रा में दान पुण्य किया। तदनन्तर चक्र पुष्करिणी तीर्थ का जो कि यवनों द्वारा नष्टभ्रष्ट कर दिया गया था, उसका पुनरुद्धार करता हुआ वह शोणनद पारकर "गया" ग्राम में पहुंचा।

इससे आगे का वृत्त मूल प्रति में भी अप्राप्त है।

राजरत्नाकर महाकाव्य—

"राजरत्नाकर काव्य" महाकाव्य के लक्षणानुसार लिखा गया है। महाकाव्य की कथावस्तु कविकल्पित न होकर प्राचीन आख्यान या ऐतिहासिक वृत्त पर आधारित होनी चाहिए। तदनुसार इस काव्य की कथावस्तु त्याग एवं बलिदान से युक्त परम गौरवमय मेवाड़ के इतिहास पर आधारित है। इसमें भारतीय संस्कृति के रक्षक उच्चकुलाभिमानी, सूर्यवंशी मेवाड़ के महाराणाओं के शौर्यपूर्ण क्रियाकलापों का उल्लेख है। महाराणा राजसिंह (प्रथम) के पराक्रमी कार्य, राजसमुद्र निर्माण, उनके द्वारा दिये गये दान, उपहार एवं यशोगान का सविस्तार वर्णन इसकी प्रमुख कथावस्तु है।

महाकाव्य के लक्षणानुसार महाकाव्य की रचना आठ सर्ग से कम नहीं होनी चाहिए। "राजरत्नाकर काव्य" में तेईस सर्ग हैं। तेईसवें सर्ग के बीसवें श्लोक के प्रथम चरण तक ही महाकाव्य प्राप्त हुआ है, इससे प्रतीत होता है कि तेईसवां सर्ग अपूर्ण है, फिर भी तेईस सर्ग तक उपलब्ध इस काव्य की सर्ग आदि संख्या की दृष्टि से महाकाव्य की कोटि में गणना हो सकती है। प्रत्येक सर्ग में २२ श्लोक से न्यून और ७९ श्लोक से अधिक नहीं है। महाकाव्यानुसार प्रत्येक सर्ग की रचना एक छन्द में होनी चाहिए, तदनुकूल कवि ने प्रत्येक सर्ग एक छन्द में लिखने का यथासंम्भव प्रयास किया है। अपवाद स्वरूप चौथे, छठे आठवें नवें और पन्द्रहवें सर्ग में विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। नवम सर्ग "रथोद्धता" छन्द में विशेष रूप से लिखा गया है। एक ही छन्द में सर्ग आबद्ध हो किन्तु सर्गान्त में छन्द का परिवर्तन होना चाहिए, इसका निर्वाह कवि ने पूर्ण रूप से किया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द का परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

महाकाव्य का प्रधान नायक धीरोदात्त क्षत्रिय अथवा देवता होना चाहिए। तद्नुकूल काव्य के प्रधान नायक वीरव्रती, दानवीर, धीरोदात्त, तेजस्वी राणा राजसिंह (प्रथम) हैं। नवम सर्ग से लेकर अन्तिम तेईसवें सर्ग तक राजसिंह के युद्ध विजयी कार्य, राजसमुद्र का निर्माण, तुलादान, सुवर्ण पृथ्वी, सप्तसागर, रत्नधेनु आदि

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विशिष्ट दानों और राजसमुद्र के निर्माण में जिन नरेशों ने योग दिया, उनको एवं दूर-दूर के अन्य आमंत्रित राजाओं को हाथी, घोड़े बहुमूल्यवस्त्राभरण उपहार स्वरूप दिये जाने का विस्तृत वर्णन किया गया है। राजसमुद्र की प्रदक्षिणा, व सूत्रवेष्टन महोत्सव का सरस मंजुल कोमलकान्त पदावली में कवि ने चित्र उपस्थित किया है। प्रथम सर्ग से लेकर अष्टम सर्ग पर्यन्त राणा "राहप" से लेकर राणा राजसिंह (प्रथम) के पिता राणा जगत्सिंह (प्रथम) तक की वंशावली व इतिहास दिया गया है। महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा), संग्रामसिंह (सांगा) प्रथम, उदयसिंह, महाराणा प्रतापसिंह (प्रताप) प्रथम, अमरसिंह (प्रथम) और जगत्सिंह (प्रथम) इनके युद्धों और दानादि का विशेष रूप से उल्लेख है।

"शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते" के अनुसार महाराणा प्रताप (प्रथम) का सप्तम सर्ग में और राणा राजसिंहा(प्रथम) का दशम सर्ग में दशों दिशाओं को गुंजायमान करने वाले तुमुल युद्ध का वर्णन इस काव्य में प्रधान रस का द्योतक है। इक्कीसवें सर्ग में राजसमुद्र के सूत्रवेष्टन कार्य को संपादित करते हुए राजरानियों का तथा पुरनारियों का परिक्रमा करना और मध्य में ही वर्षा के आजाने से अतिरमणीय दृश्य उपस्थित हो जाने का हृदयस्पर्शी चित्रण श्रृंगार रस का परिचायक है। इस तरह राजरत्नाकर काव्य में शृंगार और वीर रस को कवि ने अंगांगीभाव से चित्रित किया है। काव्य में प्रधान वीर रस है।

महाकव्य के वर्णनानुकूल काव्य के आदि में भगवान् एकलिंग महादेव, अर्धांगिनी पार्वती, जगन्नियन्ता परम पिता परमात्मा जगदीश्वर एवं "हरसिद्धि" माता को कवि ने नमन कर मंगल पाठ प्रस्तुत किया है। काव्य में दुष्ट आततायी यवनों की निन्दा उनकी पराजय का वर्णन और मानैकधनी राणाओं की कीर्ति कौमुदी को मार्मिक रूप से अंकित किया गया है। आश्रयदाता की प्रशंसा मातृभूमि के हितार्थ राणाओं द्वारा किये गये युद्धों का सजीव चित्रण और तृतीय सर्ग में राणा "राहप" का मृगया वर्णन आदि वृत्त कवि ने निबद्ध किये हैं।

"राज रत्नाकर" काव्य में महाराणाओं के रचनात्मक वंशानुगत कार्यों का विवरण मिलता है। यत्र तत्र अधिकांश रूप से शकसंवत् विक्रम संवत् के निर्देश के साथ पुत्र जन्म तथा जन्म दिवस पर या शूकर क्षेत्र (सोरमजी) आदि पुनीत तीर्थों पर तुलादान, स्वर्णपृथ्वी, कल्पलता, रत्नघेनु आदि विशिष्ट दानों का उल्लेख किया है। इस प्रकार की ऐतिहासिक विषयवस्तु के विशेष दिग्दर्शन से यह "राजरत्नाकर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काव्य एक ऐतिहासिक महाकाव्य कहा जा सकता है, किन्तु इतिहास की अपेक्षा कवि के काव्य सौन्दर्य का चमत्कार भी सहृदय जनों के चित्त को हठात् आकर्षित किये बिना नहीं रह सकता।

कवि ने वर्णनानुकूल छन्दों का नियोजन किया है। सप्तम सर्ग में श्लोक नवें से लेकर सर्ग समाप्ति पर्यन्त शिरोमणि महाराणा प्रताप और मानसिंह के परस्पर हुए भीषण युद्ध का वर्णन वसन्ततिलका छन्द में तथा दशम सर्ग में श्लोक संख्या पन्द्रहवें से लेकर श्लोक बावन तक राणा राजसिंह (प्रथम) के युद्ध प्रयाणादि का सविस्तृत वर्णन उपजाति छन्द में किया गया है। इक्कीसवां सर्ग राजदाराओं द्वारा राजसमुद्र की परिक्रमा करने का श्रृंगाररसमय वर्णन सरस कोमलकान्त पदवाली से युक्त मालिनी छन्द में हुआ है। कवि की शैली काव्यशास्त्रीय तत्वों के अनुरूप परिमार्जित एवं परिष्कृत है।

कवि ने लौकिक भाषा के शब्दों को काव्य रचना में लेने में संकोच नहीं किया है। संस्कृत के विभक्ति प्रत्यय लगाकर उन्हें संस्कृत शब्द बना लिया गया है। उदाहरणार्थ सर्ग इक्कीस श्लोक छप्पन में "कमलबुरूज" शब्द के लिए "पद्माभिधंगुरुजम्" प्रयोग किया गया है। "मेवाड़" के लिए बहुप्रचलित संस्कृत शब्द "मेदपाट" के स्थान पर कवि ने प्राय: "मेवाड़" शब्द का प्रयोग किया है,[१] नाम एवं जातिवाचक शब्द। खशरू, खोरम (७.१२) राठोड़क आदि (७.१२,१६.२४) देखने में आते हैं। "अर्धचन्द्र" को बतलाने के लिए कवि ने बारहवें सर्ग के तृतीय श्लोक में "भगणरमणलेखा" इस स्वनिर्मित क्लिष्ट शब्द की योजना की है।

काव्यात्मक विशेषताएं

राज रत्नाकर में अंलकार प्रयोग :—

इस काव्य के रचयिता कवि नागर ने अपने काव्य में अंलकारों का यथेष्ट प्रयोग कर अपनी कृति को गौरवान्वित किया है।

अनुप्रास का एक उदाहरण देखिए—

सोमं भर्गमुदग्रभर्गसमगस्वर्गीयवर्गोरग—
व्रातोर्वीचरवृन्दवंदितपदं मूर्ध्ना प्रणम्य प्रभुं

१. राजरत्नाकर-सर्ग१५ श्लोक संख्या १,२,३,४,७, सर्ग १६ श्लोक १३,२३।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

येषां द्वारमिभैर्भ्रमन्नगनिभै र्वंध्य भ्रमैरभ्रमु—

भ्राजिष्णु प्रियवंशजन्मभिरभिव्याप्तंस्तुवे तानहम् ॥ १.१४ ॥

इस श्लोक में "भ" "व" वर्ण की पुनः पुनः आवृत्ति के कारण अनुप्रास की छटा निराली बन गई है ।

अनुप्रास का उदाहरण युद्ध वर्णन में देखिये :—

तस्मिन् प्रयाते पथि राजसिंह भेरी ध्वनिध्वानितकुध्र कुक्षौ ।

दिक्प्रांतशैलाध्वनिवासिनोऽपि चकंपिरेऽन्ये किमुतान्यलोकाः ॥ १०-१८ ॥

"ध्व" की पुनरावृत्ति से अनुप्रास का चमत्कार दृष्टिगत होता है ।

अपिच—

गणा गायनानां मृदंगादिभाजां नटाः नर्तकां नर्तनेनापिभूपम् ।

निषादर्षभादिस्वरैः सप्तभिर्वासवोपासते तं सभामंडपस्थम् ॥ १५.२६ ।।

"न" और "स" की बार-बार आवृत्ति अनुप्रास को बतला रही है ।

मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में ही कवि ने "यमकालंकार" का उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

भाले यस्यैन्दवीं लेखा, लेखा यस्माङ्घ्रि सेवकाः ।

स वः सदैकलिंगाख्यः शिवो दिशतु मंगलम् ॥ १.१ ॥

प्रथम "लेखा" शब्द "चन्द्ररेखा" को बतालाया है और द्वितीय "लेखा" देवतावाची है ।

श्लेष, गर्भित उपमा :—

प्रेक्ष्याचारसहस्त्रलोचनभृतः स्तंबेरमास्फालन—

ज्याकाकर्षविघर्षकर्कशकरागोत्रारिपक्षच्छिदः ।

श्रीमच्चित्रशिखंडिनंदनसमभ्राजत्पुरोधोगणा

देवेन्द्रा इव दानवारिविभवाः श्रीमेदपाटेश्वराः ॥ १.१६ ॥

("प्रेक्ष्याचारसहस्त्रलोचनभृतः" इन्द्र के लिए तथा राणा के पक्ष में "गुप्तचर" अर्थ में प्रस्तुत हुआ है । "चित्रशिखण्डिनन्दन" शब्द का इन्द्र पक्ष में बृहस्पति के अर्थ में तथा राणा के पक्ष में बृहस्पति के समान पुरोहित के लिए प्रयोग किया गया है तथा मेदपाटेश्वर की देवेन्द्र से उपमा दी गई है ।)

इस प्रकार श्लेष गर्भित उपमा इस श्लोक में कवि के वैदुष्य का प्रतीक है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

काव्यलिंग का निम्नलिखित सरस उदाहरण द्रष्टव्य है:—

कल्याणं वितनोतु राजनगरे तत्रैकलिंग: शिवा
युक्त: श्रीमति यत्र साग्निक जनागारेभ्य उत्तानगै: ।
धूमैर्व्योम्नि घनीकृतेऽपि पथिका एणीदृशां नूपूर-
द्वन्दानां ध्वनिभिर्विभातसमयं जानन्ति साम्नामपि ॥ १.३ ॥

(अग्निहोत्रियों के यज्ञ-घूम के कारण गगन मण्डल श्याम वर्ण हो गया, जिससे प्रात:काल होने का आभास नहीं होता था, किन्तु सामवेदियों के वेदपाठ और रमणियों के नूपुर युगलों की ध्वनि श्रवण से प्रात:काल होने की सूचना मिलती थी ।)

प्रात:काल होने की सूचना में सामवेदियों का पाठ और नूपुरों का शब्द कारण है, अत: यहां काव्यलिंगालंकार है ।

व्यतिरेक गर्भित उत्प्रेक्षा का सुन्दर उदाहरण निम्नलिखित है—

म्लेच्छारोधसि तेऽखिला दहति ते चेतोऽनिशं वाडव:
पाथो ऽपेयमहो तवैव परिखाकारं वपुस्तावकम् ।
इत्येवं तव राजसिंहनृपतो रत्नाकरं प्रत्यहं,
फूत्कारैरिव सिन्धुरेष विहसत्युच्चै: सफेनोर्मिभि: ॥ १५.६ ॥

(रत्नाकर के तट पर यवनों का निवास है अत: उसका अन्त:करण अनवरत वाडवाग्नि से जलता ही रहता है । जल अपेय है । शरीर परिखा के आकार सदृश है, इसलिए हे राजसिंह ! तुम्हारे द्वारा निर्मित रत्नाकर (राजसमुद्र) में ये उपर्युक्त बातें नहीं हैं अतएव यह राजसमुद्र अपनी फेन सहित लहरों से फूत्कार शब्द करता हुआ रत्नाकर का उपहास कर रहा है ।)

यहां उत्प्रेक्षा अंलकार है । उपमान रत्नाकर अपनी उपर्युक्त न्यूनताओं के कारण उपमेय राजसमुद्र में इन न्यूताओं के अभाव से ईर्ष्यावश अपने से अधिक गुणातिशयशाली मानता है । इस प्रकार यहां व्यतिरेक गर्भित उत्प्रेक्षा अंलकार है ।

कवि ने प्रंसगानुसार छन्दों की विविधा को भी स्थान दिया है । कतिपय छन्दों के उदाहरण दृष्टव्य है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मालिनी छन्द :—

विपुलतरनितंबा कर्णसीमांतनेत्रा, वसनपिहितवक्त्रा वारिदाडंबरेण ।

कुसुममृदुशरीरामेदिनीपालदाराजलदकृतमसूर्यपश्यभावं समीयुः ।२१.१५ ॥

भुजंगप्रयात छन्द :—

प्रभातेचतुर्वेदमंत्रैर्पुराणमव्याहृतै जाह्नवीस्तोत्रपाठैः ।

कदुष्णेन तोयेन पूतेन भूमिपतिः स्नाति सश्वेतवस्त्रेण युक्तः ॥ १५.१३ ॥

उपजाति छन्दः—

सबाल्यमारभ्य वयो वपुष्मान् प्राक्जन्मसंस्कारतया बभूव ।

राजा समासादित योगसिद्धिः नानास्वरूपाहरणे समर्थः । ४.३० ॥

शार्दूलविक्रीडित छन्दः—

हिन्दूनां पृथिवीपतिः जयति श्रीराजसिंह प्रभु-

र्मेवाड़े निरमायि येन तटिनीं बध्वा स पद्माकरः ।

साक्षीकर्मकृतां यदद्भुतसरो द्रष्टुं वियच्चारिभिः,

स्वर्यानैरवरुद्ध लोचनपथो द्रष्टाचिरेणाऽभवत् ॥ १५.२ ॥

राजरत्नाकर महाकाव्य में वृत्तानुसारी विवरण इस प्रकार है :—

अनुष्टुप् :—१.१,३.१ से ७१ तक, ४.१ से ३ तक, ५.१ से २२ तक, ६.१ से ७ तक १४से १६, ८.१,१५,१६,२२, २२.२५, २६,२७, २३.८ से १९ तक ।

इन्द्रवज्रा :—१५.९,

उपजातिः— १.६,७,८,९, ४.५,६,७,८,९,१५,१२ से ४० तक, ६.८, ९, १०, १८, २०,८.४, ११,१३,१७,१८,२०,२८, ९.३, ४,५,६,१०, १२,१०.१ से १३ तक, १५ से २१ तक, २३ से ५२ तक, १५.११, २७ से ३१ तक, ३३,३४, १६.१ से ४५ तक, २१.६०,

द्रुतविलम्बितः—४.११, ८.२४, ११,२३,१२.४,५, १४.२८ से ४२ तक

भुजंगप्रयातः—१५.१, १२ से २६ तक,

मन्दाक्रान्ताः—८.२१, १९.२७, २१.६१,

मालिनीः—४.१०, ५.२३, ८.९ ९.९, १०.५३, ११.२४, १२.१ २,३, १४.४३, ४४, १५.३८, १६.४६, २०.१ से २७ तक २१.१ से ५३ तक, २२.२२,

रथोद्धता :—९.१२ से २५तक, ११.१ से २२ तक, २३.४,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वसन्ततिलका :—४.१२, १३,१८, ६.१२, १३,१९,२१,७.१ से४१तक, १४.४५, १९.१ से २६ तक, २१.५४,५५,५६,५७,

वंशस्थः—२१.५९,

शार्दूलविक्रीडित :—१.३,४,५,११,१३,१४,१६, ४.४, १६,४१,६.१७, २२, ८.२, ३,५,६,७, १४ से २७ तक, २९, ९.१, ७,११, १५.२, ३,४,५,६,७,८,३२, १७.४२, १८.३१, ३२, २१.५८, २२.२३,२४,२८,२९, २३.२, ३,५,६,७,

शिखरिणी :—८.१०, १.८,

स्रग्धराः—१.१२,१५, ८.२६, ९.२, २६, १५.१०,

पृथ्वीः—१.१०,

ऐतिहासिक ऊहापोह :—

कवि ने कथा का आरम्भ पौराणिक पद्धति पर किया है। कश्यप और वेदवती की कथा के साथ राहप को संबन्धित कर कवि ने उसके चरित्र और व्यक्तित्व को पौराणिक सांचे में ढाला है। संभवत: राजसिंह (प्रथम) के समय तक राहप का ऐतिहासिक चरित्र विस्मृत हो गया था और उसके स्थान पर लोक-मानस में एक पौराणिक व्यक्ति के रूप में उसकी प्रतिष्ठा हो गई थी, फिर भी राहप और उसके भाई माहप के ऐतिहासिक तथ्यों का कवि द्वारा निर्देश किया गया है।[१] उदाहरणार्थ राहप के व्यक्तियों द्वारा बार-बार व्यवधान डालने के कारण माहप आढ़नगर (आहड़) में स्थिर न रह सका और गिरिपुर (डूंगरपुर) चला गया। इस वृत्त को इतिहासकार श्यामलदास और ओझा ने अंकित नहीं किया है। कवि नागर ने माहप के डूंगरपुर की ओर प्रस्थान करने का राजरत्नाकर काव्य में उल्लेख किया है।[२]

ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार राहप के पश्चात् क्रमशः नरपति और दिनकर राजा हुए, किन्तु इन दोनों का नामोल्लेख काव्य के चतुर्थ सर्ग में दी गई वंशावली में नहीं किया है। राज प्रशस्ति के चतुर्थ सर्ग में राहप के पश्चात् नरपति का और जगदीश-मन्दिर वि.सं. १७०८ के शिलालेख में नरपति व दिनकर के नामों का वंशावली भाग के श्लोक सं. १३,१४ के प्रारम्भ में उल्लेख है। वीरविनोद में

१. राजरत्नाकर तृतीय सर्ग, सदाशिव नागर।

२. राजरत्नाकर तृतीय सर्ग श्लोक सं.७९, ओझा उ.रा.इ.भा. प्रथम, पृ.५०९

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी नरपति व दिनकर को वंशावली में गिनाया गया है ।[१] सम्भव है कवि का दृष्टिकोण विख्यात राणाओं का उल्लेख करना ही रहा हो ।

कवि ने राणा के चरित वर्णन में अलौकिक तत्वों का भी समावेश किया है, जो कि ऐतिहासिक भावना के विरुद्ध है । जैसे महाराणा कुम्भा के विषय में कहा गया है कि वे पूर्व जन्म में कीटकनाथ योगी के शिष्य थे । अत: वे अपनी योगसिद्धि के कारण अलौकिक शरीर धारण कर सकते थे । एक बार चारण चामुण्डदास ने जब उनसे उनकी सोलह सौ रानियों में से किसी एक के लिए याचना की तो कुंभा ने कहा कि मैं जिस रानी के पास उपस्थित न होऊं, वही तुम्हारी है, किन्तु चामुण्डदास ने अन्त:पुर में साश्चर्य देखा कि राणा अपनी सभी रानियों के पास उपस्थित हैं । एक समय राणा मोकल 'द्वारावती' (द्वारिका) तीर्थ यात्रार्थ गया, वहां कीटकनाथ योगी के शिष्य की इच्छा राणा के ऐश्वर्य का उपभोग करने की हुई । शिष्य गुरु की आज्ञा से मोकल की रानी के गर्भ से कुम्भा के रूप में अवतीर्ण हुआ । गुरु ने भी अपने शिष्य के मृत शरीर को गुफा में सुरक्षित कर दिया । कालान्तर में कुम्भा को शिवशर्मा ब्राह्मण के द्वारा स्मरण दिलाये जाने पर पुन: कुम्भा अपने भौतिक शरीर का त्यागकर अपने योगसिद्ध प्राक्तन शरीर को प्राप्त हो गया आदि विवरण देकर कवि ने कुम्भा के अलौकिकतत्व का निरूपण किया है ।[२]

उपर्युक्त कुम्भा की रानियों से सम्बन्धित कथा श्रीमद्‌भागवत में वर्णित श्री कृष्ण की कथा से साम्य रखती है । एक समय नारद जी श्रीकृष्ण के गार्हस्थ्य जीवन को देखने की इच्छा से द्वारिका गये, वहां श्री कृष्ण को अपनी सोलह सौ रानियों के साथ अलग-अलग रूप में व्यस्त देखकर आश्चर्यान्वित हो गये । कवि ने इस तरह के अलौकिक तत्व का प्रदर्शन कुम्भा के साथ भी सोलह सौ रानियों की कल्पना कर किया है ।[३] कुम्भलगढ़ प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है कि महाराणा के अनेक रानियां थी ।[४]

---

१. वी.वि.भा.प्रथम पृ.२३६

२. राजरत्नाकर-सर्ग ४,श्लोक सं.२१-४१ एवं सर्ग ५,श्लो.११-२२

३. श्रीमदभागवत्-दशम स्कन्ध उत्तरार्ध अध्याय ६९ ।

४. कुम्भलगढ़ प्रशस्ति—"नानादिग्भ्योराजकन्या: समेत्य, क्षोणीपालं कुम्भकर्णं श्रयन्ते ॥ २५ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि ने राजरत्नाकर में उदयपुर बसाने के लिए वि.सं. १६१० का उल्लेख किया है ।(रा.र.स.६ श्लोक१८) और उदयसागर के निर्माण के लिए वि.सं. १६२२ अंकित किया है(स. ६ श्लो.१९) । श्यामलदास और ओझा ने अपने इतिहास में उक्त कार्यों के लिए वि.सं. १६१६ दिया है । इस संवत् में राणा उदयसिंह अपने पौत्र अमरसिंह के जन्म होने के उपलक्ष्य में चित्तौड़ से एकलिंग महादेव के दर्शनार्थ आये थे । उस समय माछलामगरा नामक पर्वत के पास एक योगी के दर्शन हुए । उसकी आज्ञा से इस स्थान को सैनिक दृष्टि से सुरक्षित जानकर उदयपुर नगर बसाने और राजप्रसाद बनवाने का कार्य कर दिया । इस दृष्टिकोण से वि.सं. १६१६ में उदयपुर नगर एवं उदयसागर के निर्माण की बात युक्तियुक्त मालूम होती हैं ।[१]

कवि ने महाराणा रायमल्ल के तीन पुत्रों का उल्लेख किया है ।[२] जबकि श्यामदास और ओझा ने अपने अपने इतिहास में तेरह पुत्र दो पुत्रियां का होना बतालाया है ।[३] हो सकता है कवि ने राणा रायमल्ल के तीन पुत्र का होना इसलिए लिखा हो कि पृथ्वीराज, जयमल और संग्रामसिंह इन तीनों पुत्रों के मध्य राज्य प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष अधिक समय तक चला । इसके कारण विशेष ख्याति में तीनों ही आये, एतदर्थ उनकी संख्या मात्र से ही कवि का तात्पर्य रहा हो ।

राजरत्नाकर में ऐतिहासिक एक विशिष्ट अज्ञात वृत्त :—

कवि ने वीरशिरोमणि मेवाड़ के महाराणा राजसिंह का विशद वर्णन अपने काव्य में किया है । किन्तु इसमें एक ऐसी ऐतिहासिक घटना उल्लिखित है, जिसका अन्य किसी इतिहासकार ने वर्णन नहीं किया । घटना इस प्रकार है :—

राणा राजसिंह के पिता राणा जगत्सिह का स्वर्गवास वि.सं. १७०९ में हो गया था ।[४] पश्चात् उनके ज्येष्ठपुत्र राजसिंह राज्यसिंहासन पर आसीन हुए । उन्होंने राज्यारूढ़ होते ही बादशाह औरगंजेब की इच्छा के विपरीत कार्य करना आरम्भ कर दिया था । दोनों में पारस्परिक संघर्ष चलता रहा । ऐसी विषम परिस्थिति के कारण राणा राजसिंह अपने स्वर्गस्थ पिता जगत्सिह का 'गया' तीर्थ जाकर विस्मृति वश श्राद्ध न कर सके और न वे अपने राजपुरोहित को भी भेज सके । एक दिन

---

१. ओझा,उ.रा.इ., भा. २,पृ.७२०,२१, वी.वि.,भा.२, पृ.७२,७३

२. रा.रत्नाकर सर्ग ६, श्लोक सं. ३

३. ओझा,उ.रा.इ. भाग २ पृ.६५८, वी.वि. भाग १ पृ. ३४२, श्यामलदास रचित ।

Funding by IKS-MoE

४. राज रत्नाकर-सर्ग ९, श्लोक ११ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्वानों की सभा में बैठे हुए ब्रह्मदत्त की कथा के प्रंसग में आए हुए पिपीलिका आख्यान का श्रवण किया, उसमें गया में मातापिता के पिण्डदान करने की महिमा को सुनकर अपने पिता का श्राद्ध करने की स्मृति हो आई । विद्वानों ने परामर्श दिया कि पुत्र, भाई और राजपुरोहित में से कोई भी कर सकता है । इसके अनन्तर राणा राजसिंह ने अपने अनुज अरिसिंह को अतुल सम्पत्ति एवं सेना देकर श्राद्ध करने के लिए भेजा । अरिसिंह विशाल सैन्य के साथ रज से नभोमण्डल को धूलि धूसरित कर आगरा, प्रयाग होता हुआ वाराणसी पहुंचा । वहां गंगा के तट पर प्रचुर दानपुण्य किया । यवनों के द्वारा ध्वस्त 'चक्र पुष्करिणी' तीर्थ का उद्धार कर शोण नद पार करता हुआ 'गया' पहुंचा ।[१] इस प्रकार का ऐतिहासिक वृत्त कृति में दिया हुआ है । इसके आगे का इतिहास रचना में अप्राप्त है ।

राज प्रशस्ति और राज रत्नाकर में इतिवृत्त वर्णन का साम्य :—

राजप्रशस्तिः— **राजत्नाकर :—**

१. माहप का गिरिपुर (डूंगरपुर) जाना-तृतीयसर्ग-२८ वां श्लोक ।

१. माहप का गिरिपुर (डूंगरपुर) की ओर प्रस्थान-तृतीय सर्ग-७९ वां श्लोक ।

२. राहप द्वारा मंडोवर के सामन्त मोकलसिंह को जीतकर पिता के समक्ष कैद कर उपस्थित करना-तृतीय सर्ग-२९ वां श्लोक ।

२. राहप द्वारा मोकलसिंह पर विजय प्राप्त करना और पिता के सामने उपस्थित करना-तृतीय सर्ग श्लोक ५४ से ५७ तक ।

३. विद्वान् सरसल पालीवाल ब्राह्मण का राहप को अशीर्वाद-तृतीय सर्ग ३१वां श्लोक ।

३. विद्वान् पालीवाल ब्राह्मण 'सरसल' द्वारा आशीर्वाद-तृतीय सर्ग-७१ से ७३ श्लोक तक ।

४. राहप का सीसोदा ग्राम में जाना और इससे सीसोदिया कहलाना 'राणा' शब्द से सम्बोधित होना । तृतीय सर्ग ३२-३४ श्लोक तक ।

---

१. राज रत्नाकर सर्ग २३, श्लोक८ से २० के द्वितीय चरण तक
शोध पत्रिका वर्ष अं.१ लेखक बिहारीलाल व्यास(मनोज) ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४. राहप का सीसोदा गांव नें जाना जिससे सीसोदिया कहलाना—'तृतीय सर्ग ६७-७० श्लोक तक राणा पदवीधारण करना-चतुर्थ सर्ग श्लोक ३।

५. राहप के पश्चात् वंशावलि महाराणा कुम्भा तक का वर्णन—चतुर्थ सर्ग श्लोक २.१४ तक। राणा संग्रामसिंह (सांगा प्रथम) के युद्ध का उल्लेख—चतुर्थ सर्ग श्लोक १५,१६

५. राहप के पश्चात् माहराणा कुम्भा तक की वंशावली राहप, हम्मीर और कुम्भा के शौर्य का वर्णन तथा कुम्भा के अलौकिक तत्व का सविस्तृत निर्देश—चतुर्थ सर्ग। राणा संग्रामसिंह (सांगा) प्रथम के शौर्य का वर्णन-षष्ठ सर्ग श्लोक ७ से १३ तक।

६. महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) और मानसिंह के युद्ध का विस्तृत वर्णन-चतुर्थसर्ग-श्लोक २१ से ५० तक।

६. महाराणा प्रतापसिंह (प्रथम) और मानसिंह के युद्ध का विशद वर्णन-सप्तम सर्ग-२.४२।

७. खानखाना की वधुओं का अपहरण—पंचम सर्ग-श्लोक प्रथम।

७. खानखाना की वधुओं का अपहरण अष्टम सर्ग प्रथम श्लोक।

८. राणा कर्णसिंह (प्रथम) द्वारा शूकर क्षेत्र (सोरमजी) के गंगा तट पर तुलादान- पञ्चम सर्ग श्लोक १०,११ वाँ।

८. राणा कर्णसिंह (प्रथम) द्वारा शूकर क्षेत्र (सोरमजी) के गंगा पर तुलादान—अष्टम सर्ग का चतुर्थ श्लोक।

९. राणा राजसिह (प्रथम) की विजय यात्रा का विस्तृत वर्णन-सप्तम सर्ग।

९. राणा राजसिंह (प्रथम) की विजय यात्रा का सविस्तृत वर्णन-दशम सर्ग-श्लोक १६ से ५२ तक।

१०. राणा राजसिंह (प्रथम) द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख-महाभूतघट १०.६, हिरण्याश्वरथ-१०.७, हेमहस्तिरथ-१०-२०, कल्पलता १०.३३, पंचलांगल १०.३५ विश्व चक्र-१२.३८ नामक दान विक्रमाब्दानुसार सामने निर्दिष्ट सर्ग और श्लोक में अंकित है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१०. राणा राजसिंह (प्रथम) द्वारा दिये गये दानों का उल्लेख-महाभूतघट, हेमहस्तिरथदान, महाकल्पलता पंचलांगल, विश्वचक्र नामक दान दिये। पञ्चदश सर्ग श्लोक २९ से ३५ तक।

राजप्रशस्ति, राजरत्नाकर महाकाव्यों की तुलना :—

रणछोड़ भट्ट द्वारा विरचित राजप्रशस्ति महाकाव्य चौबीस सर्गों में लिखा गया है। सदा शिव नागर ने राज रत्नाकर महाकाव्य लिखा जो अपूर्ण रूप से तेईस सर्गों में मिलता है। दोनों महाकाव्य के लक्षणों से युक्त है।

राजप्रशस्ति में रणछोड़ भट्ट ने प्रारम्भिक मंगलाचरण में राम, शिव की स्तुति के अनन्तर ग्यारह श्लोक भवानी स्तोत्र के, नौ श्लोक विघ्न विनायक और आठ श्लोक भगवान् दिनकर की स्तुति के स्वरूप में लिखकर विस्तार पूर्वक्ष मंगलाचरण किया है। साथ ही प्राय: प्रत्येक सर्ग के आदि का श्लोक भी मंगलपाठ के रूप में है। राज रत्नाकर महाकाव्य में भगवान् एकलिंग, पार्वती, जगन्नाथ और हरसिद्धि माता की स्तुति कर संक्षिप्त पांच श्लोक में मंगलाचरण किया गया है।[१]

दोनों की कथावस्तु सूर्यवंशी महाराणा राजसिंह (प्रथम) के पुरुषार्थी क्रिया कलापों के गुणगान से संबन्धित है। उनके पूर्वज बाप्पा, राहप, हम्मीर, कुम्भा, सांगा और प्रताप के शौर्यपूर्ण कार्यों का दोनों ने प्रारम्भिक भाग में वर्णन किया है। दोनों कवि महाराणा राजसिंह के राज्याश्रय में रहते थे, और उनके राज्यकाल में ही इन दोनों कृतियों की रचना हुई, एतदर्थ दोनों कवियों ने अपनी रचनाओं का प्रधान नायक राणा राजसिंह को ही रखा है।[२]

रणछोड़ भट्ट ने अपने राज प्रशस्ति महाकाव्य में मेवाड़ के महाराणाओं की वंशावलि आदि पुरुष ब्रह्मा से लेकर दी है। राजरत्नाकर महाकाव्य का जितना अंश प्राप्त हुआ है, उसमें राहप से लेकर वंशावली एवं इतिवृत्त मिलता है।[३]

महाराणा कुम्भा, सांगा, प्रताप, राजसिंह के विस्तृत युद्ध वर्णनों के कारण वीररस प्रधान अंगी रूप से है तथा शृंगार एवं शान्तरस अंगरूप में निबद्ध हुआ

---

१. राज प्रशस्ति-प्रथम शिला। राज रत्नाकर-प्रथम सर्ग श्लोक १.५ तक।

२. राज प्रशस्ति-प्रथम सर्ग श्लोक ३.१८ तक। राजरत्नाकर-सर्ग २१ श्लोक७

३. राजप्रशस्ति-द्वितीय सर्ग से पञ्चम सर्गतक। राजरत्नाकर-तृतीय-सर्ग से अष्टम सर्ग तक।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है । राजसमुद्र के सौन्दर्य तथा सूत्रवेष्टन कार्य का वर्णन दोनों ही कवियों द्वारा किया गया है ।[१]

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा काव्यलिंग एवं अनुप्रासादि अलंकारों का प्रयोग भी दोनों महाकाव्यों में वर्णनानुकूल यथेष्ट रूप से हुआ है ।

अनुष्टुप, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, भुजंग प्रयात, वसन्ततिलका, स्रग्धरा, शिखरिणी छन्दों का दोनों कवियों ने स्वेच्छानुसार प्रयोग किया है । इसके अतिरिक्त रणछोड़ भट्ट ने अपने राज प्रशस्ति महाकाव्यं में औपच्छन्दसिक, गीति, उद्गीति, शालिनी छन्दों में विशेष लिखा है । वंशस्थविला, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा इन तीनों के योग से निर्मित छन्द उपजाति का भी प्रयोग किया है । रथोद्धता और पुष्पिताग्रा में रचना सदाशिव नागर ने की है छन्दों का बाहुल्य राजप्रशस्ति महाकाव्य में अधिक दृष्टिगत होता है । साथ में दिये हुए वृत्तानुसारी विवरण से यह बात स्पष्ट है ।

राज प्रशस्ति महाकाव्य में प्रत्येक घटना का वर्णन विस्तार से दिया गया है। राजसमुद्र का खनन कार्य, पाल छतरियां, सोपानादि का निर्माण शिल्पशास्त्रानुसार हुआ है । इसके प्रत्येक स्थान की ऊंचाई, चौड़ाई, लम्बाई के माप का विवेचन शिल्प शास्त्र के अनुसार किया गया है । इतना सविस्तार से वर्णन राजसमुद्र के निर्माण का राजरत्नाकर में नहीं हुआ है ।[२]

राजसमुद्र के प्रतिष्ठा महोत्सव के समय अन्य कई राजा महाराजाओं को हाथी, घोड़े, वस्त्राभरण उपहार स्वरूप राणा राजसिंह द्वारा भेजे गये, जिनमें से प्रत्येक का मूल्य सहित विवरण विस्तृत रूप से राजप्रशस्ति में दिया गया है । यही विवरण राजरत्नाकर में केवल नामोल्लेख के साथ हुआ ।[३]

---

१. राज प्रशस्ति-चतुर्थ से अष्टम सर्ग पर्यन्त । राजरत्नाकर-सप्तम सर्ग से नवम तक ।

२. राज प्रशस्ति-नवमसर्ग से द्वादशसर्ग पर्यन्त ।

३. राजप्रशस्ति-बीसवां सर्ग, राजरत्नाकर-बाईसवां सर्ग ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीय अध्याय

खण्ड काव्य एवं मुक्तक काव्य

१. अमरसार

२. जगत्सिंह काव्य

३. जगत्सिंहाष्टक

४. राजसिंहाष्टक

५. राज्याभिषेक पद्धति

६. राजपट्टाभिषेक पद्धति

७. राजसिंहप्रभोर्वर्णन

८. अमरकाव्य

९. अमरसिंहाभिषेक काव्य

१०. संग्रामसिंह महोदय काव्य

११. वीर तरंग रंग

१२.वीरवंश वर्णन

१३. वीर भूमि

अमरसार काव्य

अमरसार नामक काव्य की रचना महाराणा अमरसिंह (प्रथम) के यश, नीति और धर्म के विषय में उनके मंत्री डूंगरसिंह की प्रेरणा से जीवंधर पण्डित ने की ।[१]

---

१. तद्राज्ये सकलार्यसौख्यजनके सत्पंडितानां ददे,
नानायज्ञविधानसुन्दरतरे लब्ध्वा प्रभोर्शासनम् ।
श्रीमत्डूंगरसीसुमंत्र जलधिः स्वाधीश सेवापरः,
ग्रन्थं कारितवानिहामरनृपाह्वानेन सारं वरम् ॥ २६३ ॥
धर्मानुरागरसिकस्य सदामरेशपादद्वयांबुजमधुव्रतसदृशस्य ।
पांडित्यवैद्यपरमागमकोविदाश्च श्री डूंगरांघ्रियुगं पद्ममुपाश्रयंति ॥ २६४ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उक्त विषयानुसार यह काव्य यशखण्ड, नीतिखण्ड और धर्मखण्ड इन तीन खण्डों में विभाजित है। यशखण्ड में राणा अमरसिंह के ऐश्वर्य एवं दिनचर्या का विस्तृत वर्णन है। नीति खण्ड में नीति विषयक और धर्मखण्ड में धर्म विषयक वृत्त विस्तार से दिया गया है।

यह काव्य राणा अमरसिंह के पौत्र राणा जगत्सिंह के शासनकाल में समाप्त हुआ है, ऐसा इसके निम्न विवरण से प्रतीत होता है। काव्य के लेखक जीवंधर ने अपनी इस कृति में इस काव्य के समाप्ति काल के सम्बन्ध में एक श्लोक लिखा है। 'शशिकला शत वत्सर पूरणे द्वियुगबाण युते शित फाल्गुने'। शशिकला का अर्थ सोलह और द्वियुग के सन्धि (२ + ४) करने से छः और गुणन (२x४) करने से आठ तथा बाण का अर्थ पांच होता है, इस तरह वि.सं. १६६५ या १६८५ फाल्गुन शुक्ला पंचमी इसका समाप्ति काल हो सकता है।[१] इस कालावधि में राणा अमरसिंह के राज्यकाल का अधिकांश भाग आता है। राणा अमरसिंह का राज्याभिषेक वि.सं. १६५३ माघ शुक्ला एकादशी को हुआ[२] तथा वि.सं. १६७६ माघ शुक्ला द्वितीया बुधवार को उनका स्वर्गवास हुआ।[३] इनके पश्चात् इनके पुत्र महाराणा कर्णसिंह राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए[४] हो सकता है कवि ने काव्य रचना

तेषु (ज्य ?) जीवंधराख्यानः पंडितोऽस्योपदेशतः।
चकारामरसाराख्यं शास्त्रं जीयात्त्रिविष्टपम् ॥२६५॥ अमरसार धर्म खण्ड॥
कलिकाले विबुधानामिहाश्रयो वर्तते सरस्वत्याः
सोऽमरसारं कारितवानमरेशोदयशुभाख्यानम्।.४२७॥
रूपेण कामदेवो बुद्धया वाक्पतिरसौ सुखाश्रयणः।
दष्टोप्यगण्य गुणवान् कारयितास्त्यमरसारस्य ॥ ४२९ ॥
डूंगरसीहो मंत्री यदुक्तमार्गानुयायिनां पुंसां।
इह परलोकाभीष्टं सिद्धयति जयतात् स भूमितले ॥ ४३० ॥ अमरसार यशो वर्णन।

१. ससि (शशि १) कला शतवत्सर पूरणे, द्वियुग बाणयुते शित फाल्गुने।
शरतिथौ हिम रश्मिनि पूर्णिता, अमरसार कथा जयतात् क्षितौ ॥ २६६,
अमरसार धर्म खण्ड॥

२. वी.वि. भाग २ अमरसिंह प्रकरण, पृ. २१५, श्यामलदास कृत,
उ.रा.इ. भाग २ पृ. ७८७, ओझा।

३. वी.वि. भाग २-अमरसिंह-प्रकरण-पृ. २६६, श्यामलदास।

४. वी.वि. भाग २-पृ. २६९, श्यामलदास।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि.सं. १६६५ में प्रारम्भ की हो और वि.सं. १६८५ में समाप्त की हो । कवि जीवंधर ने अपनी कृति अमरसार के अन्तिम धर्मखण्ड में श्लोक सं. २५० से राणा जगत्सिह विषयक श्लोकों को लिखा है । इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि ग्रन्थ का अन्तिम भाग राणा जगत्सिह के शासन काल में लिखा गया है । राणा जगत्सिह वि.सं. १६८४ के फाल्गुन माह में राज्य पद पर प्रतिष्ठित हुए । एतदर्थ कवि के शशिकला शतवत्सर श्लोक के अनुसार वि.सं. १६८५ के लगभग काव्य का रचनाकाल सम्मत प्रतीत होता है ।

कवि जीवंधर

अमरसार के रचयिता जीवंधर ने अपनी रचना में स्वयं का विशेष परिचय न देकर केवल अपना नामोल्लेख मात्र ही किया है ।[१]

कवि संस्कृत का विद्वान् होने के साथ साथ प्राकृत का भी अच्छा ज्ञाता था, इस काव्य के मध्य में आये हुए प्राकृत के श्लोकों से ज्ञात होता है ।[२]

डूंगरसिंह की प्रेरणा से इस काव्य का प्रणयन करने के कारण कवि जीवंधर ने स्तुत्य राजा के अतिरिक्त इस मन्त्री का भी पर्याप्त स्तवन किया है । इनके अतिरिक्त राजपुरोहित कासीदास, धन्वंतरी वैद्य, सेनापति हरिदास का यशोगान किया है । अमरसार का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व उपर्युक्त व्यक्तियों के संबन्ध में कवि द्वारा किया हुआ वर्णन उल्लेखनीय है ।

मंत्री डूंगरसिंह

कवि ने डूंगरसिंह के पूर्वजों का एवं उसका वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया हैं । धरा का आभूषण नागौर नाम का नगर (मारवाड़ में) है । उसमें वणिक्जनों का अधीश लटु नाम का व्यक्ति था. उसके शंकर नामक पुत्र हुआ । शंकर के पुत्र का नाम सार्थ था । उसके तीन पुत्र हुए, जिनके नाम डूंगरसिंह, प्रतापचन्द्र और कर्मचन्द्र थे । डूंगरसी (डूंगरसिंह) को राणा अमरसिंह ने सचिव पद पर नियुक्त किया था । स्वामिभक्त डूंगरसिंह सर्वदा उनकी सेवा में तत्पर रहता था ।[३]

---

१. अमरसार खण्ड श्लोक सं. २६५ ।

२. कोहारुणणयण उनि उपसणप्प उभिच्चुजणो ।
भारइ रिपु निवरायं अमरेशो हत्तसिय सत्थो ॥ १७३ ॥
अमरसार यशवर्णनाधिकार श्लोक सं. १७५,७८,७९,८८ ॥

३. नागोरनामनगरं सकलधरा भूषणं सुलोकभृतम् ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्यानुरागी डूंगरसिंह विद्वानों का सम्मान करने वाला था।उसके अनुराग के फलस्वरूप राणा अमरसिंह की सभा में अनेकानेक शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् वैद्य और पण्डित विद्यमान थे। उनमें से एक इस काव्य का रचयिता जीवंधर भी था, जिसने मन्त्री 'डूंगरसिंह' की प्रेरणा से अमरसार काव्य की रचना की।[१]

राणा ने राज्य के स्तम्भ रूप में पुण्यवान् गंभीर सत् पुरुषों में अग्रगण्य डूंगरसिंह को अनेक सुकृत कार्यों से परीक्षा कर शुभ नक्षत्र व मुहूर्त में मुख्य अमात्य पद पर नियुक्त किया।[२]

विश्ववणिजामधीशो लटुनामा पत्तने मुख्यः॥२४६॥
तत्कुलगगनोद्योते सूर्यसमः सं(शं १) कराह्वयः पुत्रः।
यद्दर्शनं नराणां सुखकरणं तेन सार्थाह्वः।॥२४७॥
पुत्रास्त्रयस्तस्य कुलप्रदीपा सौजन्यसौभाग्यगुणैः प्रपूर्णाः।
श्री डूंगरेशोत्तमसत्प्रतापसत्कर्मचंद्रेति जगतप्रसिद्धाः॥ २४८॥
तेषु श्री डूंगरेशोतुलबलविभवः पुण्यकारुण्यवाद्धिः,
सूरोदारागमज्ञामितगुणस्वजनैः सेवनायांघ्रियुग्मः।
श्रीमद्राणामरेशार्पित सचिवपदः सर्वभूपालमान्यो,
जीयादाचन्द्रसूर्याब्ध्यवनि सुरगिरिं स्वेष्टभोगोपभोगैः॥ २४९॥
अमरसार धर्मखण्ड॥

१. न ह्यब्धिगतमणीनां प्रमाणकृत्कश्चिदस्ति विबुधजनः।
नानागुणराशेरपि डूंगरसिंहस्य मंत्रपतेः ॥४२६ ॥४२७। अमरसारयशोवर्णनाधिकार।
धर्मानुरागरसिकस्य सदामरेशपादद्वयांबुजमधुव्रतसदृशस्य।
पांडित्यवैद्यपरगागमकोविदाश्च श्री डुंगरांघ्रियुगपद्ममुपास्त्रयंति॥ २६४,२६५,

२. तेन श्रीपरमेश्वरार्पित महत् भाग्येशिना चेतसा,
राज्यस्तम्भममात्यमुख्यमनघं कर्तुं विचारः कृतः।
आज्ञैश्वर्यसुपुण्यबुद्धिगुणवद् गंभीरचित्तं महत्,
श्रीमते डुंगरसिहमुत्तमजनाग्रगण्यंस्वदेशस्थितौ ॥ २७६।
धर्मात्मानमनेककार्यनिकरैः सम्यक्परीक्ष्य स्वयं,
संग्रामेऽपि च शूरवैरिहननात् बुध्वातिशौर्य्याधिकम्।
सन्नक्षत्र मूहूर्तलग्नघटिकाकाले जगत्साक्षिकम्,
प्राधान्यं रविवंशजेन सकलं श्री डूंगरस्यार्पितम्॥ २७७॥
अमरसार यशोवर्णनाधिकार।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नीति, विनय और चातुर्यभाव से तीनों लोकों में अत्यधिक शोभा पाने वाला द्वेष लोभादि अवगुणों को तिरस्कृत करने वाला, गुणगणरूपी मणियों का सिन्धु, सज्जनवृन्द का बन्धु था। वह गरीबों के दुःख मार्ग का विध्वंस करने वाला तथा राणा अमरसिंह के मनोनुकूल फल प्राप्त करने में समर्थ था। अरण्य को नगर में परिवर्तित करने की सामर्थ्य वाला, एक क्षण भी धर्ममार्ग से अविचल वह यश का सागर था। मधुर वचनों से मनुष्यों को वश में करने वाला डूंगरसिंह विद्वज्जनों से साक्षात् इन्द्र तुल्य ही समझा गया।[१]

डूंगरसिंह ने अपनी उदारता और दानशीलता से समुद्र पर्यन्त पृथ्वी पर निवास करने वालों को अपने वश में कर लिया। विधि विधान पूर्वक सर्वदा सब का हित करने वाला सुख प्रदाता था। अपने बुद्धि-वैभव से संपूर्ण नीति को निर्धारित करता था। अतुल ऐश्वर्य से युक्त जानकर म्लेच्छ नृपों ने भय से अपना देश छोड़ कर कानन का आश्रय ले लिया। उद्धत म्लेच्छराजाओं को अपने ऐश्वर्य का मान छोड़ना पड़ा। डूंगरसिंह ने अपने नय बल रूपी वज्र से उनके अभिमान को चूर्ण चूर्ण कर दिया. मंत्रबल से जैसे सर्प और देवता वश में हो जाते हैं, वैसे ही अपने पुण्योपनीत कार्यों से सम्पूर्ण प्रजा को वशीभूत कर लिया। दानमूर्ति डूंगरसिंह ने अनेक दानशालाएं खुलवाई। युद्ध और कोश में डूंगरसिंह साम दान दण्ड और भेद बल के प्रयोग में सफल हुआ।[२]

---

१. नयविनयविवेकैश्चारुचातुर्यभावैस्त्रिजगदधिकशोभस्तर्जितद्वेषलोभः।
गुणगणमणिसिन्धुः सज्जनवृंदबन्धुः, जयतिसुमतिपूर्णोडूंगरोऽमात्यराजः ॥२८० ॥
यद्बुद्धिचिन्तामणिना समर्पित, राज्ञोमरेशस्य मनोऽनुगं फलम्।
अरण्यमध्येपुरवद्विधाय वा स किं प्रियस्यान्नकृतज्ञसद्धियः ॥ २८३ ॥
यशोबुधेरुत्तमवाक्यभाषणवशीकृतानेकजनस्यं भूतले।
यशोवरं व्याप्य शनैश्चरे बलात् शुक्रत्वमारोपयदीक्षतेबुधैः ॥ २८५ ॥
अमरसार यशोवर्णनाधिकार।

२. समुद्रपर्यन्तवशीकृतावनेरुदारचित्तस्य सुदानवर्षिणः।
ह्रिया पुरस्वर्द्रुभिरत्रवैरिभि र्भयेन चोत्थाय कृतसुराश्रयः ॥ २८६ ॥
अनागतायातचिरंतनान् धिया करोति कायान् समयैकमात्रतः।
विधिः परं नित्यहितार्थकारको सदा सुखं यच्छति मंत्रनायकः ॥२८८ ॥
बुद्ध्या दर्शीय दीपः सकलमपि नयं नित्यमाविष्करोति,
शास्त्रज्ञानाद्रिलौहोऽमरनृपतिवराशेषराज्यावभाशी।
यं ज्ञात्वाम्लेच्छभूपैरतुलबलयुतैस्त्यक्तमैश्वर्यमानम्,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऐसे उदार चरितवाले गुणों के सागर, न्याय के दीप डूंगरसिंह का कवि ने वर्णन किया है । कलिकाल में विद्वज्जनों के आश्रय डूंगरसिंह की प्रेरणा से इस अमरसार की रचना की । डूंगरसिंह पुरुषों का अभीष्ट फलदाता है, उसकी कीर्ति कौमुदी इस धरा पर विस्तीर्ण हो, उसी कामना के साथ कवि ने यश वर्णनाधिकार समाप्त किया है ।[१]

राजपुरोहित काशीदास

राणा अमरसिंह के राजपुरोहित पद पर काशीदास प्रतिष्ठित थे, जो पल्लिवाल ब्राह्मण वंश में उत्पन्न राज पुरोहित 'सरसल' के वंशज थे । काशीदास सर्वदा धर्ममार्गगामी, कला और शास्त्रों के मर्मज्ञ, यज्ञ कर्म को विधि विधान पूर्वक संपन्न कराने वाले तथा पौरोहित्य विद्या में पारंगत थे. अपनी स्थिरचित्तता एवं ध्यानावस्था के कारण योगियों को चमत्कृत कर देते थे । देवों के अभीप्सित यज्ञ होमादि से और राजाओं को भी आनन्दित करते रहते थे । शास्त्रोपदेश के द्वारा धर्म और न्याय मार्ग के दर्शक थे, दर्शनशास्त्र और अध्यात्म विषय के अद्वितीय प्रकाण्ड विद्वान् माने जाते थे तथा वे सर्वदा शुद्धान्तःकरण से विद्वज्जनों की सेवा में रत रहते थे । ऐसे सुयोग्य राजपुरोहित काशीदास के निर्देशानुसार धार्मिक वृत्ति का आचरण करते हुए राणा अमरसिंह अपने शासन-सूत्र का संचालन करते थे । उनकी राजाज्ञा को देवता भी मानते थे तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या ? पापों का नाश करने वाली 'काशी' के समान ही साक्षात् 'काशीदास' का दर्शन था ।[२]

त्यक्ता देशालयाद्याश्रितमिह विपिनं वैरिभूपैः भयेन ॥ २९३ ॥
यो दुर्ग्गमत्तनागैर्बहुदहनशरास्त्रैरभेद्यात्वमाप्ताः,
म्लेच्छौद्धत्यैकतानानयबलपविना चूर्णिता डूंगरेण ।
स्वेशाजोच्चैकृतारि प्रकरहतिवशाद्वैरिणं मंत्रपेन,
सोऽन्येषां नैव जेयष्किमुसकलबलोस्यात् सुजेयोमरेशः ॥ २९४ ॥
मंत्रैर्यथोरगसुराश्च वशं प्रयाति
तद्वत् प्रजासु सुजनोऽस्ति खलोऽपि वश्यः ।
श्रीडूंगरस्य सुजनांबुधिसद्धिमांशो,
सौजन्यपुण्यकरणादिगुणौघभूपैः ॥ २९६ ॥

१. सदुदारचरितमार्यान्वयाभ्र सूर्य गुणौघरत्नाब्धिम् ।
स न्याय सौध दीपं डूंगरसिंहं स्मरामि मुदे ॥ ४२५ ॥ अमरसार यशो वर्णनाधिकार ॥

२. देवानां धिषणो परीक्षित गुणो यद्वस्तथास्तुत्तमो,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धन्वन्तरि वैद्य

राणा अमरसिंह के धन्वन्तरि नाम का वैद्य था, जो रोग रूपी हाथियों को नष्ट करने के लिए सिंह के समान था। जिसके कारण राज्य में कोई भी रोगग्रस्त नहीं था। उसका ऐसा प्रभाव था कि जैसे स्वामी राणा अमरसिंह के प्रताप से तस्करों का निर्मूल नाश हो गया वैसे ही रोगों का भी उच्छेद हो गया।[१] यह वर्णन राज्य

कासीतिकृतधर्मवृत्तिरमरेशस्य द्विजेशो महान्।
यं दृष्ट्वात्र कलावपि श्रुतशुभाचारं बुधैरुच्यते,
सत्यस्मि भुवि सत्य एव सुयुगो सर्वार्थसिद्धिप्रदे ॥ ३०५ ॥
स्वान्तर्येन सदागमे शिव न तौ मूर्द्धो च संयोजितम्,
हस्तद्वन्द्वमिहार्चने च वचनोच्चारस्तु जाप्यादिके।
यानं तीर्थ पथि प्रपन्नकरणं धर्मे सदा तन्वता,
राजानोऽपि सुयज्ञकार्यकरणैः संवर्धिता स्वाशिषा ॥३०६ ॥
शुद्धध्यानविधायनेन बहुधा योगीन् चमत्कारयन्
देवानीप्सितयज्ञहोमकरणैरानंदयन् भूमिपान्
धर्मन्यायपथप्रदर्शयन् शै (?) शास्त्रोपदेशं प्रजाः
यद्दानमीप्संति सुमंत्रितं सुरा, कुर्वन्ति चाज्ञां सकलाश्च पार्थिवाः।
द्विजाजपोहोमविधिं वितन्वते पुरोधसे पल्लिपवंशपायिनः ॥ ३०८ ॥
यद्दर्शनाध्यात्मविचारपंडितो तिरस्कृतानर्थकशून्यदुर्मतः।
प्रमाणंबुद्धि र्विबुधौघसेवितः श्रीकाशिदासो जयते पुरोहितः ॥ ३०९ ॥
तदुक्तवृत्या कुरुते सधर्मं, श्रीमान् सदाचित्रपुराधिनाथः।
यत् (श) सासनं देवगणो बिभर्ति, मर्त्येषु कस्तस्य हि दुष्प्रवेशः ॥ ३१० ॥
कासीति तीर्थं कलुषापहारि यथा तथा दर्शनमस्य पुंसाम्।
विश्वेश्वरस्तस्मिनिवास्मि नास्ति अभिन्नबुद्ध्या कृतसन्निवासः ॥ ३११ ॥
अमरसार यशोवर्णनाधिकार ॥॥

१. कालानलध्वंसनवारिवाहः विश्वामयानेकफनाशसिंह।
विदग्घ वैद्यागमसिंधुचन्द्रो घन्वन्तरिनाम चिकित्सकोऽस्ति ॥ ३१४ ॥
ज्ञात्वैव राणामरसिंहवैद्यं भवन्ति देहे (शे) न हि कोऽपि रोगः।
निर्मूलनाशं करणं समीक्ष्य प्रभोः प्रतापादिव तस्करौघाः ॥ ३१५ ॥
सुदेशकालागमरोगमूलान् विचारितात्पूर्वमिवाभ्युपैति।
चिकित्सितं कुर्वन्सौजनानामसाध्यताभावं(१) करोति शश्वत् ॥ ३१६ ॥
अमरसारयशोवर्णनाधिकार

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की प्रजा के स्वस्थ होने तथा चोरों आदि के भय से मुक्त होने का प्रणाण प्रस्तुत करता है ।

सेनापति हरिदास

राणा अमरसिंह ने अगणित हस्ति, अश्व, पदाति और रथों से सुसज्जित सैन्य युक्त, शौर्य में सिंह के सदृश राजा हरिदास को अपना सेनापति नियुक्त किया। सैन्य का समस्त भार हरिदास पर छोड़ कर राणा अमरसिंह क्षत्रियोचित सदाचार से सुखपूर्वक रहने लगे। हरिदास अपने वचनामृतों से सम्पूर्ण सेना को प्रसन्न रखता हुआ, सूर्य और चन्द्र की तरह अपने तेज एवं यश से सत् पुरुषों को हर्षित करने वाला हुआ। मन्त्र में, रण में, शस्त्रास्त्र विद्या में तथा शास्त्रों में कुशाग्रबुद्धिवाला वह गज, अश्व और मानवों के परीक्षण में निपुण था वह शिल्पशास्त्र एवं कला का मर्मज्ञ तथा पुण्यवान् था।[1]

वह मर्यादा में सागर के समान था । अपने मन के अनुकूल राणा ने उदारता में सुमेरु और धीरवृत्ति से युक्त हरिदास को पाया। विक्रम और शक्ति में इसके समान वसुन्धरा पर इतर कोई नहीं हुआ।

अमरसार का खण्डानुसार संक्षिप्त वृत्त

यशो वर्णनाधिकार

कवि ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण स्वरूप तीन श्लोकों में भगवान् एकलिंग का स्मरण करता है।[2] इसके पश्चात् कवि राणा अमरसिंह के वैभव का वर्णन करने में अपने को असमर्थ बतलाता हुआ अपने गर्व का परिहार करता है, जो कवि के विनय एवं शालीनता का परिचायक है। इस वर्णन में कवि पर कविकुलगुरु

---

१. हस्त्यश्वपादातरथेन भूरि विलोक्य राज्ञामरसिंह नाम्ना।
सिंहोपमस्शौर्यगुणेन सम्यक् कृतोऽधिकारी हरिदास भूपः॥ २६३॥
हरिरिवोत्तमबुद्धिपराक्रमो विदभवो हरिदास नरेश्वरः।
समर्प्य सर्वस्व दलाधिकारं तस्मै सुबुद्धयर्द्धिपराक्रमाय ॥ २६४॥

२. सकलसुरनरेशव्रातपूज्यांघ्रि युग्मं, सुजनहृदयसिंधोष्पूर्णचन्द्रोपमानम्।
परमपुरुपमीशं सर्वदोषव्यपेतं, कृतततिरतिरम्यं नीतिशस्त्रं ब्रवीमि ॥ १॥
स्थितजननविनाशं सर्वदाहेतुभूतं, सुमुनिभिरवगम्य वेदशास्त्रप्रसिद्धम्।
त्रिनयनमनवद्यमंगलानन्दमूलं हृदि वर नयशास्त्रारंभ सिद्धयै स्मरामि ॥२॥
सहायस्सर्वदा शंभुदाशीकृतजगात्रयः।
पार्वत्यामेकलिंगोऽपि चित्ररूपोऽस्तु पातु वः ॥३॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालिदास का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कालिदास जिस प्रकार से अपने महाकाव्य रघुवंश में सूर्यवंश का वर्णन करने में अपनी असमर्थता बतलाता है, उसी शैली का अनुसरण इस कवि ने अपनी कृति के प्रारम्भ में किया है।[१]

इसके अनन्तर बारहवें श्लोक से कवि सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन प्रारम्भ करता है। इस चराचर विश्व के रचयिता ने ब्रह्मा विष्णु और महेश का स्वरूप धारण किया। ऊर्ध्वलोक के लिए देवेन्द्र अधोलोकार्थ शेषनाग और मृत्युलोक के लिए यशस्वी राजाओं की उत्पत्ति का निर्देश किया गया है। प्रभु एकलिंग ने राजा की सेवा शुश्रुषा से प्रसन्न हो मेदपाट (मेवाड़) देश का स्वामित्व दिया और उसके लिए महादुर्गराज चित्रकूट (चित्तौड़गढ़) को स्थापित किया।[२]

उसके पश्चात् कवि चित्रकूट (चित्तौड़) दुर्ग का वर्णन करता है। जम्बूद्वीप के भारतीय आर्यखण्ड में देशों का अध्यक्ष मेदपाट (मेवाड़) देश है, जो सर्वदा वापी, कूप, तड़ाग, क्षेत्र एवं सुन्दर नगरियों की रमणीयता से सुशोभित है। उसी देश में भगवान् नीलकण्ठ के आदेश से यक्षों ने सुन्दर भव्य चित्रकूट दुर्ग का निर्माण किया।[३]

---

१. कुत्रामरसिंहेश्वरविभूतिनयसत्कथा समारंभः।
क्व च मे हृदयं चपलं श्रुतलेशज्ञाननिर्मुक्तम् ॥ ४ ॥
क्व सूर्यप्रभवोवंशः क्व चाल्पविषयामतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥ रघुवंश प्रथमसर्ग-२ श्लोक

२. श्रृष्टुः सर्वमिहाभव त्रिगतो निर्म्माणवांछाततो,
ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः प्रकटिताः किं ते त्रयो वा गुणाः।
उर्द्धाधोवरमध्यलोकरचना जाताधिपातत्क्षणात्,
देवेन्द्रोरगनाथशूरनरपैः सर्व्वार्थसिद्धिकराः ॥ १२ ॥
श्रेष्ठौ वंशौ सूर्यसोमाभिधानौ मध्यक्ष्मायां शंभुरिच्छार्थ कर्ता।
कृत्वा श्रीमत् सूरराज्ञेप्रभुत्वं, स्वान्तः प्रीत्या दत्तवानेकलिंगः ॥ १३ ॥
यतो देवताशेषनागादयोऽत्र, सदा शंभुयात्रार्थमेष्यन्ति भक्त्या।
चमत्कार कृत्तुंग मेवाड़देशे, कृतश्चित्रकूटो महादुर्गराजः ॥ १५ ॥

३. जम्बूद्वीपे भारतीयार्य्यखण्डे, देशाध्यक्षो मेदपाटाभिधानः।
ग्रामैः क्षेत्रैः सत्पुरीणां समूहै, र्वापीकूपै र्नित्यमाभाति रम्यः ॥ १७ ॥
तत्रादेशान्नीलकंठस्य यक्षैः, श्रेष्ठो दुर्गाश्चित्रकूटोऽतिरम्यः।
यस्मिन् हर्म्यश्रेणिबंधे नितांतं, विश्रामं ते ब्रध्नचंद्रग्रहाद्याः ॥ १८ ॥
अमरसार यशोवर्णनाधिकार ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके अनन्तर कवि ने मेवाड़ का वर्णन भुजंगप्रयात छन्द से प्रारम्भ किया है। भगवान् एकलिंग अभीष्ट वस्तु के प्रदाता हैं और सर्वदा अपने भक्तों के चित्त में विराजमान हैं। उनमें दुःखों का लवलेश भी नहीं है।[१]

इसके आगे मेवाड़ाधिपति के वंश का वर्णन है, जिन्होंने अपने प्रताप एवं बल से वैरिवर्गों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो एकलिंग महादेव की अनुकम्पा से मेवाड़ के ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं। वे सूर्यवंशी राजा लोग 'राणा' पदवी से अंलकृत है। वे नक्षत्रों में सूर्य, पर्वतों में सुमेरु पर्वत और देवों में इन्द्र के समान हैं।[२] महाराणा उदयसिंह के पुत्र उज्ज्वलकीर्तिमान् वीरवर पराक्रमी महाराणा प्रतापसिंह हुए, जिन्होंने अखिल वैरिवर्गों को दास बनाया, जिसकी प्रतापरूपी दीपशिखा में अगणित म्लेच्छाधिपति पतंगों की भांति भस्मीभूत हो गये।[३]

कवि ने मानैकधनी महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र राणा अमरसिंह (प्रथम) का वर्णन ६१ वें श्लोक से प्रारम्भ किया है, जिसको कवि ने अपने इस काव्य का नायक चुना है, जो धैर्य, स्थैर्य, दानशीलता और करुणा का एकमात्र अवलम्बन है, अपनी नीति से अनेक राजाओं से अर्चनीय, अमृतरूपीवाणी से सेवक जनों को संतुष्ट करते हुए उत्साही राणा अमरसिंह भूमण्डल के आभूषण हैं। याचकगण कल्पतरु को,

---

१. यदासन्नसद्ग्रामखेटाकरादौ, न रोगार्तिशोकादिदुःखं कदाचित्।
यदीष्टार्थवृंदान् ददात्येव शंभु नतानंतदेवोरगो ऽत्रैकलिंगः॥ २७॥
शिव एवं सकलकालं तिष्ठति योऽत्र स्वभक्तवशचित्तः।
तस्यान्यत् किं साध्यं स्वेब्धौ देशे सतां पुंसाम्॥ २८॥

२. नित्यं प्रवर्द्धदभिमान्यगुणासुधर्माः, भाग्यप्रतापबलनिर्जितवैरिवर्गाः।
शंभुप्रदत्तवरराणसुनामधेयाः, मेवाड़ भूमिपतयस्सततं जयंति॥ ४०॥
ज्योतिर्गणेष्वर्क इवामराचलो, शैलेषु देवेषु यथा सुरेश्वरः।
तथैव स क्षत्रियवंशसंचये, सूर्याह्वयो राजतिवंशनायकः॥ ४१॥

३. तस्मिन्ननेकवरराजमहाधिराज, भट्टावलावनुपमानगुणैकभूमौ।
ये निर्जितारिनिचयोदयसिंहराण जातो हसन् सुरपयात्मविभूतिशक्त्या॥ ५५॥
तत् पट्टसिंधुविधुरुज्ज्वलकीर्तिरार्य्यः, दासीकृताखिलमदोद्धतवैरिभूपः।
सद्युक्तिरुत्तममतिर्वर विक्रमाढ्योजातः प्रतापवरसिंहसुनाम राणः॥ ५७॥
यत् प्रतापवरदीपशिखायां म्लेच्छभूपतिपतंगगणोऽयम्।
सर्व्वदिक् ज्वलदधूमरमायां, नाशितो न गणितुं भुवि शक्यः॥५८॥

अमरसार यशोवर्णनाधिकार।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रुग्णावस्था में वैद्य को, नवोढ़ाएं सौन्दर्य में जैसे कामदेव को स्मरण करती हैं वैसे ही राणा अमरसिंह को अन्य देश के मनुष्य प्रतिक्षण अपनी स्मृति-पथ में बनाये रखते थे। वह राजा प्रजा के अनुरञ्जन में दत्तचित्त धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति में निरन्तर उत्तम रीति और शक्ति से लगे हुए थे।[१] उन्होंने सुकृत कार्यरूपी सागर के मंथन से लक्ष्मी को प्राप्त किया दुर्म्लेच्छवंश का संहार करने में सर्वदा सन्नद्ध रहें, भगवान् मधुसूदन की तरह मेवाड़-मण्डल की रक्षा की। वे इन्द्र के समान शत्रुओं का दमन करने वाले थे। अहर्निश मानवों को अभीप्सित वस्तु प्रदान करते हुए तथा सर्वदा आश्रित जनों के दु:खों का क्षय करने वाले हुए। विद्वानों को विद्या से, वीरों को उत्साह युक्त वचनों से, आर्यजनों को धर्म से राणा अमरसिंह अपने वश में करते रहे।[२]

कवि ने घुणाक्षरन्याय का प्रयोग करते हुए सुन्दर कल्पना की है कि ब्रह्मा ने अमरसिंह के अतिरिक्त अन्य राजाओं का निर्माण घुणाक्षर न्याय के रूप में किया है। राणा अमरसिंह के पराक्रम को प्रदर्शित करने के लिए कवि ने बतलाया कि अपनी शैशवावस्था में ही तुरुष्कराज को जीत लिया था।[३]

---

१. धैर्यस्थैर्यसुवीर्यदाननिलयो कारुण्यपुण्याश्रय,
प्रत्यक्षीकृतनीतिमार्गनिचयोनानावनीशार्च्चितः।
सद्वाक्यामृतपुष्टसेवकजनो सोत्साहचित्तस्सदा,
जीयात् सोऽमरसिंहनामनृपति भूर्मण्डलाभूषणः ॥ ७७ ॥
यथार्थितः कल्पतरुं रुजातुराः, विदग्धवैद्यं मदनं च योषितः।
यथान्यदेशाय जनाः क्षणे क्षणात्स्मरति राणामरसिंहमुत्तमाः ॥ ८० ॥
सर्वप्रजापालनदक्षचित्तः, कृपान्वितश्चारुचरित्रयुक्तः।
स्वकामधर्मार्थसुकामभोगान् समर्जत्युत्तमयुक्ति शक्त्या ॥ १०० ॥
अमरसार यशोवर्णनाधिकार

२. सत्पुण्यवारिधिविमंथनलब्धलक्ष्मीः, दुर्म्लेच्छवंशहरशस्त्रसुचक्रहस्तः।
मेवाड़मण्डलमसौ मधुसूदनेव, शास्तिकृता सुरसमान रिपुप्रणाशः ॥ १०८ ॥
यस्याश्रयो दुखगणक्षयंकरो, प्रयच्छनिष्टार्थमहर्न्निशं नृणाम्।
विधेयतां वक्ति गुरूपदेशवत् इहापरत्रापि च सौरव्यकारणम् ॥ ११४ ॥
बुधान् सुविद्याभिरिहामरेन्द्रो, शूरान् सदोत्साहवचोभिरार्य्यान्।
धर्मेण मंत्रेण गुणप्रधानात्, वशीकरोति हितसाध्यहेतुः ॥ १५३ ॥

३. स कश्चनैकसमयो विधातुः, घुणाक्षरन्यायपथेन जातः।
वैदग्ध्यमस्याहमिहाभिमन्ये, यदामरेशादितरं करोति ॥ १६० ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भूमण्डल का सारभूत मेवाड़ देश है, उसमें चित्रकूट (चित्तौड़नगर) और डूंगरसिंह मंत्री से युक्त अमरसिंह का राज्य ही एक मात्र सार है। विश्व में चार ही रत्न हैं, चित्तौड़दुर्ग, नागौर नगर, राणा अमरसिंह और मन्त्री डूंगरसिंह।[१]

राणा अमरसिंह के सौभाग्यवान् कर्णसिंह (प्रथम) पुत्र हुआ। उन्हीं को युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया। अमरसिंह के द्वितीय पुत्र भीमसिंह और तृतीय सूर्यमल्ल था। अंग,बंग, कलिंग, चौड़,गौड़, मरहट्ठ, मलिन्ध्र(?),गुर्जर, अश्ववर (घोड़वाड़) (?),वाग्वर् के नृप अमरसिंह के चरणारविन्द की सेवा किया करते थे।[२]

नेपाल, गोपाचाल (ग्वालियर), जालंधर, तैलंग और शूरसेन देशवाले राणा अमरसिंह की सेवा शुश्रूषा में निरत रहते थे। नागरचाल, बुगलाण, बहराम, मालव और तौलव देश में उत्पन्न राजपुत्र तथा सौरठ आदि के ख्याति प्राप्त योद्धा राणा

स एष निश्चयानंदस्वच्छंदतमंविक्रमः।
तुरुष्कदेशनाथोऽपि युद्धे बाल्ये विनिर्जितः॥ २०१ ॥

१. धात्र्यास्सुमेदपाटः सारस्तस्मिंश्चित्रपुरनगरम्।
तत्रामरेशराज्यं डूंगरमंत्र्यन्वितंसारम् ॥ २०२ ॥

२. श्रीमानार्य्यः सुकर्णोऽखिलधरणिरमाप्रार्थनीयः प्रसन्नः,
सन्नक्षत्रांह्रिपदौ चित्तविमलतरै र्लक्षणै र्भासुरांगः।
नृत्ये गाने मनोज्ञे सति वरनगरोत्साहमांगल्यहेतुः,
सर्वत्रारव्येयपुण्योऽमरसुरनरपतेरात्मजोऽभूत् सुभाग्यः॥ २१४ ॥
भीमोऽनुजोऽमरपतेद्वितीयः सुपुत्रः
सौर्य्यैकभूस्सकलशत्रुमदापहारि।
बाल्योऽपि पुण्यममलं स्वतनौ बिभर्ति,
सवार्थसिद्धिकरण स्वपराभिमान्यः
पूर्वमार्गानुगोवैरिध्वांतहृत् सुनयाशुभान्।
सूर्यमल्लो विभुज्जायात् सूर्यादप्यधिक प्रभः॥ २२० ॥
पूर्वोपार्जितपुण्यलब्ध विभवो पित्रानुरूपोमहान्,
सौजन्यादिगुणाभृतेन सततं संतोषयत्याश्रितान्।
सूर्य्यान्नष्टमवैतिनारितिमिरं श्रीसूर्य्यमल्लासिना,
नष्टंकष्टमनेकधेष्टकरणो पुत्रस्तृतीयोऽभवत् ॥ २२१ ॥
अंग बंग सुकलिंग भटौघाः, चौड़गौड़मरहट्ठमलिंघ्राः।
गुर्जराश्ववरवाग्वरजाताः,सेवयन्तमरसिंहपदाब्जम् ॥ २२९,२३० ॥
'अमरसार यशवर्णनाधिकार'

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अमरसिंह की सेवा में रहते थे।[1] असंख्य मत्त मातंग उसके प्रागंण की शोभा बढ़ाते थे। अगणित हाथी, घोड़ों, रथों और भृत्यवर्गों से विद्याधरों का मार्ग अवरुद्ध दृष्टिगत होता था। अपने पराक्रम से रिपुबल पर विजय प्राप्त कर गुंडवाण, (१) मुलतान के वीरगण अमरसिंह की सेवा में तत्पर रहते थे।[2]

दशों दिशाओं के राजा रत्न, हाथी, घोड़े, मोती आदि बहुमूल्य वस्तुएं लाकर उपहार स्वरूप अर्पण करते थे। समुद्र पार से आकर फिरंगी अमरसिंह को जल-क्रीड़ा करवाते। कच्छ, सिन्धु, सुहलार (१) और झालावाड़ के राजा उसे प्रमुदित करते थे। इस प्रकार अजेय शक्तिमान्, अपने शौर्य एवं तेज से अभिमंडित अमरसिंह सुखपूर्वक अपना कालयापन करता था।[3] इन वर्णनों से राणा अमरसिंह के करदाता एवं मित्र राजाओं का पता चलता है। राणा अमरसिंह अच्छे योद्धा, हाथी, घोड़े, रथ, मंत्री, गुरु और गुप्तचर इन सातों राज्य के सप्तांगों से युक्त होकर सुखपूर्वक ऐश्वर्य का उपभोग करता था। अनेक उसके सुन्दरातिसुन्दर रानियां थी, कवि के लिए मातृवत् है तथा इस यशखण्ड में श्रृंगार वर्णन उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, अतएव उनका वर्णन कवि ने नहीं किया है।[4] यहां से सुखवर्णन प्रारंम्भ होता

---

१. नेपालगोपाचलभूमिपालाः, जालंध्रतैलंगकलिंग जाताः।
विनिर्जितानंगसुकान्तदेहा सदा भजंतोऽमरसिंहराणम् ॥ २३१ ॥
बहुकेसरफुल्लसुगंधगणैः, सुरभिकृतराजधरावलयाः।
वरनागदलादिसुभक्ष्यपराः, प्रभजंति सुनागरचालनृपाः ॥
२३४, २३६, २३८, २४०, अमरसार यशवर्णनाधिकार।

२. गजैः पुरं यस्य मदाढ्यगर्जनैः, बिभर्तिशोभांगनसंभवां सदा।
मरुच्चलत्केतनविद्युदन्वयैः, सुगंधपंकैर्मघुपेन्द्रचापकैः ॥ २४२ ॥
यस्योत्तमैस्तुगंहयैश्च सेवकै, र्विद्याधराणां गगनाध्वयायिनाम् ॥
निरुद्ध्यतेऽन्योन्यसमानसंपदां, बलं नृपैश्चित्रपुरेशिनस्सदाम्।
२४७,२५१ अमरसार यशवर्णनाधिकार।

३. यद् भाग्ययोग्यवरवस्तुगुणोनितान्तमायाति सदृशदिशोऽमरसिंह नाम्नः।
नद्योंबुधा विवसमाश्रितुमस्य पुण्यात्, हस्त्यश्वरत्नधनमौक्तिकवाहनादि ॥ २५९ ॥
अकूपारमध्यावनै शिक्षयित्वाअगाधांभसि स्वामिनो ये स्म तर्तुम्।
जलक्रीडनं कारयितुं ये फिरंगाः, कियंतोऽस्य संत्येव तान् को ब्रवीति।। २६० ॥
कच्छसिन्धुसुहलारसुवीराः झालावाड़पतयोऽप्यतिधीराः।
सज्जयोत्तमसुभाग्यंरमायाः स्वामिनोऽमरपतिं प्रभजंति ॥ २६१ ॥

४. इत्थं नानासुभटगजसद्वाजिसत्स्यन्दनौघैः,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। प्रातःकाल मांगलिक वाद्यों से बन्दीजन स्तुति करते तथा राजन्य वर्ग नतमस्तक होकर अमरसिंह का यशोगान किया करते थे।[१]

रत्नों से जटित पादुकाओं को धारण कर द्वार पर स्वर्ण के सिंहासन पर बैठ कर वे भृत्यों को दर्शनों से लाभान्वित करते। शरीर शुद्धि के अनन्तर सुगन्धित तैल से शरीर का मर्दन करवाकर कुशल सेवक स्वर्ण-कुम्भों द्वारा आवश्यकतानुकूल शीतोष्ण जल से एवं गंगादि तीर्थ जलों से स्नान करवाते, पश्चात् राणा अमरसिंह शिवालय में प्रवेश कर कर्पूर, केशर, चन्दन से शिवजी की पूजा करते थे। श्रीपति व्यास से धर्मार्थ के सारभूत पुराणों की कथा का श्रवण करते। श्रीपति व्यास को राणा अपना गुरु मानते थे। श्रीपति व्यास चारों वेद, शब्द्शास्त्र, तर्क, आगम, धर्मशास्त्र, भागवत, महाभारत, पुराणादि, नीतिशास्त्र, जाप्य, होम विधि के अच्छे ज्ञाता थे।[२]

मन्त्राचार्यमयहरगणैष्वापूसप्तांगराज।
भुक्ते सौरव्यं सुपतिरिवाशेष भूमण्डलैश्यम् ?
श्रीमच्चित्राद्रिपुरपतिरत्रामरेशाभिधानः ॥ ३१७ ॥
देशपट्टनविभूतिवर्णने यत् कृतोऽपि नहि राजयोषिताम्।
दूषणं स्वजननीव वर्णनं न कृतं तदिह बुध्यतां बुधी ॥ ३१९ ॥
न श्रृंगारोऽस्मिन्नयाख्यानरूपेशास्त्रे प्रोक्तो विश्वलोकपयोग्ये।
धर्मार्थानां सन्निदानैकभूते आज्ञावश्या डूंगरेशस्य युक्तेः ॥ ३१८ ॥

१. प्रभातकालेऽस्य नदंति भेर्यः, नमंति भूपाः प्रवदन्ति कीर्तिम्।
विभातगीतानि सुगायनाश्च, गायंति मांगल्यकराणि नित्यम् ॥ ३२१ ॥

२. सुवर्णपल्यंकमसौ प्रभाते मुक्तासुरत्नांकितपादुकाया-
मारुह्य सद्वारि पुनाति भृत्यान् स्वदर्शनेनामरसिंहराणः ॥ ३२२ ॥
भृंगारमेके मुकरं तदन्ये सिंहासनं यस्य समानयन्ति।
सुगंधतैलानि च मर्द्दयन्ति यस्यां सेवाकुशलासुभृत्याः ॥ ३२४ ॥
गंगादितीर्थे हृदवारिपूर्णै शीतोष्णनीरैश्च सुवर्णकुंभैः।
सुंगधितैः स्नानमसौ विधाय शिवालये चार्थमिहाभ्युपैति ॥ ३२५ ॥
कर्पूरकश्मीरपरागसारसच्चन्दनैरर्च्य शिवादिदेवान्.
यः श्रीपतिव्यासमुखात् पुराणं, श्रृणोति धर्मार्थकथानिधानम् ॥ ३२६ ॥
मुखैश्चतुर्भिस्समुवाच वेदान्, धाता तथार्थान्नरशब्द्वाची।
सुश्रीपतिव्यास इतीह जातो, नूलोगुरुर्व्वामरसिंह भर्तुः ॥ ३२७ ॥
शब्दतर्कपरमागमवेत्ता, वेदविश्रुतवरो द्विजराज।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा अमरसिंह शास्त्रीय पद्धति के अनुरुप प्रात: सुवर्ण और सौ गायों का दान कर परम्परानुसार नित्य माता के चरणारविन्द में प्रणाम करने के पश्चात् उनकी आज्ञा से राज्य सभा में जाकर राजाओं के अभिवादन स्वीकार करते थे ।[१]

प्रधानामात्य से आय व्यय का श्रवण करते हाथी, घोड़ों और सारथियों को छुट्टी देते । घंटा नादन से भोंजन वेला के समय भाई मित्रादि सहित भोजनालय में जाकर नानाप्रकार के सुस्वादु षड्रसों से युक्त भोजन करते थे । बहुविध मिष्टान्न एवं रसपान से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करते रहते थे फेणी, मण्डक, बड़े, घेवर, दाडिम, दाख, खजूर, आम, नींबू, कूष्मांडादि से भोजन सुख का विस्तार होता था ।[२]

नौकर द्वारा पूडी, खाजा, लड्डू, पूए और गौरस से युक्त भोजन थाल को तैयार किया जाता था। चन्द्रवत् धवल चांवल, स्वर्ण सदृश गोधृत,

---

सत्यशीलसहितोऽमरभर्तुः श्रीपतीतिसुपुराणनिवेदी ॥ ३२८ ॥
धर्मशास्त्रमिहभागवतादि भारतादिनयशास्त्रमनिंद्यम् ।
जाप्पहोमविधिमागमरीत्या,द्दानमाचरति योग्यमिहे ब्द्यैः ॥ ३२९ ॥
अमरसार यशवर्णनाधिकार ।

१. प्रातरस्यकनकादिसुदाने, गोशतं विधियुतं विबुधानाम् ।
य: समर्प्य वरराजसभायां गंतुमिच्छति समर्जित धर्मः ॥ ३३० ॥
कृत्वा धर्मं पूर्वजानुगामी, नित्यं मातुः प्रातरं ह्रीं प्रणौति ।
स्थित्वालब्धाज्ञां पुनश्चार्थं, कार्ये विश्वानंदार्थं सभामभ्युपैति ॥ ३३२ ॥
अमरसार यशवर्णनाधिकार ।

२. आयव्ययौ मंत्रिपतेः शुभोक्त्या, बुध्वा च संतोष्य च सेवकौघान् ।
नृपोऽमरेशोगजवाजिसार्थान्, विसर्जत्युत्तमपुण्यसिंधुः ॥ ३४५ ॥
नानानंदैर्वाजिनृत्यैरनेकै न्याद्यालोकै राज्यकार्ये विधाय ।
ज्ञात्वा घंटा नादतो भुक्तिवेलां यात्यानंदात् भुक्तिधामक्षितीशः ॥ ३४६ ॥
भातृमित्रवरभृत्यसमूहै, प्राप्य भुक्तिनिलयं नरपालो ।
पश्यति स्म वरभोजनवस्तूनि सत्सुरैः सुपतीव नरेन्द्र ॥ ३४७ ॥
बहुविधरसान्नपानै परिपूर्णां रसवतीं द्विजैर्रचिताम् ।
क्षेपयति पुण्यराशिः भुक्तर्थं स्थापितनृणाम् ॥ ३५० ॥
फेणिकामंडिकावटकसद्घेवरा, दाडिमद्राक्षखर्जूरशाकैर्वरा ।
आम्रसन्निवु कुष्मांडं संस्कारिणी, भुक्तिरस्यास्ति सौरव्यौघ विस्तारिणी ॥ ३५२ ॥
अमरसार यशवर्णनाधिकार ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुगन्धित पदार्थों से युक्त तीर्थ जल से आचमन लेने के पश्चात् ताम्बूल, सुपारी आदि से मुखशुद्धि कर राणा अपने सौख्यस्थान को गमन करते ।[१]

मध्यान्ह में शयनान्तर अन्तःपुर की अधिकर्त्री से अन्तःपुर की व्यवस्था विषयक जानकारी प्राप्त करते थे[२] तृतीय प्रहर में सैन्य का निरीक्षण होता और उसकी दक्षविशेषता की अनेक प्रकार से परीक्षा ली जाती थी ।[३]

सायंकालीन आचार विधि के विज्ञ अमरसिंह राजद्वार पर पहुंच दीपों को प्रणाम करते थे । नारियों द्वारा मोतियों से युक्त आरती उतारी जाती थी ।[४] स्वेच्छानुसार राजसभा में ठहरकर राजाओं को मुक्त करते और प्रासाद की ओर प्रस्थान होता जहां सब प्रकार के भोगोपकरण तैयार रहते थे । अप्सरा सदृश वेश्याएं नृत्य करतीं । विविध वाद्यों की ध्वनि के निनाद से राजप्रासाद मुखरित हो उठता. नाटक खेले जाते । ताम्बूल चन्दन कर्पूर अगरु आदि सुगन्धित पदार्थों से महल

---

१. कर्णशब्दकरशष्कुलिकाभि र्खज्जकैश्चवरमोदकपूपैः ।
गोरसैरनुपमैरधिपस्य पूरयन्त्यशनथालमनुज्ञाः ॥ ३५३ ॥
चन्द्रकांतिशितशालिवरान्ने, कांचनाभवरगोघृतधारा ।
रम्य केसरततीव सुगंधा,चन्द्रपुंजमिलनार्थमवैता ॥ ३५६ ॥
भुक्त्वा स्ववर्गैसकलाक्षतुष्ट्या एलासुचन्दादिसुगंधमिश्रैः ।
सुवर्णकुंभस्थसुतीर्थनीरैः, करोति योऽत्राचमनं नरेशः ॥ ३५९ ॥
कृत्वा सन्मुखशुद्धिमुत्तमजनैस्तांबूलपूंगीफलैः,
कर्पूरागरपुष्पसत्त्रुटिमुखद्रव्यैरनिंद्यै र्महान् ।
सर्वानेव विसर्ज्य सौरव्यनिलये सद्गंधलेपैस्तनुम्,
पुष्णाति पृथिवीप्रशस्य विभवो राणोऽमरेशाधिपः ॥ ३६० ॥

२. तांबूलसद्गंधसुरत्नवस्त्रैराभूष्य गात्रं मनसाभिमान्यैः ।
स्वापं सुखं वा कुरुतेऽमरेशोमध्याह्नकाले सुकृतैकमूर्तिः ॥ ३६१ ॥
उत्थाय स्वर्णपल्यंकाद्योगचिंह्नैरलंकृतः ।
स्वान्तः पुराधिकर्त्र्याश्च पृच्छत्यंतः पुरस्थितिम् ॥ ३६२ ॥

३. अश्वान् मत्तानेकपैर्व्वामृगेन्द्रैर्बद्धैर्योद्धुं भद्रिजातिद्विपौघान् ।
शूरान् शूरैः मल्लयुद्धैः परीक्षां, गृह्यतीशो यच्छतीष्टार्थसूनु ॥ ३६५ ॥

४. कृत्वा क्रीडां सैन्यशक्तिं विलोक्य संध्याकालाचारविद् भूमिपालः ।
राजद्वारं प्राप्य दीपान् प्रणौति ज्योतिरूपं चार्तिकेष्पूर्जितांगः ॥ ३६६ ॥
मुक्ताफलान्यार्तिकं संयुतानि स्त्रियो विचित्राः कमनीयरूपाः ।
भूपं समागत्य पुरः समंतात् आनीय मांगल्यमिहाचरन्ति ॥ ३६७ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुवासित रहता था। अपने पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य से इस सुख का उपभोग करता हुआ राणा अमरसिंह अपनी दिनचर्या व्यतीत करता था।[१]

राणा अमरसिंह ने पट्टाभिषेक से पूर्व अनेक सुन्दर रूपवती लावण्यमयी राजकुमारियों के साथ विवाह किया, जो उसके लिए सुखदायिनी हुई, यथा-शची इन्द्र के लिए, रमा हरि के लिए, रोहिणी चन्द्र के लिए और रति कामदेव के लिए हुई थी।[२]

राणा अमरसिंह सम्यक् प्रकारेण पारिवारिक जनों से प्रवर्धित सुख का, विभिन्न दिशाओं से आई हुई समृद्धि से एवं छत्र चामरादि राज्य ळक्षणों से युक्त धरा पर धवल चन्द्र कौमुदी के सुख का अनुभव करते थे।[३]

कभी कभी राणा मदमस्त हाथियों का युद्ध, मल्लों की कुश्ती एवं काव्यशास्त्रविनोदेन के अनुसार प्रचीनाख्यानों से मनोविनोद कर समय व्यतीत करते। वसन्तऋतु में गजराज पर आरूढ़ होकर वन में भ्रमणार्थ जाते, कभी घोड़े की सवारी, शिबिका (पालकी) में बैठता, ग्रीष्म ऋतु में जल क्रीडा, वर्षाऋतु में अगरु

---

१. स्थित्वा राजसभायामिच्छाकालं विसर्ज्य भूमिपतीन्।
कामसुखकालवेत्ताभूमिपतिर्याति सौद्धान्तः॥ ३६८॥
सौरव्यानियुक्ताः पुरुषा समानयंतिस्म भोग सामग्रीम्।
नर्तयति पात्रनारीः वादीत्रैनाद्यदेवसंयुक्तैः॥ ३६९॥
पात्राणि नृत्यन्ति नितांतमस्य गेहे सुरस्त्री समदेह भाजि।
पंचेंद्रियानंदकदंबदानि स्वेच्छानुगां कामकलामवाप्य॥ ३७०॥
अत्युद्धुतं नाटकमस्य गानं सुगंधतांबूल सुखैकतानम्।
सदानसोत्साहमिदं रजन्यां राज्ञोऽमरेशस्य पुराप्तपुण्यात्॥ ३७१॥
रम्योध्वनिर्नाटकमानजातो रूपं तु सामसुरेश दृश्यम्।
अन्तःपुरे रागरसाधिरूढं सुखं तु वाचा मनसोप्यगम्यम्॥ ३७२॥

२. पट्टाभिषेकात् प्रथमं सुकन्याः सुरूपलावण्यनिधानतुल्यः।
विवाहितास्सुंदरराजपुत्र्यो राज्ञोऽमरेशेणसुखाभिवृद्धै॥ ३७४॥
ताभिस्सार्द्धमसौ भुनक्ति बहुधासौरव्यंरसर्तूद्भवंश,
चान्द्रो रमया हरिस्त्रिनयनो सद्धेयकन्या समम्।
रोहिण्या शशलांछनो हृदयजोरत्या स्वराज्ये नृपः,
सत् कालोचितवस्तुभि स्सुकृतवान्यं केन्द्रियोऽभीप्सितम्॥ ३७५॥

३. सम्यक् कुटुम्बजनवर्द्धनजातसौरव्यो, नानादिशागतसुवस्तुसमृद्धियुक्तः।
सच्छत्रचामरकरै र्हरिविष्टरस्थो, स्वान् सौरव्यतीन्दुरिव कौमुदिकान् धरासु॥ ३७६॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धूप से सुवासित राजप्रासाद में ललनाओं के साथ रमण करते थे। शरद् हेमन्त और शिशिर ऋतुएं भी उसी हर्षोल्लास में व्यतीत होती थी।[१] उपर्युक्त वर्णनों का दूसरे शास्त्रों में वर्णित राजा की आदर्श दैनिक चर्या से साम्य प्रकट होता है।

नीतिखण्ड

नीति खण्ड के प्रारम्भ में कवि परमात्मा और गणपति का स्मरण कर राणा अमरसिंह की नीति का वर्णन करता है। इस नीतिखण्ड में युक्ति, सहायक, शास्त्राभ्यास, सदाश्रय, विचार और साधारण नीति नाम से पृथग् प्रकरण दिये हुए हैं। इन प्रकरणों में एतद् विषयक महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। जीवन में नीतिज्ञ को ही सफलता अधिगत होती है, कवि ने अनेकोदाहरणों से इसकी पुष्टि की है।[२]

भृत्यजनों से अनीतिमान् राजा छोड़ दिया जाता है। गुरु और राजा भी विनयी पुरुष से प्रसन्न रहते हैं। सद्युक्ति और विवेक के आधार पर ही वटवृक्ष विशालता को प्राप्त होता है, अन्यथा उसका स्वल्पबीज कहां और उस वटवृक्ष की विशालता कहां ? रत्नाकर सागर कहां ? देवनदी मन्दाकिनी कहां ? स्तनपायी वत्स कहां और पीवरस्तनी गौ कहां ? इन सभी के मूल में सत् पुरुषों की सद्नीति का

---

१. कदाचित् महामत्तमातंग युद्धैरनेकैश्च भृत्यैः पुराणैः प्रमाणैः ।
विनोदैरनिंद्यैश्च मल्लश्रयोद्यैर्न जानाति कालं गतं नित्यसौरव्यैः॥ ३७७ ॥
तं नागराजमारुह्य कदाचित् काननादिषु ।
मधौलीला विहारार्थं व्रजत्यमरनायकः॥ ३८२ ॥
कदाचित् पनोत्तालगतिभिर्वाजिपत्तिभिः।
शिबिकायां समारुह्य याति स्वजनसंयुतः॥ ३८३ ॥
ग्रीष्मर्तौजलक्रीडां विधाय वनिताजनैः।
प्रयातिभोगसामग्री प्रबलोऽमरसिंहराट् ॥ ३९६ ॥
सत् सूर्यकांति मणिबद्धसुगेहभूमौ, सद्गंधबन्धुरपटावृतमंचकेषु ।
आश्लिष्य गाढमबलाजनमब्दकाले, धर्मेण वोष्णयति चित्रपुराधिनाथः॥ ४०६ ॥
चन्द्रोज्वलो शरदि निर्म्मलजातनीरे, प्रोत्फुल्लचारुकमलाढ्य जलाशयादौ ।
दुग्धाब्धिफेनसमसद्यशसा त्रिलोकी, संख्यापयन् रमति चित्रपुराधिनाथः॥ ४१० ॥
हिमऋतौ सुखकारिणी कामिनां, रतिसुरैरनुयोजयते नृपः
सुकरैस्तनमद्र्दनमादधन्, रविरिवोज्लताममरेश्वरः॥ ४१३ ॥
शिशिरकालमबालक सौरव्यदं रविकरेहनसंस्थितसज्जनम् ।
परमकोमलवस्त्रसमन्वयैः सुखगणं भजतेऽमरनायकः॥ ४१५ ॥

२. अमरसार-नीतिखण्ड, श्लोक-१-५,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ही फल निहित है । ऊष्मा कहां ? तपनोष्ण धरा कहां ? वर्षा का बरसना कहां ? गर्भ का संस्थान कहां और बालक की उत्पत्ति कहां से ? गगन मार्ग में सूर्य विचरण करता है । अपने पंखों से विहग शनैः शनैः उड़ने की शक्ति प्राप्त करते हैं । यथावसर वृक्ष फलों से युक्त हो जाते हैं, यह सब कुछ सदायश का ही फल है । मदोन्मत्त गजराज के कुंभस्थल को विदीर्ण करने वाला सिंह मृग की तरह वश में कर लिया जाता है, एक मात्र सद्युक्ति संगत बुद्धिमत्ता का ही परिणाम है ।[१]

विवेकपूर्ण सत्पात्र को दिया गया दान यशस्कर होता है । नीति पूर्वक कही गई वाणी निश्चय ही विजयदायिनी होती है । नियमानुकूल युक्ति निर्दिष्ट आसन वीर्यवर्धक होता है, युक्ति रहित ये सभी अनर्थकारक होते हैं । कहां कहां से लाया गया जल और मिट्टी इन दोनों के संयोग से स्निग्ध मृतिका द्वारा घट का निर्माण होता हैं । पराङ्मुख राजा के सामने स्थित क्रुद्ध शत्रु और युक्ति से व्यवहृत अपनी स्त्री भी अनुगामिनी हो जाती हैं । स्वभाव से नीचे की ओर जाने वाला जल भी ऊपर की ओर ले जाया जा सकता है, अधिक क्या ? प्राणों का अपहरण करने वाला विष भी विधि विधान पूर्वक सेवन करने से पीयूषवत् गुण को देने वाला सिद्ध होता है । बलिष्ठ देवता वशीभूत हो जाते हैं । अतिकठोर वज्र का भेदन भी संभव है यह सभी सद्युक्ति के फलस्वरूप इस चराचर विश्व में दृष्टिगत होते हैं, जो असाध्य कुछ भी नहीं है ।[२]

---

१. गुरुरपि नीत्या पुरुषं प्रसीदति क्ष्माधिपोऽपि विनययुतम् ।
राजापि नीतिवर्ज्यो विमुच्यते सकलभृत्यजनैः ॥ ७ ॥
रत्नाकरः कुत्र सुरापगा क्व वा वटस्य बीजं क्व विशालता तरोः ।
स्तनंधया कुत्र च पीवरस्तनी क्रमेण सर्वं प्रभवेत् सतां फलम् ॥ १४ ॥
क्वोष्मा तपोष्णा धरणी क्व वर्षणं क्व गर्भसंस्था क्वच बालकोद्भवः ।
क्व घूलिमग्नत्वमिह क्व यौवनं क्रमो हि दुःखाद्रि सुरास्त्रसदृशः ॥ १९ ॥
सूर्यः क्रमादेति वियत् पथे स्वयं सपक्षिणस्युत्क्रमते विहगंमाः ।
फलन्ति वृक्षाः क्रमतस्तथेप्सितं सिद्ध्येजनस्यात्र सदातिनिश्चितम् ॥ २८ ॥
मत्तेभकुंभस्थलघातनोद्यतान् हरीन् धराद्वैत पराक्रमान् जनाः ।
मृगानिव स्वंवशमानयंति तत् सुयुक्ति साहायमवाप्य केवलम् ॥ ३२ ॥

२. युक्त्या कृतं दानमिदं यशस्करं युक्तोदितं वाक् जयकृत्भवेत्ध्रुवम् ।
युक्त्यासनं पुष्टि सुवीर्यवर्धनं, तया विनानर्थक भुक्तमादितः ॥ ३६ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि जीवंधर, इस सहायक प्रकरण में सहायता से इच्छित दुर्लभ कार्य भी सिद्ध हो जाते है, उसका अनेक उदाहरणों से समर्थन करता है। इस वसुंधरा पर पवन की सहायता से पावक नानाविध धान्य एवं रसों को परिपक्व करता है। राजा हस्ति अश्व और पदाति आदि के बल से दुर्दमनीय शत्रु को परास्त कर देता है। नौका द्वारा अगाध सागर के जल पर तैरा जा सकता है।[१]

अपनी इष्ट सिद्धि के लिए कभी किसी से विरोध नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की गुरु एवं शास्त्रोक्त बात को मानकर मानव साहाय्य प्राप्त कर अपने सभी अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करे। इस तरह से सहायता का महत्त्व अंकित किया गया है।[२]

इसके अतिरिक्त मनुष्य को शास्त्राभ्यास सतत करते रहना चाहिये। इस प्रकरण में इस बात पर कवि द्वारा उदाहरण देकर जोर दिया गया है। यथा स्वर्ग, पाताल-तल, शिवालय, सिन्धु, चन्द्रमा और पर्वत के मस्तक पर स्थित जो कुछ भी है वह सब कुछ जाना जा सकता है। श्रृंगार, हास्य, रौद्र, करुणादि रस शास्त्राभ्यास से ही अवगत होते हैं। चौंसठ कलाओं का विज्ञान एवं तीनों जगत् का परिज्ञान

परान्मुखो भूपतिरस्य सन्मुखः कुद्धोऽपिशत्रुः प्रभवेदभीष्टदः।
स्याद्योषिता साध्यतयानुगामिनी, युक्त्यान्वितांतः करणस्य यत् सतः ॥ ३९ ॥
अधोगतिन्नीरमिदं स्वभावतो, युक्त्योर्द्धमेवात्र च नीयते क्षणात्।
प्राणार्पहं युक्ति सुभक्षितं विषं, पीयूषवत् सद् गुणमातनोति नु ॥ ४० ॥
युक्त्या बलिष्ठोऽपि च जायते जनैः सुरोऽपि वश्यः प्रभवेत् सुयुक्तितः।
वज्रं कठोरं च विभिद्यते स्वयं सुयुक्त्यसाध्यं न हि कंचन क्षितौ ॥ ४१ ॥
अमरसार-नीतिखण्ड श्लोक सं. ३६-४१ तक।

१. सहायतः कार्यगणो विधीयते इच्छाप्रयत्नावगमैः सुमानवैः।
मरुन्सहायं समवाप्य पावकः पचत्यनेकान्नरसान् क्षितौ ॥ ५४ ॥
हस्त्यश्वपादातगणे सहायितै द्विषां बलं तज्जयतेऽत्र पार्थिवाः।
अगाधसिंधावपिनौ सहायिनी भूत्वाखिलं तारयति स्म तज्जलम् ॥ ५५ ॥

२. कुर्यात् विरोधं न हि केनचित् क्वचित् सर्वान् सहायात् रचते सदिष्टये।
सर्वे यवाप्नोत्यधिकं तरोन्यथा फलं क्लेशकृतेन किंचन ॥ ७४ ॥
गुरुवरोदितमागम भाषितं यदि जनं सुसहायमवाप्नुयात्।
तदखिलं फलमत्र लभेज्जनो [illegible] विनाशकम् ॥ ७५ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा, योगी आदि में निःसन्देह मान्य होता है। शास्त्रावबोधी पण्डित को देश, यश, और वांछित वस्तु का लाभ होता है, इसलिए निरन्तर शास्त्राभ्यास करते रहना चाहिए।[1]

कवि अब सदाशय के महत्त्व को बतलाता है। स्वर्ग, मृत्युलोक और पाताल में सदाशय के बिना कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता है। राजा का आश्रय बहुत बड़े भय को दूर करने वाला होता है। देवाश्रय से होने वाला अनिष्ट नष्ट हो जाता है। सद्गुरु के अवलम्बन से जडत्व का नाश होता है।[2] जलाश्रय से पत्र और राजाओं की सभा में विद्वान् सुशोभित होते हैं। ग्रामीण लोकरूपी आतप से तप्त इस भूमण्डल पर उक्त ये दोनों दृष्टिगत नहीं होते हैं। अर्थात् सूर्य से संतप्त वसुधा पर कमल और मूर्खों के पास पण्डित नहीं रहते हैं सदाशय से ही सद्वस्तु का दर्शन होता है। इस पृथ्वी पर जो जहां उपयुक्त होता है वही कल्याणप्रद होता है और शोभावर्धक माना गया है, यथा कज्जल नेत्र में न लगाकर भाल पर लगाया जावे और नेत्र में कज्जल लगाने के बजाय कुंकुम लगाना शोभादायक नहीं होता है।

---

१. स्वर्गे च पातालतले शिवालये, सिंधौ विधौ पर्वतमस्तके च ते।
यच्चास्ति यत् किंचिदपि प्रबुद्ध्यते, शास्त्रेण तत् सर्वमशेषितं सदा॥ ८१॥
श्रृंगार वैराग्यभयाद्भुतं कृपा बिभत्सनारुद्रसुचारहास्यकाः।
शास्त्रेण सर्वोऽपि सुपंडितै रसा बुद्धयंत एवाभ्यसिते सत्फला॥ ८२॥
चतुषष्टिकलायाश्च विज्ञानं च जगत्त्रयं।
तत् शास्त्राभ्यासयोगेन भवेन्नुर्नात्र संशयः॥ ८५॥
शास्त्रं सुनिश्चलधिया परिचिन्तनीयं पूर्वं यदीप्सति बुधो विपुलं फलं ते।
भूपेषु योगिषु वणिक्ष्वनुबुद्धशास्त्रो मान्यत्वमेति मनुजोऽपि विसंशयेन॥ ८६॥
पुण्यं धनं सुजनाधिक वैभवापि पुंसो भवेव्वसुयशोगुणवस्तुलाभ।
शास्त्रेण नीतिगतिबोधनमिष्टसिद्धिस्यान्निश्चितेनविबुधस्य न संशयोऽत्र॥ ८८॥
अमरसारनीतिखण्ड।

२. सदाश्रयः सर्वसुखैकसागरः, स्वर्मर्त्यपातालधराभिमानितः।
शंताविधेयसुखमीप्सितां सदा, विनाश्रयं नैव भवेदभीप्सितम्॥ ९०॥
भूपाश्रयो भूरि भयापहारको, देवाश्रयोरिष्टगणप्रणाशनः।
समाश्रयः स्यात् सुगुरोर्जड़त्वहत, सर्वाश्रयः सर्वफलं प्रयच्छति॥ ९८॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कहा गया है कि विपरीत स्थान पर प्रयुक्त पदार्थ सुन्दरता को बढ़ाने वाले नहीं होते है ।[१]

निपुणता उसकी मानी जाती है और विशिष्ट स्नेह वही प्रप्त करता है जो योग्य स्वामी का आश्रय प्राप्त करता है । विद्या उसी की फलवती होती है, जो सत् प्रयत्न में रहता है । सम्पूर्ण रूप से अपने अनुरूप किया हुआ अभ्यास, गुणों के सागर आचार्य वर्य के तत्वावधान में रहने पर ही इष्ट साध्य की पूर्ति होती है ।[२] दानशीलता, सुजनता, यश, सौभाग्यशाली होना, राज्य, पाण्डित्य, शौर्य, सत्कन्या, कृषि, मंत्र, औषध और विज्ञान ये सभी अच्छी तरह से परीक्षा किये हुए गुणवान् व्यक्ति के पास इच्छानुसार निश्चित ही अधिगत होते है । घने जंगल में रहता हुआ वृक्ष, कुसुमपत्रादि का भक्षण करने वाला शुक सत्संग के आश्रय से गुण को जाननेवाला हो जाता है । अत्यन्त कठोर मिट्टी कुम्भकार केअवलम्बन से घड़े आदि में परिणत हो जाती है । जड़ मन शीलवान व्यक्ति के समाश्रय से निपुण हो जाता है । अशोभनीय भी शोभनीय होता है । रथ्या(गली) का जल मन्दाकिनी के आश्रय से सुरेश्वर के लिए उपयोगी होता है, सारांश यही है कि सर्वदा व्यक्ति को सत्संग और सदाश्रय में रहना चाहिये ।[३]

---

१. जलाश्रिये पद्मगणं सुशोभते राज्ञां सभास्वेव बुधो विराजते ।
ग्रामीणलोकातपतप्तभूतले न तद्द्वयं तिष्ठति निर्विवाधनम् ॥ ९९ ॥
यद्यत्र युक्तं भुवि तेन योजितं शमेतिशोभामितरं न चान्यथा ।
न कज्जलं भालमवाप्य कुंकुमं, नेत्राश्रितं सुन्दरतामवाप्नुते ॥ १०० ॥

२. नैपुण्यं तस्य मन्ये विपुलरतिरसौ यश्रयेद्योग्यमीशम्,
सद्विद्या तस्य जाता फलकरणपरा सत्प्रयत्नोऽस्ति तस्य ।
तेनैवाभ्यास योगादखिलमपि कृतं स्वानुगं भूतलेऽस्मिन्,
शुद्धार्याचार्यवर्यो गुणनिधिरनिशं य परेष्टाभिलाषी ॥ १०५ ॥
अमरसार-नीतिखण्ड ।

३. दातृत्वसुजनत्वमुत्तमयशः सौभाग्यराज्यादयो,
पाण्डित्यं च विदग्धतारणमुखे शूरत्वमिष्टं फलम् ।
सत्कन्याकृषिमंत्र भैषज कला विज्ञानमप्याश्रयात्,
सर्वं स्यात् सुपरीक्षितस्य गुणिनः वांछानुगं निश्चितम् ॥१०८ ॥
अगम्यारण्योत्थस्तरु कुसुमपत्रद्यशनिकंः,
शुकः सर्वं वेत्ति प्रबलगुणवत् संगवसतः ।
मृदत्यंतं रूक्षा प्रकृतिपरिणमंततया

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि का कथन है कि व्यक्ति सर्व प्रथम विचार करता है तदन्तर उसे क्रिया का रूप देता है । देवता, राजा और सर्प के विषय में सेवा वणिक् कर्म और उपचारादि कृत्यों में सर्वत्र पहिले सम्यग् विचार कर ही कार्य किया जाता है, पण्डितों द्वारा अच्छे विचार की प्रशंसा की गई है । बिना विचार किये हुए यदि व्याघ्र और सर्पों से युक्त तथा तस्करों से पूर्ण मार्ग में जाता है तो उसकी इष्टसिद्धि में बाधा होती है और दुष्टों से विनाश को प्राप्त होता है ।[१]

योजनाबद्ध विचार करने के पश्चात् कुम्भकार घड़े, प्याले आदि पात्र अच्छी मिट्टी से निर्मित करता है, किन्तु बिना विचार के मानव सुवर्ण को प्राप्त करके भी कुछ नहीं कर सकता है । तप, जप, मंत्र और अच्छी औषधी का सेवन कृषि शास्त्र एवं सुन्दर चित्रों का बनाना सभी कुछ अच्छे विचारों से ही सम्भव है । धन, बल, बुद्धि, अभीष्ट वस्तु सब कुछ अच्छी तर्क शक्ति से भी प्राप्त होते हैं । राजा और भृत्यगण सत् तर्क के फलस्वरूप ही सुख के कारण सिद्ध हुए हैं [२]

इन विशिष्ट विषयों पर कवि अपने विचार व्यक्त करने के अनन्तर साधारण नीति की ओर अपने विचार प्रदर्शित करता है । विचारवान् चतुर व्यक्ति नीतिपरक उपदेश सुनकर उसी प्रकार गुण और दोषों को अलग अलग कर देता है । यथा हंस दूध और पानी को । दुष्ट हित के वचन कहने पर भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता

कुलालं संश्रित्य प्रभवति घटाद्याकृतियुता ॥१०९ ॥
जडं मनस्यान्निपुणं समाश्रयात्, संशोभनीयं च भवेदशोभनम् ।
रथ्या जलं स्वर्गनदीसमाश्रयात्, सुरेश्वरैरप्यनिशं प्रवंद्यते ॥११० ॥
अमरसार-नीतिखण्ड

१. सर्वत्र शस्तो विबुधैर्विचारो देवेषु भूपेषु च पन्नगेषु ।
सेवा वणिक्कर्म सुपुष्कलेषु भैषज्यकृत्येष्वपि सन्निदानम् ॥ ११४ ॥
विना विचारं पथि गम्यते यदा व्याघ्रोरगाद्ये बहुतस्कराकुले ।
दूरेण सिद्धयै भुवि तत् स्वयं प्रणस्यते दुष्टधियातिवंचितैः ॥११७ ॥

२. विचारितांकुम्भघटीसरावकान् सन् मृत्तिकां गृह्यकरोति मानव
विना विचारं गृहीतां तु कांचनं न वांछिताप्त्यै प्रभवेत् कदाचन ॥ ११९ ॥
तपोजपोमन्त्रमहौषधादिकं, सेवा कृषिशास्त्र सुचित्रकर्म वा ।
यत् किंचिदिष्टं नरलोकमध्यगं, सर्वे क्षणात् सिद्धयति तर्कचेतसः ॥१२९ ॥
धनं बलं बुद्धिरभीष्टवस्तु, सिद्धयत्यशेषं शुभतर्कशक्त्या ।
राजा प्रजा भृत्यगणश्चसर्व्वः, सिद्धयत्यशेषः सुखहेतुतर्कात् ॥१३५ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है, जैसे सर्प दूध पीकर के विष का वमन करता है । महिष सम्पूर्ण सरोवर को कीचड़ युक्त बना देता है और शिला अपनी कठिनता छोड़कर मृदुभाव को प्राप्त नहीं होती है । मनुष्य, राक्षस, उत्कृष्ट विद्या, स्वर्ग, ऐश्वर्य सद्वंश ये सभी उत्तम शील के कारण सुखकारक होते है । इहलोक और परलोक में एक मात्र सुख का कारण सद्बुद्धि और विनय ही है, सर्वदा विनयशील व शालीन होना चाहिये ।[1]

भाग्य की अभिवृद्धि के लिये खेत को कंटक वृक्ष और पत्थरों से मुक्त कर अच्छी तरह साफ किया जाता है वैसे ही चोर, वाचाट और दुष्टों को भी अपनी प्रजा में राजा को नहीं रखना चाहिये । अयोग्य व्यक्ति को अधिकार देने से जन-जीवन क्लेशमय हो जाता है, अतः समर्थ और योग्य पुरुष को ही मुख्य अधिकारी पद देना चाहिये । मंत्री गुरु और हित चाहने वालों से यदि हितकारक कठोर वचन कहे जावे तो वे औषधी की तरह विपत्तिनाशक होते हैं इसलिये उन वचनों का श्रवण करना चाहिये ।[2]

स्वामी प्रतिदिन धर्माचार में परायण जनों की उत्साहदायिनी उत्तमोत्तम भारतीय नीति को जाने । धैर्य, स्थैर्य, सुवीर्य, शक्ति और महिमा से युक्त स्वयं परीक्षा करके बुद्धिमान् व्यक्ति सेवकों को गांव, हाथी, घोड़े, वस्त्रादि देकर संतुष्ट रखे । काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, मात्सर्य, इन षड् दोषों से युक्त मानव को राजसभा में प्रवेश नहीं देना चाहिये ।[3]

---

१. क्षीरांभुसोरिवासौ दोषगुणौ हंस इव पृथक् कुरुते ।
श्रुत्वा नीत्युपदेशं विचारचतुरः स शास्त्रार्थे ॥१४३ ॥
पीत्वा पयो हि गरलं ददाति सरस्समस्तै महिषः सपंकम् ।
शिलामृदुत्वं न कदापि दुष्टास्तथा हितोक्त्यापि करोति दौष्ट्यम् ॥१४६ ॥
नरासुरस्वर्गवशीकरं परं विद्याविभूत्यन्वयवीजमुत्तमम् ।
इहा परत्रापि च सौख्यकारणं कुर्यात् सुबुद्धिर्विनयं निरन्तरम् ॥१६९ ॥

२. क्षेत्रं नरैरूपकंटकवृक्षमध्ये संशोधनीयमिह सस्यगणाभिवृद्धयै ।
तद्वत् प्रजासु विभुना बहुमत्तचौरवाचाटदुष्टचरणोऽपिनिवारणीयः ॥१७१ ॥
अयोग्याधिकारं जनं चेन्नियुक्ते तदा न प्रजाजीवनं भूतलेस्मिन् ।
समर्था भवेत् कर्तुमंतोवलोक्य प्रदद्यादतो योग्यमर्त्यस्य मौख्यम् ॥१७६ ॥
मंत्रीगुरुहितवर्गैरुपदिष्टं यदि हितं कठोर स्यात् ।
भैषज्यमिव विपत्तिं ध्वंस्युपदेशं सदा शृणुयात् ॥१८३ ॥

३. धर्माचारपरायणश्रितवतां भर्ता विभुर्नित्यशः

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रूपवती, लावण्यमयी, कलाप्रवीणा, विनीता, मात्सर्य राग द्वेषादि से वर्जित, अपने पति में भक्ति रखने वाली, उच्चकुलीना स्त्री का प्रधान पट्ट महिषी पद के लिये राजा को चयन करना चाहिये । कोई नृपति यदि अपने विपक्षीवर्ग पर विजय प्राप्त करना चाहता है तो अपने अन्तरंग काम क्रोध लोभादि शत्रुओं का नाश करना चाहिये ।[१]

इसमें कोई संदेह नहीं, मद से उद्धत मिथ्या सम्मान चाहने वाले व्यक्ति के लिये ऐसा जीवन एकमात्र विडम्बना है । सूखे काष्ठ की तरह वे कभी नहीं झुकते है । महाक्रोधाग्नि में जलता हुआ मानव अन्ततोगत्वा भस्मीभूत हो जाता है, यह ध्रुव सत्य है ।[२]

अनेक पुनीत तीर्थ मांर्गों से भ्रमण किया जाय, प्रचण्ड सूर्य किरणों के आगे तपस्याचरण में रत रहे, किन्तु जब तक सुनीतिरूपी काम धेनु का अवलम्बन नहीं लिया जावेगा तब तक इस भूतल पर मुक्ति नहीं हो सकती ।[३]

निम्बवृक्ष को चाहे मधु से सिंचन करो वह अपनी कटुता नहीं छोड़ता, गौ दुग्ध के मिश्रण से चिरायता अपनी तिक्तता दूर नहीं करता, उसी प्रकार दुष्ट का बहुविध उपकार किया जाय तो भी वह कदापि अपनी चित्त विकृति का त्याग नहीं करता है ।[४]

श्रीमद्भारतनीतिमुत्तमतरां जानातु चोत्साहिनी ।
धैर्यस्थैर्यसुवीर्यशक्तिमहिमायुक्तान् परीक्ष्यस्वयम्,
भृत्यान् ग्रामगजाश्ववस्त्रवचनैस्संतोषयेत् सत् सुधीः ॥१८६ ॥
क्रोधलोभमददानदूषणैः कामकूटबहुमच्छैर्युतः ।
तस्य राजसदसि प्रवेशनं नोचितं भवति मंत्रिता कुतः ॥१९९ ॥

१. सुरूपलावण्यकलां विनीतां मात्सर्यवर्ज्जास्वपतौ सुभक्ताम् ।
कुलोद्भवां स्त्रीपु विभुर्विदध्यात् पट्टाधिराज्ञीं वरशीलभूषाम् ॥२१० ॥
षड्तरंगादिमयं जयेत् पुरा विपक्षवर्गं यदि जेतुमिच्छति ।
क्रोधाभिमानालशलोभमन्मथान् मायां स्ववर्गेण च भूमिनायकः ॥२२० ॥

२. मदोद्धतैर्मानविडंविनाशयैः, सदाप्यनम्रैधनसदृशैः क्षितौ ।
ज्वलन् महाक्रोधहुताशने जनैर्समाप्यते भस्मपदं न संशयः ॥२६८ ॥

३. बंभ्रम्यतां तीर्थमनेकवर्त्मना, संतप्यतां सूर्यकराग्नितापनैः ।
सुनीतिधेनुक्षयजातपातकात्, मुक्तिर्भवेन्नैव कदापि भूतले ॥२८३ ॥

४. न निम्बवृक्षो मधुनापि सिंचितः, न पत्रगो गो पयसातिपोपितः ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जड़ता रूपी अंधकार से व्याप्त नेत्रों वाले पुरुष के हृदय में शिक्षा रूपी उत्तम मणि का प्रवेश नहीं होता हैं, जब तक हित और अहित के अन्वेषी मंदमति वाले पुरुष को गुरूआदेश रूपी अंजन-शलाका नेत्र में नहीं लगाई जावे तब तक उसका जाड्य, अज्ञानान्धकार दूर नहीं होता है ।[१]

धन, मान और वासना से यह आशारूपी पिशाची कदापि तृप्ति को प्राप्त नहीं होती है । सदानंद पद को प्राप्त हुए सज्जन पुरुष संतोष के बिना इसका निग्रह नहीं कर सकते इसलिये संतोष ही परमानन्द का प्रदाता है ।[२]

धर्मखण्ड

कवि अपने इस काव्य अमरसार में धर्मखण्ड नामक प्रकरणान्तर्गत सर्वप्रथम शिव और गणेश की वन्दना कर धर्म के महत्त्व को बतलाता है । धर्म सभी मानव, देवता, शेषनाग और राजाओं के प्रमोद को देने वाला है । द्रव्य, बल, आयु और ऐश्वर्य का प्रदाता है । सद्बुद्धिवाले सुन्दर कला और विज्ञान के वेत्ताओं को अपने अभीप्सित प्रयोजन के लिये धर्माचरण करना चाहिये ।[३]

भ्रमर पुष्पित केतकी को, वनगज सल्लकी को, मत्स्य सिन्धु को, मानव असंख्य पुण्यों को देने वाले तीर्थ को, व्यवहारी रत्नाद्रि को, देवता सुमेरुपर्वत को, और योगी प्रभु को इस प्रकार की सम्पत्तियां वैसे ही धार्मिक पुरुष को अधिगत हो जाती है[४]

तथैव दुष्टो बहुधोपकारित, कदापि चेतो विकृतिं विमुंचते ॥२९५ ॥

१. जाड्यांधकारावृतचक्षुषां हृदि नायातिशिक्षामणिरुत्तमार्पित ।
विना गुरूक्त्यंजनसत्शलाकया हिताहितान्वेषण मंदचेतसाम् ॥३०४ ॥

२. आशा पिशाची धनमानवासनात्, न तृप्तिमभ्येति कदाचिदाश्रिता ।
संतोषमात्रेण विनिग्रहं विना सतां सदानंदपदप्रणायिनाम् ॥३१२ ॥

३. धर्मः सर्वनरामरोरगपति पार्थाप्रमोदप्रदः,
धर्मो द्रव्यबलायुरिष्टनिलयाश्चानेकपैश्वर्यद ।
निर्व्याध्यंग सुबुद्धिसुंदरकलाविज्ञानशिक्षागुरुः,
कर्तव्यो विबुधैर्सदेष्टजनको स्वात्मेप्सितार्थाप्तये ॥३ ॥

४. भृंगाः पुष्पितकेतकीं वनगजारेवाद्रदं सल्लकीम्,
मत्स्याः सिन्धुमगण्यपुण्यफलदं तीर्थं यथा मानवाः ।
रत्नाद्रिं व्यवहारिणः सुरगिरिं देवा विभुं योगिनो,
सत्संपत्तिरियं तथैव पुरुषं संसेवते धार्मिकम् ॥७ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किसी भी वैशिष्ट्य का अहंकार नहीं करना चाहिये क्योंकि विद्यावान् जड़ता को, धनवान् दारिद्रय, को, निरोगी व्याधि को, राजा अनुचरत्व को, शूरभीरुता को, धैर्यशाली चंचलता को प्राप्त हो जाता है। अतएव किसी को गर्व नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस पृथ्वी पर अभिमान करने का अवसर ही नहीं है।[१]

वृक्ष पर कितने ही पत्ते और फल उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार वंश में भी बालक, वृद्ध, तरुण, अश्वादि अपने ही कर्म से संसार में आते हैं और चले जाते हैं।[२]

इस असार संसार में मानव स्त्री में द्रव्य में अभिलाषा रखते हैं, धर्म पालन में इच्छा नहीं रखते। सर्वदा आरोग्य के इच्छुक प्राणी पथ्य और औषधि सेवन में रुचि नहीं रखते और तपस्या में संलग्न रहकर गुरुचरणों में आस्था भी नहीं रखते यदि इनका पालन करते हुए जगन्नियन्ता जगदीश्वर के ध्यान में मग्न रहे तो सभी वांछित फल की प्राप्ति हो सकती है[३]

कान्ता अपने बल को क्षीण करने वाली, पुत्र धन का अपहरण करने वाले, सहोदर भाई संपत्ति में भाग को लेने वाले, सेवक वित्त का अपहरण करने वाले, यहां तक की ये अपने उपयोगी रसों का उपभोग करने में उत्सुक दृष्टिगत होते हैं, एकमात्र अपना हित करने वाला धर्म ही है, अत: इसके पालन में तत्पर रहना चाहिये।[४]

---

१. विद्यावान् जड़तामुपैति धनवान् दारिद्र्यमारोग्यवान्,
दुर्व्याधिं धरणीश्वरोऽनुचरतां शूरोऽपि सन् भीरुताम्।
धीरश्चंचलतां व्रतात् शिथिलतां शीघ्रं स्वकर्मोदयाद्
गर्वस्यावसरः क्वचिन्न भुवने कस्यापि बालोचिते ॥२५॥

२. कियन्ति पत्राणि फलानिपादपे, उत्पद्य नश्यंति तथा कुलेऽगिंनः।
बालाः प्रवृद्धास्तरुणाश्व भूरिशो, भवन्तिं यान्ति प्रलयं स्वकर्मतः ॥३३॥

३. यथायं स्त्री द्रव्येऽभिलषति न धर्मं भुविजनः,
सदारोग्यं वाञ्छन् चरति न सदन्नौषधरुचिम्।
तपः कृत्वा स्तुत्वा गुरुचरणभक्ति न कुरुते,
जगन्नाथ ध्यानं यदिह लभतेऽभीप्सितफलम् ॥७५॥

४. कान्ता स्वांगबलप्रणाशनकरी, पुत्राधनाद्यर्पकः,
भागं संपदि या वातसहभवः भृत्याश्च वित्तापहा।
देहोपीष्टरसोपभोगरचनं जीवैः कृपालक्षणः,
धर्मः केवलमात्मनो हितकरः सम्यग् विधेयस्सदा ॥१६८॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धन, आयु और प्रभुत्व नदी के प्रवाह सदृश हैं। राजा द्वारा प्रदत्त मान विकसित पुष्प के समान हैं। अखिलबन्धुवर्ग इन्द्र जाल की तरह हैं, जो दृष्टिगत होते हुए भी क्षण में अदृष्ट हो जाते हैं, अर्थात् सांसारिक सभी पदार्थ नश्वर हैं।[१]

अनेक प्रकार से उपार्जित वित्त व्यर्थ है, देवबल भी निःसार है। सकल शास्त्रों के अभ्यास से जनित विज्ञान, सत्संग, अथवा दुष्ट संसर्ग सभी कुछ व्यर्थ है। यदि प्राणी ने इस मृत्युलोक में ईश्वर का भजन व लोकोपकार, सद्बुद्धि पूर्वक दान पुण्य नहीं किया तो सब असार है।[२]

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट है कि अमरसार अमरसिंह का यशोगान होने के साथ ही नीति, धर्म आदि का भी महत्वपूर्ण कोष है। और इस दृष्टि से इसका राजशास्त्र, नीतिशास्त्र, तथा धर्मशास्त्र आदि से तुलनात्मक अध्ययन भी उपयोगी प्रमाणित होगा। इसकी उक्तियां निश्चय ही मनोहारिणी हैं। तथा साहित्यिक दृष्टि से यह काव्य निश्चय ही मूल्यवान है।

साहित्यिक सौन्दर्य

निम्न श्लोक में केवल ह्रस्व मात्राओं का प्रयोग ही कवि ने किया है :—

जयवरनरनिकरनतसुपद अमररिपुवनवरधनदहन,
गणजयनयमयवचनरचन वशिसुजनधनकठिनं सुकरगणसदन।
मदनमददलन कमलसमनयन सबलछलविजित सुगणनिचय,
भवफलगणकरणशरणअनुगतजनशिवपदजनहृदय सुभग ॥१२०॥

प्रतापवर्णन

कवि ने 'बाण' की शैली को अपनाते हुए श्लेषालंकार का सुन्दर चित्रण किया है।

सरोगः केवलं हंसो, सगर्वाः केवलं स्त्रियः।
समदाः केवलं नागाः, केशपाशः सबन्धनः ॥ ३८ ॥

---

१. नद्या प्रवाह सदृशं धनमायुरैश्यं, भूपस्य मानमपि फुल्लविकाशतुल्यम्।
स्यादिंद्रजालसदृशोऽखिलबन्धुवर्गः दृष्टोऽप्यदृष्ट एव यो भवति क्षणेन ॥१९०॥
व्यर्थं वित्तमनेकधार्जितमिह व्यर्थं बलं दैवजम्,

२. विज्ञानं सकलागमाभ्यसितिजं सत् संश्रयो वा खलः।
चेन्नज्ञातमिहेश्वरस्य भजनं लोकोपकारोऽथवा,
दानं पुण्यमनेकधापि भुवि चेत् मर्त्येन सम्यक् कृतं ॥१९३॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(कवि राणा अमरसिंह के समय की सामाजिक अवस्था का वर्णन करता हुआ लिखता है कि एक मात्र सरोग-सरोवरगामी हंस ही थे, समाज में कोई भी प्राणी रोग युक्त न था। सगर्वा केवल स्त्रियां ही थी पुरुष अभिमानी नहीं थे। हाथी मद से युक्त थे और कोई भी अंहकारी नहीं था। बन्धन केवल केशपाशों में ही दृष्टिगोचर होता था, अन्यत्र सामाजिक बन्धन किसी भी प्रकार का नहीं था)।

इस श्लोक में सरोग 'समद' सबन्धन शब्द श्लिष्ट है, इसलिए इस श्लोक में श्लेषालंकार है।

हिन्दुत्वाभिमानी, भारतीय संस्कृति के संरक्षक, मानैकधनी महाराणा प्रतापसिंह के पराक्रम सदृश ही उनके पुत्र राणा अमरसिंह हुए। इस आशय को लिए हुए कवि के विचार उपमालंकार के प्रयोग के साथ निम्नांकित हैं।

दीपाद्दीप इव द्रुमाद्द्रुम इव प्रायोऽनरूपो महान्,
शूरोदारगभीरधीरसुगुणैरापूर्णगात्रशुचिः।
देवैः स्वेश इति नृपैरधिप इत्युद्यत्फणीन्द्रोरगैः,
दृष्ट्वा श्रीपत एव भूमिवलये जातः प्रतापांगजः ॥ ५९ ॥ वंश वर्णन

'एक दीपक से दूसरा दीपक जिस प्रकार प्रज्वलित होता है। एक विशाल वृक्ष के बीच से दूसरा महान् वृक्ष बन जाता है। प्रायशः एक के पश्चात् एक अनुरूप पदार्थों का होना दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार शूर, उदार, धीर, गंभीरादि गुणों से परिपूर्ण महाराणा प्रताप के पुत्र राणा अमरसिंह हुए, जो साक्षात् विष्णु के समान ही इस भूमण्डल पर हो गये)।

इस श्लोक में दीपक के सदृश दीपक, वृक्ष के समान वृक्ष होता है, यहां इव शब्द के सादृश्यवाचक होने से उपमा अंलकार है और राणा अमरसिंह भगवान् विष्णु रूप में ही इस भूमण्डल अवतीर्ण हुए। अमरसिंह में विष्णु का आरोप होने से रूपक अंलकार प्रयुक्त हुआ है। इस तरह उपमा और रूपक दोनों ही अंलकार इस श्लोक में है।[१] कवि ने मंत्री डूंगरसिंह के वर्णन में एक और उदाहरण उपमा और रूपक का प्रस्तुत किया है।

धर्मार्थमूलं सुखमेव कालं बुद्ध्याम्भसोपार्ज्य सडूंगरे।
आरामपालीव विचित्रवृक्षं फलं लुनातीष्टकरं सदासौ ॥ ३०० ॥ यश खण्ड ॥

---

१. यह उपमा कवि ने कालिदास से उधार ली है। तु. "प्रवर्तितो दीप इव प्रदीपात्"।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(धर्म और अर्थ के मूल सुखमय समय को अपने बुद्धि वैभव से उपार्जित करके वह डूंगरसिंह उद्यानपति की तरह इष्टलाभार्थ अनेक प्रकार के वृक्ष और फलों का उपभोग करता है)।

'सुखरूपी' समय में धर्मार्थमूल सुख का आरोप होने से रूपकालंकार। आरामपाली (माली) के समान इस अर्थ में उपमा का प्रयोग कवि ने किया है।

निम्नलिखित श्लोक विनोक्ति अलंकार का सुन्दर उदाहरण है:—

विनाप्यरिगणे सूराः, विनाप्यर्थिजनोऽर्प्पणः।
विना हेतौ सदोत्साहा, सदामरनुपानुगाः ॥१७२॥ प्रतापर्वन॥

(राणा अमरसिंह के राज्य में अरिगण के बिना भी शूरवीर निवास करते थे। याचक जनों के बिना भी दान देते थे बिना किसी कारण के भी उत्साह धारण किये हुए थे। इस प्रकार राजा अमरसिंह का अनुगमन करने वाले राजा लोग सर्वदा इन गुणों से युक्त थे)

श्लोक में 'विना' शब्द के प्रयोग एवं अर्थ से विनोक्ति अंलकार है।

कवि द्वारा राणा अमरसिंह के प्रताप और कान्ति का वर्णन करते हुए सुन्दर अतिशयोक्ति अंलकार का प्रयोग हुआ है।

सूर्यः प्रतापस्य शशी सुकान्तेः तद्देहसेवार्थमिहाब्जवृन्दः।
तुल्यत्वमाप्तुं गगने जले च, तपः करोति प्रबलं नितान्तम्॥७८॥
प्रताप वर्णन॥

(राणा अमरसिंह के प्रताप की समता करने के लिए सूर्य और कान्ति के लिए चन्द्र ये दोनों आकाश में तथा कमलसमूह उनके देह सेवार्थ जल में तपस्या करने में रत है)

कवि का अतिशय पूर्ण वर्णन 'अतिशयोक्ति' अलंकार को बतला रहा है।

राणा अमरसिंह (प्र.) की दिनचर्या विषयक इस कृति में कवि ने विवेक पूर्ण अनेक युक्तियों का विशद विवेचन किया है। विविध छन्दों में रचित प्रवाहमयी भाषा में निबद्ध यह रचना चित्ताकर्षक आल्हादजनक है। स्थान स्थान पर नीतिपूर्ण पदावली का ज्ञान प्राप्त होता है। इतिवृत्त के वर्णनानुरूप शान्त, वीर एवं श्रृंगार रस से युक्त यह एक उत्कृष्ट रचना है। कवि ने केवल ह्रस्वमात्रा में ही श्लोक रचना करके अपने अद्‌भुत कवि-कर्म का प्रदर्शन किया है। (अमरसार प्रताप. श्लोक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१२०) यह एक प्रसादगुण युक्त काव्यसौष्ठव लिये हुए श्रेष्ठ रचना है। विद्वान् कवि का प्रयाश श्लाध्य, स्तुत्य एवं सफल है।

श्री जगत्सिंह काव्यम्

यह काव्य कवि रघुनाथ पल्लीवाल (पालीवाल) ब्राह्मण द्वारा लिखा गया है। कवि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में महाराणा जगत्सिंह का और स्वयं के नाम का उल्लेख किया है।[१] लेखक ने राणा जगत्सिंह (प्र.) को नायक मानकर इस कृति को लिखा है। पंचम सर्ग के ७९ में श्लोक में कर्णात्मजं शब्द और संकीर्तयन्ति आदि वर्तमान काल की क्रिया में वर्णन मिलने से प्रकट होता है कि राणा कर्णसिंह का आत्मज राणा जगत्सिंह (प्रथम) था और उन्हीं के शासन काल वि. सं. १६८५-१७०९ के मध्य इस कृति की रचना हुई होगी।[२] स्पष्ट रूप से इसमें रचनाकाल अंकित नहीं है। सम्पूर्ण काव्य में राजा जगत्सिंह की यशोगाथा एवं पौरुष का वर्णन किया गया है।

इस काव्य की हस्तलिखित दो प्रतियां रा.प्रा.वि.प्र. उदयपुर के ग्रन्थांक १५०९ और ७१५ पर है। दोनों ही एक समान हैं तथा अप्रकाशित हैं, उनमें निम्नलिखित अंश अप्राप्त है।

(क) प्रथम सर्ग के ५१ वें श्लोक से ५७ वें श्लोक तक।

(ख) पंचम सर्ग के ४९ वें श्लोक से ५३ वें श्लोक पर्यन्त।

---

१. इत्युर्वीश्वर वृंदवंदितपदांभोजस्य भव्ये महा
राणा श्री जगदेकसिंघ (ह ?) जगती कान्तस्य काव्ये नवे।
संप्राप्तो रघुनाथ भूसुमनसा संदर्भिते सादरम्,
प्राप्त श्री प्रथमः समाप्तिमगमत् सर्गः सभा स्वयुते ॥
'जगत्सिंह काव्यं' सर्ग १ श्लोक ८४।

२. यं पंचमं कविवराः किल लोकपानां,
कर्णात्मजं त्रिदशभूमिरुहां च षष्ठम्।
साम्येन रम्यजनकाम्यलसद्गुणानां,
संकीर्तयन्ति च कुलाचलमष्टमं तम् ॥ ७९ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संक्षिप्त विषय वस्तु काव्य की इस प्रकार है :—

निर्विघ्न समाप्ति की कामना से जगदम्बा माधव (कृष्ण), शिव, गणेश, सूर्य एवं रामचन्द्र की स्तुति की गई है कवि की उक्ति है कि राणा जगत्सिंह (प्र.) अपने गुणोत्कर्ष के कारण कितने महान् हैं ? उनका वर्णन करना मेरे लिए कैसे संभव हो सकता है ? इस प्रकार की उक्ति से कवि अपने गर्व का परिहारकर श्रुति स्मृति से सम्मत धर्म यज्ञादि इस कलियुग में भी हो रहे हैं, यह सभी एक मात्र धार्मिक राणा जगत्सिंह के पुण्य का ही फल है आदि प्रथम सर्ग में यज्ञों का विधान कवि का महत्त्व, और काव्य प्रशंसा बतलाई गई है तथा शूरशंकर द्वारा सत्यसूरि मुनि का स्वागत एवं उनके द्वारा धर्मोपदेश दिया गया है । द्वितीय सर्ग में मुनि ने राणा के उच्च चरित्र का गुणगान किया है । तृतीय सर्ग राणा द्वारा नित्य प्रति दिये गये दान दक्षिणादि का विवरण प्रस्तुत करता है । चतुर्थ सर्ग में भी खुम्माण और मोकल के वंशज राणा को शालीन तथा व्रतचारी बताया गया है । राजपुरोहित स्वयं अपने पुण्योपदेश से धार्मिक प्रवृत्ति का प्रचार करने वाला था, इस उल्लेख के साथ पुनः राणा के गुणातिशय का कवि ने वर्णन किया है । पंचम सर्ग में मेवाड़ प्रदेश की श्लाघा तथा सीमा निर्धारण का उल्लेख है (श्लोक. सं. १-६) । इसके पश्चात् पुनः जगत्सिंह को उनके सद् गुणों के कारण छठे लोकपाल तथा आठवां कुलाचल (पर्वत) के रूप में वर्णन किया गया है । राणा जगत्सिंह ने युद्ध में विपक्षी राजा रूपी समुद्र को प्रचण्ड पर्वत रूपी दण्डसे मथित किया और उस मन्थन से यश रूपी रत्न का चयन किया, उससे उन्हें अपूर्व लक्ष्मी की प्राप्ति हुई और राज्य में स्थायित्व का संचार हुआ । सब कर्म में दक्ष राणा यज्ञों से अपनी प्रजा को सुख देते हुए राजाओं में मुकुट मणि के रूप में सुशोभित होते थे । इस प्रकार राणा के शौर्यादि गुणों का वर्णन हुआ है । कवि ने षष्ठ सर्ग में राणा का यश दिग् दिगन्त में फैले, वह चिरकाल पर्यन्त जीवित रहे इस प्रकार मंगल कामना की है सप्तम सर्ग में राणा जगत्सिंह वर्णाश्रम धर्मानुसार प्रजा का विधिवत्पालन करता था एवं उचित कर ग्रहण करता था । साम,दाम, दंड, भेद उपायों से शत्रु पर विजय प्राप्त करता था । विद्या, वित्त और वय से उत्पन्न अलंकार को सर्वदा दूर रखता था, इस तरह उनकी शासन नीति का विवरण किया गया है । कवि ने अष्टम सर्ग में पौराणिक आख्यानों के महत्त्व को राणा के सम्मुख प्रदर्शित किया, उनमें निहित गुण एवं सदाचार का वर्णन पुराणों में आये हुए व्यास, हनुमान्, परशुरामादि महापुरुषों के उदाहरणों को देकर राणा को उनके समान उत्कृष्ट देवतुल्य चित्रित किया है । सम्पूर्ण काव्य में राजा जगत्सिंह का

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लाघात्मक वर्णन इसकी विषयवस्तु है। इस प्रकार यह काव्य आठ सर्गों में विभाजित है। अधिकांश अनुष्टुप् छन्द में लिखा गया है। शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, उपजाति, स्रग्धरा छन्दों का भी प्रयोग हुआ है।

काव्य दृष्टि से उत्कृष्ट कुछ पद्य उदाहरण रूप में प्रस्तुत हैं।

लसत् स्वर्ललनोल्लासि धम्मिल्लालिसभाकुले।
अवलम्बे निरालम्बो, जगदम्बापदाम्बुजम्॥ प्रथम सर्ग, श्लोक.१।

काव्य के आरम्भ में जगदम्बा की स्तुति करते हुए कवि ने 'ल' और 'ब' अक्षरविन्यास की पुनरावृत्ति कर अनुप्रास अलंकार श्लोक में सुन्दर चित्रित किया है।

प्रचण्डदीर्घदोर्दण्ड कोदण्डो दण्डचण्डिता।
इलाविलासिनीजानिर्जगतेशो विराजते॥ सर्ग ७, श्लोक. १९।

कवि ने राणा जगत्सिह के बाहु पराक्रम को बतालाते हुए चण्ड और दण्ड शब्द के बार बार प्रयोग से अनुप्रास अंलकार के चमत्कार को प्रदर्शित किया है।

रणे रिपूणां प्रसभं गृहीतै, र्यशोभिरिंदु प्रतिमैः प्रकामम्।
प्रालेयपुंजैरिव शैलराजो, राजोपमानं जगदेकसिंघः॥ सर्ग ६, श्लोक.६।

राणा जगत्सिह का यश हिमालय के तुहिनपुंज के समान है। इस प्रकार कवि ने उपमा अलंकार का रमणीय चित्रण किया है।

जित्वा मृणालमृडशैलमरालबालान् प्रालेयपुंजसितमौक्तिक मंजुमालाः।
चेतो धृतेश जगतेश जनेश कीर्ति, कान्तिरिव चन्द्रमसस्त्रिलोक्यम्॥
सर्ग ६, श्लोक.२३॥

मृणाल, कैलाश, हंसबालाओं, हिमपुंज तथा मोतियों की माला की श्वेतिमा को तिरस्कृत करती हुई चन्द्रमा की कान्ति के समान धवल जगत्सिह की कीर्ति तीनों लोकों को प्रकाशित कर रही है।

यह मालोपमा का सुन्दर उदाहरण कवि के पाण्डित्य का परिचायक है।

श्री राणा कर्णसिंघांबुधि जनितविधोस्वंद्रिके वाति सान्द्रा,
सत्कीर्तिः प्रीतिवारां निधिमधिकविदां लीलयोल्लासयन्ति।
ध्वस्तारिध्वान्तधारा भुवि जगतविभोः कृष्णकर्पूरगौरे,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पक्षेऽपि प्रोल्लसन्ति त्रिभुवनभवनोद्भासिनी संप्रवृत्तः ॥ सर्ग. ६, श्लोक.३३ ॥

कवि ने इस श्लोक में 'ध्व' 'लस' और 'भवन' की पुनरावृत्ति से अनुप्रास, उपमान चन्द्रिका से उपमेय राणा जगत्सिह की कीर्ति का आधिक्य वर्णन करना व्यतिरेक तथा चन्द्रिका का आरोप राणा की कीर्ति पर होने से रूपक, इस प्रकार अनुप्रास, व्यतिरेक और रूपक अंलकारों का त्रिवेणी संगम, उसके वैदुष्य का प्रतीक है। श्लोक में भाव सौष्ठव प्रधान है।

जगत्सिंहाष्टक

'जगत्सिहाष्टक' का रचयिता मोहन भट्ट था। किस जाति में उत्पन्न हुए और उनका निश्चित निवास स्थान कहां था? यह वृत्तान्त तो उपलब्ध नहीं होता, किन्तु नवम श्लोक के आधार पर विदित होता है कि वे काशी में रहते थे और शैव मतानुयायी थे।

यह प्रशस्ति, तीन मोटे देशी पत्रों पर काली स्याही से लिखी हुई है। प्रथम पत्र केवल एक ओर लिखा गया है। प्रथम और तृतीय पत्र में ५,५, तथा द्वितीय पत्र में छह पंक्तियां लिखी हुई हैं। प्रत्येक पंक्ति में २५-२२ अक्षर हैं। श्लोक संख्या, श्री विश्वनाथो जयति, इति श्री, शुभमस्तु आदि पर गेरू का प्रयोग हुआ है। 'सैष राणा जगत्सिहो राज्यं कुर्य्याश्चिरं भुवः' के अनुसार इस प्रशस्ति का रचनाकाल जगत्सिह का राज्य काल (वि.सं. १६८४-१७०९) विदित होता है।

प्रशस्ति काव्य की परम्परानुसार महाराणा जगत्सिंह का आशीर्वादात्मक रूप से स्तुति गान किया गया है। अन्तिम श्लोक प्रधान पुरोहित 'रामराज' के उत्कर्ष का द्योतक है। 'स हि भवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्र' उस समस्या की पूर्ति के रूप में यह लिखा गया है। प्रथम श्लोक में कवि ने कहा है कि भगवान् एकलिंग महादेव की जो सेवा करता है उसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो। विद्वद्वृन्द के लिए जो स्वर्ण, गौ, भूमि, और गांवों को वितरण करता है, वह महाराणा कर्णसिंह का पुत्र राजेन्द्र राणा जगत्सिह चिरायु हो।[१] जो पूर्वजों की यशोगाथाओं से कुल गौरव को धारण किये हुए है, वीर, पुरुष श्रेष्ठों में अपनी श्रद्धा रखता है, अपने विशिष्ट ज्ञान से मोह रूपी अज्ञान को दूर करता है, वह राणा कर्णसिंह का पुत्र जगत्सिह

१. "जयतुजयतु शत्रून् विंध्यवासाप्रसादा, भजति निजकुलेशं चैकलिंगं गिरीशम्।
वितरति विबुधेभ्यो हेमगोभूमिग्रामान्, स हिभवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्र ॥ १ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दीर्घायु हो ।[१] वह निर्मल बुद्धि से प्रतिदिन कृष्ण के नाम को जपता है । ज्ञानरूपी चन्द्रोदय से जिसका हृदय-कमल विकसित है, और जो विद्वानों के लिए काशी में (दान के लिए) धन ले जाता है । वह राणा जगत्सिंह चिरकाल पर्यन्त रहे ।[२] चतुर वह राणा सुन्दर मृगनयनियों के द्वारा विविध भोगों का उपभोग करता है । हितेच्छु होकर राज्य के लोगों को मनोविनोद से सुखी करता है ।[३] चित्रकूट (चित्तौड़) का अधिपति उदयपुर निवासी राणा जगत्सिंह महासागर सदृश अपने सैन्य से रिपुबल पर आक्रमण करता है । वह ब्राह्मण, गुरु, गौ, और प्रजाओं के लिए साक्षात् धर्म स्वरूप है ।[४] मेदपाट (मेवाड़) का राजा सर्वदा विजयश्री को प्राप्त किये हुए है । वह निर्मल राजमण्डलों की राजलक्ष्मी से सुशोभित है एवं अपने हाथियों व घोड़ों के खुरों के प्रताड़न से नागराज को कंपित करता है ।[५] वह अपने विपुल धन से धर्मशाला का निर्माण कराता है । श्रेष्ठ ब्राह्मण, गुरु और वृद्धों के लिए वह काशी में आवास की व्यवस्था करता है तथा अत्यन्त ही निर्मल बुद्धि वाला वह अन्न और वस्त्र का प्रदाता है ।[६]

---

१. वहति कुललज्जां पूर्वजानां यशोभिर्महतिपुरुषवर्ये भक्तिदानं करोति ।
समयति निजमोहज्ञानयुक्तैः प्रबोधैः स हि भवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्रः ॥ २ ॥

२. भण (वद) ति विमलबुद्ध्या नाम कृष्णस्य नित्यं
मुदय (विकस) तिहृदयाब्जं ज्ञानचन्द्रोदयेन ।
नयतिबुधजनेभ्यः काशिकायां धनानि,
स हि भवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्रः ॥ ३ ॥

३. विलसति बहुभोगान् कामिनीभिः प्रवीणो, नयनजितमृगीणामंगनानां मनोज्ञैः ।
सुखयति हितरीत्या राजलोकं विनौदैः, स हि भवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्रः ॥ ४ ॥

४. उदयपुरनिवासी चित्रकूटाधिनाथः, प्रभवति रिपुवर्गं सिंधुकल्पैः स्वैसन्यैः ।
द्विजगुरुसुरभीणां धर्मरूपः प्रजानां, स हि भवतुचिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्रः ॥ ५ ॥

५. विचरतिविजयायां मेदपाटस्य राजा,
विमलनृपबलोघैः राजते राजलक्ष्मा ।
हयगजखुरूतोदैः कंपयन्नागराजं,
स हि भवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्रः ॥ ६ ॥

६. प्रथमधनप्रवाहैः कार्यते धर्मशाला,
द्विजवरगुरुवृद्धावास्यते येन काश्याम् ।
परमविमलबुद्ध्या चान्नवस्त्रस्यदाता,
स हि भवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्रः ॥७ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

छन्द

प्रशस्ति में कुल ११ श्लोक हैं, जिनमें से श्लोक संख्या १ से ८ तक की रचना मालिनीवृत्त में नवम और एकादश की अनुष्टुप में तथा दशम श्लोक की इन्द्रवज्रा में है । इसका प्रकाशन पं. बिहारीलाल व्यास (मनोज) ने शोध पत्रिका में किया है ।[१]

॥राजसिंहाष्टक ॥

इस प्रशस्ति का रचियता पीताम्बर का शिष्य मुकुन्द श्रोत्रिय नामक औदुम्बर जाति का ब्राह्मण था, जैसा कि प्रशस्ति के अन्त में लिखा हुआ है ।[२]

प्रशस्ति के प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण में 'चिरंजीव भूमण्डले राजसिंह' का प्रयोग होने से इस अष्टक की रचना वि.सं. १७०९ से १७३७ के मध्य हुई प्रतीत होती है ।

यह प्रशस्ति केवल एक पन्ने के दोनों तरफ काली स्याही से लिखित है । जिसकी लम्बाई साढ़े पांच × चार है । उसके एक तरफ सात और दूसरी ओर छः पंक्तियां हैं । श्लोक संख्या एवं पुष्पिका लाल स्याही से लिखी है ।

महाराणा राजसिंह की यशोगाथा ही इसका प्रमुख विषय है, जो आशीर्वादात्मक रूप में वर्णित है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सागर, बादल, पर्वत, पृथ्वी, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र जब तक है, तब तक राजराजेन्द्र राजसिंह उस भूमण्डल पर चिरायु हो[३] संसार की माता जानकी के स्वामी मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र का पवित्र चरित्र

---

१. स्थिरचरहरिबुद्धया कृष्णमित्रोऽथवा किं,
हरिभजनविधाने सव्यसाची किमन्यः ।
अवितथवचनेष्टो धर्मपुत्रावतारः
स हि भवतु चिरायुः कर्णसूनुर्नृपेन्द्रः ॥ ८ ॥
यस्याष्टकमिदं गीतं मया काश्यां शिवाज्ञया,
सैष राणा जगत्सिंहो राज्यं कुर्य्याश्चिरं भुवः ॥ ९ ॥
श्रीमद्राणा जगत्सिंहमाहात्म्यं किमु वर्ण्यते ।
नाम्ना श्रेयस्करो यस्य रामराजः पुरोहितः ॥ १० ॥ शो.प.व.१४अं १,पृ.४१ ।

२. मुकुन्देन पीताम्बरस्यानुगेन द्विजौदंवरः ज्ञातिजः श्रोत्रियेण ।
कृतं राजसिंहाष्टकं कामदं यः पठेत्तस्य तुष्टोऽस्तु (षु)(खु)म्भाणराणः ॥ ९ ॥

३. विभुर्यावदंभोजजः शंभुरंभोरंभोनिधि र्यावदंभोधराभूधराभूः ।
सुरेन्द्रो दिनेन्द्रो निशेन्द्रो चिरंजीव भूमण्डले राजसिंहः ॥ २ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस जगत् में विद्यमान है। जब तक कलियुग में पापी का ध्वंस करने वाली कृष्ण की कीर्ति है, तब तक इस वन्सुधरा पर राजसिंह दीर्धायु हो।[१] जब तक विश्व के ताप, पाप को नष्ट कर पवित्र करने वाली, स्वच्छ तरंगों से गंगा, यमुना और सरस्वती इस जगती तल पर सुशोभित हैं, तब तक हे राजसिंह ! तू पृथ्वी मण्डल पर चिरकाल पर्यन्त जीवित रहे।[२] पं. बिहारी लाल व्यास (मनोज) ने शोध पत्रिका में इसकी प्रकाशित करवाया है।[३]

राज्याभिषेक पद्धति

विभिन्न वेदशास्त्रादि से संकलित कर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया था, स्वभावतः उसके अधिकारी पाठक भी उन्हीं के ज्ञाता बताये गये हैं। यह चक्रपाणि मिश्र द्वारा संकलित किया गया है। इसकी मूल प्रति अप्राप्त है। प्रतिलिपि जो प्राप्त है, उसके लिखने का समय वि.सं. १७०९ माघ शुक्ला पंचमी दिया हुआ है। कुल पत्र सं. ४९ में लिखकर सम्पूर्ण हुआ है। यह ग्रन्थ २२६ संख्या पर रा.प्र.वि.प्र. उदयपुर में विद्यमान है।[४]

---

१. चरित्रं चरीकर्ति चित्रं पवित्रं जगज्ञानकीशस्य यावज्जगत्याम्।
कलौ कल्मषध्वंसिनी कृष्णकीर्तिश्चिरं जीव भूमण्डले राजसिंहः ॥ ५ ॥ द्वितीया ॥

२. जगत्यां जगत् पावती जह्नुकन्या, सितैर्भाति यावत्तरंगैः।
जलै र्यामुनैश्चाथ सारस्वतैस्त्वं चिरंजीव भूमंडले राजसिंहः ॥ ७ ॥

३. शो.प.व.१४ अं १ पृ.४४।

४. दृष्ट्वा राज्याभिषेकान् श्रुतिकुशलबुधैः कारितं तत्र लोके।
ग्रन्थानालोड्य सश्वत्यमरसु विशदां(?) माथुरो भूरिविद्यः॥
मिश्र श्रीचक्रपाणिः परहितनिरतः पद्धतिं त्वेदमूलाम्।
चक्रे श्रीराघवेन्द्रो भवतु भवहरस्तच्छुभाद् भक्तवस्य ॥ २ ॥
ये वेदशास्त्र कुशलाः खलु योजनेऽपि,
नानानिबन्धपरिशीलन चारुशीलाः।
ये ग्रन्थगुम्फनविदो विशदाशयाश्च,
ते साक्षिणेऽत्र लिखने मम संतु संतः॥ ३ ॥
इति श्रीचक्रपाणि कृता राज्याभिषेक पद्धतिः समाप्ता।
संवत् १७०९ वर्षे माघ सुदी ५ रवौ लिखितमिदं पुस्तकम्।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसकी द्वितीय प्रतिलिपि पुरोहित माधव ने रामपुर ग्राम में 'नरहर दास' वैष्णव से लिखवा कर पुरोहित गरीबदास को वि.स. १७३८ में दी थी[१] सकल सिद्धिदाता प्रभु रामचन्द्र को मंगलाचरण के प्रारम्भिक श्लोक में नमस्कार किया गया है ।[२] यह ग्रन्थाक २२९ पर रा.प्र.वि.प्र., उदयपुर में है ।

चक्रपाणि मिश्र ने महाराणा प्रताप की आज्ञा से 'विश्ववल्लभ' नामक वृक्षायुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ भी लिखा, अतः संभवतः यह पद्धति भी प्रताप के राज्याभिषेक के समय संकलित की गई हो, जिससे इसका रचनाकाल प्रताप के समय का प्रमाणित होता है ।

यह ग्रन्थ संकलनात्मक है । इसमें वेदों के अतिरिक्त विभिन्न शास्त्रों एवं पुराणों से श्लोक संग्रहीत हैं । दुर्गासप्तशती के भी अनेक श्लोक इसमें उद्घृत हैं । मौलिकता की दृष्टि से इस पद्धति का महत्त्व नगण्य है । इतिहास की दृष्टि से भी इसका महत्त्व अधिक नहीं है, क्योंकि इसमें देश एवं राजाओं के वंश, कार्यकलापादि का उल्लेख नहीं मिलता है ।

राजपट्टाभिषेक पद्धति

यह 'राजपट्टाभिषेक पद्धति' महाराणा राजसिंह के राज्याभिषेक के लिए वि.सं. १७०९ के माघ शुक्ला पूर्णिमा बुधवार को लिखकर पूर्ण की गई । इसको राजपुरोहित रामराज के पुत्र गरीबदास की आज्ञा से पल्लीवाल (पालीवाल) जाति के विद्वान् ब्राह्मण जगन्नाथ ने लिखा है । पं. जगन्नाथ के पिता का नाम 'मेरा' था । जगन्नाथ श्रुति, स्मृति पुराणों का ज्ञाता तथा सकल विद्याओं में प्रवीण था ।[३]

---

१. इति श्रीनाना पुराणावेदस्मृतिग्रन्थेभ्यः सारमुद्धृत्य मिश्रचक्रपाणिना विरचिता राज्याभिषेकपद्धतिः सम्पूर्णा संवत् १७३८ आसौज वदि दीतवार नरहरदास वैष्णवेन लिख्यते लेखकपाठयोः शुभमस्तु । एतद्धि प्रोहित(पुरोहित) श्री गरीबदासाय समर्पिता प्रोहिता माघवेन लिखायिता रामपुरा गाममध्ये । रा.म.—चक्रपाणि मिश्र ।

२. राघवेन्द्रं प्रणम्याहं सर्वकामार्थ सिद्धये ।
ग्रन्थानालोड्य भूपानामभिषेकविधिं ब्रुवे ॥ १ ॥ सं.प. मंगला ॥

३. श्री संवत् १७०९ व, माघ मासे शुक्लपक्षे पूर्णिमास्यां तिथौ बुधवासरे लिखितमिदं पुस्तकम् । महाराजाधिराजस महांराणा श्री राजसिंधस्य (सिंहस्य ?) पट्टाभिषेख समये द्वितीयायां तिथौ भृगुवासरे श्री रामराज पुरोहितस्यात्मजेन गरीबदासजिष्णुना लिखावित(१)मिदं पुस्तकं एकलिंग प्रसादात् ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेवाड़ के महाराणाओं के राज्याभिषेक के समय राज्य के विद्वान पण्डितों द्वारा नवीन राज्याभिषेक पद्धतियों का निर्माण होता रहा है। परिणाम स्वरूप महाराणा प्रताप, राणा अमरसिंह (द्वितीय) आदि के राज्याभिषेक सम्बन्धी पद्धतियां और काव्य दृष्टिगत हुए हैं, जिनका विवरण दिया जा चुका है।

पं. जगन्नाथ पालीवाल ने इस राज्याभिषेक पद्धति में ब्रह्मपुराण गोपथब्राह्मण, रामायण, विष्णु धर्मोत्तर, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वेद, आदि ग्रन्थों से आवश्यकतानुरूप विषय सामग्री का चयन कर उसका संकलन किया है।[१]

इसकी कुल पत्र सं. ४८ हैं और राजस्थान प्रा. वि. प्र. उदयपुर में ग्रन्थ संख्या १४८१ पर हैं। वेदादि से संकलन ग्रन्थ होने के कारण साहित्यिक दृष्टि से इसका मूल्य नगण्य है।

राजसिंहप्रभोर्वर्णनम्

काव्य में महाराणा राजसिंह प्रथम के गुणों का साहित्यिक वर्णन है। राजसिंह एक कुशल प्रशासक थे। उनकी न्यायप्रियता, वदान्यता, शौर्य आदि गुणों पर समसामयिक प्रशस्ति काव्यों में प्रकाश डाला जा चुका है।

"राजसिंह प्रभोर्वर्णनम्" के लेखक 'लाल भट्ट' थे। पुस्तक की पुष्पिका के अनुसार कवि के पिता का नाम 'देविदास' तथा माता का नाम वासन्ती एवं उत्पत्ति

जगन्नाथ श्रीमद्विजविमलमतिः सर्वविद्या प्रवीणे,
देशे श्रीमति चित्रकूटविषये मेरात्मजः स्मार्तवित्।
पल्लीवाल गुणांबुधिस्तु वैदोक्त मंत्रै र्युता,
मेतां पद्धतिमाचकार विशदां रामात्मजस्याज्ञया॥ १॥
संवत् १७०९ वर्ष फाल्गुन मासे कृष्ण पक्षे द्वितीयायांभृगुवासरे उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रे धृति नामायोगे गरकरणं एवं पंचागशुद्धो अत्र दिनेश्री सूर्योदयातगत घटी १२ पल ५५ समये वृक्ष लग्नोदये वृषांसे महाराजाधिराज महाराणा श्री राजसिंहजी सिंहासनारोहण (सुमुहूर्त्ते १) पट्टाभिषेकः कृतः। शुभंभवतु॥
राजपट्टाभिषेक पद्धति-जगन्नाथरचित पत्र सं.४८

१. इति कल्पतरौ ब्रह्मपुराणो गोपथ ब्राह्मणे रामायणे
विष्णुधर्मोत्तरे राज्ञः पट्टाभिषेक पद्धतिः।
वही.-पत्र.सं.४७।
यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया। यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते।
वही-पत्र सं:-४८।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गार्ग्य गोत्र में बताई गई हैं। इससे अधिक परिचय लेखक के विषय में उपलब्ध नहीं होता।[१] कवि का काल भी पुस्तक में अनेक आशीर्वादात्मक श्लोकों के आधार पर महाराणा राजसिंह के राज्याकालानुसार वि.सं.१७०९-१७३७ ही माना जा सकता है। कृति में महाराणा राजसिंह के पौत्र अमरसिंह का भी उल्लेख है। अमरसिंह का जन्म वि.सं. १७०९ के मार्गशीर्ष वदि ५ का है, अतः इस रचना का काल भी वि.सं. १७०९ के पश्चात् ही प्रतीत होता है।[२]

रचना छोटी होते हुए भी सरस एवं प्राञ्जल शब्दावली से युक्त है। कुल श्लोक संख्या १०२ हैं, जो अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपजाति, पृथ्वी, रथोद्धता, शिखरिणी, वंशस्थ, सुमुखी, स्रग्धरा, वसन्ततिलकादि छन्दों में रचित हैं।

रस, छन्द अलंकारादि काव्यशास्त्रीय तत्वों के आधार पर रचना स्वल्प होते हुए भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। हर्ष के 'नैषधीय चरित' के श्लोक की छाया इस काव्य में अनेक स्थानों पर स्पष्ट प्रतीत होती है यथा—

कथा यदीया सुरसा सुधेर्वसा, गुणैः प्रजायंस्य च रंजितां नराः।
मदर्थमस्त्वेवधरा वसुंधरा, समानुवंशो जयति क्ष्मातले ॥ ७ ॥[३]

काव्य सौष्ठव की दृष्टि से निम्न पद्यों का उल्लेख आवश्यक है।

---

१. "इति श्री लाल भट्ट विरचितं सकल भूपालमाला
मौलिचंचरीकचयचुंबितचरणारविंद
पीठ पार्श्वमहाराजाधिराज श्रीमज्जगत्सिंह
नरेशनन्दन श्रीराजसिंहप्रभोर्वर्णनम्"।
श्रीमत् पंडित देविदास इति यः श्री गार्ग्य गोत्रोद्भवो,
वासंती सुषुवे चयं सुतनयं श्रीलालभट्टाभिधम्।
स श्रीराणसुराजसिंह नृपतेः काव्यंव्यतानीदिदम्,
भूयाद् भूतलभूषणमविककृन् ख्यातं क्ष्मामंडले ॥ १०१ ॥

२. संग्रामे भीम भीमो विविध वितरणे यश्चकर्णोपमेयः,
सत्ये श्रीधर्मसूनुः प्रबलरिपुजये पार्थएवापरो यः।
श्रीमान् वाजीन्द्रशिक्षानयविधिनकुलः शास्त्रतत्वेतिहासे,
देवोऽयं राजसिंहो जयतु चिरतरं पुत्रपौत्रैः समेतः ॥ ३९ ॥

३. देखिए—नै.च. प्रथम सर्ग, श्लोक सं.१ तथा २,
निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथा स्तथाद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि।
तथा-रसैः कथा यस्य सुधावधीरिणी— ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

धरां वरीभर्तु चिरं विरंचिवद्रिपून् जरीहर्तुं रघुप्रवीरवन्।
सदा वरीवर्तु स पुण्यवंतवन् नृपोधराधीश्वर राजसिंहजित् ॥ १० ॥

व्याकरण के वरीभर्तु, जरीहर्तु वरीवर्तु आदि प्रयोग कवित्व के साथ कवि के पाण्डित्य प्रदर्शन के परिचायक हैं।

निरीक्ष्य दोषाकरमंकिनंत्वसौ, मुधेति तर्कं कुरुते यदा यदा।
गुणाकरं चैव निरंकमीश्वरं विधिर्विधुंदर्शमिषेण लुंपति ॥ १४ ॥

जब जब ब्रह्माजी कलंक से युक्त चन्द्रमा को देखते हैं, जो दोषाकर है। वे सोचते हैं कि गुणाकर राजसिंह के कारण इसका अस्तित्व वृथा है, तब से अमावस्या के व्याज से चन्द्रमा को अदृश्य कर देते हैं।

अमावास्या के व्याज से चन्द्रमा के लुप्त होने का विवरण अपह्नुति अंलकार का द्योतक है।

दोषाकर गुणाकर शब्दों में श्लेष है। दोषों का आकर और रात्रि कारक तथा गुणों का आकर एवं गुणों का कर्ता इस तरह श्लेष अंलकार भी है।

'नाम धातु' की क्रियाओं से निर्मित श्लोक अवलोकनीय है :—

कस्तूरीयति कज्जलीयति घनश्यामीयति प्रस्फुर-
च्छाल ग्रामशिला चयीयति शरद्गाढांधकारीयति।
कालिंदीयति कुंतलीयति मिलिंदादीयति प्रक्षरन्
मातंगीयति ते द्विषामयशो विद्वन् महीमंडले ॥ ५० ॥

व्यतिरेक अलंकार का उदाहरण निम्नांकित है।

नोवक्रता न च कलंकलवोऽपि यस्य,
नो वारुणी श्रुतपथेऽपि समाजगाम।
य:प्रातिपक्ष्यमतनोरतनोद मोहः
सायं कलाधर इहाविरभूदपूर्वः ॥ ८९ ॥

उपमेय 'राजसिंह' में उपमान कलाधर 'चन्द्र' की वक्रता कलंकत्व के अभाव के कारण आधिक्य वर्णन होने से श्लोक में व्यतिरेक अलंकार चमत्कार पूर्ण है।

मंगलपद्य में राधिका से सेवित मुरारि के लिए उपमानमाला द्रष्टव्य है—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शंपास्लिष्ट इवांबुदो नु वडवा वन्हिप्रभा भासुरः
सिंधुश्चंपक शाखया नु मिलितो बालस्तमालद्रुमः ।
किं वैदूर्य शिलाचयः सुरगिरेः श्रृंगप्रभामंडित
पार्श्वे राधिकया मुरारिरनिशं संसेवितः पातु वः ॥ श्लोक सं. ॥ १ ॥

'विद्युत् युक्त मेघ के समान वडवानल की प्रभा से मंडित दीप्तिमान सिन्धु तुल्य चंपक की शाखा से मिलित बाल तमाल तरु के समान, सुरगिरि के शिखर की प्रभा के समान सुशोभित वैदूर्य मणि की शिलाओं के समूह सा राधिका से निरन्तर सेवित वह मुरारि तुम्हारी रक्षा करे'

और भी

कीर्तिर्यस्य जगत्त्रये प्रविलसत्युग्रप्रतापांकुशः,
शत्रूणां शिरसि भ्रमत्यभिधया विश्वं समाक्रम्यते ।
यः शौर्यादि गुणाकरः सुखयतां मन्मानसं भूपति,
गंगावत् गजगण्डवत् गगनवत् गांगेयवत् गेयवत् ॥

(जिस राजसिंह की कीर्ति गंगा के समान तीनों लोक में शोभायामान है, जिसके उग्रप्रताप का अंकुश गज-गण्डस्थल की तरह शत्रुओं के सिर पर घूमता है, जिसका नाम समस्त संसार में आकाशवत् व्याप्त है, जो भीष्म के समान शौर्यादि गुणों का आघार है । वह राणा संगीत के समान मेरे मन को सुखी करे)

'कीर्तिर्यस्य जगत्रयप्रविलसति' आदि तीनों चरणों के साथ(गंगावत्) आदि पांच वाक्यांशों का चौथे चरण के पांच उपमानों से क्रमशः संबन्ध होने के कारण यह यथासंख्य अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

गंगा, गजगण्ड, गगन, गांगेय गेय शब्दों से क्रमशः 'उपमान माला' मनोहारिणी बन पड़ी है, 'ग' और 'वत्' की पुनरावृत्ति से अनुपास अलंकार की विच्छित्ति दृष्टिगत होती है ।

यथा नलः पुण्ययशास्ततोऽधिकं तथैष राणा किल राजसिंहजित्
सकृच्चतुर्भि र्विबुधै र्नलोर्थितो ह्ययं त्वसंख्यैर्जगतीश्वरोन्वहम् ॥ ३ ॥

जिस प्रकार नल का पवित्र यश फैला हुआ है, उससे अधिक राणा राजसिंह का यश है । नल से तो एक बार चार देवताओं ने ही याचना की थी परन्तु इस पृथ्वीपति (राजसिंह) से असंख्यों ने याचना की ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस श्लोक में व्यतिरेकालंकार का सौन्दर्य द्रष्टव्य है, क्योंकि उपमेय राजसिंह का उपमान नल से उत्कर्ष प्रतिपादित किया गया है ।

इस प्रकार उक्त काव्य में राजा राजसिंह की शूरता, वदान्यता, उदारता एवं अन्य महनीय गुणों का अतीव प्रभावशाली वर्णन किया गया है ।

अमर काव्य

अमर काव्य के नाम से अभिहित यह काव्य रा.प्रा.वि.प्र. उदयपुर में ग्रन्थ सं. ७२० पर विद्यमान है । यह कुल पत्र १०३ में लिखा हुआ है, जिसमें से पत्र सं. ४ तथा १९ से ३९ तक और ८२ वां अनुपलब्ध हैं । प्रति अत्यन्त ही जीर्ण शीर्ण अवस्था में है ।

इस काव्य की यह प्राचीनतम प्रति है, जिसके अवलोकन से ज्ञात होता है कि यह मूल प्रति नहीं है । प्रतिलिपित इस काव्य में अत्यन्त ही अशुद्ध भाषा, अपूर्ण श्लोक, छन्दो भंग सर्वत्र दृष्टिगत होता है । लेखक ने प्रारम्भिक श्लोकों में ही संख्यांक लगाये हैं, जो मंगलाचरण तक ही हैं । आगे पूरे काव्य में श्लोकों पर संख्या के अंक नहीं दिये हुए हैं । यत्र तत्र द्वितीय, तृतीय एवं सप्तम सर्ग का उल्लेख मिलता है । पुष्पिका भी आदि अन्त में नहीं है ।

लेखक रणछोड़ भट्ट

लेखक भट्ट ने अपना नाम कृति में कहीं भी अंकित नहीं किया है । रणछोड़ भट्ट रचित राजप्रशस्ति की रचना इसमें स्पष्ट परिलक्षित होती है । इसके अधिकांश श्लोक यथा बापा वर्णन आदि के ज्यों के त्यों लिखे मिलते हैं । कवि काव्य के अन्त में राणा राजसिंह के वर्णन के लिए कहता है कि 'इनका वृत्त राजप्रशस्ति में लिख दिया है, अतः वहां देख लिया जाए' ।[१] इसके अतिरिक्त एक मुख्य आधार राणा जगत्सिंह के वर्णन में लिखा मिलता है कि 'उमा महेश्वर' नामक दान मुझ रणछोड़ भट्ट के लिए दिया ।[२] श्लोक में स्ववाची 'मह्यं' शब्द के प्रयोग करने से स्पष्ट हो जाता है कि इस रचना का लेखक रणछोड़ भट्ट ही है ।

---

१. राजप्रशस्तौ लिखितौ निखिलोऽस्य पराक्रमः ।
यशस्कारि चरित्रोऽद्यतत्र पश्यन्तु त(ता.१) कथाः तत्कथाः ॥२०,९५ ॥
अमरकाव्यं पत्र १०३ अन्तिम ।

२. राणान्तः पुरमध्ये तु संस्थाप्यैव मां गुरोः
वंशजं राणवंश्यानां मत्वा सत्वगुणान्वितम् ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विषयवस्तु

इस काव्य की विषयवस्तु ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित है। वर्ष मास और दिन के उल्लेख के साथ किस किस राणा ने कितने वर्ष माह और दिन तक राज्य किया ? उनका जन्म, मृत्यु, दानपुण्य, विजितप्रदेश, तथा उनके मातृकुल का परिचय आदि विवरण के साथ सूर्यवंशी मेवाड़ के राणाओं की वंशावली दी गई है। इसलिए लेखक ने काव्य के अन्त में अंकित किया है कि 'श्री अमरकाव्य वंशावली ग्रन्थोऽयमस्ति, इससे प्रकट होता है, यह काव्य (वंशावली ग्रन्थ) लिखने के उद्देश्य से लिखा होगा।

कवि ने यथा स्थान शीलादित्य और राणा कुम्भा से सम्बन्धित जन श्रुतियों एवं किंवदन्तियों को भी अंकित किया है। राजप्रशस्ति एवं राजरत्नाकर के अतिरिक्त जो वृत्तान्त इस काव्य में लिखा गया है, उसी का उल्लेख यहां किया है। अवशिष्ट के लिए उन्हीं की अर्न्तकथाओं को देखना चाहिए।[1]

अमरकाव्य में प्रारम्भिक नौ श्लोक कृष्ण विषयक स्तुति के हैं। अनन्तर आठ श्लोकों में शिव मंगलाष्टक लिखा गया है। 'हरसिद्धि' देवी के लिए चार श्लोक पश्चात् गणेशाष्टक के अन्तिम छः श्लोक ही प्राप्त होते हैं। सूर्याष्टक के आठ श्लोक उपलब्ध हैं। 'हरसिद्धि' और गणपति की स्तुति विषयक मध्य के कुछ श्लोक अप्राप्त हैं। उसके अनन्तर पत्र सं. ७ के ऊपर का कुछ विवरण भी नहीं मिलता है।

मेवाड़ से सम्बन्धित प्राचीन जनश्रुति के आधार पर शीलादित्य की सगर्भा रानी मेवाड़ में अम्बिका के दर्शनार्थ आई। उधर शत्रुओं ने शीलादित्य की सूर्योपासना को खण्डित कर दिया, जिसके फलस्वरूप वह युद्ध में मारा गया और उन्होंने उसके राज्य को हस्तगत कर लिया। ऐसे समाचार जानकर रानी ने प्रसवकाल पर्यन्त येन केन जीवन यापन किया। रानी पुत्र प्रसवानन्तर उसके पालन पोषण का भार ब्राह्मणी के ऊपर छोड़कर सती हो गई। इस कथा से लेकर कवि ने काव्य का इतिवृत्त देना आरम्भ किया है, जो प्राप्त प्रति में यहीं से मिलता है।

रणछोड़ारव्य भट्टाय मह्यं शय्याद्यलंकृतम्
उमामहेश्वरं दानं ददौ हेमौघभूपितम् ॥ अमरकाव्य पत्र सं. १०१ ॥२०,७० ॥

१. राज प्र.सर्ग प्रथम श्लोक-१९-२९, राजरत्नाकर-सर्ग ३श्लो.७-७९ एवं सर्ग ४ श्लो.२१-४१।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ब्राह्मणी के पति विजयादित्य शर्मा ने बालक को संस्कारों से संस्कृत किया और उसका नाम केशवादित्य रखा। चित्रकूट के समीपवर्ती आनन्दपुर (अर्णोद) नामक गांव में उसका निवास रहा।[१] वह बड़ा प्रतिभासम्पन्न, यशस्वी बालक था। उसने अपने बाहुबल से उपार्जित राज्य का उपभोग किया। उसके वंशज क्रमशः नागादित्य, भोगादित्य, देवादित्य, आशादित्य, कालभोजादित्य ग्रहादित्य (गुहिल) और उसके बापा, बापा के खुम्माण, गोविन्द, महेन्द्र, आलू (अल्लट) थे। देवादित्य ने देलवाड़ा बसाया। आशादित्य ने आहड़ में गंगोद्भव (गंगू) कुण्ड, और कालभोजादित्य ने एकलिंगजी में इन्द्र सरोवर का निर्माण करवाया। बापा ने 'घासा' गांव में निवास किया। खुम्माण ने अपने नाम से खमनौर गांव की स्थापना की और महेन्द्र ने 'मचीन्द्र' दुर्ग का निर्माण कराया[२] आदि ऐतिहासिक वृत्त दिया हुआ है। राणा जगत्सिंह द्वारा जीते गये प्रदेश, प्रमुख दान पुण्यादि का जो उल्लेख मिलता है। कवि ने जो अपने सम्मुख घटनाएं हुई उनको अंकित किया है, इसलिए तत्कालीन घटनाओं का विवरण जो इस काव्य से उपलब्ध होता है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक उपादेय है।

रचनाकाल

'अमरकाव्य' की रचना ओझाजी ने अमरसिंह (प्रथम) के समय की मानकर केवल इतना ही अपना मंतव्य प्रकट किया है कि इतिहास लेखन के समय उसकी प्रति प्राप्त न हो सकी।[३] राणा अमरसिंह (प्रथम) का राज्याभिषेक वि. सं. १६५३ में हुआ।[४] उनके राज्यकाल में यदि 'अमरकाव्य' की रचना रणछोड़ भट्ट ने की तो कम से कम उस समय उसकी आयु, २० वर्ष के लगभग तो होनी चाहिए, जब कि उसने इस काव्य को लिखना आरम्भ किया होगा। पश्चात् इस कवि ने राणा राजसिंह के शासन काल में राजप्रशस्ति लिखना आरम्भ कर वि.सं. १७३७ में

---

१. चित्रकूटस्य निकटे अनन्दिपुर नामकं।
पुरं पुरासीदधुना अरुणोदाभिधाऽस्य हि ॥२,१४,१५
अमरकाव्य पत्र सं.७अन्तिम श्लोक।

२. अमरकाव्य-पत्र सं. १.१८।

३. उ.रा.इ.भाग २, पृ.८२१ टिप्पणी, ओझा।

४. उ.रा.इ.,भाग २, पृ.७८७झा.।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजसिंह के स्वर्गप्राप्ति एवं जयसिंह के राज्याभिषेक आदि का वर्णन कर समाप्त कर दी ।[१]

इससे विदित होता है कि रणछोड़ भट्ट वि.सं. १७३७ तक तो अपनी स्वस्थ अवस्था में काव्य-लेखन कार्य करता रहा । उपर्युक्त ओझाजी की मान्यतानुसार यदि अमरसिंह (प्र.) के राज्यकालीन यह रचना मानी जाए, तो लगभग कवि का शतायु होना सिद्ध होता है, जो उचित नहीं लगता । सौ वर्ष की आयु में राजप्रशस्ति जैसे श्रमसाध्य महाकाव्य की रचना संभव नहीं, इसलिए यह काव्य अमरसिंह (प्र.) के समय का न होकर अमरसिंह द्वितीय के शासन काल का मानना संभव हो सकता है । कवि ने मंगलाचरण में अमरसिंह को अमर होने के लिए आशीर्वाद दिया है । हो सकता है इस राणा का वह विस्तार से वर्णन करना चाहता हो, किन्तु किसी दैवी विपत्ति अथवा असंभाव्य घटना के कारण वह न कर सका हो ।

कवि का प्रिय अंलकार अनुप्रास मंगलाचरण में विशेष रूप से प्रयुक्त हुआ है । काव्य सौष्ठव की दृष्टि से निम्नांकित श्लोक अवलोनीय है ।

व्रजधरणिविहारी गोपबालाधिहारी,
दितिजहतिविचारी चारुगोवृन्दचारी । मञ्जु गुञ्जाच्छहारी ।।(पाठान्तर)
व्रजयुवति विहारी गोपिकावस्त्रहारी,
सुखयतु गिरधारी गोपबालानुकारी ।। मं. श्लो.८ ।।

कवि ने काव्य के आरम्भ में कृष्ण की स्तुति कर मंगलाचरण किया है । इस श्लोक में अन्त्यानुप्रास की छटा निराली ही बन गई है, जो हिन्दी साहित्य के काव्य ग्रन्थों में भी दृष्टिगत होती है ।

सदावृद्धिंवंशेऽभ्युदयभववृद्धिं गुणगणं,
तथा सर्वां सिद्धिद्रविणलसदृद्धिं स्थिरतराम्,
प्रसिद्धिं लोके वाऽभयवरसमृद्धिं विदधतीम्,
सुसिद्धिं भक्तानां सपदि हरसिद्धिं भज मनः ।। मं.२० ।।

कवि ने हरसिद्धि देवि का स्मरण कर वृद्धि, ऋद्धि, सिद्धि शब्दों के प्रयोग से अनुप्रास अंलकार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है ।

---

१. रा.प्रशस्ति-सर्ग २३, श्लोक १२ और सर्ग २४ वां ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनस्तप्रतापः समस्तक्षमायाः, निरस्तस्वकीयामयस्त्रस्तपापः ।
स सिन्दूरमस्तः सदादत्तशस्तः, प्रशस्तः स नः पाशहस्तश्श्रियेस्तात् ॥ २९ ॥

गणपति की स्तुति में 'स्त' के बार बार प्रयोग होने से अनुप्रास अंलकार काव्यात्मक चमत्कार को प्रदर्शितकरता है ।

लेखक का इतर काव्य वैशिष्ट्य विस्तार के साथ राजप्रशस्ति महाकाव्य के प्रकरण में दिखलाया जा चुका है ।

अमरसिंहाभिषेक काव्य

इस काव्य का रचयिता पल्लीवाल (पालीवाल) वंशीय वैकुण्ठ व्यास था । इसके पिता का नाम हरिराम था । व्यास ने इस काव्य का रचनाकाल और राणा अमरसिंह (द्वितीय) के राज्याभिषेक का समय दोनों वि.सं.१७५६ के माघ शुक्ला वसन्त पंचमी सोमवार अंकित किया है, जो इस कृति का निर्माण काल है ।

वि.सं. १७५९ कार्तिक शुक्ला पंचमी के दिन उदयपुर में यह काव्य सागोंपांग रूप से लिपिबद्ध किया गया ।[१]

इस काव्य का प्रस्तुत विषय महाराणा अमरसिंह (द्वितीय) का राज्याभिषेक हैं । इसके पूर्व भाग में कवि ने मेवाड़ के प्राचीन इतिहास का संक्षिप्त रूप से विवरण भी किया है, जिसका इतिहासज्ञ अधिक मूल्य नहीं मानते हैं [२] किन्तु इतिहास का क्रम तो प्रदर्शित होता ही है ।

कवि ने नौ श्लोक पर्यन्त मंगलाचरण स्वरूप गणेश, सरस्वती और एकलिंग महादेव की स्तुति की है । तदनन्तर दसवें ग्याहरवें श्लोक से सूर्यवंशी मेवाड़ राजवंश के रावल कर्णसिंह के पुत्र राहप और माहप की गाथा प्रारम्भ करता है ।[३]

---

१. मुयेकाब्द् ? (मुन्येकाब्द) शतादूद्धव-मब्दे षट् पंचके परे ।
माघशुक्लवसन्तेऽस्य पंचम्यां विधुवासरे ॥ १६५ ॥
षष्ठिसंख्यागते वर्षे चन्द्रोनेऽलेखि लाघवात् ।
ऊर्जस्य शुद्धपंचम्यानुदयादि पुरे परे ॥ १७१ ॥

२. मरु भारती डा. दशरथ शर्मा-वर्ष, १, अंक-३, पृष्ठ ८०

३. शम्भोर्डिम्भो मुदे भूयाज्जगतां भूतिदः सदा ।
सर्पिलड्डूक सिन्दूर सुमनोभिरलंकृतः ॥ १ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस काव्य में दिया हुआ इतिवृत्त इस प्रकार है:—

सूर्यवंशी रावल कर्णदेव (कर्णसिंह) के राहप और माहप दो पुत्र थे। वीरवर राहप ने मंडौर के अधिपति को कैद कर उसकी 'राणा' पदवी छीन ली। सभी राजाओं से अजेय राहप पिता के पश्चात् चित्तौड़ का स्वामी बना। ज्येष्ठ भाई 'माहप' डूंगरपुर का अधीश हुआ।[१]

राहप के वंशज पराक्रमी हंमीर, कुंभा और उदयसिंह हुए. महाराणा उदयसिंह ने चित्तौड़ से उदयपुर में मेवाड़ की राजधानी स्थापित की। उदयसिंह के बारह पुत्र थे, जिसमें सबसे बड़े महामना पुरुषार्थी महाराणा प्रतापसिंह हुए, जिसने अपने बाहुबल से मानसिंह के साथ युद्ध करते हुए उसके हाथी के मस्तक पर भाला चलाया। इसमें भाई शक्तिसिंह की सहायता भी रही। अपनी आन मान और मर्यादा पूर्वक अनेक बड़े बड़े कार्य किये। महाराणा के क्रोध भाजन उनके भाई भटियाणी रानी के पुत्र जगमाल को स्वदेश छोड़ना पड़ा। शक्तावत और चूंडावत सर्वदा स्वामि भक्त थे और युद्ध में ख्याति को प्राप्त करते रहे। यवन बादशाह के लिए मनस्वी प्रताप सर्वदा के लिए अजेय और अनम्र ही रहा।[२]

महाराणा प्रताप का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह था, जिसके पांच पुत्र पाण्डवों की तरह पराक्रमी हुए। उसका पुत्र कर्णसिंह राज्यसिंहासन पर आसीन हुआ। कर्णसिंह के तीन पुत्र, तीनों ही त्रैताग्नि के समान तेजस्वी थे। इनमें ज्येष्ठ राणा जगत्सिंह था, जिसने प्रजा का संतान की तरह पालन किया। इहलोक के सुखार्थ जगमन्दिर

वीणावरा ऽभयाम्भोजैः करकंजेषु मंडिता।
सरस्वती सदा पातु सा मां कंजोद्भवात्मजा ॥ २ ॥
जगत्धाम यतो जातं यश्च धाम सुगीयते।
एकलिंग त्रिकूटस्थं तं नमामि सदाशिवम् ॥ ७ ॥
विभूत्या सितांगं शिरोवर्षिगंगं, नमन्नेत्रयुग्मं महाभालचन्द्रम्।
प्रसन्नं सदा मध्यदेशप्रसिद्धं, नमाम्येकलिंगं सदा देवदेवम् ॥ ८ ॥
वक्तुकामः कविः पूर्वं ब्रूते किंचित्कथानकम् ॥ १० ॥
सहस्रांशोः कुले पूर्वं वीरधर्मपरायणौ।

१. श्लोक संख्या-११-१७।

२. श्लोक-सं. १८-३५।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जगनिवास और परलोक के हितार्थ विष्णुमन्दिर (जगदीश मन्दिर) का निर्माण करवाया और शुभ पर्वों पर अनेक महादान किया करते थे।[१]

प्रतापी राणा राजसिंह जगत्सिंह के पुत्र थे। उसके अनुज अरिसिंह ने लक्ष्मण की तरह वड़े भाई की सेवा शुश्रूषा की। राणा राजसिंह ने सर्वर्तु-विलास और राजसमुद्र का निर्माण करवाया।[२]

राणा राजसिंह ने मालपुर में युद्ध कर प्रचुर संपत्ति का उपार्जन किया। कवि ने मालपुर की विजय यात्रा के पश्चात् नगर को सुसज्जित कर राणा का पुरनारियों द्वारा मंगल गीतादि से भव्य स्वागत किया।[३] जिसका काव्यात्मक चित्रण किया गया है।

राणा राजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र जयसिंह था। उसके द्वारा कृष्ण विहार, विख्यात प्राकृतिक जयसमुद्र, राजप्रासाद, जल यंत्रादि का निर्माण करवाया गया। न्यायशील राणा जयसिंह के अमरसिंह, उम्मेदसिंह नामक पुत्र और चन्द्रकुंवर नाम की कन्या थी। किसी कारणवश महाराणा जयसिंह और राजकुमार अमरसिंह में कुछ समय तक समन्वय न रहा। अन्ततोगत्वा भगवान एकलिंग (शिव) ने इसे दूर कर दिया और श्रीनिवास के प्रार्थना करने पर एवं राजकुमार के सरल शालीन स्वभाव से महाराणा भी प्रसन्न हो गये। महाराणा ने वंशपुर पर विजय प्राप्त की। रावल अजयसिंह को पराजित किया तथा उचित दण्ड देकर उसको उसी स्थान पर

---

१. श्लो. सं. ३६-४४।

२. श्लोक स.४५-४९।

३. श्लोक सं. ५०-८० पर्यन्त।

वेलोद्धतः किं सुतरां समुद्रः, सहस्रशीर्षः किमयं हुताशः।
जगत्क्षयार्थं यवनेशदेशं, तदा जनैरेवमतर्कि देवः॥ ५३ ॥
ततः कुम्भिवाहैस्ततः स्यन्दनौघैस्ततः पत्तिसंघै र्जयाय प्रयातः।
यद्वा भूपति र्भूतले शत्रुसंघा, स्तदा क्वापि नष्टा न विघ्नः कथंचित् ॥ ६२ ॥
ज्योत्स्नावती रात्रिषु यत्र नार्यश्चन्द्रोपलै र्निर्मित चन्द्रशालाः।
समाश्रिता गीतिविलासहेतो र्विहायसो देव्य इवावभान्ति ॥ ७५ ॥
चन्द्रप्रभायां चतुरांगनाभिश्चन्द्रोपलै र्निर्मितसद्गवाक्षैः।
स्थितिविलासाय नवा युवानः, कुर्वन्ति ताभिस्सह खेलनानि ॥ ७६ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुन: नियुक्त कर दिया। जयसिंह ने सुवंर्ण, हलदान, तुलादान नामक अनेक बड़े बड़े दान किये।[१]

राणा जयसिंह के स्वर्गस्थ होने पर यथावसर पुरोहित ने विधिपूर्वक अमरसिंह (द्वितीय) का राज्याभिषेक किया। परम्परागत भीलों के सरदार ने स्वामी का तिलक किया। महाराणा और महाराणी दोनों भद्रपीठ पर विराजमान हुए। इसके पश्चात् महाराणा हाथी पर सवार होकर, भगवान पीताम्बर के दर्शनार्थ गये।

उपर्युक्त समय पाकर कवि वैकुण्ठ व्यास ने राज्य से अपने रुके हुए वेतन को प्रार्थना कर पुन: चालू करवाया।[२]

महाराणा अमरसिंह की अनुकम्पा से उनके तीनों भाइयों ने अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। उनके राज्यकाल में किसी सामन्त ने सिर नहीं उठाया, यदि आदेशों की अवज्ञा की, तो उसकी धृष्टता का उसे उचित दण्ड मिला। दुष्ट क्षत्रियों के लिए राणा परशुराम की तरह भयप्रद था। उसके राज्यकाल में सर्वत्र सुख शान्ति थी। देवराम और कृपाराम उसके नगर के धर्म मार्ग के प्रवर्तक थे। इसके पश्चात् कवि पुत्रपौंत्रों सहित राणा चिरजीवी हो इत्यादि आशीर्वादात्मक वचनों के साथ अपने पिता का और काव्य निर्माण के समय का उल्लेख कर काव्य की समाप्ति करता है।[३]

कवि वैकुण्ठ की यह छोटी सी काव्य कृति साहित्यिक दृष्टि से अपना एक विशेष महत्त्व रखती है। प्रारम्भ में ऐतिहासिक वृत्त दिया हुआ है। राणा राजसिंह द्वारा 'मालपुरा' की विजययात्रा का चित्रण वीर रस का निदर्शन है।[४] सरल एवं सुबोध भाषा में लिखी गई यह रचना शीघ्र ही हृदयंगम हो जाती है। यथावसर, उपमा, उत्प्रेक्षादि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।[५] विशेषकर अनुष्टुप् और उपजाति छन्दों का प्रयोग है। साथ ही भुजंगप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका और

---

१. श्लोक सं. ८१
सुवर्णसीरप्रमुखैर्हि दानै, स्तुलावसानै र्जयसिंह देवः
सुवर्णसोपानपथा कृतार्थो, वैकुण्ठनाथस्य गृहं विवेश ॥ १२५ ॥

२. श्लोक सं. १२६-१४७।

३. अमरसिंहाभिषेक काव्य—श्लोक सं. १४९-१७२।

४. वही, श्लो. सं. ५२-६८।

Funding by IKS-MoE

५. वही. श्लो. सं. ४६, १३६-४८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रथोद्धता का भी कवि ने प्रयोग किया है, जो साथ में दिये गये वृत्तानुसारी वितरण से स्पष्ट होता है।

विद्वानों को आश्रय प्रदान कर इस प्रकार की रचनाओं का निर्माण करवाना राणा अमरसिंह (द्वितीय) की संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रति निष्ठा तथा अनुराग का परिचायक है। साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान् कतिपय पद्य निम्नांकित हैं।

वेलोद्धतः किं सुतरां समुद्रः, सहस्त्रशीर्षः किमयं हुताशः।
जगत्क्षयार्थं यवनेशदेशं, तदा जनैरेवमतर्कि देवः ॥ ५३ ॥

राणा राजसिंह के युद्धार्थ प्रयाण करने पर लोगों के मन में शंकाएं होना 'सन्देह' अलंकार का बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है।

ततो भेरिकाभांकृतैः काहलानां, ततस्तालिकानां कोलाहलैश्च।
धरित्री विचित्राभवत् कंपनार्ता, स्फुरल्लोकजातं हि जातं भयार्तम् ॥ ५६ ॥

राणा राजसिंह की विजय यात्रा के समय अस्त्र शस्त्रों और वाद्यों के शब्द से पृथ्वी कंपित हो गई। लोक भयाकुल हो गये। इस प्रकार यहां कवि ने वीर रस का ओजस्वी निबन्धन किया है। वीररसोचित उद्दीपन विभावों की प्रभावशाली योजना द्वारा वीररस का ओजपूर्ण प्रदर्शन किया है।

ज्योत्स्नावती रात्रिषु यत्र नार्य, श्चन्द्रोपलैर्निर्मित चन्द्रशालाः।
समाश्रिता गीतिविलासहेतो, र्विहायसो देव्य इवावभान्ति ॥७५ ॥

स्फटिकनिर्मित चन्द्रमहलों में गायन और प्रणय क्रीड़ाओं के लिए आई हुई चांदनी रात में स्त्रियां देवियों के समान मालूम हो रही है। प्रस्तुत श्लोक में उपमा अलंकार की योजना की गई है, परन्तु इसे विशेष चमत्कार पूर्ण नहीं कहा जा सकता। यहां यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इस अमरसिंहाभिषेक काव्य में अलंकार विधान का कोई उल्लेखनीय वैशिष्ट्य लक्षित नहीं होता है। कवि ने प्रायः परंपरागत व रूढ पद्धति पर ही अलंकारों की योजना की है, अतः स्वतंत्र उद्भावना शक्ति और मौलिकता का परिचय बहुत कम स्थलों पर मिलता है।

अमरसिंहाभिषेक काव्य का वृत्तानुसारी विवरणः—

अनुष्टुप्—१-७, ९-५२, ५४, ५५, ५७-६१,६५-७२, ८१-१२४ १२६-१३८, १४९-१५८, १६१-१७२।

भुजंग प्रयात—८,५६,६२।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपजाति—५३, ६३, ७५-८०, १३९, १४१-१४६, १५९।

शार्दूलविक्रीडित—१६०।

वसन्ततिलका—६२, १४०, १४७, १४८।

रथोद्धता—७३, ७४।

संग्रामसिंह महोदय काव्य

इस काव्य का लेखक त्रिपाठी विहारी था, जिसने अपने परिचय के लिए काव्य के सर्ग समाप्ति सूचक पंक्तियों में ही अपने नाम का उल्लेख मात्र किया है। इससे अधिक कवि का जीवन वृत्त कुछ नहीं मिलता है।

काव्य की हस्तलिखित प्रति रा. प्र. वि. प्र., उदयपुर के ग्रन्थ संख्या ७१४ पर विद्यमान है। कुल पत्र संख्या ४६ हैं, जिसमें से पत्र सं. ४०, ४१, ४२ अप्राप्त हैं। दशवें सर्ग के पांच श्लोक ही हैं तथा ग्यारहवां सर्ग द्वितीय श्लोक के द्वितीय-चरण से ही लिखा मिलता है। इसकी कथावस्तु कुल ग्यारह सर्गों में विभाजित है।

राणा अमरसिंह (द्वि.) के पुत्र राणा संग्रामसिंह (द्वि.) थे। उनका राज्याभिषेकोत्सव वि. सं. १७६८ ज्येष्ठ कृष्ण ५ गुरुवार को हुआ।[1] कवि द्वारा उनकी गुण गरिमा, शौर्यादि का वर्णन इस काव्य में विस्तार से किया हुआ है। साथ ही उनके मुख्य सचिव विहारीदास एवं तत्कालीन प्रमुख राज्याधिकारी कृपाराम, राजपुरोहित सुखाराम आदि का भी वर्णन[2] एवं राज्य व्यवस्था का दिग् दर्शन

---

१. उ.रा.इ., भा. २, पृ. ९२०, ओझा।

२. विद्वेषमुक्तः परमार्थयुक्तः पुण्यैकमूर्तिः प्रथितो विहारी ॥ ३ ॥
यः प्राथर्नाप्राक् विदधाति पुंसां मनोरथान् मानधनावहानाम् ॥ ५ ॥
विभाति विश्वार्तिहरो बिहारी विश्वंभरायाः प्रतिपालनाय ॥ १४ ॥
कल्पवृक्षः कृपारामः सर्वदा सर्वकामदः।— ॥ १९ ॥
अयं पार्षद एवास्ति कर्तुं लोके महद् यशः ॥ २० ॥
सर्वेषां दुरितापहं प्रतिदिनं, संगीयते सज्जनैः।
तेभ्योऽयं बहुभक्तितो निजधनं, वांछाधिकं यच्छति ॥२१ ॥
सौख्यप्रदः सर्वजनेषु, शश्वदुदारचित्तोद्धत कीर्तिपुंजः।
प्रपूरिताशेषदिगंतभागो, विश्वाभिरामः सुखराम एष ॥२५ ॥
संग्रामकाव्य सर्ग ११ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्तमान कालिक क्रियाओं के प्रयोग से मिलता है । इससे इस काव्य की रचना इनके शासन काल में हुई हो, ऐसा प्रतीत होता है अन्यत्र कवि ने इस काव्य के रचना काल का उल्लेख नहीं किया है ।

'संग्रामसिंह महोदय काव्य, सर्गानुसार संक्षिप्त विषयवस्तु प्रथम सर्ग–

सर्व प्रथम कवि ने भगवान् शिव की स्तुति कर ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति की कामना से मंगलाचरण किया है । उदयपुर नगर पीछोला नामक सरोवर एवं उत्तुंग शैलशिखरों से अभिमण्डित है । इसमें निवास करने वाले ब्राह्मण वेदाभ्यास में निरत तथा ध्यानमग्न रहते हैं । फलों के भार से झुके हुए अनेक वृक्ष शोभायमान हैं । रमणीय वाटिकाओं में पक्षियों का कलरव रसिक जनों को आनन्दित कर रहा है । द्राक्षा, दाड़म, आम आदि के वृक्ष फलों के भार से झुके हुए हैं, जो मनुष्यों को सुख देने वाले हैं ।[१] इस प्रकार कवि ने उदयपुर नगर का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है ।

द्वितीय सर्ग

यहां के निवासी सभी पुण्यवान् एवं विविध विद्याओं में निष्णात हैं, कीर्ति कौमुदी दिग्दिगन्त तक विस्तीर्ण हैं । शूद्र स्वधर्म में लगे हुए हैं । नगरी में अनेक धनाढ्यों का निवास है । साहित्य-शास्त्र में पारंगत धर्म धुरीण, योग ध्यान में निरत

---

१. ब्रह्मा यस्य निरंतरं गुणगणान् वेदैर्वदन् विश्वकृत्,
ध्यायन् ध्यानपरो महेश्वरपदं बिभ्रत् पिनाकी प्रभुः ।
ये चान्ये चिरजीविनो मुनिगणाः संचिन्तमन्तो भृशम्,
पारंनापुरमेय चिद्धनमहो भूयात् भव श्रेयसे ॥ १ ॥
यस्यां भान्ति समीपतो ह्युपवनान्युत्तुंगशैला अपि,
पीछोलातडागातिपयः पूरः समुद्योयथा ।
यस्याप्युद्धतसत्तटेपु सततं त्रिकालसंध्यांद्विजा,
वेदाभ्यासरताः सदैव निपुणाध्यायंति धन्या ध्रुवं ॥ १४ ॥
लसन्ति वृक्षा सततं प्ररुह्य फलोग्रभारैर्नमिता पुरेऽस्मिन् ।
सुवाटिकायां वयसां विरावैशकारयन्तो रसिकानिवोच्चैः ॥ ४० ॥
द्राक्षादाडिमचिंचिणीकक्षिरिजीष्वामर्दिक्याम्रादयो ।
भांत्यन्येऽपि सुशालिनः फलभरैर्नम्रा नृणां सौख्यदाः ॥ ४१ ॥
संग्रामसिंह महोदय—प्रथम सर्ग ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महापुरुषों की यह निवास स्थली है। ब्रह्मचर्य व्रतधारी जय और विजय नामक पुण्यवान् अनुशासन-परायण इसके द्वारपाल थे। अनेक श्रेष्ठ राजाओं की मौलिमणियों की आभा से जिसके चरणारविन्द देदीप्यमान हैं तथा जिसके प्रचण्ड प्रताप से शत्रुओं का समूह संत्रस्त है। इस प्रकार का यशस्वी राणा संग्रामसिंह का शासन काल है। द्वितीय सर्ग में उदयपुर का और यहां के निवासियों का चित्रण किया है।[1]

तृतीय सर्ग

घर घर में जिन गृहस्थियों के पतिव्रतपरायणा दया, दाक्षिण्यादि गुणों से युक्त गुणवती स्त्रियां लक्ष्मी के समान शोभायमान है। निसर्गतः प्रसरणशील अनंग की तरंगों से संक्षोभित मानसवाली हजारों दासियां दिव्यांगरागों से चर्चित उनके पास हैं। चन्द्राननाओं के पादारविन्द में धारण किये हुए नूपुरों की ध्वनि हंस के शब्द का अनुसरण करती हैं, जिनका भाल सुवर्णबिन्दु से सुशोभित है। कामनियां भव्य प्रासादोपरि स्थित मेघों के घनघोर गर्जन से कम्पित होती हुई एकदम संभ्रम से अपने पतियों का आलिंगन करती हैं। इस तरह श्रृंगार रस से परिपूर्ण तृतीय सर्ग की रचना हुई है।[2]

---

१. पुरंतदेतत् सुकृतैकधामप्रसन्नचित्तै र्मनुजैर्लसत्श्री,
धर्मं यशस्यं परमं च रम्यं सुखैकं मंगलगीतिमुक्तम्।
सर्वे जनाःपुण्यकृतः कृतज्ञा वसंति विद्यानिधयो द्विजास्ते,
दिगंतविख्यातगुणगुणज्ञा महानुभावा बहुकीर्तिर्वन्तः॥ १ ॥
महाधनाढ्याः कृतपुण्यपुंजाः परस्परं प्रीतिभृतः पवित्राः।
विद्वेषमुक्ताबलशालिनो ये दयान्विता दुःखहरानराणाम्॥ २ ॥
साहित्यसिंधोरपि पारगा ये स्वीये गृहे सूक्ति रसायनानि।
नानाविद्यालंकृति भूषितानि पठन्ति शिष्याः गुणगर्भितानि॥ २० ॥
इत्थं महीपवरमौलिमहामणीनां भाभि र्विभूपितपदांबुरुहस्य शश्वत्।
काव्ये द्वितीय इति सर्ववरः प्रदिष्टो भास्वत् प्रताप परितापित शत्रुराशेः॥ २२ ॥

२. गृहे गृहे गृहस्थस्य लक्ष्मीवद्राजतेतराम्।
पातिव्रतधरानार्यो दया दाक्षिण्यसंयुतः॥ १ ॥
अनंगरंगप्रसरत्तरंगसंक्षेभसंक्षोभितमानसानि।
दिव्यांगरागैः परितो लसन्ति दासीसहस्राणि विभूषितानि॥ २ ॥
मंदारविन्देधृतनूपुराणां ध्वनिर्गतो हंसरुतानुसारी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थ सर्ग

सूर्य वंश के प्रदीप जयसिंह के पुत्र अमरसिंह ने इस मही पर शासन किया। उसके पुत्र पुण्य की एक मात्र मूर्ति प्रतापी कीर्तिमान् और दानी राणा संग्रामसिंह शत्रुओं को नियन्त्रित करने वाला जगत् में प्रसिद्ध था। घर घर में मंगलगीत देवस्थलों में पुण्यकथाएं होती थीं और मन्दिरों में ब्राह्मण वेदध्वनि तथा यज्ञ करते थे। राणा संग्रामसिंह प्रातः गौ भूमि और देवताओं को नमस्कार करते। सुवर्णपीठ पर स्थित गंगा जल से स्नान करते थे एवं सन्ध्या विधि समाप्त कर देवताओं की अर्चना कर स्वर्ण, गो, भूमिदान ब्राह्मणों को देते थे। अनेक भूमिपाल उनके सामने नत मस्तक रहते थे। धर्मप्राण राणा संग्रामसिंह का पुण्यकृत्य दिखलाया गया है।[१]

पंचम सर्ग

राणा संग्रामसिंह की सभा इन्द्रतुल्य थी। विश्वविश्रुत उनकी दानशीलता एवं कीर्ति को सुनकर गुणीजन प्रमुदित होते, ऐसे राणा संग्रामसिंह की स्तुति में व्यक्ति सर्वदा तत्पर रहते। दिव्यागनाएं उनकी कीर्ति का गान करती थीं। बाहु प्रताप से अर्जित, उदारातिशय से परिपूर्ण पौरुष को सुन म्लेच्छाधिपति अपने अपने घरों में सुख की निद्रा नहीं लेते थे, ऐसे शत्रुओं के नाशक, दीनों के दुःखहर्ता राणा संग्रामसिंह थे,[२] ऐसा उनका यश एवं पराक्रम प्रदर्शित किया गया है।

मन्ये जितो योऽप्यनयाव्रजन्त्या प्रविश्यविज्ञापयते मरालः॥ ६॥
चन्द्राननायाः किल भूरिभाले सुवर्णबिन्दीबहुधा लसन्ति।
वेणीपयोदादिव निस्सरंती तडित् प्रभेवांबरमध्यगा सा॥ ९॥
क्वचित् क्वचित् कामिनी कामनीये स्वीये स्थिता हर्म्मणि संभ्रमेण।
नवांबुदोदग्रघनस्वनेन कंपत् कराग्रापतिमाललंबे॥ १५॥

१. जयसिंहसुतः श्रीमानमरेशमहीपतिः।
भानुवंशप्रदीपो यः प्रशसास महीमिमाम्॥ २॥
संग्रामसिंहः पृथिवीश्वरोऽयं, शास्तारिपूणां जगति प्रसिद्धः।
पुण्यैकमूर्तिः प्रबलप्रतापी, चिररव्यातकीर्ति र्बहुदानशीलः॥ ५॥
गृहे गृहे मंगलगीतवाचो देवस्थले, पुण्यकथा प्रवृत्ता।
वेदध्वनिब्राह्मणमंदिरेषु यज्ञैर्यजंतोद्विजपुंगवास्ते॥ १५॥

२. स्तवैः स्तवन्ते जगदेकनाथं गुणज्ञता निर्जितनिर्जरेशम्।
यद् दानकीर्ति जगति प्रसिद्धां श्रुत्वा गुणिभ्यो मुदयावहंतः॥ १॥
गानं सारमुदारभारभरितं गायंति दिव्याः स्त्रियः,
श्रीसंग्रामधराधिनाथ भवतो बाहुप्रतापार्जितम्।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षष्ठसर्ग

इस सर्ग में कवि ने राणा संग्रामसिंह के पौरुष का वर्णन किया है। उसकी कृपाण शत्रुवृन्द के रुधिर, मांस मज्जा में स्नान करती थी, जिसके असि धारा रूपी जल में करोड़ों रिपुदल निमग्न हो गए। राणा ने अपनी देह शोभा के कारण चन्द्र को जीत लिया। उनके प्रचुर यश से चन्द्र कलंकत्व को प्राप्त हो गया, जिसके आश्रय में रहकर मनुष्य षड् रसों का रसास्वादन करते तथा उनको अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती थी। राणा अनेक प्रकार का वैभव दान कर इस कीर्ति से धरा पर साक्षात् कल्पद्रुम ही थे। उनका यश गुणीजनों को आह्लादित करता था। उन्होंने कीर्ति से चन्द्रकान्ति को, प्रताप से सूर्य की आभा को, सत् पात्र को दान करने से कर्ण को इस धरा पर जीत लिया और सुनीति से भगवान् रामचन्द्र को सन्तुष्ट कर दिया। सत्य ही राणा ने वाणी से वाचस्पतित्वऔर धैर्य से हिमाद्रित्व को अधिगत कर लिया।[१]

तन्माधुर्यजितां सुधां न सुखदामास्वादयन्ते भृशम्,
श्रुत्वा ते प्रतिवर्णनूतनरसां सर्वेऽपि ते निर्भराः ॥ १० ॥
श्री संग्रामधराधिनाथ भवतो बाहो र्बलंभूतले,
श्रुत्वाम्लेच्छधराधिपो न भजते निद्रांश्चवेश्मन्यहो।
त्वंतद्धर्मंविधान विसृतमतीन् हंतुं धरामंडले,
गो भूदेव सुरक्षणे सदयतां नित्यं दधद्राजसे ॥ २८ ॥

१. शत्रोवृन्दप्रमाथी बहुरुधिरवसामांसमज्जाशनो यो,
नग्नः शोणिभिसिक्तस्तव वसुमतिनाथ पाणौ कृपाणी।
यद्धारावारिपूरे रिपुजननिवहाः कोटिशः सन्निमग्ना,
दृश्यन्ते वीक्ष्यमाणा न च सुरणपयोराशिपारंगमैश्च ॥ १ ॥
अपि पूर्णतनुः स चन्द्रमाविजितोऽनेन धराधिपेन यः।
यशसा विनोदेन भूरिणा कलुषीभूत कलंकतामगात् ॥ १० ॥
सच्छायां समुपाश्रितोनरवरोभुक्तं फलं षड्रसं,
यस्मिन् तोषमुपौति सिद्धिमतुलां प्राप्नोति सर्वेष्टदाम्।
नानावैभवदानमानरचना सौरव्यप्रदः सांप्रतम्,
कीर्त्या रंजितभूतलो विजयतां भूभृजानि कल्पद्रुमः ॥ ११ ॥
यत् कीर्तिः वसुधातले गुणिजनान् प्रह्लादयन्तिभृशम्।
सोऽयं संग्रामसिंहो निखिलवसुमतीपालवंद्य प्रतापी ॥ १३ ॥
यत् कीर्त्या चन्द्रकान्तिः प्रथममभिजिता तैजसा भास्कराभां,
कर्णः सत्पात्रदानात् प्रबलनयतया तोषितो रामचन्द्रः।
श्रीमत् संग्रामसिंह क्षितिपतिना सत्यमेतद्वयां

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सप्तम सर्ग

सुगन्धित मन्दार वृक्ष की उच्च शाखा पर लगे हुए पुष्पों को स्त्रियां अपना कर्णाभरण बनाकर नरेश संग्रामसिंह की कीर्ति का गायन करती थी। प्रतिदिन गुणियों की सभा में उनके गुणों का कीर्तन होता, अनेक द्वीप द्वीपान्तरों से आये हुए भूप उनके चरणारविन्द की सेवा में रत रहते। युद्ध में म्लेच्छों का संहारक, दुष्टों का शास्ता राणा संग्रामसिंह हजारों वर्ष तक जीवित रहे, इस प्रकार कवि ने उनके यश विस्तार का निदर्शन किया है।[1]

अष्टमसर्ग

वह जननी धन्य है, जिसने पुण्यवान् राणा संग्रामसिंह जैसे स्वामी को उत्पन्न किया, जिसकी कीर्ति दिग्-दिगन्त तक विद्वानों से गाई जाती है। देव और दानवों के महान् प्रयत्न के फलस्वरूप क्षीर-सागर से लक्ष्मी प्राप्त हुई, किन्तु राणा संग्रामसिंह प्रभु ने ब्राह्मणों को अनायास ही श्री-सम्पन्न कर दिया

विधाता ने नरेन्द्र संग्रामसिंह को कर्ण, भोज, विक्रमादि राजाओं के रूप में अवतीर्ण किया। इससे राणा के महादानी होने का निदर्शन मिलता है।[2]

वाचा वाचंपति योऽवनिरपि लभते धैर्यवृत्या हिमाद्रिः ॥ १४ ॥

१. सुगंधिमंदारतरोः प्रसूनं रम्योच्चशाखासु विराजमानम्।
कर्णावतंसो करणाय देव्यो गायंति संग्रामधरेश कीर्तिम् ॥ १७ ॥
इत्थं जनाः प्रतिदिनं गुणिनः सभायाम्,
गायन्ति निर्मलधियः क्षितिपालमौलेः।
द्वीपान्तरादुपगतैरपि भूपवृन्दैः,
संसेव्यतां हि कमलस्य गुणानमेयान् ॥ १३ ॥
म्लेच्छोच्छेदविधानयुद्धिविभवोविख्यातशिष्यप्रदः,
शास्ता सर्वदुरात्मनां विजयतां भूपालचूड़मणिः।
भूमिर्भूरिसुमंगलां प्रभजते यस्य प्रसादाद्विभोः,
सोऽयंश्रीजयसिंह भूपजसुतो जीव्यात् सहस्रं समाः ॥ १५ ॥

२. धन्या सा जननी मयैव जनितः पुण्यैकमूर्तिर्महान्,
कीर्तियस्य दिवंगता गुणिजनैः संगीयते सर्वदा।
किं चायं बहुयत्नतो सुरसुरैः संपादिताक्षीरधेः,
श्रीरस्तां भूसुरसात्करोति सततं संग्रामसिंहं प्रभुः ॥ १ ॥
न कर्णराजा न च भोजदेवो न विक्रमादि स नरेश्वरोऽपि।
इतीव मत्वा विधिनात्र भूमौ संग्रामसिंहः रचितो नरेन्द्रः ॥ २ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नवम सर्ग

सभी जनों के प्रियदर्शी धराधिनाथ राणा संग्रामसिंह के विविध विलास भंवरों द्वारा गाई गई कीर्ति में परिणत हो गए। वधूजनों का आनन्द प्रदाता यह राणा इस जगतीतल पर कला का उत्तरोत्तर विकास कर संसार को संमोहित करता था। भृगांवलि उनके यशोगान में मंगलगीत रूपी जय-जय शब्द करती हुई दृष्टिगत होती थी। इसमें राणा की कलात्मक अभिरुचि का परिचय दिया है।[१]

दशम सर्ग

जिनके धनुष के गम्भीर घोष के भय से उत्पन्न शत्रुगण विनष्ट हो गये। ये राटोड़ योद्धा रणांगण में अद्‌भुत पराक्रम प्रदर्शित करने वाले हुए। मदोन्मत्त हाथियों के कुम्भस्थल के विदारक अपने बाहुबल से उपार्जित प्रताप के कारण दीनों के दैन्य नाशक थे।

विद्या, बुद्धि में विशारद, अपने पौरुष से भयभीत करने वाले राजाओं का पराक्रम इस जगतीतल पर विख्यात है। प्रचुर वैभव से विभूषित भाग्यशाली थे। अपने सेवक जनों की पीड़ा को नष्ट करते थे।

इन वीरों को सुखदेनेवाली यश की गाथा कानों में अमृत की वर्षा करती है। इस भूतल पर विपक्षी वीरों के भय को देने वाले तथा क्षात्र कर्म में कोई भी इनकी समता रखनेवाला नहीं हुआ, ऐसे ये सज्जनों के सुखदायक हुए। इस तरह कवि द्वारा राणा संग्रामसिंह और उसके योद्धाओं के पौरुष का वर्णन किया गया है।[२]

---

१. धराधिनाथं वहुधाविलासं संसेवितुं सर्वजनाभिरामः।
नानाप्रसूनाश्रित भृंगरावप्रगीतकीर्तिः समुपाजगाम ॥ १ ॥
वधूजनानंदकरः कृपालुः कलां वितन्वन् जगतीतलेऽस्मिन्।
नूनं प्रवालांकित शेखरोयस्तन्मंजरी संजितकार्मुकोऽपि ॥ ३ ॥
गुलालवाणैर्जगतो मनांसि संमोहयन् मारुतसंवेगदर्पः।
भृंगावलीगीत जयस्वनेनादिक्षु प्रकुर्वन्नतिमंगलानि ॥ ४ ॥
लीलावतीनां ललितैर्विलासैर्विनोदमाविष्कुरुते वसन्तः
यथा जयं भूपतिरात्मकीयैः सैन्यैः सरिद्वेगमिवांबुदैर्वा ॥ १८ ॥

२. स्फुर्जत्कार्मुकघोरघोपजनितभीध्वस्तसर्वारयः,
सर्वस्मिन् क्षितिमंडले सुमहिमा येषां समुदीर्यते।
राठोडारणकोविदाद्भुतभटा मत्तेभकुंभच्छिदो

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकादशसर्ग

इस काव्य के कर्ता कवि त्रिपाठी बिहारी ने अमात्य बिहारी का परिचय उसके गुणों को प्रदर्शित करते हुए बतलाया है। प्रधान अमात्य बिहारी दुःखों के हंर्ता, विनयी, विद्या का सागर, कल्याणकारी, ईर्ष्या राग-द्वेष से मुक्त, पुण्य की एकमात्र मूर्ति था। दारिद्र्य को दूर करने के लिए दान से जिसने कल्पवृक्ष को स्वल्प बना दिंया, जो पुरुषों की प्रार्थना के पहिले ही उनके मनोरथों को सफल कर देता था। मानव दारिद्र्यरूपी उद्दाम वीचियों के मध्य चक्कर काटता रहता था। धन और रत्नों की खोज के लिए इस संसार रूपी महासागर को तैरने के लिए अमात्य बिहारी की कृपा रूपी नाव ही सहायक थी, जिस प्रकार पृथा के पुत्र अर्जुन की विजय के लिए कृष्ण ने सारथि का काम किया, उसी प्रकार राणा संग्रामसिंह के मंत्री बिहारी भी राणा के लिए जयाभिलाषी हुआ। कृष्ण ने पूतना का वध किया, उसी तरह बिहारी मनुष्यों की विपत्ति का संहारक आनन्द का प्रदाता हुआ। कायस्थ गोपाल कुल का अवतंस सत् पुरुषों का प्रतिपालक कलियुग में भी भगवान् कृष्ण की तरह अपने नाम को सार्थक किए हुए था। महिमान्वित मनस्वी कायस्थ चूड़ामणि प्रधानामात्य बिहारी इस धरा पर विख्यात था।[1]

भीमाभीम भुजा भुजोर्जिज्जित महीनाथास्त्वनाथोक्तिधाः।
विद्याबुद्धिविशारदबलभृतां भीतिप्रदां भूभृताम्,
निःशंका नितरां नृणां नरवरा विख्यातवीर्य्याः क्षितौ
क्षांता क्ष्माभृत्सन्निभापुरपुरां भेत्तार एते भृशं,
नानावैभवभूषिता भुविमहद् भाग्याश्च भृतार्त्तिधाः॥ ३॥
येषां सर्वसुखावहं गुणयशः कर्णामृतं वर्षति,
हंतारः परमापदां पदरजः संसेविनां सौख्यदाः।
क्षात्रे कर्म्मणि तत्समौ नभविता भूतो न वा भूतले,
सर्वे वीरवरोग्रभूरिभयदा भास्वत्प्रतापोज्जवलाः॥ ४॥

१. विपन्निहंता विनयैकधाम विद्यानिधि विश्वजनोपकारी।
विद्वेषमुक्तः परमार्थमुक्तः पुण्यैकमूर्तिः प्रथितो बिहारी॥ ३॥
अल्पीकृतो येन च कल्पशाखी दानेन दारिद्रविदारणेन।
यः प्रार्थना प्राक् विदधाति पुंसां मनोरथान् मानधनावहानाम्॥ ५॥
कृपातरी यस्य भवांबुराशौ मज्जज्जनानां खलु तारणाय।
दरिद्रतोद्दाम महोर्म्मिमध्य भ्राम्यन् मतीनां वसुरत्नहेतोः॥ ७॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जो अपनी कीर्ति से स्वयं प्रकाशमान था। ब्राह्मणों को निरन्तर सन्तुष्ट करने वाला विश्व की पीड़ा का हर्ता, इस विश्वम्भरा के प्रतिपालन में तत्पर रहता था। जिसका सुयश पृथ्वी, स्वर्ग और सभी दिशाओं में फैला हुआ था। चन्द्रवत् अपनी पीयूष वाणी की वर्षा से कायस्थ कुल का आभूषण बिहारी सभी मनुष्यों के लिए सुखकारक हुआ। कहीं भी नीतिज्ञों के लिए अनीत की वार्ता का लक्ष्यमात्र नहींथा। बिहारी ने दुर्नीति और दु:ख से त्रासित इस विश्व के उद्धारार्थ कृष्ण की तरह गोवर्धन पर्वत रूपी राज्य के महामात्य पद का भार वहन किया।

कृष्ण ने प्राचीन काल में गोपियों और ग्वालों की रक्षा की उसी प्रकार इस अधिकार के बहाने सम्पूर्ण जगत् का परिपालन करने वाला हुआ। विद्या का पुंज विपत्ति का नाशक, प्रचुर द्रव्य का दाता, दया का सागर, विनय का एक मात्र धाम, सम्मान्य, दीनों पर अनुग्रह करने वाला, दुष्टों का दमन करने में और पाप ताप को नष्ट करने में अपने इन गुणों से बिहारी भूतल पर ख्याति को प्राप्त हुआ। कवि ने प्रधानामात्य का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन कर अपने वैदुष्य को दिखलाया है।[१]

अयं पृथायास्तनये सहायं मन्येथ कृत्वा जयदो बभूव।
सारथ्यभावं विदधद् बिहारी स एव संग्रामप्रभोरमात्यः ॥ ८ ॥
यजजातमात्रेण हताप्यनेन विपन्नराणां किल पूतनेव।
प्रोद्यत् पुरे गोकलवात् पुनीते मह्यं महानंद शुभाकरेण ॥ ९ ॥
कायस्थगोपालकुलावतंस शश्वत् सतां यः प्रतिपालनाय।
हरेः कलौ किं कलयावतीर्णां याथार्थ्यभावं भजते स्म नाम ॥ १० ॥
तदस्य गांभीर्यगुणान् गुणज्ञो वक्तुं समर्थः कतमो भवेत् वा।
वाक्वाक्यते र्यस्य शुभानजस्त्रं सामर्थ्यभावाद् भवतीति चित्रम् ॥ १२ ॥
महामनस्वी महता महिम्ना ख्यातो धरायां सुकृतैकधाम।
धन्यै र्मनुष्यैरनुगीतकीर्तिः कायस्थ चूड़ामणिराड्बिहारी ॥ १३ ॥

१. विद्योतितांगो यशसोभरेण भूदेवसंतोपकरेण शश्वत्।
विभाति विश्वार्तिहरो बिहारी विश्वंभरायाः प्रतिपालनाय ॥ १४ ॥
यस्योद्दीप्तयशः पटैः सकलभूस्वर्दिग्वितानायितैः,
पीयूषद्रवमुद्गिराम्दरनिशपादैः सुधांशोरिव।
लक्ष्यं तेन हि कुत्रचिन्नयविदां दुर्नीतिवार्ताप्यहो,
सोऽयं सर्वसुखाय कायस्थकुलोत्तंसो बिहारीप्रभुः ॥ १५ ॥
दुर्नीतिदुःखौघ महांबुधारा संपातसंत्रासितविश्वमेतत्।
तत् त्राणहेतो र्जगृहे बिहारी नृपाधिकारं गिरिगौरवेण ॥ १६ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृपाराम

विष्णुभक्त, दृढव्रत, यशस्वी, अभीष्ट प्रदाता, सभी वर्णों में समान भाव से व्यवहार करने वाला कल्पवृक्ष के समान राणा संग्रामसिंह का सभासद कृपाराम था, जिसके द्वार पर विप्र वेदों का पाठ करते थे। सब के दु:खों का विनाश करने वाले, भक्त जनों को वांछित धन से अधिक देने वाले 'कृपाराम' का यश सत् पुरुषों से गाया जाता था उसके घर पर निरन्तर अन्नदान होता रहता था। याचकों के लिए मनोवांछित वस्तु को बड़े प्रेम से देता था, इन्हीं कारणों से यह धर्म का सेतु कलियुग के पापों को नष्ट करने वाला हुआ। कवि द्वारा इतना गुणानुवाद कृपाराम का किया गया है।[१]

राज पुरोहित सुखाराम

राणा संग्रामसिंह के सर्वजन प्रिय, उदारचेता, कीर्तिशाली, विनीत, सत्यप्रिय, शास्त्रवेत्ता और अच्छे दानवीर सुखाराम पुरोहित थे। उनके साथ अनेक ब्राह्मण राज्य सभा सदस्य थे, जिन्होंने नीति का अनुसरण कर दु:ख रूपी अंधकार को नष्ट

गोप्योऽथ गावोप्यविताह्यनेन पुरा तु मन्ये नु महामहिम्ना।
अतोऽधिकारस्य भिखे(पे ?) न सोऽयं जगत् समग्रं परिपातुकामः ॥१७॥
विद्यापुंजविपत्तिहा बहुवसोर्दाता दयाब्धिर्महान्,
विज्ञाता विनयैकधाम महतां मान्यप्रदः पुण्यकृत्।
दीनानुग्रहकारि दुष्टदमनस्थातो गुणै भूतले,
दिग्कीर्ति दुरितापहस्तु जगतां श्रीमान् विहारी प्रभुः ॥ १८ ॥

१. कल्पवृक्षः कृपारामः सर्वदा सर्वकामदः।
सर्ववर्णेषु समतां दधत् स्वर्णफलप्रदः ॥ १९ ॥
अयं पार्षद एवास्ति कर्तुं लोके महद्यशः।
दु:खहा सर्ववर्णानां विष्णुभक्तो दृढव्रतः ॥ २० ॥
यस्य द्वारि निरंतरं द्विजगणाः वेदान् पठन्ति ध्रुवम्,
अत्युच्चैः किलयैवं पुनरहो, भक्तेश्चरित्रं महत्।
सर्वेषां दुरितापहं, संगीयते सज्जनैः,
तेभ्योऽयं बहुभक्तितो निजधनं, वांछाधिकं यच्छति ॥ २१ ॥
अहर्निशं यस्य महामहिम्नो, गृहेऽन्नदानं नितरां ददाति।
भांडारिको भूरितरानुभावः, समागतेऽर्थि जनेभ्य एव ॥ २२ ॥
समागतानर्थिजनान् समीक्ष्य, प्रीत्यार्पयन् यो मनसोऽभिलाषम्।
धर्मस्य सेतुः कलिकल्मषघ्नः, ख्यातः कृपाराम इतीव हेतोः ॥ २३ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर दिया। धन की प्रचुर वर्षा एवं वदान्यता के कारण शिष्यों के कल्मष को अपनी उदारता से दूर कर दिया। पुण्यवान्, मधुरभाषी, विद्वानों द्वारा सर्वदा समादृत राजपुरोहित सुखाराम प्राणिमात्र के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हुआ था। यह राजपुरोहित के उत्कृष्ट गुणों का वर्णन किया गया है।[१]

काव्यात्मक वैशिष्ट्य,

संग्रामसिंह महोदय काव्य संग्रामसिंह एवं उनके अमात्यादि के शौर्य, दानशीलता, वदान्यता आदि गुणों तथा तत्कालीन सांस्कृतिक परिस्थिति का चित्रण करने की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, साथ ही यह काव्य साहित्यिक दृष्टि से भी सुन्दर है। एकादश सर्गों की कथावस्तु प्रस्तुत करते हुए यह प्रयत्न किया गया था कि जहां तक हो कवि के शब्दों में सर्ग की कथावस्तु को प्रस्तुत किया जाए ताकि उसके वर्णन में अभिलषित काव्य सौन्दर्य को भी उपस्थित किया जा सके। अलंकार

---

१. सौख्यप्रदः सर्वजनेषु शश्वदुदारचित्तोद्धत कीर्तिपुंजः।
प्रपूरिताशेषदिगंत भागो विश्वाभिरामः सुखराम एषः॥ २५॥
विशालकीर्तिः वसुधाधिपस्य प्रसन्नबुद्धिर्विनियोपपन्नः,
सत्यप्रियः शास्त्रप्रियः शास्त्रविदां पुरोधावंद्यो विशेषाद्बहुदानशाली॥ २६॥
भूदेवैः भूरिभागैरधिगतपरिषद् सद्गुणै र्गी,
कीर्ति निःशंकं नीतिमार्गप्रदलितजनदुः खान्धकारावनीशात्।
कुर्वत्यो वारवारंप्रबलधनचयै र्भूरि वर्षांबुधेषु शश्वत्,
शिष्याप्रदानाक्षपगतकलुषक्रियमाणात् वदान्यात् २९॥
इत्थंपवित्रतरराजदमात्यवर्गे,
काव्ये पुरोहित गुणाभियुते सुदम्ये।
सर्गाः प्रसंगमधुरे खलुरुद्रसंख्याम्,
बिभ्रन्नसौ विजय भाग् वसुधाधिपस्य।
बुद्ध्या निर्जितवाक्पति विदितनोत्युद्यत् प्रतोदयो,
यद्राज्ञो हितकारी पुण्यमहिमो माधुर्य वाक्मानदः।
सर्वेषां सुमहात्मनां विजयते विद्वज्जनैःसेवित,
श्चोत्थं राजपुरोहितप्रतिदिनं श्रेयस्करः प्राणिनाम्॥ २७॥
गांभीर्योदार्यधैर्याधिकविमलमनो दातृसद्बुद्धिधर्म्मै,
श्चद्यत् सत् प्रताप प्रबलतर लसत्कीर्तिराजद्दिगंत
स्तस्मादेतस्य नित्यं प्रतिदिनमवनीपालवृंदः पदाब्जे,
भक्ति शश्वद्विधत्ते प्रणतनिजशिरो मौलिभिर्मानिनीये॥ २८॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आदि काव्य तत्वों की दृष्टि से और भी कतिपय पद्य दृष्टव्य, हैं, जिनका उल्लेख निम्नांकित है।

कवि बिहारी ने अपनी कृति में यत्रतत्र अलंकारों का सुन्दर विधान किया है। उदाहरण के लिए अनुप्रासः—

रौद्रारुद्रपराक्रमापरमहीं जेतुं समर्थार्थदाः,
सोत्साहा समरेनये नयविदो दुष्टेषु दण्डप्रदाः।
सत्यासत्यपराक्रमाः स्वजनपा विप्रार्तिदाघापट्टा,
दीनानुग्रहकारिणो यवनभूनाथस्य निद्रापहा॥ १०-२॥

रौद्रारुद्र सत्यासत्य दुष्टेषुदण्ड इत्यादि शब्दों में समान वर्णवाले शब्दों की आवृत्ति से अनुप्रास अलंकार इस श्लोक में प्रयुक्त हुआ है।

कल्पद्रुम के रूप में श्री बिहारी ने अमात्य बिहारी को ही कल्पद्रुम मानकर रूपक अलंकार का निदर्शन किया है।

गुणप्रवालांकितधी प्रशाखी पुण्यालवालः सुयशः प्रसूनैः।
माधुर्यानन्दफलप्रवर्षी बिहारी कल्पद्रुम एष भूमौ॥ ११-४॥

बुद्धिरूपी शाखा, गुण रूपी प्रवाल (कोंपल) पुण्य उसका आलवाल (क्यारी) है। सुयश रूपी प्रसून जिसमें है, ऐसा माधुर्यानन्द रूपी फल देने वाला यह कल्पवृक्ष रूपी 'बिहारी' इस वसुन्धरा पर विद्यमान है।

इसमें कल्पवृक्ष की शाखा, पुष्प, क्यारी और फल का आरोप बिहारी की बुद्धि, सुयश, पुण्य और माधुर्यानन्द को क्रमशः कवि ने माना है अतः इसमें रूपक अलंकार हैं। कवि की कीर्ति मानो नर्तकी है। निम्न श्लोक में 'उत्प्रेक्षा' का सम्यक् चित्रण हुआ है।

कीर्तिः कवीनां रसनांगणेषु नृत्यं विधत्ते किमु नर्तकीव।
निरन्तरं निर्मलचित्त भाजां, तद्गीतिगानध्वनिता दिगंता॥ ११-६॥

कवि की कीर्ति रसना (जिह्वा) रूपी प्रांगण में मानो नर्तकी की तरह नृत्य करने की संभावना से उत्प्रेक्षा अलंकार का सरस मनोरम विधान इस श्लोक में हुआ है। कवि ने तृतीय सर्ग में रमणियों के वर्णन में उपमा अलंकार का हृदयाकर्षक चित्रण किया है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

घनान्धकारे ऽग्रिताभिसारे निशासु नार्यो न हि भीतिमेति।
विद्योतमानांगविभूषणानां भाभिस्तडिद्धा इव विस्फुरन्त्य: ॥ १-१३।

अभिसारिका रात्रि के घनान्धकार में अभिसार के लिए जाती हुई भयभीत नहीं होती है। उसके द्वारा धारण किए हुए देदीप्यमान आभूषणों की चमक विद्युत् की द्युति के समान है। कवि ने इस प्रकार उपमा अलंकार को सरस प्राञ्जल भाषा में प्रदर्शित किया है।

ये उपर्युक्त अलंकार कवि के वैदुष्य के प्रतीक हैं। शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, उपजाति, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी और अनुष्टुप् आदि विविध छन्दों में रचना कर कृति को मनोरम बनाया गया है। तृतीय सर्ग में रमणियों का वर्णन करते हुए माधुर्य के मधुर अभिनिवेश एवं प्रसाद की स्निग्धता के साथ शृंगाररस का प्रधान रूप से चित्रण किया गया है। वैसे आद्योपान्त काव्य सरस प्राञ्जल शब्दावली में निबद्ध माधुर्य एवं प्रसादगुण से परिपूर्ण लिखा गया है। दशम सर्ग के पांच श्लोक ही प्राप्त होते हैं, जिससे विदित होता है कि कवि संभवत: इस सर्ग में वीररस का वर्णन करना चाहता था। इस सर्ग के उपलब्ध पाचों श्लोक वीर रस के परिचायक हैं। काव्य का कलेवर छोटा होते हुए भी भावानुरूप भाषा व शैली आदि का सुन्दर संमन्वय कर कवि ने जो प्रयास किया है, उस सफलता के लिए वह सर्वथा श्लाघ्य एवं स्तुत्य है।

इस अप्रकाशित रचना का पाण्डुलिपि के आधार पर संपादन का कार्य तथा प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है।

वीरतरंग रंग

पं. यमुनादत्त शास्त्री लिखित यह एक अर्वाचीन रचना है। इस काव्य में शाहपुरा के संस्थापक राजा सुजानसिंह से लेकर राजा नाहरसिंह के पुत्र पौत्र पर्यन्त ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया गया है। शाहपुरा के राजा सूर्यवंशी मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (प्र.) के तृतीय पुत्र सूर्यमल्ल के वंशज हैं। सूर्यमल्ल के ज्येष्ठ पुत्र सुजानसिंह ने शाहजहां को अपने वीरोचित कार्यकलापों से प्रसन्न कर फूलिया क्षेत्र के उधर का भूभाग जो कि बादशाह के अधीनस्थ था, उसे प्राप्त किया और शाहपुरा नामक नगर बसाकर अपनी राजधानी स्थापित की।[१]

---

१. वीरतरंग रंग—श्लो. सं.—१०, ११, १४, १५
एवं विशुद्धजनिवीरगणप्रकाण्डे वंशेरवे रणरसेन विवर्द्धमाने।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पण्डितजी ने इस काव्य का लेखन कार्य वि. सं. १९८१ के जन्माष्टमी शुभ पर्व पर समाप्त किया। शाहपुरा नरेश नाहरसिंह ने काव्य का श्रवण कर शिला पर उत्कीर्ण करवाने की आज्ञा प्रदान की। तदनुसार इस काव्य को शिला पर उत्कीर्ण कर उम्मेद सागर नामक सरोवर के तट पर लगवाया गया, जो राजा नाहरसिंह की कीर्ति कौमुदी का ज्वलन्त प्रमाण है।[१] काव्य में कुल २२४ श्लोक हैं। इसके उत्तरार्ध में राजा नाहरसिंह के सत् क्रियाकलापों का गुणगान किया गया है।

पं. यमुनादत्त शास्त्री

दधिमथ (दाधीच) ब्राह्मण जाति में उत्पन्न, आपका जन्म वि. सं. १९१९ ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी को शाहपुरा में हुआ। आपके विद्वान् पूर्वज श्रीकृष्ण के पुत्र श्रीमनोरथराम को राजा भीमसिंह ने गुरु दक्षिणा में एक सहस्त्र मुद्रा और भूमि प्रदान की। आपके पिता का नाम श्री रामनारायण शास्त्री था।[२]

राणाप्रतापतनयोऽमरसिंहदेवो, यैः कर्णभीमरविमल्लसुतैर्विरेजे ॥
तेषूग्रलोचनसमेषु च सूर्यमल्ल, उत्कृष्टदायवहनाद्विषमोऽप्यराजीत् ।
एतत् त्रयी तनुभवत्रितयादि जन्मा, वर्द्धिष्णुरोचिरभवच्सुजानसिंहः ॥
ततः पितृव्येन सुसेव्यमानात् दिल्लीपतेः शाहजहानतोऽसौ ।
अवाप फूल्याऽऽह्वयमण्डलं च भूपालपंक्तौ पृतनाधिपत्यम् ॥
आराध्य साम्राज्यमभीष्ट राज्यमासाद्य या तेन विनिर्मिता पूः ।
समारव्यया शाहपुरेति सैव, प्रकीर्तितेयं किल राजधानी ॥

१. चन्द्रेभगोभू (१९८१) मितवर्ष जन्माऽष्टम्यामिदं काव्यमगात् समाप्तिम् ।
निशम्य यद्भूपतिरादिशद्वै, प्रशस्तिलेखाय महाशिलायाम् ॥ ८५ ॥
सेयं प्रंशस्तिरवनीशचरित्रचारुरुम्मेदसागरतटोपरि विस्फुरन्ती ।
आसृष्टि दिव्यवरटामिव वैजयन्ती, लोके प्रचारयतु नाहरसिंह कीर्तिम् ॥ ८६ ॥
वीरतरंग रंग ॥

२. तत्सूनुरामान्तमनोरथाऽऽह्वयो,
वेदाङ्गविद्यार्णवपारदर्शकः ।
सम्प्राप्तवान् शाहपुराऽऽख्यपत्तन-
मध्यापयामास च भीम भूभुजम् ॥ ७६ ॥
अधीतविद्यः किलभीमभूपतिः,
सहस्त्रमुद्राश्च महर्घ्यवाससी ।
खखेषु (५००) बीधामितमालमेदिनीं,
प्रपूज्य तस्मै गुरुदक्षिणां ददौ ॥ ७७ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा लघुसिद्धान्त कौमुदी आदि की पं. श्री निवास से प्राप्त की। पश्चात् काशी जाकर विख्यात विद्वान् हरिनाथ शास्त्री की गुरुसेवा में सात वर्षों तक रहकर षट् शास्त्रों का अध्ययन कर बीस वर्ष की आयु में ही काशीस्थ राजकीय संस्कृत कॉलेज से षट् शास्त्री की उपाधि अधिगत कर ली।[१]

शाहपुरा के राजा नाहरसिंह को रामायण का अध्ययन कराया तथा राजकुमारों की शिक्षा इनके तत्वावधान में हुई, जिसके फलस्वरूप एक सहस्त्र मुद्रा आदि समर्पित कर राजगुरु का सम्मान बढ़ाया गया। उदयपुर के राणा भूपालसिंह, किशनगढ़, बूंदी और कोटा के राजाओं द्वारा भी सम्मानित रहे। शिक्षा के अतिरिक्त राज्य के इतर राजस्व विभाग आदि का कार्य भी अपनी क्षमता एवं कुशल नीति से चलाते रहे, जो एक संस्कृत पण्डित के चतुर्मुखी विकास एवं योग्यता का परिचय देते हैं।

प्राचीन रूढ़िवाद को दूर रख कर विद्या और पौरुष से ही मानव का कल्याण हो सकता है, जिसके लिये आजन्म संस्कृत एवं वल्लरी नामक पत्रिकाओं में लेख लिखकर तथा श्रीमद्भगवत्गीता आदि के सदुपदेश से समाज को प्रगति के पथ की ओर अग्रसर करते रहे।

संस्कृत भाषा पर आपका पूर्णाधिपत्य था। आपकी वीरतरंग रंग काव्य के अतिरिक्त वेदनिर्णय नामक एक और पुस्तक है, जिसमें करोली राज्य के राजपण्डितके साथ हुए शास्त्रार्थ का वर्णन है। सूर्यमल्ल विरचित वंश भास्कर की भाषा टीका लिखने में आपका सहयोग रहा। संस्कृत भाषा की महती सेवा के परिणाम-स्वरूप संस्कृत कार्यालय अयोध्या के अध्यक्ष जगद्गुरु रामानुजाचार्य ने वि. सं. १९९५ में आपको विद्याभूषण की उपाधि से विभूषित किया। इस तरह जीवन पर्यन्त सुरभारती की सेवा करते हुए अपना सर्वांगीण विकास कर वि. सं. २००० चैत्र शुक्ला चतुर्थी को स्वर्गवासी हो गये।

वीरतरंगरंग की संक्षिप्त कथावस्तु

कवि ने सच्चिदानन्द श्री लक्ष्मीनारायण का स्मरण कर मंगलाचरण किया है, तत्पश्चात् बीजांकुर न्यायवत् परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त परिवर्तन शील जगत् को कम प्रधान माना है। मनु से लेकर इक्षवाकु वंश में रामचन्द्र एवं लव,

---

१. तत्पुत्र नारायणशास्त्रिपुत्रो, वाराणसीप्राप्तसमस्तविद्यः।
षट्शास्त्र्युपाधिं गुरुदेवताभि, र्दत्तामयां विंशतिवर्ष एव ॥ ८० ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुश, सुमित्र, कनकसेन, विजयसेन हुए ।[१] वलभी के अन्तिम सम्राट् शीलादित्य का राज्य दुर्दान्त म्लेच्छों से ग्रस्त हो गया । उसकी रानी गुहा में पुत्र जन्म देकर पुत्र को कमलावती ब्राह्मणी के हाथ छोड़ सती हो गई । गुहा में उत्पन्न होने के कारण गुहादित्य कहलाया यही गुहिल वंश का मूल पुरुष हुआ । इस वंश में बापा और प्रतापसिंह महाप्रतापी हुए । महाराणा प्रताप के अमरसिंह और उसके कर्णसिंह, भीमसिंह और सूर्यमल्ल तीनं पुत्र हुए । सूर्यमल्ल के पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र तेजस्वी सुजानसिंह हुआ । सुजानसिंह का राणा जगत्सिंह के साथ मृगया में विवाद होने से अपने अधिकार में आया हुआ मेवाड़ का कुछ भूमि भाग भगवान् एकलिंगजी को भेंटकर दिया । बादशाह शाहजहां से फूलिया नामक भू भाग प्राप्त कर राज्य सम्मान पाया । शाहपुरा नाम से नगर बसाया और अपनी राजधानी बनाया ।[२]

शाहपुरा नगर की आय लेकर वि. सं. १६८८ के पौष शुक्ला द्वितीया के शुभ मुहूर्त में प्रासाद बनवाना आरम्भ किया । राजा सुजानसिंह ने काबुल, गुलमर्ग नामक दुर्ग तथा महाराष्ट्र की सेना का संहार किया । अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की ।[३] सुजानसिंह के पश्चात् उसका छठा पुत्र दौलत सिंह वि. सं. १७२१ आश्विन शुक्ला तृतीया को राज्य पर बैठा । उसका पुत्र भारतसिंह वि० सं० १७४२ के मार्गशीर्ष प्रतिपदा को राज्य का स्वामी हुआ । इसने अपने महलों में इष्टदेव लक्ष्मीनारायण की स्थापना की[४] ।

भारतसिंह का पुत्र वीरमूर्ति उम्मेदसिंह वि०सं० १७८६ के माघ मास में राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त हुआ । उम्मेदसिंह ने शाहपुरा में शिव, विष्णु, सूर्य,

---

१. जयत्ययं श्रीपतिरादिदेवो,
नारायणः प्राकृतमण्डमप्सु ।
विधाय यो लोक सुकल्पकेन,
स्वयम्भुवा ब्रह्म ततान लोके ॥ १ ॥
बीजादुभ्दव उभ्दवात् फलमयो तस्मात् पुनर्बीजक
माब्रह्मांण्डमणोरिति स्थितमिदं कर्म्मप्रधानं जगत् ।
तस्मिन्नब्जजपौत्रकश्यपमुने र्जातो विविस्वान्नृप,
एतन् मूलनृपोभ्दवाच्च मनुजो जाता प्रजा मानवी ॥ २ ॥

२. वीरतरंगरंग श्लोक संख्या—१-१५ ।

३. वही श्लोक सं:—१६-२१

४. वही, ३०-३३

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गणेश और अनेक देवी देवताओं के अलग अलग मन्दिरों का निर्माण करवाया तथा वापी, कूप, तडागादि और अनेक यंत्रों से इस राजधानी को अमरावती के समान बना दिया। इसने तत्कालीन नागोर के स्वामी बख्तसिंह को पराजित किया। बनेड़ा की राज्य लक्ष्मी का उपभोग किया। महाराणा के कहने पर पुन: उसे लौटा दिया। सिंधिया की सेना में अपने खड्ग का ताण्डव दिखलाया, जिससे शिप्रा रक्तवाहिनी हो गई। दूसरी बार युद्धार्थ सिंधिया आया, उसमें उम्मेदसिंह वीर गति को प्राप्त हुआ। वह भूमि शिप्रा के तटपर आज भी राजा उम्मेदसिंह के नाम से विख्यात होकर पूजी जाती है।[१]

राजा उम्मेदसिंह का पुत्र अदौतसिंह उम्मेदसिंह के सामने ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुका था, अत: उम्मेदसिंह का पौत्र रणसिंह, तेतींस चर्ष की अवस्था में सं० १८२५ में राज्य पर बैठा। रणसिंह ने अपना जीवन मादक मदिरा में ही व्यतीत किया, उसका पुत्र भीमसिंह शास्त्रों का अध्ययन कर तेईस वर्ष की आयु में वि. सं. १८३१ के ग्रीष्मकाल में पिता के आसन को प्राप्त किया।[२]

भीमसिंह के पश्चात् अमरसिंह, माधवसिंह, जगत्सिह और लक्ष्मणसिंह हुए वारुणी के वल्लभ लक्ष्मण सिंह के राज्यकाल में राज्य की कुछ भी उन्नति न हुई, उसके पश्चात् प्रपंची अमात्यों ने विसनिया ग्राम से रामसिंह को बुलाकर राज्यासन पर बैठा दिया। धनोप के टाकुर धीरतसिंह ने गवर्नर जनरल के सामने अपना अधिकार बताते हुए सिद्ध किया कि लक्ष्मणसिंह से पूर्व सातवां राजा उम्मेदसिंह था, उसका वंशज मैं हूं और लक्ष्मणसिंह से नवमे राजा दौलतसिंह का वंशज रामसिंह है, इसलिये मैं अधिक निकटवर्ती हूं और मेरा पुत्र नाहरसिंह इस राज्य के लिए उपस्थित है। इस औचित्य के अनुरूप एजेण्ट गवर्नर जनरल ने स्वीकृति दे दी और वि० सं० १९२७ के ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी शनिवार को मंगलवाद्य ध्वनियों के साथ नाहरसिंह राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए।[३]

शास्त्री जी ने श्लोक संख्या १ से १३८ तक तो राजा नाहरसिंह के पूर्वजों का ऐतिहासिक विवरण दिया है, आगे राजाधिराज नाहरसिंह का जीवन चरित श्लोक संख्या एक से प्रारंभ किया है। इनका जन्म वि.सं. १९१२ के कार्तिक कृष्णा

---

१. वीतरंगरंग श्लोक सं० ३४-७० तक।

२. वही, ७२-७७।

३. वही, ७८-१३८

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रयोदशी के दिन हुआ। राजा नाहरसिंह ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से समस्त विद्याओं का अध्ययन कर लिया।[1]

राजा नाहरसिंह ने वेदों के अध्ययन अध्यापन की ओर ध्यान दिया। महर्षि दयानन्द को आमन्त्रित कर दो माह पर्यन्त उनके वेदादि विषयों पर प्रवचनों की सुन्दर व्यवस्था करवाई।[2]

विशाल धर्मशालाएं और नवीन प्रासाद बनवाये संस्कृत, हिन्दी, अंग्रजी के अध्ययनार्थ पृथग् पृथग् पाठशालाएं, चिकित्सालय, व्यापार के लिए औद्योगिक यन्त्रों की स्थापना, डाकघर और रानी के नाम पर बख्त विलास नामक उद्यान बनवाया जिसे देखकर लोग आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। वर्षा के अभाव में अन्नादि दान कर दीन दु:खियों की सहायता की। विक्टोरिया के पुत्र एडवर्ड के राज्याभिषेक महोत्सव पर इस राजाधिराज को "भारत की साम्राज्य सेना में वीरयूथ के अधिपति" अर्थ के द्योतक वर्ण के.सी. आई. ई. की उपाधि से विभूषित किया। आपने कनिष्ठ पुत्र के साथ द्वीप द्वीपान्तरों में भ्रमण कर वैज्ञानिक प्रयोग शालाओं का निरीक्षण किया। शाहपुरा के उत्तर में पांच लाख रुपये व्यय कर अपने नाम से सागर का निर्माण करवाया। इनके कनिष्ठ पुत्र वीरवर सरदारसिंह पंचम जार्ज और जर्मनों के मध्य हुए संग्राम में पंचम जार्ज के सहायक हुए एवं विजय श्री प्राप्त होने तक रण में सन्नद्ध रहे। इस युद्ध की समाप्ति के साथ साथ नाहर सागर भी बनकर पूर्ण रूप से तैयार हो गया। इसके बनवाने का पुण्यफल अपने ज्येष्ठ पुत्र उम्मेदसिंह को दिया गया, इसका नामकरण उम्मेदसागर नाम से किया और समाप्ति पर पूर्तयाग विधि से यज्ञ कर वि. सं. १९७६ के कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी मंगलवार के दिन राजाधिराज नाहरसिंह ने अपने हाथ से पूर्णाहुति की। राजगुरु पं. यमुनादत्त द्वारा वि. सं. १९७२ नाहर सागर की मौरी (यन्त्र द्वारा जल निकालना) खुलवाई, जिससे धन धान्य की समृद्धि हो और प्रजा सुखी होगी। इस अवसर पर २५ बीघा उर्वरा भूमि गुरुजी को दी गई। शास्त्री जी संक्षेप में उल्लेख करते हैं कि "प्रारंभ में शाहपुरा राज्य को वीर सुजानसिंह ने बसाया, तदनन्तर राजा भारतसिंह ने राज्य में सुवर्ण का सिंहासन स्थापित किया और राजाधिराज उम्मेदसिंह ने उसमें रत्न जड़वाये। उन्हीं

---

१. अयं निज प्राक्तनपुण्यसिद्धाः समस्तविद्याः प्रतिभावलेन।
यदाग्रहीत्तावदनल्प आसीद्दिग्दर्शनायैव गुरुं प्रयत्नः॥ ५॥

२. वही. श्लोक सं.-६-२० तक।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रत्नों की प्रशंसा में शतघ्नियां गर्जना कर रही है ।"[१] आगे कवि राजा नाहरसिंह के शतायु होने की मंगलकामना करता है ।

राजा नाहरसिंह के दो पुत्र रत्न हैं । बड़े राजकुमार उम्मेदसिंह का जन्म वि. सं. १९३२ का है और इनके अनुज ख्याति प्राप्त वीर सरदारसिंह है । दोनों ही अंग्रेजी भाषा के विद्वान् इंग्लैण्ड में सम्राट से यश प्राप्त किये हुए हैं । उम्मेदसिंह के सुदर्शन सिंह हुए, इनका जन्म वि. सं. १९७१ का है । सरदारसिंह के शत्रुंजय, पराक्रमसिंह और जयसिंह हैं । अवध मण्डल में 'विजवा' नामक उर्वर भूभाग है । वहां शत्रुंजय अपने मातामह गोवर्धनसिंह के गोद चले गये । इस प्रकार शाहपुरा राजवंश का गौरवगान करने के पश्चात् कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है ।

पण्डितजी ने ऐतिहासिक वृक्ष के साथ अपनी रचना में काव्य सौष्ठव की दृष्टि से यथा स्थान उपमा अलंकार का चित्रण किया है ।

अतः स्ववीर्याजितवृत्तिमिच्छन् स्वेष्टैकलिंगाय समर्प्य दायम् ।
दिल्लीं गमिष्यन् प्रिय मेदपाटं, देशं जहौ याम्यमिवोत्तरार्कः ॥ १३ ॥

राजा सुजानसिंह ने राणा जगत्सिंह के साथ विवाद होने के कारण उत्तरायण होने वाला सूर्य दक्षिण देश को जिस प्रकार छोड़ देता है, उसी प्रकार अपने भाग में आये हुए मेवाड़ के भूभाग को इष्टदेव एकलिंगजी के समर्पित कर दिया । इस प्रकार कवि ने उपमा अलंकार का अच्छा प्रयोग कर अपनी कृति को गौरवान्वित किया है ।

ओमित्युदीर्यायमुमेदसिंहो, पराक्रमं तस्य तदा निरुध्य ।
अयुध्यताऽऽत्मीयबलेन तत्र, दक्षस्य वेद्यामिव वीरभद्रः ॥ ५३ ॥

---

१. वीरतरंग-रंग नाहरसिंह चरित श्लोक सं.—२१—६३ ।
एतेनापि नृपेण तत्रसमरे द्रव्येण सैन्येन च,
साहाय्यं कृतमस्य चैव नृपतेर्वीरः कनिष्ठः सुतः ।
धन्यः श्रीसरदारसिंहमतिमानुल्लंघ्य वारांनिधिम्,
गत्वा संगरमध्यमाजयमसौ सन्नद्ध आसीद्रणे ॥४८ ॥
इंद राज्यमादौ सुजानेन लब्धम्,
ततोऽतिष्ठपभ्दारतो हेमपीठम् ।
अनेनात्र रत्नानि नद्धानि यानि,
शतध्न्यो नदन्ति स्तुवाना हि तानि ॥६३ ॥
श्लोक सं.४९-६४ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजा उम्मेदसिंह ने 'ओम्' शब्द का उच्चारण करते हुए अपने पराक्रम से बख्तसिंह के आक्रमण को रोक दिया। अपनी सेना लेकर ऐसा भीषण युद्ध किया, जिस प्रकार दक्ष प्रजापति की यज्ञवेदी पर वीरभद्र ने युद्ध किया था। यहां पर भी कवि ने ओजपूर्ण रचना कर सुन्दर उपमा अलंकार का निदर्शन किया है। शास्त्री जी ने अपने पुत्र मदनमोहन के पुत्र अर्थात् अपने पौत्र बालेन्दु शर्मा के परिचय में श्लेष अलंकार को चित्रित कर साहित्यिक वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया है।

मदनमोहनस्यास्ति बालेन्दुर्मतिमान् सुतः।
वर्द्धमानः प्रसाध्नोतु चन्द्रमा इव कौमुदीम्॥ ८३॥

पौत्र बालेन्दु वर्धिष्णु चन्द्रमा के समान कौमुदी, चन्द्रिका (अर्थात् अपने यश) को विख्यात करे। इतर पक्ष में वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी का अनुशीलन करता रहे। इससे उनके पौत्र बालेन्दुशर्मा के यशस्वी होने का एवं उनके सिद्धान्त कौमुदी के ज्ञान का परिचय मिलता है।

पण्डित जी ने अपने प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ शाहपुरा के राजवंश का जो इतिहास प्रस्तुत किया है संस्कृत भाषा में निबद्ध उनकी यह कृति ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दोनों दृष्टिकोण से अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

वीरवंश वर्णन

इस काव्य में बनेड़ा राज्य के संस्थापक राजा भीमसिंह का चरित्र चित्रण एवं उनके वंशजों का उल्लेख किया गया है। उसकी कथावस्तु में केवल राजाओं के नाम तथा उनका जन्म संवत् तिथि, वार एवं राज्यारूढ़ काल अंकित है। किस राजा के कितनी राणियां थी? उन्होंने कहां कहां विवाह किये? आदि विस्तृत विवरण दिया हुआ है। राजा भीमसिंह एवं सूर्यमल्ल आदि ने समय समय पर युद्ध किये उनका विशद वर्णन कवि द्वारा किया गया है। सूर्य कुलावतंस मेवाड़ के महाराणा श्रीराजसिंह के वंशज होने के कारण सर्वदा मेवाड़ की रक्षा के लिए यहां के राजा तत्पर रहे, फलस्वरूप नवीन राजा के राज्यतिलक के समय महाराणा की ओर से हाथी घोड़े, आभूषणादि भिजवाकर इनके सम्मान को बढ़ाया जाता रहा है।

काव्य चतुर्दश पर्वों में लिखा गया है। इसमें पर्व शब्द से सर्ग को सूचित किया है। महाभारत में जैसे युद्धादि का विशेष वर्णन होने से पर्व का प्रयोग किया है, यह तदनुकूल ही हो सकता है। कवि ने भी यही दृष्टिकोण रखा हो कि बनेड़ाधीशों

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की शौर्य गाथाओं का उल्लेख भी पर्व में ही विभक्त कर किया जाय । कवि ने कोई पर्व तो अत्यन्त ही छोटे लिख दिये हैं ।

षष्ठ पर्व तक काव्य का पूर्वार्ध समाप्त हो जाता है । सप्तम पर्व से उत्तरार्ध प्रारंभ होता है ।

भौगोलिक वर्णन

चतुर्दश पर्व में बनेड़ा राज्य भौगोलिक दृष्टि से कहां पर स्थित है ? यह बतलाया गया है । यह विषुवत् रेखा से उत्तर की तरफ २५ अक्षांश १५ कला और ६ विकला पर सुरम्य पर्वतमालाओं के मध्य स्थित है । दुग्ध फेनवत् उज्जवल भवनों से शोभायमान बनेड़ा ग्राम भूमध्यरेखा से पश्चिम देशान्तर के १ अंश और १५ कला पर विद्यमान है ।[१]

पं. नगजीराम

वीरवंश वर्णन काव्य के रचयिता पं. नगजीराम बनेडा निवासी थे । शिक्षावल (सिखवाल) ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हुए, निम्बार्च्य कुल के आभूषण थे । उनके पूर्वज कुशलेश प्रकाण्ड विद्वान् हुए, जिनको बनेड़ाधीश ने देवर्षि की उपाधि से विभूषित किया तथा भूमि प्रदान की । कवि उनके प्रपौत्र का पौत्र है । इस प्रकार से अपना परिचय स्वयं ने ग्रन्थ की समाप्ति में दिया है ।[२]

रचनाकाल

कवि ने काव्य के उपसंहार में उल्लेख किया है कि बनेड़ाधीश राजा अमरसिंह की आज्ञा से इस काव्य की रचना कर वि. सं. १९८२ के श्रावण कृष्णपक्ष में इसे समाप्त किया है । यह ग्रन्थ इतिहासज्ञों एवं सज्जनों के प्रमोदार्थ लिखा गया है ।[३]

---

१. वीरवंश व, श्लो. ४७७-४८८ ।

२. शिक्षावलेषु द्विजपुंगवेषु यन्निम्बार्च्य नामास्ति कुलं सुसत्कृतम् ।
जोपीत्युपाधि प्रथितं गुणाकरं, तस्मिन् प्रजज्ञे कुशलेशकोविदः ॥ ४९ ॥
तस्मै बनेड़ाधिपतिना समर्पितः, देवर्ष्युपाधिः सह भूप्रदानतः ।
तस्य प्रनप्तुश्च सुतात्मजः सुधी र्जीराम शर्मा नग पूर्वकोऽस्म्यहम् ॥ ५०० ॥

३. श्रीमद्बनेडाधिपतेरनुज्ञया, राजेश्वरस्यामरसिंह वर्मणः ।
ग्रन्थो ममायं ग्रथितो मनीषिणां, श्लाघ्यः पुरावृत्तविदां मुदे सताम् ॥ ५०१ ॥
वर्षे द्विनागांकं सुधांगु सम्मिते, ग्रन्थोऽभ्यगात् पूर्तिमयं नभो सिते ।
द्रक्ष्यन्त्यवशं सुधियो मलाशयाः ह्योनं पुरार्थोदयलीनया घिया ॥ ५०२ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वीरवंश वर्णन काव्य की संक्षिप्त कथावस्तु

पूर्वपीठिका प्रथम पर्व

कवि ने मंगलाचरण में वीरोचित पद्धति के अनुरूप मर्यादा पुरुषोत्तम राणा के पूर्वज भगवान् रामचन्द्र का स्मरण एवं आराध्यदेव एकलिंगजी की स्तुति की है। इक्ष्वाकुवंश के यशस्वी राजा मनु आदि गो, ब्राह्मण और प्रजापालन में तत्पर रहे, यह बतलाया गया है।[१] इस सूर्यवंश में बापा रावल हुए, जिसने मौर्यवंशी राजा चित्रसिंह को युद्ध में परास्तकर चित्तौड़ दुर्ग हस्तगत किया। इस वंश के यश को दिग्दिगन्त में व्याप्त करने वाले महाराणा प्रताप और राजसिंह हुए। राजसिंह के दो पुत्र जयसिंह और भीमसिंह हुए। दोनों को वेद वेदार्थ और राजनीति की अच्छी शिक्षा दी गई। राणा राजसिंह ने राजसमुद्र नामक सागर का निर्माण करवाया। इसके पश्चात् कवि ने राणा राजसिंह का औरंगजेब के साथ हुए युद्ध एवं विरोध का चित्रण किया है।[२]

वीरवर भीमसिंह ने बड़नगर, पट्टन, सौराष्ट्र, एवं जूनागढ़ को जीत लिया, वहां की प्रजा के पत्र लिखने पर राणा राजसिंह ने उसे बुला लिया औरंगजेब के साथ किये गये युद्ध में भीमसिंह ने अद्भुत पौरुष प्रदर्शित किया। इस तरह राणा भीमसिंह के पराक्रम को देख मन में विचार किया कि यह मेवाड़ का राज्य लेने के लिए भी विवाद उत्पन्न करेगा, ऐसा सोचकर भीमसिंह को इसके लिए वचन बद्ध कर दिया कि मेवाड़ का राज्य मुझे नहीं चाहिये। इसके पश्चात् भीमसिंह ने अपने पुरुषार्थ से बनेड़ा में नये राज्य की स्थापना की।[३]

द्वितीय पर्व

जयसिंह ने पिता के स्वर्गवासानन्तर मेवाड़ छोड़कर जाते हुए भीमसिंह को पत्र देकर बुलाया कि औरंगजेब ने दलेलखां को भेज दिया है, ऐसी विषम स्थिति में आपका जाना अच्छा नहीं, भीमसिंह ने अपने कुल गौरव के रक्षार्थ मातृस्नेह के वशीभूत हो कर युद्ध के लिए प्रस्थान किया। क्षणभर में पृथ्वी नरमुण्डों से व्याप्त कर दी। घाणेरा की घाटी से दलेलखां ब्राह्मण वेश धारण कर औरंगजेब के पास भाग गया, यह देख औरंगजेब ने सन्धि कर ली।

---

१. सर्वे प्रजारंजन तत्परा वै, गोविप्रदीनार्तिहरा बभूवुः॥ ६ ॥
२. वी.वं.श्लोक ७-५०।
३. वही श्लोक सं. ५१-७४।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्चात् भीमसिंह ने बादशाह की इच्छा से दुर्जेय मराठों को जीता। बूंदी जाकर दुर्जनशाल हाड़ा को परास्त किया और बूंदी का राज्यअनिरुद्ध को दिया। चारों शत्रुओं को नष्ट कर सर्वत्र अपने मंडल की चौकियां स्थापित कर दी। पुत्रवत् प्रजा का पालन किया। भीम सिंह के १६ रानियां थी। वि. सं. १७१० के पौष कृष्णा एकादशी सोमवार को बेदलाधीश की पुत्री के गर्भ से भीमसिंह का जन्म हुआ और सं. १७९२ श्रावण चतुर्दशी को सूर्यकुल कमलदिवाकर राजा भीमसिंह अपने नश्वर शरीर को छोड़कर दिवंगत हो गए। इनके पश्चात् इनके पुत्र सूर्यमल्ल ने राज्यभार वहन किया।[१]

तृतीय पर्व

पितृ-प्रदत्त राज्य को प्राप्त कर सूर्यमल्ल शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के चंद्र के समान शोभायमान होने लगे। पराक्रम से सन्तुष्ट होकर बादशाह ने इनको उच्चपद से अलंकृत किया। वे सप्तवर्षीय राजकुमार सुलतानसिंह को छोड़कर स्वर्गवासी हो गये।[२]

पिता और पुत्र का एक कुटुम्ब में वैवाहिक सम्बन्ध

उच्चकुलीन इस राजवंश के राजा भीमसिंह ने और उनके पुत्र सूर्यमल्ल दोनों ने ईडर के राजा जगमाल की पुत्रियों के साथ विवाह किया, जिसका उल्लेख कवि ने द्वितीय पर्व में भीमसिंह का इतिहास देते हुए किया है।[३]

तृतीय पर्व में उनके पुत्र सूर्यमल्ल का भी उसी ईडर नरेश जगमाल की कन्या के साथ विवाह हुआ, यह वृत्त अंकित किया गया।[४]

---

१. वही-श्लोक सं.७५-१४५।

२. वही श्लो. सं. १४६-१५७।

३. भीमस्य राज्ञी सुभगा तृतीयका, राजावती सा क्षयराजवर्मणः।
आसीज्झलायाधिपतेस्तनूभ्यवातुर्याथ राज्ञी खलु येडरेचिनी ॥ १११ ॥
सासीत्च्छुभांगी जगमालवर्म्मणः पुत्रीडरेशस्य ततस्तु पंचमी ॥ ११२ ॥
वी.वं.व.—द्वि.प.।

४. राज्ञी तृतीयस्य च येडरेचिनी, चन्द्रानना श्रीजगमालवर्मणः।
सा श्रीडरेशस्य बभूव पुत्रिका, श्री श्यामसिंहस्य तु पौत्रिका शुभा ॥ १५६ ॥
वी.वं.व.—तृ.प.।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार का विवरण बनेड़ा राज्य के इतिहास में मिलता है कि राजा भीमसिंह की रानी जगमाल की पुत्री का नाम देवकुंवर था और सूर्यमल्ल की रानी उसी जगमाल की पुत्री का नाम धनकुंवर था।[१]

संभवतः इस प्रकार की वैयक्तिक प्रथा एक ही परिवार की कन्याओं के साथ पिता पुत्र का सम्बन्ध हो जाना रहा हो, किन्तु सामान्यतः समाज में अनुचित माना जाता है। इस तरह के संम्बन्ध तो वीर पुरुषार्थी राजाओं को देखकर छोटे राज्य वाले राजा अपने राजनीतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने के लिए किया करते थे।

चतुर्थु पर्व

बादशाह ने सुलतानसिंह के पिता के स्वर्गवासी होने पर उसे दिल्ली बुलाकर बड़े स्नेह से रखा। वि. सं. १७७९ में पुनः अपने देश में आये उस समय मेर जातिवालों ने उपद्रव कर रखा था, उनको दण्डित कर शान्ति पूर्व्रक प्रजा का पालन करने लगे। सं. १७९० में इस असार संसार को छोड़ कर स्वर्गवासी हो गये। उनके पश्चात् सिरदारसिंह राज्य का स्वामी हुआ।

पंचम पर्व

बादशाह ने तलवार बंधाई की रीति पूर्ण कर नवीन राजा का सत्कार किया। तत्कालीन राणा जगत्सिंह के साथ अच्छा सामंजस्य रहा। मराठों के उपद्रव से प्रजा संत्रस्त थी, उसका दमन किया। सिरदारसिंह की प्रधान महिषी ने चतुर्भुज भगवान् के मन्दिर, वापी एवं कुण्ड का निर्माण करवाया। सिरदारसिंह ने गढ़ बनवाया। सं. १८१५ में वे देवलोक वासी हो गये।

षष्ठपर्व

सिरदारसिंह के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ रामसिंह ने राज्य सिंहासन अलंकृत किया। पिता की तरह पराक्रमी, दयालु गो, ब्राह्मण के प्रतिपालक थे। सुरम्य पर्वतमालाओं से वेष्टित उच्च स्थान पर प्रासाद, दुर्ग का निर्माण करवाकर सुन्दर राजपुर नगर बसाया, जो प्राचीन बनेड़ा के नाम से विख्यात है। महाराणा के साथ माधवराव सिंधिया के आक्रमण को रोकने के लिए शिप्रा नदी के तट पर तुमुल युद्ध किया। रणांगण को महारुद्र के क्रीडार्थ रुण्डमुण्ड से आच्छादित कर दिया। माधवराव युद्ध भूमि से पलायन कर गया, किन्तु दूसरी ओर जयपुर से सेना सज्जित

---

१. बनेड़ा राज्य का इतिहास—पृ.५२,५५, नारायणश्यामराव चिताम्बरे।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर युद्ध भूमि में आ धमका। इसमें ७० वर्ष के आयु वाले शाहपुराधीश और रायसिंह वि. सं. १८२५ में शिप्रा पर दोनों वीरगति को प्राप्त हुए।

सप्तम पर्व

रायसिंह के अनन्तर हम्मीरसिंह राज्यासन पर आसीन हुआ। गुमान भारती नामक डाकू ने आतंक फैला रखा था, उसका मस्तक काट डाला। वह तलवार भी बनेड़ा के शस्त्रागार में सुरक्षित है।

अष्टम पर्व

हम्मीरसिंह के ज्येष्ठ पुत्र भीमसिंह ने पुत्रवत् प्रजा का पालन किया। कर्नल टॉड इनके समय में बनेड़ा आये। उन्होंने अपने इतिहास में बनेड़ा का वर्णन किया है। इनके समय में सोने चांदी की मुद्राओं का निर्माण कार्य प्रारंभ हुआ।

नवम पर्व

इनके पुत्र राजा उदयसिंह राज्यसिहांसन पर आरूढ़ होते ही अपने पौरुष से शत्रुओं के अहंकार का दलन कर उन्हें नत-मस्तक किया। महाराणा भीमसिंह ने बड़े स्नेह से इनको अपने पास रखा।

दशम पर्व

शुक्लपक्ष की द्वितीया के चन्द्रमा के समान आह्लादकारी राजा संग्रामसिंह ने ब्राह्मणों को गायें और उर्वरा भूमि प्रदान कर प्रजा का स्नेह पूर्वक पालन किया। ये आखेट में सिद्धहस्त थे।

एकादशपर्व

राजा संग्रामसिंह के पुत्र नहीं होने से राणी के आदेशानुसार जयपुर से गोविन्दसिंह को लाकर उत्तराधिकारी बनाया। उन्होंने वेद वेदांगों का अध्ययन किया। वैदिक धर्म और कर्मकाण्ड के प्रति आस्थावान् थे। वृन्दावन में श्री नृत्यगोविन्द बिहारी के मन्दिर का निर्माण करवाया।

द्वादश पर्व

पश्चात् अक्षयसिंह ने राज्यसिंहासन को सुशोभित किया। राजा अक्षयसिंह ने सुन्दर महल, उपवन, औषधालय, न्यायालय और शिक्षा के प्रचारार्थ पाठशालाएं स्थापित की। अक्षयनीति सुधाकर नामक ग्रन्थ बनवाया।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रयोदश पर्व

राजा जयसिंह के पश्चात् राजसिंहासन पर अमरसिंह का राज्याभिषेक हुआ। पिता की तरह राजा अमरसिंह ने भी राज्य के विकासार्थ अनेक प्रकार के कृषि, कोष, कन्या विद्यालय, अमरसुन्दर प्रासाद आदि का निर्माण करवाया।

चतुर्दश पर्व

इस पर्व में बनेड़ा की भौगोलिक स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके पश्चात् आशीर्वादात्मक वचन ईश वन्दना राजा प्रजा को उपदेश तथा इतिहास का प्रयोजन बताया गया है।

कवि ने इस प्रकार से चतुर्दश पर्वों में कथावस्तु विभाजित कर बनेड़ा राजवंश का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया।

ऐतिहासिक विषय वस्तु के साथ काव्य का साहित्यिक सौन्दर्य द्रष्टव्य है। काव्य में उपमादि अंलकारों का विवेचन कवि के विशिष्ट पाण्डित्य का द्योतक हैं।

भीमं प्रतस्थे यवनैर्महाबलैः, योद्धुं यथेन्द्रो दितिजै र्महाबलैः।
वीरं प्रयुक्तोऽध्वनि युद्धतत्परैः, रेजे यथोग्रेऽस्त्रधरैरिवामरैः ॥ ८२ ॥

(पराक्रमी भीमसिंह विशाल यवन सेना के युद्ध करने के लिए इस प्रकार चले, जैसे इन्द्र दुष्ट दानवों का संहार करने के लिए जा रहे हो। रणपटु मेवाड़ी वीरों से ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे देवसेना से युक्त कार्तिकेय स्वामी हो)

राजा भीमसिंह को देवराज इन्द्र और कार्तिकेय स्वामी के समान बतलाना उपमा का सूचक है।

शत्रुं दिधक्षेरनिरुद्धवर्म्मणः सम्पद्य भीमः प्रधने सहायकम्।
प्रत्यर्थिवर्ग प्रजघान दुर्ज्जयं भीमानुजो निर्जर सांपतेरिव ॥ १०५ ॥

(अनिरुद्ध के शत्रुओं को नष्ट कर भीमसिंह ने उसकी मदद इस प्रकार की, जिस प्रकार से इन्द्र की सहायता अर्जुन ने की थी और अनिरुद्ध को बूंदी का राज्य दिलाया)

भीमसिंह के शौर्य का अर्जुन के पराक्रम से साम्य इस श्लोक में उपमा अंलकार का निदर्शन है।

श्रीरायसिंहो गुरुणार्पितं शुभं सिंहासनं प्राप्य जहार तद् द्रुतम्।
रेजेऽन्वहं परिहृत्य सोऽधिकं, सूर्यो यथाऽमानिशिजं महत्तमः ॥२५०।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(राजा रायसिंह के राज्यसिंहासन पर आरूढ़ होते ही दुःखदैन्य का इस प्रकार निवारण हुआ जिस प्रकार सूर्य भगवान् अमावस्या के गहन अन्धकार को नष्ट कर देते हैं)

रायसिंह द्वारा दुःखों का दलन सूर्य भगवान् द्वारा अमावास्या के निबिड़ अन्धकार को नष्ट करने के समान है, जिसका कवि ने उपमा अलंकार द्वारा सुन्दर चित्रण किया है।

पण्डित नगजीराम ने इस काव्य को विशेष रूप से इन्द्रवज्रा छन्द में लिखा है। काव्य की भाषा सरल सुबोध है। यत्र तत्र शार्दूलविक्रीडित छन्द में भी रचना की है। यह रचना इतिहास प्रधान होने के साथ जो निहित साहित्यिक सौन्दर्य इसमें मिलता है, वह कवि कर्म का श्लाघनीय कौशल है।

वीरभूमि

वीरभूमि काव्य उदयपुर निवासी पं. शोभालाल शास्त्री की चित्तौड़ के प्रति उत्कट भक्ति भावना का निदर्शन है। इसकी रचना वि.सं. १९८७ फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा के शुभ पर्व पर उदयपुर में पूर्ण हुई।[१] वीर भूमि चित्तौड़ की कीर्ति कौमुदी का प्राचीन इतिहास इसके एक एक श्लोक में भरा पड़ा है।

पं.शोभालाल शास्त्री

शास्त्रीजी का जन्म वि.सं. १९५० कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को हुआ। आप उदयपुर के रहने वाले दशोरा जाति के ब्राह्मण थे। आपके पिता का नाम इन्द्रलाल था।

महाराणा संस्कृत कॉलेज में संस्कृत की शिक्षा प्राप्त कर प्रथमा और शास्त्री परीक्षा में प्रथम रहे। शास्त्री परीक्षा के अनन्तर उक्त संस्था में ही प्रधानाध्यापक पद पर रह कर पन्द्रह वर्ष तक सुचारु रूप से कार्य का संचालन किया। संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा में भी पूर्ण योग्यता प्राप्त की। धर्मशास्त्र पुराणादि का

---

१. मुन्यष्टनन्दरजनीपति सम्मितेऽब्दे,
पूर्णिकृता रुचिरफाल्गुनपूर्णिमायाम्।
श्रीचित्रकूटनगरीगुणरत्नमाला,
स्वच्छोज्ज्लोदयपुरे सुमहोत्सवाढ्ये ॥ १५६ ॥ वीरभूमि ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आपको पर्याप्त ज्ञान था । इतिहास एवं पुरातत्वानुसन्धान में योग्यता होने के कारण आपको प्रताप संग्रहालय उदयपुर के संग्रहाध्यक्ष पद पर नियुक्त किया,जिसे कुशलता के साथ इस कार्य को संपादित किया ।[१]

वीरभूमि काव्य आपकी चित्तौड़ के प्रति अगाघ भक्ति का परिचायक है । महाराणा फतहसिंह द्वारा चित्तौड़ में बनवाये गये प्रासाद के लिए फतह प्रकाश प्रशस्ति लिखना आरम्भ किया जो अप्रकाशित है । किन्तु दुर्दैव वश तीन माह तक रुग्णावस्था में रहकर वि. सं. १९८८ मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को ये स्वर्गवासी हो गये ।

वीरभूमि काव्य की संक्षिप्त विषयवस्तु

कवि ने मेवाड़ राज्य इष्टदेव श्रीएकलिंग भगवान् का स्मरण कर मंगलाचरण किया है । कलिकाल के प्रचण्ड कष्टों से प्रपीड़ित धर्म जब कृशकाय हो गया और कहीं भी स्थान नहीं मिला, तो उसने इस भूभृत (पर्वतों और राजाओं) की श्रेणी से सुरक्षित मेदपाट(मेवाड़ देश) का आश्रय लिया । स्वच्छ झरनों की बिन्दुओं से अत्यन्त शीतल एवं लताओं से अभिव्याप्त यह प्रदेश है, इसलिए भगवान् भास्कर की प्रचण्ड रशिमयां भी प्रवेश नहीं कर सकती, जिसके पर्वतों की कन्दराओं में सिंह गर्जना किया करते हैं । कवि की मान्यता है कि वीर राजाओं के शोणित प्रवाह से क्षालित पुनीत रमणीय चित्तौड़ के दर्शन कर भीरुता के कारण उत्पन्न इस मलिनता को हृदय से सदा के लिए दूर कर दें तथा इसके दर्शन से पवित्र हो जावे । अनेक राजवंश उत्ताल तरंगों वाले यवन रूपी प्रलय सागर में निमग्न हो चुके थे, उस समय वैवस्वत अर्थात् सूर्यवंशी गुहिल वंश की रक्षा की । मत्स्य के समान आकृतिवाला यह चित्तौड़ विजय को प्राप्त होवे ।[२] कविने मेवाड़ एवं यहां के राजवंश का महत्त्व

---

१. यः पंचाम्बुविभूषणे लवपुरे शास्त्राण्यधीत्यादरा,
ल्लेभे शास्त्रिपदं तथैंग्लिशगवी विज्ञत्वमासिदि ज्ञानु ।
श्रीभूपाल महीश्वराश्रित पुरातत्वानुसन्धानकृत,
शोभालाल सुधीरसौ दशपुरज्ञातिर्न्यबन्धादिमाम् ॥ १५८ ॥ वीरभूमि ॥

२. श्रीशैलराजतनयावदनारविन्द, सौन्दर्यपानमदघूर्णितनेत्रभृगंम् ।
हेरम्बमूर्द्न्धि सततं निहितैकपाणिं, वन्दे प्रसन्नमनसं प्रभुमेकलिंगम् ॥ १ ॥
धर्मः प्रचण्डकलिकालकदर्थनाभि, रुत्पीडितो विशरणः कृशतामुपेतः ।
यं शिश्रिये विजयतां सततं स भूभृन्, मालाभिरक्षिततमोभुविमेदपाटः । । २ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रदर्शित किया है । आगे पूरे काव्य में वीर एवं वीरागंनाओं के त्याग बलिदान की इतिहास सम्मत अमर कहानी दी गई है ।

अनेक यज्ञों के धूम से पवित्र विश्व में विख्यात यहां मध्यमिका नाम की नगरी थी, जो मौर्यवंशरूपी कमलवन को विकसित करने वाले राजाओं की उत्तम राजधानी थी । चित्रांगद राजा ने उच्च पर्वत के शिखर पर शत्रुओं को भयभीत कर देने वाले एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण किया और उस पर अपने नाम की मुद्रा (मुहर) लगाकर इसे चित्रकूट (चित्तौड़) बनाया । गुहिल वंश रूपी गगनांगण में चन्द्रमा सदृश 'बप्प' नामक (बाप्पारावल) राजा ने शंकर (एकलिंग जी) की कृपा से मौर्य वंशी मान राजा को युद्ध में परास्त किया । यह भूमि कल्याणसिंह (कल्ला) और जयमल[1] के वक्षः स्थल से निकले हुए रुधिर से पवित्र हुई है । यहां इन दोनों वीरों ने अपने गौरव के लिए युद्ध रूपी अग्निकुण्ड में अपने प्राणों की आहुति दी । यहीं पर भीषण कृपाण की कराल धारा के प्रहार से अकबर के मदोन्मत्त हाथियों को काटकर जगावतवंश के अलंकार प्रताप[2](पत्ता) ने स्वर्गारोहण किया ।[3]

निह्रादिनिर्झरगलज्जलशीतलासु, वल्लीवितानविलसद्विटपाकुलासु ।
तिग्मांशुदीधितिभिरप्यवलोकितासु, गर्जन्ति यत्र हरयो गिरिकन्दरासु ॥ ४ ॥
एह्येहि वीरवसुधाधवशोणितौघ, प्रक्षालितां परमपुण्यतमां सुरम्याम् ।
श्रीचित्रकूटनगरीमवलोक्य चित्तात्, कातर्यसम्भवमलं विनिवारयामः ॥ ६ ॥
भीमोत्तरंगयवनप्रलयाम्बुराशौ, मग्नेष्वनेकवसुधारमणान्वयेषु ।
वैवस्वतं गुंहिलवंशमपादगृहीत, मत्स्याकृतिः स जयतादिह चित्रकूटः ॥ ७ ॥

१. कल्ला जयमल का गोत्रज था, जयमल बदनोर स्वामी का पूर्वज तथा चित्तौड़ का सेनापति था । कल्ला अकबर के हाथ से गोली लगने के कारण घोड़े पर चढ़ने में असमर्थ, किन्तु युद्ध की उत्कट भावना वाला कल्ला जयमल के कन्धे पर बैठकर लड़ा । अकबर के साथ युद्ध करते हुए दोनों वीर वि.सं.१६२४ में वीरगति को प्राप्त हुए । वीरभूमि फुटनोट—पृ. १७ ।

२. प्रतापसिंह (पत्ता) आमेट पति का पूर्वज था ।
यह प्रतापसिंह, महाराणा प्रतापसिंह से भिन्न है । वीर भूमि-फुट नोट—२२ ।

३. आसीदनेकमखधूमवितानपूता ख्यातापुरी जगति मध्यमिकाभिधाना ।
मौर्यान्ववायनलिनीवनभास्कराणांयासीत् पुरा क्षितिभृतां वरराजधानी ॥ ८ ॥
उत्तुंग भूमिधरमूर्द्धनिवैरिवर्गवित्रासनंद्रढतमं विनिवेश्य दुर्गम् ।
चित्रांगदं क्षितिपति र्निजनामधेय, मुद्राङ्कितं तदकरोत् किल चित्रकूटम् ॥ १० ॥
बप्पाभिधोनरपति र्गुहिला[illegible]धिगत्य हरप्रसादम् ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भगवच्चरणारविन्द की सुधा का पान करके मत्तहुई मीरा[१] इसी स्थान पर वीतरागिनी हो गई। विष भी उसके हाथ में पहुंच कर अमृत बन गया। सामने ही सुमेरु पर्वत के सौन्दर्य को जीतने वाली महाराणा कुम्भकर्ण की कीर्ति लता का आश्रयभूत कीर्तिस्तम्भ का अवलोकन करिये। देवतागण भी रत्नमय शिखर युक्त सुमेरु पर्वत का परित्याग कर प्रसन्न चित्त से सतत यहां निवास करते हैं। इस पर भावभीनी गुणवती सरस कोमलपदावली से युक्त दशोरा ब्राह्मण महेश भट्ट द्वारा रचित प्रशस्ति का[२] रसास्वादन कीजिये। इस रचना से तृप्ति नहीं हुई हो तो समाधीश्वर[३] के मन्दिर में एकमात्र भट्ट की उत्तम कविता का आस्वादन कीजिये। इसी स्थान पर गौमुख से निरन्तर गिरती हुई जलधारा का आनन्द प्राप्त कर गंगाधर (शंकर) सब कार्यों को भूल गए हैं और समाधि में मग्न हैं। वे पुरुष धन्य हैं जो चिरकाल तक इनके दर्शन कर अपने नेत्रों को सफल करते हैं।[४]

मौर्यान्वयं समिति माननृपं विजित्य श्री चित्रकूटमिममात्मवशं चकार ॥ ११ ॥
कल्याणसिंहजयमल्लविशालवक्षः सम्भूतशोणितपवित्रतमा स्थलीयम्।
वीरद्वयेननिजगौरवरक्षणार्थमत्रासवो जुहुविरे समराग्निकुण्डे ॥ १७ ॥
अत्रातिदीर्घकरवालसुतीक्ष्णधारा, घातैरकब्बरमदान्धगजान् विपाट्य।
स्वर्गाधिरोहणपथं विशदीचकार, श्रीमज्जगावतकुलाभरणं प्रतापः ॥ २२ ॥

१. 'मीरा' महाराणा संग्रामसिंह के पुत्र भोजराज की पत्नी थी। इसका समय वि.सं.१५६६ से १५८४ के मध्य माना जाता है। वीरभूमि—फुटनोट—पृ.३४।

२. यह प्रशस्ति कीर्तिस्तम्भ के सप्तम खण्ड पर शिला पर उत्कीर्ण है। वीरभूमि—फुटनोट पृ.४६ महेश्वर कवि झोटिंग भट्ट का पौत्र अत्रिभट्ट का पुत्र था, एवं दशोरा जाति का ब्राह्मण था। वीर भूमि—फुट नोट पृ.४७।

३. मोकल ने इसका जीर्णोद्धार वि.सं.१४८५ में कराया था। वीरभूमि फुटनोट पृ.४८

४. अत्रैव माधवपदाब्जसुधाप्रमत्ता, मीरा ननर्त गलितस्वपराभिमाना।
घोरं हलाहलमिहैव तदीयहस्ते, श्रीनन्दसूनुचरणामृततां प्रपेदे ॥ ३४ ॥
श्रीकुम्भकर्णनृपकीर्तिलतावलम्बं, स्तम्भं पुरः कलय निर्जितमेरुशोभम्।
यद्रत्नसानुमपि दूरतरं विहाय, देवाः प्रसन्नमनसः सततं श्रयन्ते ॥ ४४ ॥
चित्तं तवास्ति यदि काव्यकलाविलासे, बद्धस्पृहं तदनुशीलय किंचिदत्र।
भावान्वितां गुणवतीं सुकुमारबन्धां, रम्यां कृतिं दशपुरद्विजपुंगवस्य ॥ ४६ ॥
तृप्ति न चेदुपगतोऽसि विनष्टशेषा, मालेक्य रम्यरचनां हि महेश्वरस्य।
आस्वाद्यतां सुकविता चिरमेकनाथ, भट्टस्य सद्मनि समाधिमहेश्वरस्य ॥ ४७ ॥
अत्रैव गोमुखपतद्विमलाम्बुधारा, नित्याभिषेकसुखविस्मृतसर्वकृत्यम्।
गंगाधरं समवलोक्य समाधिमग्नं धन्याश्चिरं सफलयन्ति विलोचनानि ।। ५३ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यहां ललनाओं के लिलित अंगों से धुले हुए केसर कपूरादि के अनुलेपन के गन्ध से मुग्ध होकर भ्रमर चारों ओर ऊंचे ऊंचे वृक्षों पर निवास किया करते थे। इसी स्थान पर मधुर मन्द हास्य की किरणों द्वारा अरुण अधर पल्लवों को धोती हुई राजबालाओं ने अग्नि में प्रवेश किया था, जिनके कोमल अंग लतिकाओं के धूम से भूमण्डल देदीप्यमान हो गया। यहां कालिका माता का मन्दिर है, जिसका प्रांगण बलिदान किये गये पशुओं के रुधिर से क्लिन्न है, जो कालिका युद्ध में यवनों के कण्ठ से निकली हुई रुधिर की नदी का पान करके भी तृप्ति को प्राप्त नहीं हुई थी[१] चिरकाल पर्यन्त यवन सैनिकों का रक्त पान करने से जिस कालिका की भूख प्रबल हो उठी थी, उसी को शान्त करने के निमित्त लक्ष्मणसिंह ने सात पुत्रों सहित अपने आपको बलिदान किया था। अल्लाउद्दीन के युद्ध में पतियों के स्वर्ग में चले जाने पर स्त्रियों को किंकर्तव्य विमूढ़ देखकर जिस पद्मिनी ने अग्नि में प्रवेश कर परमोत्कृष्ट मार्ग को अपनाया था।[२]

---

१. वि.सं.१३६० मे अलाउद्दीनखिलजी के साथ युद्ध में—वीरभूमि फुटनोट पृ.६३

२. अत्रांगना सुललितांगपरिच्युतानां,
कश्मीरजन्मघनसारविलेपनानाम्।
गन्धेन मोहितधियो मधुपाः समन्तात्,
चक्रुर्निवासमतितुंगमहीरुहेषु ॥ ५५ ॥
अत्राविशन् हुतवहं मधुरस्मितांशु,
धौतारुणाधरदलाः क्षितिपालबालाः।
यत् कोमलांगलतिकोत्थितधूमराशि,
र्भूमण्डलं निखिलमुज्ज्वलयाञ्चकार ॥ ६२ ॥
पश्योपहारपशुशोणितकर्दमौघ,
क्लिन्नाङ्गणं गृहमुदञ्चति कालिकायाः।
या संगरे यवनकण्ठतटप्रसूतां,
पीत्वापि शोणितनदीं न जगाम तृप्तिम् ॥ ६३ ॥
अस्याश्चिराद्यवनसैनिकरक्तपान,
सन्धुक्षितां शमयितुं प्रबलां बुभुक्षाम्।
आत्मानमाशु सह सप्तभिरेव पुत्रैः,
श्रीलक्ष्मसिंह नृपतिः समुपाजहार ॥ ६४ ॥
अल्लावदीनसमरे त्रिदिवं गतेषु,
नाथेषु मूढहृदयाः प्रसमीक्ष्य बालाः।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्चिम में[१] लक्ष्मणसिंह के पुत्र चूंडाजी का सुन्दर भवन है, जिन्होंने भीष्म पितामह की तरह राजलक्ष्मी का परित्याग कर अपने छोटे भाई[२] मोकल की सेवा को स्वीकार किया था। राजमार्ग से पश्चिम की ओर अत्यन्त प्राचीन महादेव शंकर का मन्दिर है, ज़हां नीलकण्ठ आनन्दपूर्वक निवास करते हैं, जिनके चरण कमलों की सेवा पार्वती करती है। महाराणा[३] हम्मीर लक्ष्मी को मुसलमानों के हाथों गई हुई देखकर अनेक उपायों द्वारा उसे पुनः लाये और चित्तौड़ के शिखर पर विशाल मन्दिर बनवाकर उसे स्थापित किया। हिमालय के शिखर के सदृश यह कुक्कुटेश्वर महादेव का मन्दिर है, जिस पर गगनचुम्बी सुवर्ण कलश शोभायमान है। इसे किसी कुक्कुटेश्वर नामक राजा ने बनवाया था।[४]

वह्निं प्रविश्य सहसा पतिलोकमार्ग
मत्युज्ज्वलं सुसरलं समदर्शयत् सा ॥ ६९ ॥
दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने वि.सं.१३६० में पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए चित्तौढ़ दुर्ग के घेरा डाला था, उस समय की घटना है।
वीर भूमि, फुटनोट—पृ.६९ ॥

१. महाराणा लक्षसिंह (लाखा) वि.सं.१४४९ में सिंहासनासीन हुए और वि.सं.१४७६ से १४७८ के मध्य में किसी समय इनका स्वर्गवास हुआ था। वीर भूमि—फुटनोट—पृ. ७१।

२. महाराणा मोकल वि.सं.१४७६ से १४७८ के मध्य में किसी समय सिंहासनारूढ़ हुए और वि.सं.१४९० तक चित्तौड़ का राज्य करते रहे। वीरभूमि—फुटनोट—पृ.४३।

३. महाराणा हम्मीर का वि.सं.१३८३ में चित्तौड़ का राज्य प्राप्त करने का अनुमान किया जाता है, और स्वर्गारोहण का समय वि.सं.१४२१ है। वीरभूमि—फुटनोट पृ.९७, और उ.रा.इ.I ओझा पृ.२३४

४. श्रीलक्षसिंहनृपतेस्तनयस्य पश्य,
चूंडाभिधस्य रुचिरं सदनं प्रतीच्याम्।
संत्यज्य भीष्म इव योऽखिलराज्यलक्ष्मी,
मूरीचकार सहसावरजस्यसेवाम् ॥ ७१ ॥
पश्याग्रतो लसति राजपथात् प्रतीच्या
मेतत् पुराणतममायतनं पुरारेः।
सानन्दमावसति यत्र हिमाद्रिकन्या,
संवाह्यमानच्चरणः खलु निलकण्ठः ॥ ८७ ॥
दृष्ट्वा श्रियं यवनहस्तगतामुपायै
र्हम्मीरभूपतिरिमां पुनरानिनाय।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपसंहार में कवि चित्तौड़ नगरी से स्वयं ही अपनी दशा का वर्णन करवा रहा है, जैसे अंग प्रत्यंग शिथिल हो चुके हैं प्रासादों, झरनों सरोवरों और बड़े बड़े द्वारों में भ्रमण कर शिथिलांग वीरभूमि 'चित्तौड़ नगरी का निरीक्षण कर चुके हैं और गम्भीरी नदी के जल के स्पर्श से सुशीतल वायु से स्नान कर चुके हो, तब समीपस्थ मण्डप में बैठकर मेरा कथन सुनिये, मानवों ! परमतत्व की बात कह रही हूं । अखिल विश्व को नश्वर समझ धर्मोपार्जन में लग जाओ, मेरे सम्पूर्ण अंग विविध रत्नों से विभूषित थे, और अभिमान से मैं स्वर्ग को भी तृणवत् नहीं समझती थी, किन्तु आज मेरे अंग शिथल हो गये हैं । यह सब कुछ अवलोकन करते हुए संसार के स्थायित्व में कैसे आस्था होती है ? जिन घरों में ललनाओं का चिरकाल से गान कानों में अमृत का अभिषेक किया करता था, उन्हीं घरों में उल्लुओं का आज घूत्कार शब्द हो रहा है ।

साहित्यिक विशेषताएँ:—

यह रचना सरस काव्य सौष्ठव की दृष्टि से अपना एक विशेष महत्त्व रखती है । उपमा, श्लेष आदि अलंकार युक्त पद्यों का विधान शास्त्रीजी के पाण्डित्य को प्रकट करता है ।

प्राचीरतुङ्गकपिशीर्षकसन्निकर्षे,
स्थित्वा क्षणं दृशमवाञ्चय पश्चिमायाम् ।
यत्रातिनिर्मलतरङ्गवती-गभीरा,
तन्वी सुधा विरचितेव विभाति रेखा ॥ २६ ॥

(कवि ऊपर चित्तौड़ दुर्ग से देखने पर नीचे तलहटी के दृश्य का वर्णन करते हुए गंभीरी नदी को सुधा की रेखा के समान मान रहा है) ।

यहां गंभीरी नदी सुधा की एक रेखा के समान प्रतीत हो रही है । श्लोक में सादृश्य वाचक 'इव' शब्द के प्रयोग से उपमा अलंकार है ।

श्रीचित्रकूटगिरिमूर्द्धनि दिव्यमेतन्,
निर्माय मन्दिरमिमामचलाञ्चचक्रे ॥ ९७ ॥
श्रीकुक्कुटेश्वर इति प्रथितेन राज्ञा,
निर्मापितं गगनचुम्बिसुवर्णकुम्भम् ।
एतत्तुषारधरणीधरकूटकल्पं,
श्रीकुक्कुटेश्वरशिवायतनं विभाति ॥ १०० ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अपनी इस कृति के परिचय में श्लेष अलंकार का सुन्दर चित्रण किया हैं ।

माला रम्यतमा वसन्ततिलका सद्वृत्तमुक्तामयी,
यत्नेन ग्रथिता निसर्गविशदैः श्रीवीरभूमेर्गुणैः ।
सद्वर्णा सुकुमारबन्धलतिका चेतो हरन्ती सताम्,
वीराणां विदुषां च सन्ततमियं पुष्णातु कण्ठश्रियम् ॥ १५७ ॥

(यह वीरभूमि काव्य उत्तम वर्ण (अक्षर और रंग) वाली कोमलबन्ध (गठन और रचना) से परम सुन्दर वसन्ततिलका वृत्त रूपी गोल गोल मोतियों की रमणीय माला स्वभाव से ही उज्ज्वल और व्यापक वीर भूमि के गुण रूपी धागे से सप्रयत्न गूंथी गई है, जो सत् पुरुषों के चित्त को हरण करती हुई वीरों और विद्वानों के कण्ठ की शोभा बढ़ावे) ।

इस श्लोक में प्रयुक्त वर्ण, बन्ध, गुण शब्द श्लिष्ट हैं । द्व्यर्थक होने से यहां श्लेष अलंकार है ।

यह सम्पूर्ण काव्य 'वसन्ततिलका' छन्द में लिखा गया है । वीरांगना 'पद्मनी' आदि के वृत्त का उल्लेख करते हुए ओज, साहस और उत्साह सम्पन्न गौरव गरिमामय पदों का विन्यास हुआ है । भक्तिमती 'मीरा' के इतिवृत्त में सरस, मधुर भानभीने शब्दों का चयन किया गया है ।

विषयानुकूल शब्द योजना का मंजुल गठन करना पण्डितजी की विशेषता दृष्टिगत होती हैं । आपके द्वारा ऐसी सुन्दर सरस श्रमसाध्य कृति का जो निर्माण हुआ, वह मेवाड़ की गौरव गरिमा के साथ साथ संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में सर्वथा श्लाघनीय योगदान है । पं. गिरिधर व्यास शास्त्री ने इसका संपादन कर प्रकाशित करवाया है ।[१]

---

१. वीरभूमि-श्री कृष्णमुद्रणालय उदयपुर वि. सं. १९८९

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थ अध्याय

धार्मिक काव्य, स्तोत्र, टीका

१—एकलिंग माहात्म्य

२—एकलिंग माहात्म्य (पुराण)

३—एकलिंग स्तोत्र (अष्टक)

४—एकलिंग पूजापद्धति

५—चण्डीशतक टीका

६—गंगा भक्तानन्द सिन्धु

एकलिंग माहात्म्य

कह्न व्यास रचित 'एकलिंग माहात्म्य' की प्रति 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में ग्रन्थ सं. १४७७ पर विद्यमान है। प्रतिलिपित इस ग्रन्थ में इसके रचना काल का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। वर्तमान कालिक क्रियाओं के प्रयोग से और महाराणा कुंभा तक के वर्णन से विदित होता है कि कवि महाराणा कुम्भा का समकालीन था, अतएव इसकी रचना उसके आदेश से कुम्भलगढ़ दुर्ग पर राज्यकाल वि. सं. १४९०-१५२५ के मध्य की गई हो, ऐसा प्रतीत होता है।[१]

ग्रन्थ विभिन्न अध्याय यथा कामधेनुवरदान, इन्द्रवर प्रदान, हारीतराशि कृता एकलिंग स्तवन, मेदपाटीय तीर्थ यात्राफल, मेवाड़ के गुहिल नरेशों की वंशावली, जो महाराणा कुम्भा तक दी गई है, उसका वर्णन श्रीमदेकलिंगस्तुति, पंचायतन स्तुति और अनेक लिंग नामक अध्यायों में विभक्त है।

---

१. आनन्दवृद्धादि पुराभिनंदी नंदीशवृंदी नृप कुंभकर्णः।
तदाज्ञया प्रेरित एव कह्न व्यासो व्यधत्तारक मौक्तिकावलिम् ॥ ६२ ॥
दुर्गांबिकाद्रौ जयमालदुर्गे कौंभेपुरे धातुनिधौ समुद्रे
स्ता चन्द्रचूड़स्तुतिचन्द्रकांता कुंभश्रिये कह्न कृता सुवृत्ता ॥ ६३ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री एकलिङ्ग महादेव (मेवाड़ के स्वामी)

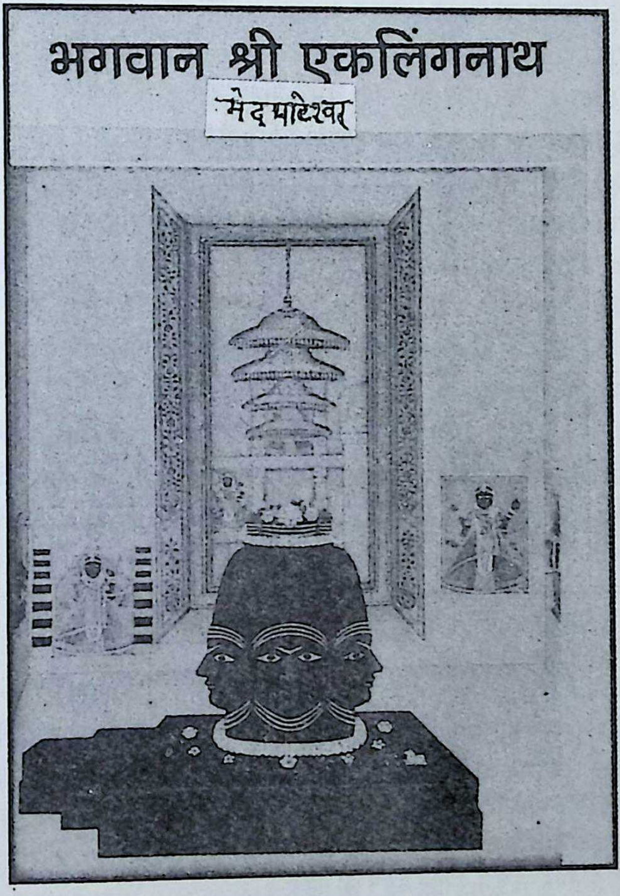

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि द्वारा सर्व प्रथम लक्ष्मी, पार्वती और रतिपति कामदेव का पांचवें श्लोक पर्यन्त शृंगारिक वर्णन कर मंगलाचरण किया गया है। पश्चात् हारीत राशि और उनके शिष्य बापा की अन्तर्कथा का वायुपुराण में उल्लिखित शिव और चण्डगण की कथा से सम्बन्ध बतलाया गया है।[१]

संक्षिप्त कथावस्तु

कामधेनु वरदान अध्याय

कामधेनु वर प्रदान विषयक अध्याय में वायु नारद संवादान्तर्गत कैलाश पर्वत पर महादेव शम्भु पार्वती के साथ रमण कर रहे थे। नन्दी और चण्डगण को द्वार पर नियुक्त कर रखा था। उस समय तारक दैत्य द्वारा प्रपीड़ित ब्रह्मा विष्णु और इन्द्रादि देवता शिव के पास प्रतीकारार्थ उपस्थित हुए। शिव अपने सम्मुख देवताओं को देखकर तत्काल पार्वती को छोड़ शय्या से उठ खड़े हुए। इस व्यवहार से कोपाविष्टा पार्वती को देखकर विष्णु ने निवेदन किया हे देवि ! छः मुख, द्वादश नेत्र तथा मयूरवाहनवाला पराक्रमी, वीर बालक इस वीर्य से उत्पन्न होगा जो तारक दैत्य का नाशक होगा। पार्वती ने शम्भु से कहा कि मुझ अनुरक्ता को छोड़कर आपने देवताओं से वार्तालाप किया, अतः मेदपाट (मेवाड़) में ऋषियों द्वारा प्रदत्त शाप सत्यरूपेण सिद्ध होगा और आप एकलिंग के रूप में उत्पन्न होंगे। हे नन्दी ! और हे चण्ड ! तुम्हारे द्वारपर रहते हुए देवताओं का प्रवेश हुआ, तुम अपने कर्तव्य से च्युत रहे, तदर्थ नन्दी तुम द्विज वंशी 'बापा' नाम के मेवाड़ के राजा होंगे और चण्ड तुम वहीं एकलिंग के अर्चक 'हारीत राशि' बनोगे। सरस्वती ने देवताओं का पक्ष लेकर पार्वती से अनुनय विनय किया तो उसे भी नदी हो जाने के लिए कहा

---

१. —भूयस्तत् काल कान्ति द्विगुणितसुरतप्रीतिनासौ रिणावः,
शैय्यामालिंग नीतं वपुरलसलसद्बाहुलक्ष्म्याः पुनातु ॥ १ ॥
करेण नीवीं वदनेन लज्जामंसेन धम्मिल्लभरं वहन्ति।
रतेन तृप्तानवकेलितस्यादर्धोत्थिता पातु पिनाकिकान्ता ॥ २ ॥
रतिपरिमलसिंधु कामिनीकेलिबंधुः, प्रथितभुवनवीर्यो नागराणं विनोदः।
जयतु मकरकेतुर्मोहनस्यैकहेतु विंरचित बहुसेवः कामिभिः कामदेवः ॥ ५ ॥
अथ वाप्पधरणिनायक वंशोत्पत्तिं तु वर्णयाम्युच्चैः।
या कीर्तनेन पुरुषान् पुनाति गंगेव किं बहुना ॥
श्रीमद्वायुपुराणप्रभृतिषुनानाविधेषु शास्त्रेषु।
अद्यापि या प्रसिद्धा श्रुता तु सर्वार्थसंपदे भवति ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथा साथ ही हे गंगे ! तू मेरी सपत्नी है अत: एकलिंग के स्थान पर कुटिला नामक नदी हो जाओगी। इस तरह पार्वती के शापानुसार देवी देवता पाषाण की प्रतिमा हो गए।

भगवान् एकलिंग ने नन्दिनी को कहा तुम रुद्रों की माता होकर आर्यावर्त में विचरण करो। मेरे ही वचनों से मुझ एकलिंग को बहुलिंग बना दो। इस प्रकार नन्दिनी का महत्त्व बतलाया गया है। नन्दिनी ने अमरकण्टक जाकर शिव का स्मरण किया तो ओंकारेश्वर का उद्भव हुआ। रेवा और कपिला के तटपर अपने पूर्वजों को श्राद्ध और तर्पण से जो तृप्त कर ओंकारेश्वर को प्रणाम करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। इस प्रकार अमरकण्टक (ओंकाररेश्वर) का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। नन्दिनी सात बार वसुधा की प्रदक्षिणा करती हुई ओंकाश्वर, उज्जयिनी, गोवर्धन, सारणेश्वर केदार, गंगा के दोनों तट पर होती हुई प्रयाग गई। वाराणसी में जाकर विश्वनाथ के दर्शन किये। इस प्रकार भूमण्डल पर सात वार परिभ्रमण करके आकाशगामिनी हो गई।

इन्द्रवरप्रदान अध्याय

इसके अन्तर्गत एकलिंग ने कुछ देवताओं की प्रतिमाओं को अपने समीप ही स्थापित किया, इतर देवगण आकाशगामी हो गए। एकलिंग प्रभु की सत्युग में इन्द्र ने, त्रेता में नन्दिनी ने, द्वापर में तक्षक ने एवं कलियुग में हारित राशि और उनके शिष्य बापा ने पूजा आराधना की। शौनकजी ने सूतजी से यह आख्यान विस्तार पूर्वक कहने के लिए निवेदन किया, तदुपरान्त सूतजी बोले कि वायु नारद संवाद में वायु के द्वारा कथित जो कथा है उसे, सुनो। महातपस्वी देवश्रेष्ठ त्वष्टा प्रजापति ने इन्द्र के द्रोह से 'त्रिशिरा' नामक पुत्र उत्पन्न किया, किन्तु इन्द्र ने उसे अपने वज्र के प्रहार से धराशायी कर दिया। इसके अनन्तर वृत्रासुर को उत्पन्न किया, जिसने इन्द्र को परास्त कर स्वर्ग पर अपना आधिपत्य जमाया। उसने अग्नि, सोम दूसरे बना दिये। स्वाहा एवं स्वधा से (यज्ञ तर्पण आदि से) रहित भूमण्डल हो गया। यक्ष किन्नरादि उससे दु:खी होकर विष्णु के पास जाकर प्रार्थना की कि आपने समय समय पर मत्स्य कूर्म वराहादि अवतार ग्रहण कर प्राणियों के कष्ट का निवारण किया है अतएव अब भी कल्कि अवतार धारण कर विश्व का पालन करे एवं इन्द्र को पुन: राज्य दिलावे। आपके बिना कोई भी इस भार को वहन करने के लिए समर्थ नहीं है। विष्णु ने उनकी इस प्रकार की स्तुति के अनन्तर कहा कि मैं तुम्हारे लिए हित कार्य ही करूंगा, किन्तु त्वष्टा ने उसे बलिष्ठ बना रखा है, अत: समय की प्रतीक्षा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करो और छल छद्मपूर्वक उससे सन्धि कर उसका विनाश करो। विष्णु के निर्देशानुसार देवताओं ने उसके पास जाकर कहा कि आपने सम्पूर्ण चराचर विश्व को नियन्त्रित कर रखा है। इस प्रकार के श्लाघात्मक वचनों से प्रसन्न होकर संधि कर ली। तदुपरान्त उसने कहा कि मैं इन्द्र, अस्त्र, काष्ठ, पत्थर, दिन, रात, शुष्क, आर्द्र, मुष्टिकादि किसी से भी नहीं मारा जा सकता हूं। इतने पर भी युद्ध चाहते हो तो युद्ध हो जाय। एक समय वृत्रासुर ने संध्या करने के लिए समुद्र में प्रवेश लिया, तब इन्द्र ने समुचित अवसर जानकर विष्णु के संकेत को ध्यान में रख कपट से फेन सहित वज्र से उसका संहार कर दिया। अब इन्द्र ने उसकी मृत्यु के अनन्तर हत्या के भय से संतप्त होकर बृहस्पति के पास जाकर निवेदन किया कि मेरी इस ब्रह्महत्या से मुक्ति कैसे होगी? बृहस्पति ने कहा कि पृथ्वी पर भारत खण्ड में विख्यात मेदपाट (मेवाड़) नाम का देश है। पहिले वहां विन्ध्यवासिनी देवी की तदनन्तर एकलिंग महादेव की उपासना करने पर इस हत्या से मुक्त हो जाओगे। तदनुसार इन्द्र ने नागहृद (नागदा) नामक तीर्थ स्थान में पहुंच कर विन्ध्यवासिनी अम्बिका एवं एकलिंग की आराधना की, जिससे ब्रह्म हत्या के पाश से विमुक्त होकर स्वर्ग में चला गया।

त्रेता के आदि में विश्वामित्र के द्वारा पीड़ित कामधेनु मेवाड़ में कुटला नदी के तट पर भी एकलिंग की भक्तिभाव पूर्वक आराधना से बलवती बनकर हुंकारादि शब्द से म्लेच्छों को उत्पन्न कर विश्वामित्र की सेना का संहार किया। नन्दिनी को प्राप्त करने की अभिलाषा विश्वामित्र की निर्मूल हो गई। नन्दिनी पुनः वशिष्ठ के चरणों में जाकर उनके अग्नि होत्र को अखण्ड चलाती रही।

द्वापर में सोमवंशी राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ प्रारम्भ किया, उससे भयभीत होकर तक्षक एकलिंगजी की शरण में आया। एकलिंग प्रभु ने शान्त्वना देकर अपने सान्निध्य में रखा और उसके भागिनेय 'आस्तीक' के जन्म तक प्रतीक्षा करने के लिए कहा। आस्तीक ने जन्म लेकर उन सबकी रक्षा की। तक्षक जहां निवास करता था, उस स्थान का नाम नागहृद (नागदा) हो गया।

रोषावेश में प्रदत्त पार्वती के शापानुसार कलियुग में नन्दी और चंड गण मेवाड़ में बापा नामक राजा और हारीतराशि मुनि के रूप में प्रकट हुए। हारीतराशि तपस्या में रत रहते हुए जगदम्बा विन्ध्यवासिनी और एकलिंगजी की पूजा आराधना करते और बापा उनकी परिचर्या में तत्पर रहता। विन्ध्यवासिनी प्रसन्न होकर बोली

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'एकलिंग महादेव की स्तुति करो'। देवी की अनुकम्पा से हारीत ने मेवाड़ के स्वामी एकलिंग की प्रार्थना की। स्तुति से प्रसन्न हो एकलिंग प्रभु ने हारीतराशि को सशरीर विमान द्वारा कैलाश जाने के लिए कहा और बापा को मेवाड़ के चित्रकूट (चित्तौड़) पर अविचल राज्य प्राप्ति के लिए कहा एवं बापा समीपवर्ती पर्वत पर विद्यमान राष्ट्र सेना (राठासैनी) नामक देवी से संरक्षित किया गया। हारीत के कैलाशगमनान्तर बापा ने अपने पौरुष से चित्तौड़ का राज्य अधिगत किया। तीर्थों की यात्रा करने से युग युगान्तर में जो फल मानव को उपलब्ध होता है, वही फल एकलिंग प्रभु के दर्शन से प्राप्त होता है। एकलिंग तीर्थ का महत्त्व तीर्थ यात्रा फल नामक अध्याय में दिया गया है।

राजवंशवर्णन

आनन्दपुर (अर्णोदा) नामक ग्राम में नागरकुल मण्डन प्रसिद्ध याज्ञिक विजयादित्य विप्र के केशव नामक पुत्र हुआ। केशव के नागराउल, भोगाराउल. असाधर, और देवाराउल हुआ। देवाराउल के प्रतापी गुहदत्त (गुहिल) उत्पन्न हुआ, जो इस वंश का संस्थापक कहलाया, उसका पुत्र बापा महान् पराक्रमी हुआ, जिसको हारीत राशि ने स्वर्ण का पादकटक (पैर में पहिनने का कड़ा) दिया। बापा के काल-भोज, खुम्भाण, गोविन्द, आलू (अल्लट), सिंह, शक्ति कुमार, शालिवाहन, नरवाहन, अम्बाप्रसाद, कीर्तिवर्मा, नरवर्मा, नरपति, कर्ण, भादूक, गातडि, श्रीहंस, योगराज, वैरट—१ नरनाथ, श्रीपुंज, और कर्ण क्रमशः हुए। कर्ण ने आहोर दुर्ग का निर्माण करवाया।[१] कर्ण से ही रावल और राणा दो शाखाओं का प्रचलन हुआ। जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह हुआ।[२] जैत्रसिंह से पूर्व पांच नाम छोड़ दिये गये हैं। समरसिंह का पुत्र रत्नसिंह हुआ। इतर राणा शाखा में राहप हुआ, राहप के हरसू, बबरु, नागपाल, पूर्णपाल, केसर, भुवनसिंह, भीमसिंह, जयसिंह और लक्ष्मणसिंह के

---

१. पालयति स्म धरित्रीं तदंगजः कर्णभूमिन्द्रः ॥ ४१ ॥
यः शौर्येण च हाटकदानेन च मूर्तिनृपकर्णः।
दुर्गं कारितवान् श्री आहोरेपर्वतेरम्ये ॥ ४२ ॥

२. अथ कर्णभूमिभर्तुः शाखा द्वितीयं विभातिभूलोके।
एंकाराउलनाम्नीराणानाम्नी परामहती ॥ ५० ॥
अथापि यां (यस्यां) जितसिंहस्तेजोसिंहस्तथासमरसिंहः।
श्रीचित्रकूट दुर्गेऽभूवन् जित शत्रवोभूपा ॥ ५१ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नाम क्रमश: दिये हैं । अजयसिंह, हमीर, क्षेत्रसिंह, लक्ष्मसिंह, मोकल और महाराणा कुम्भा के वर्णन तक वंशावली दी गई है ।

इसके पश्चात् पंचायतन स्तुति के अन्तर्गत १७ श्लोक विघ्न हर्ता गणपति के १० भगवान् भास्कर के ११ श्लोक नारायण के ९७ श्लोक शिव के १२ श्लोक जगम्बिका के लिखकर स्तुति की गई है । एकलिंगजी और विन्ध्यवासिनी के स्मरणानन्तर अन्त में पुष्पदन्त प्रणीत महिम्न स्तोत्रादि के श्लोक देकर एकलिंग माहात्म्य ग्रन्थ की समाप्ति की गई है ।

एकलिंग माहात्म्य के राजवंशवर्णन में बहुत ही कम श्लोक कह्न व्यास के रचित हैं । अधिकांश श्लोक कुम्भलगढ़, कीर्तिस्तम्भ आदि प्रशस्ति से संकलित किये गये हैं । आगे दिये गये विवरण से ही स्पष्ट हो जायेगा कि अनेकत्र कवि ने ज्यों के त्यों पूर्ण श्लोक उद्घृत कर दिये हैं ।

ग्रन्थ का प्रारम्भिक मंगलाचरण लक्ष्मी पार्वती और काम से सम्बन्धित शृंगार रस से परिपूर्ण किया गया है । माता पार्वती और लक्ष्मी का शृंगारिक वर्णन तथा देवी देवता विषयक रति का विवेचन करना साहित्य में दोष माना गया है । जैसे कालिदास रचित कुमार-संभव के अष्टम सर्ग में शिव पार्वती का श्रृंगार रस से परिपूर्ण वर्णन दोष पूर्ण माना गया है, इस साहित्यिक दोष का यहां भी ध्यान कवि ने नहीं रखा है ।

हारीतराशि और उनके शिष्य बापा आदि से सम्बन्धित जिन अन्तर्कथाओं का उल्लेख वायुपुराणान्तर्गत एकलिंग माहात्म्य में माना है, वह वायुपुराण में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है । एक मात्र प्राचीन सूर्यवंश का सम्बन्ध बतलाना इसके महत्त्व को प्रदर्शित करना ही है । इसमें वर्णित इतिवृत्त के लिए 'यदुक्तं पुरातनै: कविभि:' स्थान स्थान पर लिखकर संकेत दिया गया है कि जो कुछ भी वृत्त कवियों द्वारा लिखा गया है, तदनुकूल ही इसमें वृत्तान्त दिया जा रहा है । इससे ज्ञात होता है कि इसमें वर्णित वृत्तान्त कवि का अपना स्वरचित कोई नवीन आख्यान नहीं है । ग्रन्थ में श्लोकों पर सत्यांक भी क्रमबद्ध दृष्टिगत नहीं होते है ।

अमरकाव्य और राजप्रशस्ति में देवादित्य का पुत्र आशादित्य लिखा है । एकलिंग माहात्म्य में आशादित्य का पुत्र देवादित्य माना यह व्यतिक्रम दृष्टिगत होता है । इसकी वंशावली में राहप के वंशज हरस बबरु का भी उल्लेख है, जो इतर प्रशस्तियों में नहीं मिलता है । मेवाड़ के विभिन्न प्रशस्तियां, काव्य ग्रन्थों में

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दी गई वंशावली में जो अन्तर राजाओंका मिलता है वह साथ में दिये गये वंशावली के सामूहिक मानचित्र से स्पष्ट हो जाता है

इसमें केशव को विजयादित्य का बालक ही बतलाया गया है । उसके पुत्र नागराउल, भोगाराउल आदि दिये हैं । केशव का गोत्र भी उसके पालन पोषण कर्ता का 'वैजवाप' वैजवापायन गोत्र लिखा गया है ।

बापा नाम का कौन राजा हुआ ? एतद्विषयक विभिन्न मत है जिसका विशद विवेचन पृथग् रूप में अन्यत्र किया गया है । एकलिंग माहात्म्य में गुहिल, बापा, कालभोज, खुम्भाण वंशावली इस क्रम में दी गई है ।

कवि ने 'कुम्भ' शब्द के प्रथमादि आठों विभक्तियों के एक वचन के रूपों का प्रयोग कर श्लोक की रचना की है, जैसा कि 'रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे' इस श्लोक में राम शब्द के क्रमिक विभक्ति रूपों का प्रयोग कर रचना की है । इसप्रकार की रचना में काव्य वैचित्र्य, शब्द योजना के चमत्कार दृष्टिगत होते हैं ।[१]

कवि ने अधिकांश श्लोक इतर प्रशस्तियों से संकलित किये हैं यथा—

एकलिंग माहात्म्यः—

श्लोक संख्या—

८०,८१,८४-८६

९१-९७,१०५

९८-१०४,१०६,१०७

१०८,११०,१२५-१४२

१४४-१४८,१४९,१५०

१५१-१५३,

१५८-१६०,६१,६२,६३

---

१. कुंभो नंदतु भूतले हरिहरौ कुंभं सदा रक्षताम् ।
कुंभेनैव वशीकृता वसुमती कुंभाय तुष्टाः सुराः ।
कुंभादाप्तधनोजनस्त्रिभुवन कुंभस्य कीर्तिः स्थिरा
कुंभे पंडितमण्डली स्थितमती त्वं कुंभ ! राज्यं कुरु ॥ ६३ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६४-१६५,१६६ अपूर्ण

१७०.१७४,१७६,१७८,१८२,१८३,

१८५

१८८

१८९, १९०

१९९,२०१,२०२,२०३,

अन्य प्रशस्तियां:—

कुम्भलगढ़ प्रशस्ति श्लोक संख्या:—

१८०.१८१,८२-८४

१८५-१९१,१९२

१९३-१९९,२०२,२००,

२०१,२०३,२१७-२३४

२३५-२३९,२५२,२५५

२६८-२७०,

कीर्तिस्तम्भ प्रश. श्लोक सं. १८-२०,२२,२१,२८,

" " " -१४७-१४८,१५५

" " " -१५७,१५८,१६०,१६१,१६७,१७२,

की. प्र. श्लोक १८०-१८१

" " "

महावीर प्रसाद प्रशस्ति चित्तौड़ श्लोक संख्या-२३

गीत गोविन्द की टीका रसिक प्रिया के कर्तृप्रशंसा का श्लोक।

संगीतराज के कर्तृ प्रशंसा के श्लोक सं. ३७ से ४०।

एकलिंग माहात्म्य की विषय वस्तु कुम्भलगढ़ प्रशस्ति की विषयवस्तु, वर्णन शैली आदि से अधिक साम्य रखती है। भौगोलिक वर्णन और परम्परागत वर्णन से दोनों की विषयवस्तु आरम्भ होती है। ग्रन्थकर्ता कह्न व्यास ने अपने आपको

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

'अर्थदास' विशेषण से परिचित कराया है ।[१] इससे प्रतीत होता है कि वह वेतनभोगी कर्मचारी के रूप में महाराणा कुम्भा के पास रहा होगा ।

एकलिंग माहात्म्य (पुराण) [२]

सजिल्द पुस्तकाकार में हस्तलिखित एकलिंग माहात्म्य की यह प्रति रा. प्रा. वि. प्र. उदयपुर के ग्रन्थ सं. १४७८ पर सुरक्षित है । कुल पत्र १७१ में लगभग २३२० श्लोक लिखे गये हैं । मंगलाचरण के प्रथम श्लोक में भगवान् भास्कर तथा तेजोनिधि शिव के प्रणामानन्तर द्वितीय श्लोक में भगवती सरस्वती का स्मरण किया गया है ।[३] इसके पश्चात् नारद वायु संवाद के अन्तर्गत नारद ने वायु से सप्त द्वीपावती इस वसुन्धरा के वृत्तान्त को जानते की अभिलाषा व्यक्त की ।

इस प्रकार नारद वायु संवादान्तर्गत कुल ३२ अध्यायों में यह कथा इस प्रकार वर्णित हैं ।

कथा सार

सत्य युग के आदि में दारुक नाम के वन में अनेक ऋषि अपनी पतिव्रता पत्नियों के साथ ईति भीति से रहित तप करते थे । एक समय पार्वती के साथ भगवान् शिव ने देशाटन करते हुए त्रिकाल अग्निहोत्र में निरत उन महात्माओं को देखा । भगवती पार्वती को ऋषि पत्नियों के पतिव्रत धर्म पर ईर्ष्या हुई और उनके इस धर्म की परीक्षा करने के लिए भगवान् शंकर को बाध्य किया । अनेक बार समझाने पर पार्वती ने नहीं माना, तो उसके सन्तोष के लिए ऋषियों के शाप से

---

१. श्री कुम्भदत्त सर्वार्थ (गीत) गोविन्द सत्पथाः ।
पंचाशिकाऽर्थदासेन कह्नव्यासेन कीर्तिता ॥ स्तुति ६० ॥ (पंचायतन स्तुति)

२. 'राजस्थान प्रा.वि.प्र.उदयपुर' की प्रति पर 'एकलिंग माहात्म्य' अंकित है, किन्तु पुराणवत् सविस्तार लिखा गया है अतः इसे पुराण भी पुकारते है ।

३. यस्योदयास्तसमये सुरमुकुटनिघृष्टचरणकमलोऽपि ।
कुरुते ऽञ्जलिं त्रिनेत्रः स जयति सूर्योनिधिर्धाम्नाम् ॥ १ ॥
जयति जगति ज्ञानकरी तस्करदुर्गहरी [हंस] वाहनी , ब्राह्मी
सुवहा मोक्षस्य कृतौ या सा स्याद्विदुषामलंकरणम् ॥ २ ॥
'नारद उवाच— भुवनत्रितयं दृष्टं त्वया वायो समंततः
तेषां यथा यथा वृत्तं विस्तरात् कथितं मम ।
सप्तद्वीपवर्ती पृथ्वीं सशैलवनकाननम् ।
त्वदुक्तां श्रुतवानस्मि यतस्त्वं सर्वतो गतिः ॥ ३ ॥ (एकलिंग माहात्म्य पुराण)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भयभीत होते हुए भी क़ामदेव से भी अतिसुन्दर नवयुवक रूप धारण कर कुश तथा समिधा लाने के लिए आई हुई ऋषि पत्नियों के सम्मुख प्रकट होकर वन में विचरण करने लगे। इनके दर्शनमात्र से समस्त बाला प्रौढ़ा वृद्धा ऋषि पत्नियां मोहित हो गई। अपने कार्य की पूर्ति समझ भगवान् शंकर उन ऋषि पत्नियों के देखते देखते ही वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। शंकर द्वारा अपहृत चित्तवाली ऋषि पत्नियां वहीं मूर्च्छित हो गई। चिरकाल तक पत्नियों को आई हुई न देखकर त्रिकालदर्शी ऋषियों ने ध्यानस्थ होकर सब चरित्र जानकर सभी ने महादेव को श्राप दे दिया कि हे शंभो ! तू ने सच्चरित्र में स्थित हमारी पत्नियों को मोहित करने का जो दुस्साहस किया है, उस पातक से तुम्हारा लिंग गिरकर पृथ्वी पर पड़ जावेगा।

(सम्भवत: यह शाप प्रभावशाली नहीं हुआ।)

इस शाप के वश तारक नाम का एक दैत्य ब्रह्मा से वरदान पाकर अत्यन्त क्रोध के साथ देवताओं पर आक्रमण कर समस्त देवों को स्वर्ग से निकाल कर स्वर्ग का राजा बन बैठा। अतिव्याकुल सभी देवता पृथ्वी सहित इस कष्ट के निवारणार्थ ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने पूछा कि यहां आने का कष्ट सभी देवताओं ने कैसे किया ? तब देवताओं ने तारकासुर को स्वर्ग से निकालकर पुन: स्वर्ग की 'राज्य-प्राप्ति' चाही ब्रह्मा ने कहा कि वह मेरे ही वरदान से स्वर्ग का साम्राज्य प्राप्त कर सका है। अब मैं स्वयं उसके नाश का कारण नहीं बन सकता। विष वृक्ष लगा दिया जाय तो भी फिर उसे काटना समुचित नहीं ? ऐसा कह ब्रह्माजी ने शंकर से ही इसका उपाय पूछने के लिए कहा। ऐसा विचार अग्निदेव को आगे रखकर शिव के धाम कैलाश में मणिमाणिक्य से निर्मित शिव के केलि भवन के बाहर प्रतीक्षा में खड़े रहे।' जब किसी प्रकार बारह जाते हुए नहीं देखा तो अग्नि देव को आगे करके देवता अपनी अन्तर्वेदना भगवान् शंकर को सुनाने के निमित्त आतुर होकर उनके केलि मन्दिर में प्रविष्ट हो गए। पार्वती के साथ एकान्त में बैठे भगवान् शिव को तारकासुर के विनाशार्थ पुत्रोत्पन्न करने की प्रार्थना करते हुए खड़े हो गये। इस प्रकार की स्थिति में आये हुए देवताओं को देखकर दीनानाथ शिव शय्या त्यागकर खड़े हो गये तथा गिरते हुए वीर्य को कबूतर के रूप में अग्नि ने ग्रहण कर गंगा में प्रवाहित कर दिया। तदनन्तर माघ मास में कृत्तिकाओं के गर्भ से भगवान् षडानन (कार्तिकेय) की उत्पत्ति हुई। गर्भधारण की कामना वाली भगवती पार्वती ने शंकर को स्खलित देख देवों को शाप दिया कि आज से तुम लोग सभी सन्तान रहित

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जड़ के समान, रहोगे तुमने मर्यादा भंग की है अतः पृथ्वी पर तुम पाषाण के रूप में अवतार ग्रहण करोगे तथा भगवान् विष्णु गंडकी नदी में 'शालिग्राम' शिला के रूप में रहेंगे। भगवान् शंकर भी मुझसे अलग होकर तुम्हारे पास आये अतः ऋषियों द्वारा प्रदत्त शाप से लिंग पतन होकर सत्य सिद्ध होगा। ऐसा सुन भगवान् विष्णु ने भगवती की स्तुति कर प्रार्थना की कि माता कोप न करो, आपका पुत्र गंगा की कछार में कृत्तिकाओं के गर्भ से उत्पन्न होकर बड़ा हो रहा है, जिसके छह मुख हैं। इस प्रकार भगवान् जनार्दन के स्तुति करने पर भगवती पुत्र को प्राप्त कर शान्त होती हुई बोली देवाधिदेव जनार्दन मेरा वचन मिथ्या तो नहीं होगा। हे विष्णो! इस समय सम्पूर्ण पृथ्वी मेद से भरी हुई है अतः उस मेद से व्याप्त कंटकाकीर्ण मान्धाता राजा की नगरी में अतिशीघ्र भगवान् शंकर का लिंगपतन होगा और वह लिंग पृथ्वी को भेदन कर शीघ्र पाताल में पहुंच जावेगा। तदनन्तर भगवती के शाप वश अमरकण्टक में भगवान् शिव का लिंग पात हुआ और वह तत्काल पाताल में प्रवेश कर गया, तथैव भगवती ने गंगा को शाप दिया कि इस गंगा ने मुझे मातृत्व से वंचित कर स्वयं स्कन्द की जननी बनने के लिए कुटिलता से अग्नि के द्वारा शंकर के वीर्य का अपहरण कराया है, अतः यह गंगा भी इस अपराध में 'कुटिला' नाम की नदी के रूप में एकलिंग के पास प्रकट होगी और सभी देवता पाषाण की प्रतिमा के रूप में एकलिंग के पास रहेंगे। कलिकाल में देवता मानवों को प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देंगे। भक्तिपूर्वक पूजन करने से उनको इन पाषाणप्रतिभा पूजन मात्र से देवपूजनकृत फल प्राप्त होगा। अधिक क्या, मैं स्वयं भी स्नेह (घृत) से पूजित भक्तों को धर्मार्थ काम मोक्ष रूप चतुर्वर्ग फल देने के लिए एकलिंग के समीप ही पाशांकुश धनुष बाण धारण कर सर्वाभरण से अलंकृत, रक्त वस्त्र धारण किये हुए सदा षोडशवर्ष वयस्का अपरामूर्ति के रूप में विन्ध्यवासा नाम से कुटिला के तट पर निवास करती हुई भक्तों के मनोरथ पूर्ण करूंगी। इस प्रकार भगवती से शाप तथा शाप मुक्ति की अवधिरूप वरदान पाकर देवता भगवती को प्रणाम कर अपने अपने स्थान पर चले गये। भगवती भी विन्ध्यावासा के स्वरूप में कुटिल नदी के तट पर भक्तों को भुक्ति-मुक्ति देने के लिए स्वेच्छा से प्रकट होकर निवास करने लगी।

तदनन्तर त्रैतायुग के आदि में विश्वामित्र के द्वारा पीडित कामधेनु ने भगवान् एकलिंग की मेदपाट (मेवाड़) देश में कुटिला नदी के किनारे पर भक्तिभाव से आराधना करके पाषणमयी मूर्ति के वरदान से बलवती बनकर विश्वामित्र की सेना का हुंकार से संहार किया तथा महात्मा वशिष्ठ के आश्रम में पुनः जाकर उनके

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अग्निहोत्र के कार्य को सुचारुरूप से चलाती रही। अनन्तर लिंगपात से उद्विग्न शिव गोलकाकृति धारण कर कामधेनु के गर्भ से नीलवृषभ के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने भगवान् से वियुक्त होने के कारण उनके नेत्रों से बाष्प गिरने लगा तो भगवती ने वर दिया कि कलियुग में तुम बाप्पा नामक राजा होकर एकलिंग की आराधना करके मोक्ष प्राप्त करोगे। इसी प्रकार भगवती के शापवश चण्ड नामक गण हारीतराशि का अवतार लेकर भूमण्डल पर पैदा हुए और योगाचार्य श्री आथर्वण से दीक्षित होकर भगवदाराधना करते हुए सदेह स्वर्ग में गये।

इस प्रकार सभी तीर्थों के और देवों के साथ नागहृद (नागदा) क्षेत्र में कुटिला गंगा के तट परभगवान् सदाशिव का लिंग कामधेनु की उपासना के बल पर आठ महातीर्थों के साथ तथा विन्ध्यवासा देवी सहित लोक में भुक्ति मुक्ति का देने वाला प्रख्यात हुआ।

सत्ययुग में इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा, तब उसको ब्रह्महत्या के कारण ज्वर रहने लगा। उसके अनेक तीर्थों की यात्रा करने पर भी जब निवृत्त नहीं हुआ, तब उसने भगवान् एकलिंग की आराधना करके तथा अपने वज्र से जिस तालाव को बनाया वह इन्द्र सागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके तट पर तप करके इन्द्रेश्वर (शिवालय)'स्थापन कर ब्रह्महत्या से मुक्त हुआ। अब भी शंकर के वरदान से वहां श्राद्धादि करने से गया श्राद्ध से भी जिनका मोक्ष न हो, उसका मोक्ष यहां श्राद्ध करने से होता है। ऐसा शिव ने वरदान दिया। शिवरात्र को उपवास कर स्नान करने से अपुनर्भव प्राप्त होता है। माघ मास में प्रातः काल स्नान करने से मुक्ति देने वाला है।

'एकलिंग माहात्म्य' के नाम से जो ग्रन्थ उपलब्ध हैं, उससे इसमें कथावस्तु का पर्याप्त अन्तर पाया जाता है तथापि पौराणिक शैली एक सी है। ऐसा प्रतीत होता है कि थोड़ा बहुत भेद करके मेवाड़ की उत्पत्ति को पौराणिक स्वरूप दिया गया है, जिसमें इतिहास के तत्व अन्यत्र से संग्रहीत एवं संकलित कर लिए गये हैं। मेवाड़ देश को प्राचीन एवं देव भूमि सिद्ध करने के लिए पण्डित ने इस माहात्म्य का निर्माण कर दिया। कन्ह व्यास को माहात्म्य का रचयिता तो स्पष्टतः माना ही जाता है, कदाचित, इस पुराण का भी वही लेखक हो, पर हस्तलिखित प्रति में पुराण का उल्लेख नहीं है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकलिंग स्तोत्र

प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान उदयपुर के ग्रन्थांक १२६० पर एकलिंग स्तोत्र का एक पत्र सुरक्षित है। जिसमें कुल आठ श्लोक भुजंग प्रयात छन्द में निर्मित श्री एकलिंग महादेव की स्तुति परक हैं। सात श्लोकों में एकलिंग प्रभु को नमस्कार किया गया है और आठवां श्लोक माहात्म्य का सूचक है। स्तोत्र में मात्राओं और वर्णों की अनेक अशुद्धियां दृष्टिगत होती है। नीचे लिखे अनुसार श्लोक दिये हैं।[१]

एकलिंग पूजापद्धति

मेवाड़ के प्रभु श्री एकलिंगजी की अर्चना तान्त्रिक पद्धति से होती है। इसके लिये अमृतराम ने शास्त्रानुकूल इस पद्धति का संकलन किया है। अमृतराम के पिता का नाम दयानंद था।[२] राजस्थान प्रा.वि. प्रतिष्ठान उदयपुर के ग्रन्थ संख्या १४९३ पर है। कुल पत्र संख्या ७६ में सजिल्द रूप में विद्यमान है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में श्लोक संख्या नहीं दी गई है।

प्रथम नवम आवरण पर्यन्त शिव को नमस्कार, ध्यान, कलश स्थापन, प्राण प्रतिष्ठा मंत्र, पुष्पाञ्जलि प्रदक्षिणा आदि पूजा प्रकारों का विधान किया गया है। पूजा पद्धति पत्र सं. ७३ में समाप्त कर आगे मुद्रा प्रकरण आरम्भ कर उपचार मुद्रा तक ७६ पत्र सं. पर यह पद्धति समाप्त कर दी गई है। प्रारम्भ में भगवान् महादेव शंकर को अभिवादन कर लेखक शम्भु के आदेश से ही पद्धति के लिखने की ओर संकेत

---

१. प्रणम्य कृतं पु (पू)जितं लोकपालं त्रिशु(शू) लं सदाधारितं खड्ग हस्तम्
उरे सेषलागं (शेषनागं) सिरे (शिर) चंद्रबिंब प्रसन्नं सदादेवश्रीएकलिंगम् ॥ १ ॥
कपालं त्रिनेत्रं सदा नीलकंठं शिवं शंकरं भोगी (गि) नं पंचवक्रम्।
उमा प्राणनाथं रथं धेनुपुत्रं प्रसन्नं सदादेवश्रीएकलिंगम् ॥ ५ ॥
इदं प्रातरुत्थाय ये पठन्ति भू (भु) जंगं प्रयातं पठेत् रामचंद्रम्।
सदा भारतीवागदिन्यां प्रसन्ना प्रणम्य सदा देव श्री एकलिंगम् ॥ ८ ॥
यहां श्लोक उसी रूप में अंकित हैं जैसे कि पाण्डुलिपि से प्राप्त होते हैं।

२. दयानन्दात्मजेनेयं पद्धति क्रमतः कृता।
अमृतारव्येव रामेण श्री एकलिंगार्चनाय हि ॥
प्रणम्य गिरिजाकान्तं शारदां गुरुमात्मनः।
शम्भोरादेशतः कुर्वे पद्धतिं सुमनोरमान् ॥ १ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

करता है । विभिन्न शास्त्रों से संकलित कर बनाई गई है ।[१] ऐसा प्रतीत होता है कि एकलिंग माहात्म्य के आधार पर यह संकलन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें बीच बीच में तान्त्रिक प्रभाव का पुट भी लगा दिया है ।

चण्डीशतक-टीका

महाकवि बाणभट्ट के चंड़ीशतक की महाराणा कुम्भा द्वारा रचित टीका की प्रति कलकत्ता के जैन भवन संग्रहालय और एक पुरातत्व मंदिर जोधपुर वाली प्रति का ग्रन्थांक १७३७६ साईज २५६ १०६, पत्र ४५ है । इसका वर्णन श्री अगरचन्द नाहटा बीकानेर राजस्थान ने भारती के मार्च १९६५ के अंक में दिया है और इसकी प्रशस्ति भी दी है ।

गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका और इसकी टीका शैली में विशेष अन्तर है । इसमें व्याकरण की दृष्टि से शब्द रूपों को सिद्ध करने का प्रयास किया है ।

इसकी प्रशस्ति में भी रसिक प्रिया टीका की तरह हमीर से लेकर कुंभा तक की वंशावली दी गई है ।

चण्डी शतक की प्रशस्ति

राजस्थान भारती मार्च सन् १९६५ के अंक में नाहटाजी ने प्रकाशित भी करादी है । चण्डीशतक के अन्त में इसकी प्रशस्ति दी है, जिसमें वैजपायन गोत्र में उत्पन्न कुंभा के पूर्वजों का वर्णन है ।[२]

'बापा' के वर्णन में इसे आनन्दपुर निवासी बतलाया है । 'बापा' के वंश में उत्पन्न 'हमीर' का वर्णन है । 'खेता' के सम्बन्ध में कुंभलगढ़ प्रशस्ति के रणमल को हराने वाले अंश को इसमें उद्घृत किया है ।[३] इसी तरह सातलादि वैरियों को

---

१. माहात्म्यं श्री एकलिंगस्य प्रायोऽन्यानपि प्रयलतः ।
सारं सारं समृद्धृत्य यथामति विरच्यते ॥ २ ॥

२. अस्ति स्वस्तिगृहं समस्त जगतां श्रीवैजवापायनाद्
ब्रह्मर्षेरुदयाचलादिव रविर्जातोनिधिस्तेजषां ।
वंशः कंसनिषूदनव्रतपरप्राप्तप्रकर्षोमहान्
क्रीडा हीराश्वर कुम्भगोत्र गिरिदिग्राग्रैकधूर्यः परम् ॥ (१)

३. कु.प्र.श्लोक १९६

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हराना वर्णित है । लाखा के लिए सुवर्ण तुलादान देने का उल्लेख है । एवं गया से 'कर' मुक्त कराने का भी वर्णन है, कुंभा की बड़ी श्लाघा की गई है ।

चण्डीशतक 'में कुल १०२ पद्य हैं ।[१] कुम्भाकृत व्याख्या का एक उदाहरण प्रस्तुत है ।

कोपेनैवारुणात्वं दधदधिकतरा लक्ष्य लाक्षारसश्री,
श्लिष्यत्तुंगाग्रकोण क्वणितमणितुलाकोटिहुंकारगर्भः ।
प्रत्यासन्नात्ममृत्युः प्रतिभयमसुरैरीक्षितो हन्त्वरीन्वः,
पादो देव्या कृतान्तो पर इव महिषस्योपरिष्टान्निविष्टः ॥ ४४ ॥ च. श.

कुम्भा कृत व्याख्या

देव्याः पादो वः युष्माकंअरीन् हन्तुं व्यापादयितुं, कथंभूतः पादः महिषस्य उपरिष्टान्निविष्टः महिषमारूढः, पुनः कथंभूतः पादः, प्रत्यासन्नात्ममृत्युः प्रत्यासन्न सुराणां आत्मनो मृत्युर्यस्मात् स तथा, यमपक्षे प्रत्यासन्न आत्मनः स्वस्य मृत्यु मृत्युनामा यमस्य अधिकृतः पुरुषः सोऽपि महिषारूढो भवति, क् इव अपरकृतान्त इव द्वितीयो यम इव, किं विशिष्टः असुरै र्दानवैरीक्षितः, कथं यथा भवति प्रतिभयं यथा भवति तथा, अन्यच्च, किं विशिष्टः पादः, श्लिष्यत्तुंगाग्र कोण क्वणित मणितुला कोटिरिव हुकांरो गर्भे मध्यवर्ती यस्य स तथा, यमोऽपि प्रत्यासन्नात्ममृत्युः प्रतिभयं यथा भवति तथा मर्त्ये दृश्यते, अत एव यमसाम्यं पादस्योच्यते, यमोऽपि महिषारूढो भवति, हुंकारेण प्राणिनो भीतयति, किं विशिष्टः अधिकतरं आलक्ष्या दृश्या लाक्षारसस्य यावकस्य शोभाः श्रियो यस्मिन् स तथा, उत्प्रेक्ष्यते कोपेन अरुणत्वं दधदिव ॥ ४४ ॥

इसका प्रकाशन'राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला जोधपुर ग्रन्थांक ९४ से हुआ है[२]

गंगाभक्तानन्दसिन्धु

'गंगाभक्तानन्दसिंधु' की रचना पं. रघुनाथ ने वि. सं. १८९८ माघ शुक्ला पंचमी गुरुवार को आरम्भ की तथा इस ग्रन्थ की 'रत्नाकरी' नामक संस्कृत टीका

---

१. कुम्भकर्णरचित व्याख्यावाली रा.प्रा.प्र. की प्रति में केवल १०१ श्लोक हैं ।
२. 'चण्डीशतक'—कुम्भकर्णकृतटीका—राप्राविप्र. जोधपुर संपादक गोपालनारायण बहुरा, पृ.८९ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी बड़े विशद एवं सरल रूप में स्वयं ने लिखी । टीका की समाप्ति वि. सं. १९२० के वैशाख शुक्ला तृतीया मंगलवार को हुई । गौतमकुलोत्पन्न रघुनाथके पिता का नाम रामसहाय और माता का 'चिमना' था ।[१]

पुष्कर तीर्थ के पूर्व दिशा में ९७ कि. मी. के लगभग दूर 'नरूखण्ड' में जयहरि 'नामक राजा का राज्य था । वहां कार्कोटक (काकोड़) पुर के निकटवर्ती (उणिया) उन्नीर गांव कवि की जन्मभूमि थी । कवि का प्रारम्भिक जीवन काल वहीं व्यतीत हुआ ।[२]

कवि उदयपुर के महाराणा शंभुसिंह और सज्जनसिंह का कृपा भाजन और गुरु तथा गंगा की कृपा से यह ग्रन्थ पूर्णता को प्राप्त हुआ ।[३] इस प्रकार दोनों राणाओं का कृपापात्र रहा, जिसका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है ।

---

१. नगांकनागभूवर्षे माघे शुक्ले गुरोर्दिते ।
पंचम्यामस्य ग्रंथस्य मयारम्भः कृतस्तदा ॥ ३ ॥
व्योमबाहुंकभूवर्षे वैशाखे धवले शुभे ।
भौमवारे तृतीयायां टीका पूर्णाकृतामया ॥ ४ ॥ वि. सं. १९२०
श्री गौतमकुलोत्पन्नो रामसाहात्मजस्सुधीः ।
चिमनागर्भसंभूतोरघुनाथोऽभिधानतः ॥ ७ ॥ पृ. २०८
गंगाभक्तंजनानन्दसिंधौ वैस्वकृतस्य ।
रत्नाकर्यभिधां व्याख्यां सम्यग यः कृतवान् शुभां ॥ ८ ॥

२. पुष्करात् पूर्वदिग् भागे षष्टि क्रोश प्रमाणतः,
नरूखंडेति विषयश्चासीज्जयहरि नृपः ॥
कार्कोटिंक पुरेरम्ये चोन्नीराख्ये पुरे पुनः,
राज्यासनं तु तस्यास्ति जन्मभूमिस्तु सा मम ॥
गंगागुरुप्रसादेन ग्रन्थोऽयं पूर्णतामगात्,
बुधागांगरसोपेतं पिबन्तु रसमालयम् ॥
आद्यावस्तागता मे सुजयपुरवरे ब्रह्मनीरप्रसादात्,
तच्चित्रस्तद्गुणानां कथनमतिरहं तत्चिकीर्षति प्रबन्धम् ॥
चोन्नीराख्ये पुरे वैजय शरवदनाख्यस्य मध्यागतायु
स्तत्रापि प्राकृतं तु सरसगुणयुतं गानबन्धं प्रभोर्हि ॥ ९ ॥

३. टीकारम्भं कृत्वाह्युदयपुरवराधीश्वरस्य प्रभोर्हः (हमिति हर्षे),
श्रीशम्भुवारव्यार्कभूम्यापातिपरदयया
मत्कृतायाः समाप्तिं रत्नाकर्याख्यकाया निधिवदनमितान्

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"सूर्य वंश के राजमण्डल में शीर्षस्थ रिपुदमनकर्ता राणा स्वरूपसिंह हुआ, उनका उत्ताराधिकारी शम्भुसिंह हुआ। शम्भूसिंह के पश्चात् राज्यासन पर दाता, दयालु राणा सज्जनसिंह अभिषिक्त हुआ। उनकी आज्ञा से मैं गंगा की महिमा स्वरूप 'गंगा भक्तानन्द सिन्धु' नामक इस ग्रन्थ की रचना करने को उद्यत हुआ हूं"[१] इससे सिद्ध होता है कि कवि ने इसकी रचना महाराणा सज्जनसिंह के राज्यकाल में की है।

'उन्नीराख्य' पुर (उणियारा) में भीमसिंह नामक राजा हुआ, उसके विष्णु भक्त 'नरुकुल' का आनन्ददाता फतहसिंह था। फतहसिंह के पश्चात् वीर जयसिंह के राजत्व काल में ज्यतिर्विद् शास्त्रों में निष्णात राघव नाम का ब्राह्मण था। कार्कोटक (ककोड़) द्विजवर चतुर्भुज हुआ। उसके चार पुत्र नारायण, रामसहाय, श्रीरामभृत्य (रामदास), मोहन लाल शर्मा हुए। रामसहाय का पुत्र मैं रघुनाथ हूं। जिसने गंगा माता के माहात्म्य विषयक इस ग्रन्थ के लिखने का श्रीगणेश किया है। इस प्रकार से कवि ने अपने जन्मस्थान के साथ अपने पूर्वजों के नामों का उल्लेख कर वंश परिचय दिया है।[२]

भक्तिसंयुक्तवर्णान्, कामी कुर्वे बुधानां पद
कमलरजोह्युत्तमांगे च धृत्वा ॥ १० ॥
श्रीसज्जनारब्ध धरणीमघवांस्ति भूम्यां,
तत् पाणिपल्लवतले सुगतं वयोंत्यं ।
त्वीहा न चास्ति विषयेषु तथास्ति चैका,
साधुर्विदेव चरणोदकधारणेच्छा ॥

१. बुधान्वयेऽभून्नृपचक्रमौलिः स्वरूपसिंहो रिपुदाहकर्ता ।
हेमाद्रिदो वै जगति प्रसिद्धस्तत् पट्टभाक् शम्भुरिलाधिनाथः ॥ २३ ॥
दाता दयालुः सुखदो जनानां हेमप्रदो वाडवपालको वै ।
यज्वा शरण्यः प्रथितो धरण्यां तत्पट्टभाक् सज्जनसिंह वीरः ॥ २४ ॥
स्वपूर्वजं प्रौढ़गुणानुरक्तः कलौ सतां चैव सुखप्रदोऽसौ ।
गंगागुणगणान् स्थापयितुं त्विलायामाज्ञां महीन्द्रस्वबुधानकार्षीत् ॥ २५ ॥
तदाज्ञयाहं रघुनाथ शर्मा करोमि गंगागुणरत्नसिंधुम् ।
बुधाज्ञया तत् कृपया च गंगां ध्यात्वा महापातकहारिणी वै ॥ २६ ॥

२. श्रीमद्राजेन्द्रवंशोभ्दव वनजरविर्भीमसिंहाऽभिधोऽभूत्,
तत् पुत्रः श्रीनृपेन्द्रो जलशरवदनाख्यो रमानाथ भक्तः ।
उन्नीराख्ये पुरे सौमनुजनरुकुलानंदकृद्राजतेऽसौ पृथिव्यां

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस ग्रन्थ की समाप्ति वि. सं. १९१० के भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी मंगलवार को द्वितीय तरंग लिखकर की गई ।

'गंगा भक्तानन्द सिंधु' प्रथम और द्वितीय तरंग में लिखा गया है । प्रथम तरंग में ५१ श्लोक, द्वितीय तरंग में १२८ श्लोक इस तरह कुल १७९ श्लोकों में निबद्ध इस ग्रन्थ में गंगा की महिमा एवं गौरव का गुणगान किया गया है । ग्रन्थ के आरम्भ में मंगलाचरण स्वरूप गणपति का स्मरण कर 'गंगाभक्तानंद सिन्धु' के लिखने का उल्लेख है । अनन्तर चतुर्थ श्लोक में कवि स्वयं अपने गर्व का परिहार करता हुआ लिखता है कि हे गंगे ! आपकी महिमा का गुणगान करना कहां और मैं मन्दमति कहां ? आपके चरणारविन्द की कृपा के बिना इसके पार नहीं जा सकता इसलिए हे अम्ब ! आपकी स्तुति करने में सफल हो जाऊं अतः आपके कृपा कटाक्ष की आवश्यकता है । मैं तो तेरा दासानुदास हूं ।[1]

तन्मान्यो ज्योतिराद्यागमनिपुणमतीराघवाख्यो द्विजन्मा ॥ २९ ॥
राजेन्द्रभूपस्य जयसिंह वीरस्तत् पूर्वजानां च निवासधाम ।
कार्कोटकाख्ये नगरे प्रसिद्धस्तत्रत्यऽभूद्वेद भुजाद्विजाग्रः ॥ ३० ॥
तस्यांगजा वेदमिताः बभूवुर्नारायणाख्य प्रथमश्च तेषां ।
पश्चादभूद्रामहाय शर्मा श्रीरामभृत्यश्च रमेशभक्तः ॥ ३१ ॥
तस्यानुजो मोहनलाल शर्मा सिंधोर्मिता ये सहजाश्च तेषां ।
ज्येष्ठानुजो रामसहाय शर्मा तस्यांगजोऽहं रघुनाथ शर्मा ॥ ३२ ॥

१. संवत्सरेखशशिनन्दधरामिते च,
कृष्णे नभस्य कुजवारयुतेतिथौच ।
विश्वे मया शुभदिने परिपूर्णितोऽत्र,
भागीरथी जनमुदब्धिकारस्तरंगः ॥ १२६ ॥
गजास्यं हेरम्बं सकलसुरसंसेवितपदं,
लभन्ते ध्यान्वामं निखिलसुखसंघान् भुविजनाः ।
शिवापुत्रं शांतं हृदि वरदमीशं गणपतिं,
रघुस्तं ध्यायामि ह्यनुचरजनार्थैकशरणम् ॥१ ॥
नत्वा श्रीढुंढ़िराजवरदगणपतिं खेचरेन्द्रं तमीशं,
वाचां देवीं गिरं तां जडनरमतिदां सर्वसम्पत् प्रदात्रीम् ।
यद्धानात् ज्ञानहीनालमलमतिमतां पूजनीया भवन्ति,
ध्यात्वा तां श्रीद्युनद्यागुणकथनमति गांगसिन्धु प्रवक्ष्ये ॥ २ ॥
साक्षाद्विष्णोरूपमानन्दकन्दं ... काना—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम तरंग में कवि ने अपने वंश परिचय, जन्म भूमि, राज्याश्रित राजाओं का पूर्व उल्लेखानुसार वर्णन किया है। २७ वें श्लोक में जयपुर नरेश जयसिंह और रामसिंह का भी उल्लेख मात्र है। इसके अतिरिक्त गंगा माता के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। द्वितीय तरंग में सगर की साठ हजार सन्तति का उद्धार गंगा ने किया था, उसका वर्णन है।

कवि ने ग्रन्थ समाप्ति के अनन्तर महाराणा सज्जनसिंह के पिता बाबा श्री शक्तसिंह वर्मा का श्लाघात्मक वर्णन कर स्मरण किया है।[१]

कवि ने 'मूकं करोति वाचालं' श्लोक के आशय का 'शार्दूलविक्रीडित छन्द में एक पत्र लिखा है। यथा—

पंगुर्लंघयते गिरीन् स्मरणतस्त्वन्नामधेयस्य वै,
वाचालः कृपया तदा तव शुभे मूकाश्च ये मानवाः।
निर्द्रव्याः सधना भवन्त्यपिजना वांछन्ति यं तत् क्षणे,
सा त्वं दासमनोरथस्य घटनां क्षिप्रं कुरुष्वानघे ॥ १४ ॥

इसी प्रकार 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि' श्लोक के भावार्थ के अनुरूप ही 'शिखरिणी' छन्द में प्रार्थना स्वरूप लिखा है।

श्रृणोषि त्वं मे नाप्यनुभवति दुःखं तव शुभे,
जनन्याः पुत्रार्तो न हि भवति दुःखं कथय किम्।
कुरुष्वाशु श्रुत्वा ह्यनुचरगिरं जाह्नवि मुदा,
त्वदीयं ज्ञास्यन्ति द्युनदिमनुजाः सर्वविभवैः ॥ १६ ॥

मुत्पयादेः स्थानामस्यावनं हि तस्याभक्तानंदसिन्धुं करोमि ॥ ३ ॥
क्वाहं मन्दगति र्गुणस्तव कथोद्भूताः क्व गंगेशुभे
यत्तेनोरू कवीश्वराः सुमहिमोद्रेकस्य पारंगताः।
त्वत्पादाब्जकृपामुतकथमहं यास्यामिपारंस्तुते
र्दीनं दर्शितमस्य मे कुरु दयां दासस्य दासोऽस्म्यहम् ॥ ४१ ॥

१. श्रीमच्छ्रीशक्तसिहंस्त्रिदशपति समो मेदपाटेशजन्मा
सत्कीर्ति राज्यलक्ष्मी विभवसुखनिधिस्सूर्यवंशाग्रगण्यः।
दाता भव्याभिलाषी सुजनसुखकरो दीन दुःखस्य हन्ता
प्रीत्या पीयूषदृष्ट्या भुवनसुखतरुश्शंभुना पालितोऽस्ति ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि ने इस तरह भाव गरिमा युक्त विविध उपजाति इन्द्रवज्रा, शालिनी शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि छन्दों में गंगा माता की स्तुति की है, जो बड़ी मनोहारिणी है।

रचना अर्वाचीन है। सरल सुबोध भाषा में निबद्ध 'गंगाभक्तानन्दसिंधु' एवं इसकी विवेचनात्मक व्याख्या कवि के प्रकाण्ड पाण्डित्य को प्रदर्शित करती है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पंचम अध्याय

वैज्ञानिक-साहित्य

१. संगीतराज

२. सूड़ प्रबन्ध

३. वाद्य प्रबन्ध

४. गीतगोविन्द (रसिकप्रिया टीका)

५. संगीत रत्नाकर टीका ।

६. संगीत क्रम दीपिका

७. गीत गोविन्द

८. नाटक ग्रन्थ

९. शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थ

१०. सूत्रधार 'मण्डन'

११. सूत्रधार 'जइता'

१२. प्रासाद मण्डन

१३. राजवल्लभ मण्डन

१४. देवता मूर्तिप्रकरण एवं रूप मण्डन

१५. रूपावतार

१६. वास्तुमंजरी

१७. उद्धार धोरणी, कलानिधि, द्वारदीपिका

१८. कामराजरतिसार शतक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१९. विश्ववल्लभ

२०. मुहूर्तमाला

२१. राजरत्नाकर (रत्नविषयक)

२२. रुक्मिणी विवाह कौतुक (नाटक)

२३. शब्दार्थ चिन्तामणि कोश

संगीतराज

महाराणा कुम्भा द्वारा रचित 'संगीतराज' संगीत शास्त्र का शास्त्रीय विवेचनाओं से परिपूर्ण अनेक विधाओं को लिये हुए सांगोपांग महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ है,जो पांच भागों में विभक्त है । पाठ्य, गीति, वाद्य, नृत्य और रस के आधार पर पांच रत्नकोशों में इसका विभाजन है । इन्हीं रत्नकोशों को उल्लास और परिक्षणों में विभक्त किया गया है । इस प्रकार यह सम्पूर्ण ग्रन्थ अस्सी भागों में विभाजित है । विषयानुकूल रत्नकोशों के विभाजन का निम्नांकित रूप देखा जा सकता है ।

१ पाठ्य रत्न कोश

अनुक्रमणिकोल्लास	पदोल्लास	छन्दउल्लास	अलंकारोल्लास
कर्तृप्रशंसापरीक्षण	पदपरीक्षण	अनुष्टुप्परीक्षण	उद्देशपरीक्षण
आरम्भसमर्थन	वाक्य.	वृत्त.	लक्षण.
संगीत स्तुति.	संज्ञा.	आर्यावलोकन.	अलंकार.
अनुक्रमणिका.	परिभाषा.	प्रस्तारपरिपाटी	गुणदोष.

२ गीति रत्नकोश

स्वरोल्लास	रागोल्लास	प्रकीर्णकोल्लास	प्रबन्धोल्लास
स्थानादिपरीक्षण	ग्रामराग परीक्षण	वाग्येयकारपरीक्षण,	गीतपरीक्षण
साधारण.	रागांगं	शब्दभेद.	सूडआलि.
वर्णालंकार.	भाषागं.	गमक.	प्रकीर्ण प्रबन्ध.
जाति.	क्रियांगं.	[illegible]	प्रबन्ध.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा)

राज्यकाल (१४९० से १५२५)

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३ वाद्य रत्न कोश

ततोल्लास	सुषिरोल्लास	घनोल्लास	अवनद्धोल्लास
एकतंत्रीपरीक्षण	वंशपरीक्षण	मार्गतालपरीक्षण	पुष्करवाद्य.
नकुलादि.	स्वरोत्पत्ति.	देशीताल.	पाट.
मत्तकोकिला.	गुणदोष.	तालप्रत्यय.	वाद्यप्रबन्ध.
किन्नरी.	पावादि.	ताललक्षण.	पटहादि.

४ नृत्य रत्नकोश

अंगोल्लास	चातुर्योल्लास	करणोल्लास	प्रकीर्णकोल्लास
अंगपरीक्षण	स्थानकपरीक्षण	शुद्धकरणपरीक्षण	वृत्तिपरीक्षण
प्रत्यंगं.	प्रत्यंगं	शुद्धचारी.	देशीकरण.
उपांगं.	देशीचारी.	अंग.	लास्यांगं.
आहार्य.	मण्डल.	रेचक.	पात्रलक्षण.

५ रस रत्नकोश

रसोल्लास	विभावोल्लास	अनुभावोल्लास	संचार्युल्लास
रसस्वरूपपरीक्षण	नायकपरीक्षण	अनुभावपरीक्षण	निर्वेदपरीक्षण
रसतत्व.	नायिका.	अवस्था.	भावावस्था.
रसाश्रय,	चेष्टादिक.	सात्विक.	रससंकर.
रसलक्षण.	उद्दीपन.	प्रवास,	ग्रन्थ समाप्ति.

'पाठ्य रत्नकोश में विभिन्न विषयों का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है। मंगलाचरण ग्रन्थ का विषय विभाजन एवं गीतों के पाठ्यअंश पर विचार किया गया है। इसमें पारिभाषिक शब्दों की तालिका भी दी गई है। इनमें स्वर श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, वर्ण, अलंकार, तान, ग्रह, अंश, न्यास, वादि, संवादि, विवादि, अनुवादि रामजाति, वाग्येपकार, ताल, लय, मात्रा, वाद्य, तत, सुषिर, अभिनय, नाट्य, नृत्य,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लास्य, तांडव, अंग आदि की परिभाषाएं विशेष उल्लेखनीय है । अलंकारों में इसमें मुख्य रूप से उपमा, दीपक, रूपक और यमक अलंकार मुख्य माने गये हैं ।

गीति रत्नकोश में स्वर के मूर्च्छना भेदों के सम्बन्ध में सविस्तार वर्णन किया गया है । भारतीय संगीत का आधार 'सरगमपदनिस' ध्वनियां हैं । भरत और नारद ने मूर्च्छना भेदों को भिन्न भिन्न प्रकार से वर्णित किया है । स्वरों के कई विभाग हैं, साधारण के अन्तर्गत काकलिसाधारण, अन्तर साधारण, षड्जसाधारण, मध्यमसाधारण आदि हैं । मूर्च्छना भेद मुख्य रूप से षड्जग्राम, मध्यम ग्राम और गांधारग्राम में होता है । मध्ययुगमें स्वरश्रुति और ग्राम सम्बन्धी कई अस्पष्टताएं आ गई थी । डा. प्रेमलता शर्मा[१] के अनुसार शांर्गधर द्वारा उचितमार्ग प्रदर्शन नहीं किया गया था । कुंभा द्वारा इसका विशद रूप से प्रतिपादन किया गया है । ग्राम और मूर्च्छना में कोई विशेष अन्तर नहीं है । एक ग्राम की मूर्च्छना में दूसरे ग्राम की स्वरावली मिल जाती है । षड्जग्राम में जब गांधार के दो श्रुति उत्कर्ष करके अन्तर गान्धार बनाकर उस उत्कृष्ट गान्धार को धैवत की संज्ञा दी जाय तो उस मूर्च्छना विशेष में स्वरों की संज्ञा भेद से मध्यम ग्राम की मूल स्वरावली प्राप्त हो सकती है । इसी प्रकार मध्यम ग्राम में जब धैवत के दो श्रुति अपकर्ष किया जावे और उसे गांधार की संज्ञा दी जावे तो मध्यम ग्राम की उस मूर्च्छना विशेष में षड्ज ग्राम की मूल स्वरावली प्राप्त हो जाती है । कुंभा ने प्राचीन आचार्यों के आधार पर इसे अच्छी तरह स्पष्ट किया था, किन्तु उनके ग्रन्थ का अधिक प्रचलन नहीं होने से इसका ठींक रूप से उपयोग नहीं हो सका । स्वराध्याय में पिंडरोत्पपितका एवं जीव प्रकृति का वर्णन है । श्रुति प्रकरण में २२ श्रुतियां और उनसे सम्बन्धित नाडी, हृत, कंठ, मूर्ध आदि का वर्णन है । मानव के शरीर में वात पित्त कफ और सन्निपात चार प्रकार के दोष है । इसी प्रकार की स्थिति स्वर की भी होती है । श्रुति मंडल में मृदुमाध्यम, दीप्ता, जामता और करुणा का वर्णन है । स्वर के सम्बन्ध में कुंभा का कथन है कि सब प्रकार की वाणी स्वर में सम्मिलित है । इस प्रकार 'नाद श्रुति और स्वर के स्थानीय भेदों पर विशेष प्रकाश डाला गाया है । नाद प्रकरण है जैसे कूट तानों की गणना एवं खंड मेरुतानों की निर्माण विधि । इस प्रकार स्वरोल्लास में स्थानक श्रुति स्वर ग्राम मूर्छना, तान साधारण वर्ण अंलकार आदि का वर्णन है ।

---

१. 'राजस्थान भारती, कुंभा विशेषांक, मार्च १९६३, पृ. ६२

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाद्यरत्नकोश में वाद्ययन्त्रों और तालों का वर्णन है । इसमें कुंभा ने संगीत रत्नाकर की प्रतिलिपि नहीं की है । संगीत रत्नाकर में १८ प्रकार की वीणाएं बतलाई गई है, जब कि कुंभा ने २० प्रकार की ।[१] प्रत्येक राग के साथ गाई जाने वाली अलग अलग तालों की भी व्यवस्था की गई । किन्तु तालाध्याय पर कोई अलग अध्याय नहीं लिखा गया ।

नृत्यरत्नकोश में विभिन्न प्रकार की अभिनय मुद्राओं आदि का वर्णन किया गया है । अभिनय में नृत्याभिनय लास्य, तांडव सामान्य अभिनय, चित्राभिनय और आहार्याभिनय का वर्णन । नृत्य के समय विभिन्न मुद्राओं और शरीर के विभिन्न अंगों का सविस्तार और सूक्ष्मतम वर्णन हुआ है । सिर की १४, सम्मिलित हाथों की २४, वक्ष की ५, कटी ५, चरणों की १३, स्कन्ध की ५, ग्रींवा की ९, बाहु की १६ प्रकार की अवस्थाओं का वर्णन दिया गया है । इस प्रकार नृत्य का विस्तृत वर्णन करने से अवगत होता है कि कुंभा स्वयं नृत्य शास्त्र का विस्तृत ज्ञाता था । कुंभा के काल में अवश्यमेव कुशल नृत्यकार रहे होंगे । कीर्तिस्तम्भ में नटों और नर्तकियों को उत्कीर्ण किया गया है । कुंभा ने नृत्यरत्न कोश में नाट्यवेश्म का उल्लेख और उसमें नट नटियों के प्रवेश का भी वर्णन किया हैं, ये ही उस समय में कुशल नृत्यकारों की विद्यमानता के पुष्ट प्रमाण हैं । कुम्भा का काल नृत्यकला के पर्याप्त विकास का समय था । सभी मांगलिक अवसरों पर इसे आवश्यक वर्णित किया गया है । राज्याभिषेकोत्सव वरवधू के गृहप्रवेश विवाहोत्सव यात्रा विजयोत्सव यात्रादि कार्यों में तथा इसी प्रकार के अन्य पुण्यपर्वों पर कुम्भा ने नृत्य का प्रयोग आवश्यक बतलाया है ।[२]

उसने तो दृश्य और श्रव्य काव्य से भी नृत्य को श्रेष्ठ माना है । और इसे धर्म अर्थ, काम, मोक्ष की उपलब्धि का साधन माना है ।

---

१. डा. प्रेमलता शर्मा संगीत राज पृ. ६२३-६४७ ।

२. भूपानामभिषेचने पुरगृहप्रावेशिके कर्मणि ।
प्रेष्ठानामपि संगमे सुत जनौ पर्वस्वभीष्टाप्तिषु ।
यात्रायां विजयोत्सवे सुरगमे वैवाहिके मंगले ।
मंगलेषु च सर्वकर्मेषु तथा यज्ञादि पूर्तेष्वपि ॥ १० ॥
संगीतराज नृत्यरत्न कोश

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रस रत्न कोश नामक प्रकरण में रस निष्पत्ति का वर्णन किया गया है । यद्यपि संगीत की परिधि "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते" कह कर गीत वाद्य और नृत्य तक ही मानी गई है । कुंभा ने भरत के नाट्य शास्त्र के अनुसार रसनिष्पत्ति का भी वर्णन किया है ।

रस निष्पत्ति के सम्बन्ध में संगीतराज का मत भी प्राचीन आचार्यों की तरह था कि मनुष्य के हृदय में विभिन्न प्रकार के भाव सदैव रहते हैं, जो अव्यक्त रूप से रहते हैं और बीज स्वरूप होते हैं । बाह्यभावों का हृदयगत भावों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है । अगर नाट्य शाला में करुण रस का दृश्य देखा जाय तो हृदयगत भावों पर प्रभाव पड़ता है और हृदय में जो करुणरस अव्यक्त रूप से रहता है वह प्रकटित होकर संचारियों द्वारा प्रकट हो जाता है । !१

इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ के एक श्लोक में आया है, जिसके अनुसार यह ग्रन्थ संवत् १५९ में पूर्ण हुआ था । विक्रम के साथ शक संवत् भी दिया गया है जिसकी मूल पंक्ति—

'वर्षेऽक्षाद्रयनलेन्दुशकसमये संवत्सरे च ध्रुवे' है ।

डा. कुन्हनराज इसमें संशोधन बतलाते हुए इसे 'वर्षेऽस्त्रद्रचनलेन्दु' पाठ उचित मानते हैं । डा. प्रेमलता और हरविलास शारदा पहले वाले पाठ को उचित मानते हैं । !२

यह निर्विवाद रूपेण सिद्ध है कि इसका रचना स्थल मेवाड़ ही था । इसमें समसामयिक प्रशस्तियां और एकलिंग माहात्म्य के कई श्लोकों को उद्धृत किया गया है । इसमें वंशावली और पूर्वजों का वर्णन दिया हुआ है । वह अक्षरशः अन्य प्रशस्तियों से मिलता हुआ है । कुंभा के दिये हुए विरुद भी ठीक इसी प्रकार मिलते

---

१. बाह्यवस्तुविशेषाभिनुख्यापेक्षाविनाकृतम् ।
रत्यादिरूपसापेक्षमन्तः करण मुच्यते ॥ ३४६ ॥ नृत्यरत्नकोश प्रथमोल्लास

२. श्रीमद्विक्रमकालतः परिगते नन्दाभ्रभूतक्षितो,
वर्षे बाणनगेन्दु शकसमये संवत्सरे च ध्रुवे ।
ऊर्जे मासि तिथौ हरे रविदिने हस्तर्क्ष योगे तथा
योगे चाभिजित स्फुटोऽयमभवत्संगीत राजाभिधः ।
डा. प्रेमलता—संगीतराज पृ. ३० । कुन्हनराज—संगीतराज पृ. ५४ म. कु. पृ. २०८ एच. वी. शारदा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं। कर्तृ प्रशंसा के श्लोक २३ वें में आदिवराह की तरह चित्तौड़ भूमि का उद्धार करने का उल्लेख किया है। चित्तौड़ कई बार मालवा और गुजरात की सेनाओं से घिर चुका था। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में इसी विषय के कई श्लोक उपलब्ध हैं। कर्तृ प्रशंसा में मालवा और गुजरात की सेनाओं को लूटना तथा रणयज्ञ में यवनों की आहुति देने का उल्लेख हुआ है। यह सम्पूर्ण वर्णन समसामयिक घटनाओं की प्रतीति कराता है। मेवाड़ में उस समय निःसन्देह संगीत और साहित्य की एक विशिष्ट परम्परा विद्यमान रही थी और कुंभा ने पंडितों को राज्याश्रय देकर उसे अधिक पल्लवित और पुष्पित किया था।[१]

डा. प्रेमलता की मान्यतानुसार संगीतराज में शास्त्रार्थ शैली का प्रयोग हुआ हैं।[२] इसमें पूर्व मीमांसा का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टि गोचर होता है। शास्त्रार्थ के कुछ प्रसंग इस प्रकार है। आरम्भ समर्थन में धर्मशास्त्रों में संगीत सम्बन्धी निषेधात्मक उल्लेखों को पूर्वपक्ष में रखकर उनका उत्तर, श्रुतिसंख्या निर्धारण, संवादतत्व, निरूपण, मतंगोक्त द्वादशस्वर मूर्च्छनाओं का खंडन, तानों के यज्ञनामों की सार्थकता की स्थापना, सात्विक अभिनय का स्वरूप निर्धारण, इस प्रकार शास्त्रीय मत निरूपण में अद्‌भुत कौशल प्रदर्शित किया गया है।

इसकी द्वितीय महती विशेषता यह है कि करीब चालीस से भी अधिक पूर्वाचार्यों का स्मरण किया गया है। कुछ पूर्वाचार्यों के उद्धरण अन्यत्र भी मिलते हैं किन्तु कुछ आचार्यों के उद्धरण संगीतराज के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं के बराबर है। मतंग के 'बंहुद्देशी' में देशीराग प्रकरण आज विलुप्त सा है किन्तु संगीतराज में कई स्थलों पर रागध्यान के प्रकरण में, इसका उल्लेख किया है। अतएव अनुमान

---

१. इस ग्रन्थ का प्रणयन स्वयं कुंभा ने किया अथवा अन्य पण्डितों से सहायता ली। इस विषय में विद्वानों का मतैक्य नहीं है विद्वान् 'डा. व्रजमोहन जावलिया' ने इस विषय पर गवेषणात्मक लेख 'संगीतराज का प्रणेता कौन ? लिखा और "महाराणा कुंभकर्णकृत संगीतराज और कालसेन" विषयक लेख 'अनूप संस्कृत-पुस्तकालय-बीकानेर वाली संगीत राज की प्रति में उल्लिखित' कालसेन 'सम्बन्धी उत्पन्न शंकाओं का युक्तियुक्त समाधान किया जो विश्वंभरा वर्ष चार अंक १२२ सन् १९६७ में और शोध पत्रिका व. १४ अं. ४ में प्रकाशित करवाये हैं। इससे सिद्ध हो चुका है कि 'संगीत राज' महाराणा 'कुम्भा' के द्वारा ही रचित है। 'हिन्दु-विश्व-विद्यालय-बनारस' से डा. प्रेमलता शर्मा ने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को सम्पादित कर चौखम्बा संस्कृत सिरीज वाराणसी सन् १९६३ में प्रकाशित करवाया।

२. विश्वभारती, वर्ष ७ अंक-१ डा. प्रेमलता शर्मा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है कि यह ग्रन्थ उस समय अवश्य विद्यमान रहा होगा । इस प्रकार संगीतराज अपने आप में मौलिकग्रन्थ है और अनेक विशेषताओं से युक्त है ।[१]

सूड़ प्रबन्ध

इसकी प्रति अहमदाबाद में श्री पुण्यविजयजी के संग्रहालय में है, एक ही पुस्तकाकार जिल्द में जो अगरचन्द जी नाहटा को उपलब्ध हुई जिन्होंने, शोध पत्रिका में प्रकाशित करवाया ।[२] जयदेव के गीत गोविन्द की टीका, सूड़ प्रबन्ध, कामराज रतिसार आदि हैं । इसके पत्र ३२ (अ) में गीत गोविन्द समाप्त हो गया है । तदनन्तर ६ पत्रों में सूड़ प्रबन्ध दिया गया है । इसके चारों ओर आलाप के भी टिप्पण लिखे हुए हैं । इसमें स्थान स्थान पर महाराणा कुंभा का नाम भी दिया हुआ है । छठे सर्ग के प्रारम्भ में 'श्री कुम्भकर्ण नृपति नृपतितिलको गीतगोविन्द गीतविशेषं तनुते तनुते जारसामिते सर्गे' उल्लेख मिलता हैं । इसमें अनेक संगीताचार्यों का उल्लेख दिया गया है, किन्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण उल्लेख 'श्रीसारंगव्यासात् सम्यग् अधीत्य' का किया गया है । प्रस्तुत ग्रन्थ का रचना काल वि. सं. १५०५ वैशाख शुक्ला त्रयोदशी है । वीरभूमि चित्तौड़ में यह रचा गया था । महाराणा कुंभा के लिए इसकी प्रशस्ति चित्रकूट विभु, नागपुर विध्वंसकारक, सारंगपुर संहर्ता, अर्बुदाचलनाथ, कुंभलगढ़ मेरु महादुर्ग निर्माता, आदि विरुद वर्णित है । इससे अवगत होता है कि गीत गोविन्द की टीका लिखने के पूर्व यह पूर्ण हो चुका था । गीत गोविन्द की कर्तृ प्रशंसा के श्लोक १६ में स्पष्टत: वर्णन है कि इसमें राग रागनियों को निश्चित कर दिया गया है । सूड़ प्रबन्ध की प्रशस्ति में 'श्री कुंभस्वामिप्रासादसोदर प्रबन्धराज श्री गीतगोविन्दनामासूडक्रम सम्पूर्ण:' उल्लिखित है । कुंभस्वामी का मंदिर भी वि.सं. १५०५ में बनकर पूर्ण हुआ, सूड़ प्रबन्ध रचना का उल्लेख संगीतराज के गीतरत्न कोश के सूड़ प्रबन्ध[३] परीक्षणों में और कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक १५७ वें में भी मिलता है[४]

---

१. म.कु.पृ. २३१-३७, सोमानी ।

२. शोध पत्रिका वर्ष १७ अंक १ और २ पृष्ठ ३२-३४

३. अष्टाविंशतिरेतेऽत्र प्रबन्धाः कुम्भभूभुजा ।
स्वोपज्ञगोविन्द मिश्र सूडे प्रपंचिता ॥ २९ ॥ गीतरत्नकोश सूड़ परीक्षण

४. आलोड्याखिल भारतीविलसितं संगीतंराजं व्यधात् ।
औद्धत्यावधि रंजसा समतनोन् सूडप्रबन्धाधिपम् ॥ की.प्र.श्लो. १५७

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

—वाद्य प्रबन्ध—

कुम्भा द्वारा सूड़ प्रबन्ध की तरह वाद्य प्रबन्ध पर कोई पुस्तक लिखी गई मालूम होती है, जिसका एकलिंग माहात्म्य के श्लोक २०१ में संकेत दिया गया है ।[१]

गीत गोविन्द की 'रसिकप्रिया' टीका

जयदेव कृत गीतगोविन्द की कुम्भा द्वारा रचित 'रसिकप्रिया' टीका बड़ी विख्यात है । टीका के आरम्भ में कृष्ण, अर्धनारीश्वर, संगीताचार्य मलंग, भरतादि के अभिवादानन्तर अपने पूर्व पुरुष वैजवापायन गोत्रवर्य विप्रपुंगव 'बापा' का स्मरण कर गुहिल, हमीर, क्षेत्रसिंह, लक्षसिंह, मोकल और स्वयं कुम्भा तक का वंश विवरण देने के पश्चात् टीका आरम्भ की गई है ।

'गीत गोविन्द' में सरस, मञ्जुल पदावली में मृदुलतम भावों से विभोर होकर राधाकृष्ण के संयोग और वियोग की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया गया है । टीका के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कुम्भा का अध्ययन गहन था, वह कई शास्त्रों का वेत्ता था । टीका के अन्तर्गत कई काव्यों तथा कवियों का संदर्भ दिया गया है । यथा 'राधा माधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः' पद की टीका करते हुए कुंभा ने नैषध और कुमारसंभव (पंचम सर्ग) के अंश उद्‌घृत किये हैं ।[२] प्रत्येक पद के अन्त में अलंकार, छन्द, लक्षण, राग, रागनियां, नायक, नायिका, रीति, वृत्ति आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है । अनेक स्थलों पर टीका करते हुए बड़ी मार्मिक व्याख्या की है । यथा दूती के कार्य की व्याख्या, एवं दूत कार्य के लिए कौन उपयुक्त रहती है ? इसकी व्याख्या करते हुए कुशल धीर, गूढ़ मंत्रणा देने

---

१. उपरोक्त पृ.५५ एवं एकलिंग माहात्म्य श्लोक २०१ इसमें 'श्रीमान् कुंभ नरेश्वरः प्रकुरुते वाद्य प्रबन्धम्' वर्णित है ।

२. माधव शब्दः सत्यामपि लक्ष्म्यां तस्यामनुरागातिशय द्योतनार्थः ।
यमुनाकूल इति रतिश्रमनिराससाधनशिशिरसमीरसद्‌भावार्थम् ।
अयमितिरत्युद्रेकाकुलतया स्वांगेष्वप्यौदाससीन्यद्योतनाय यथा श्रीहर्ष
मित्रस्य हंसेन स्वात्मनि निराशीभूतेन—'गतिस्तयोरेकतरसामर्दयन्'
इत्याद्यभाणि । यथा व कालिदास ईश्वरेण तया वर्णिते
आत्मन्यनास्थापरात्वे—'अयं जनः प्रष्टुमनास्तपो घने'
इत्याद्यवादि । (राधामाधवयोर्जयन्ति पद की व्याख्या) ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाली स्वतन्त्र विधवा, दासी, प्रव्रजिता आदि को दूती कार्य के लिये उपयुक्त माना है ।[१]

संगीत राज में कुम्भा ने सूड़ प्रबन्धों के शुद्ध और सालग इन परम्परागत भेदों के अतिरिक्त मिश्रसूड नामक एक तीसरे भेद का भी उल्लेख किया है । रसिक प्रिया में इन सब भेदों के लक्षण उद्घृत् किये गए हैं जो सूड़ प्रबन्ध में भी दिये गये हैं ।[२]

कुन्हनराज ने गीत गोविन्द का रचनाकाल संगीतराज से माना है, किन्तु इसको मानने का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया है । प्रत्युत रसिक प्रिया में यत्र तत्र ऐसे उपकरण उपलब्ध हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि यह रचना संगीतराज के पश्चात् ही समाप्त की गई है । इस ग्रन्थ का रचनाकाल जानने के लिए चतुर्थ सर्ग की प्रशस्ति, जिसमें गुर्जर और मालवा सुल्तानों की सेनाओं को पराजित करने का विवरण है ।[३] घटना वि. सं. १५१४ को चापानेर की संधि के पश्चात् की है । गुजरात

---

१. 'वसन्ते वासन्ती कुसुमसुकारे' प्रथम सर्ग गुर्जरराग निसारताल की व्याख्या करते हुए लिखा है—
अत्र लुप्तोपमालंकारः। दक्षिणो नायकः तल्लक्षणम-स्नेहलौल्य वैषम्यवशत-तुल्यतामिपन् । नायिकास्वप्यनेकाषु दक्षिणः स स्मृतो यथा । विरहोत्कण्ठिता नायिका । उक्ता भवति सा यस्या वासरेनागतः प्रियः तस्यानागमने हेतुं चिन्तयत्याकुला यथा' तस्याभिलाषो नाम दशांगति शेषो यथा ॥ व्यवसायो भवेद्यत्र बाढ़ं तत् संगनाशया । संकल्पाकुलचित्वात् साभिलाषः स्मृतो यथा इति वैदर्भि रिति (पृ. २३)।
प्रवृत्ति कुशला धीरा गूढ़ मंत्र दृढ़ प्रिया ।
स्वतन्त्राविधवादासी दुष्टा प्रव्रजिता सती ॥ (पृ.७३)

२. महाराणा श्रीमोकलनन्दनेन देवश्रीएकलिंगगणेन महाराजाधिराजराणाश्री कुंभकर्णमहीमहेन्द्रेण श्रीजयदेवविरचिते श्रीगीतगोविन्दनामाभिधानमातुयोगेन विरचितधातुबन्धे । नामानि पूर्वलिखितान्येवाष्टाविंशतिप्रबन्धनिबन्धनसमनंतरा विराजमान प्रबन्धराजमाननामा श्रीगीतगोविन्द सूड़क्रम परिगीयमान—
'सूड़ प्रबन्ध की प्रशस्ति' शोध पत्रिका वर्ष १६ अंक १-२ से उद्घृत ।

३. एकस्तावदनून धन्विविषयस्वीकार लक्ष्यो परः,
स्फूर्जद् गुर्जरशूरनायकजयप्रोद्दामिताडम्बरः ।
हृष्यन् मालवमूलकोषणविधौ सर्गतृतीयकृत—
स्तुर्यः कुम्भमहीभृतात्र विवृत्तौ श्रीगीतगोविन्दतः ॥ गी.गो.च.स.॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के सुल्तान के साथ महाराणा कुंभा का युद्ध सबसे पहले वि. सं. १५१३ में हुआ था, एतदर्थ किसी भी स्थिति में यह इसके पूर्व की रचना नहीं हो सकती ।[१]

डा. प्रेमलता के अनुसार इसकी रचना संगीतराज के अन्तिम अध्याय रसरत्न कोश के विभवोल्लास व प्रबन्धोल्लास के पश्चात् हुई होगी ।[२]

रसिक प्रिया टीका का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें सर्व प्रथम प्रत्येक पदों को गाये जाने वाले रागों को निश्चित किया गया है, जो व्यवस्था अद्यावधि पर्यन्त प्रचलित है । प्रारम्भिक प्रशस्ति में इसका स्पष्टतः उल्लेख है । पदों के संगीत की व्यवस्था, जयदेव वर्णित श्रृंगार रस को स्पष्ट करना और कई अस्पष्ट ग्रन्थियों का समाधान करना प्रमुख लक्ष्य रहा है, इसका अभिनय कुम्भा के समय कई बार हो चुका था ।[३] यह टीका प्रकाशित हो चुकी है । महाराणा कुम्भा द्वारा रचित गीत गोविन्द की मेवाड़ी भाषा की टीका भी उपलब्ध होती है, जिसकी प्रतियों में से दो 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय' बीकानेर, एक पुरातत्वमन्दिर जोधपुर और एक सरस्वती भवन उदयपुर के संग्रहालय में विद्यमान है ।[४]

संगीत रत्नाकर टीका

कुंभा द्वारा लिखित संगीत रत्नाकर पर कोई टीका लिखी थी[५], जिसका उल्लेख महामहोपाध्याय पं. गौरीशंकर ओझा. शारडा, कृष्णमाचारी ने किया है, लेकिन आजतक इसकी कोई भी पाण्डुलिपि प्राप्त नहीं हुई है । संगीतरत्नाकर के आनन्दाश्रम संस्करण के परिशिष्ट में टीकाकारों में कुंभा का नाम दिया हुआ है । संभवतः कुंभा ने भी इसकी टीका लिखी हो, जो आज उपलब्ध नहीं है ।

---

१. म.कु.। पृ.२३९,रा.व.सोमानी ।

२. डा.प्रेम लता द्वारा सम्पादित 'संगीतराज की भूमिका पृ.४५-४७ ।

३. गी.गो. 'रसिक प्रिया टीका, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, सन् १९२९ ।
राम कृष्णात्मज मंगेश शर्मा,

४. म.कु., पृ. २३९-४०, रा.व.सेमानी ।

५. म.कु. एच.वी. शारडा पृ. १६६, रा.इ. भाग २; पृ.६२६ ओझा, संगीतराज डा. प्रेमलता पृ.४७ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संगीत क्रम दीपिका

'रसिक प्रिया' टीका के तीसरे सर्ग में [१] 'संगीतक्रमदीपिका 'ग्रन्थ की रचना का भी उल्लेख मिलता है, किन्तु इसकी कोई प्रति प्राप्त नहीं हुई है।

गीत गोविन्द

कुंभा के गीतगोविन्द लिखने का भी उल्लेख मिलता है।[२] यह अलग ग्रन्थ न हो कर प्रत्युत सूड़प्रबन्ध के लिए ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। इसमें अट्ठाईस प्रबन्धों के बनाने का उल्लेख मिलता है वे सूड़ प्रबन्ध के ही हैं। नृत्यरत्न कोश में नाट्यशाला में 'श्रीकुम्भकर्ण संगीतगोविन्द रूपकैः' वर्णित है। अगर इसका अर्थ नये गीत गोविन्द से है तो यह कहा जा सकता है कि कुंभा ने इसकी रचना की होगी।[३]

नाटक ग्रन्थ

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुंभा की[४] प्रशस्तियों में चार नाटकों की रचना करने का भी उल्लेख मिलता है, जो अभी तक अप्राप्त ही है। इन नाटकों में संस्कृत के अतिरिक्त महाराष्ट्री, कर्णाटी, और मेवाड़ी भाषाओं का प्रयोग किया गया था।

शिल्प शास्त्रीय ग्रन्थ

कीर्तिस्तम्भ के पास एक खंडित शिला मिली है, जिसमें विभिन्न देवताओं के कीर्तिस्तम्भ बनाने के ग्रंथ की रचना का वर्णन है। इसका खंडित अंश ही मिला है। यह शिलाखंड ११ ॥ इंच लम्बी और ९ ॥ इंच चौड़ी है। इसमें इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, के स्तम्भ बनाने का उल्लेख है।[५]

सूत्रधार मंडन

कुंभा कालीन शिल्पशास्त्रीय विद्वानों में मंडन का एक विशिष्ट स्थान है। इसके पूर्वज गुजरात के निवासी थे। चालुक्य राजाओं के पतन के पश्चात् गुजरात

१. श्रीमत् कुम्भनृपेण क्लृप्तविवृतौ श्री गीतगोविन्दके।
संगीतक्रमदीपिकास्वसुरयं सर्ग स्तृतीयो गतः॥ ३ सर्गान्त रसिक प्रिया।

२. म.कु.,रा.व.सो,पृ.२४२-४३।

३. उपरोक्त—डा.प्रेमलता—संगीतराज—पृ.५५ एकलिंग माहात्म्य श्लोक २०१। इसमें 'श्रीमान् कुंभनरेश्वरः प्रकुरुते वाद्य प्रबन्धम्' वर्णित है।

४. की.प्र.श्लोक १५८

५. म.कु.,रा.व.सो.पृ.२४३।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

से कई शिल्पी मेवाड़ गोड़वाड़ आदि भागों की ओर चले आये थे। सूत्रधार मंडन के पिता का नाम 'खेता' था।[१] 'खेता' का दादा (पितामह) मेवाड़ में आये थे। यह भंगोरा जाति का ब्राह्मण, भारद्वाज गोत्र का था। व्यवसाय के कारण शिलावट कहलाया।[२] मंडन का वि. सं. १४८२ का एक दान पत्र मिला है,[३] जो भाषा की दृष्टि से अर्वाचीन प्रतीत होता है।

यह संस्कृत का विद्वान् था। उसके द्वारा विरचित ग्रन्थों में प्रासाद मंडन, राजवल्लभमंडन, देवतामूर्ति प्रकरण, वास्तुसार, रूपावतार, रूपमंडन, वास्तुमंडन[४] आयतत्व आदि[५] बड़े प्रसिद्ध है।

मंडन के दो पुत्र हुए थे, जिनके नाम गोविन्द और दूसरा ईश्वर था, जो जावर में कुंभा की पुत्री रमाबाई द्वारा निर्मित विष्णु मंदिर का शिल्पी था[६]। मंडन कुंभा का प्रिय पात्र था। राजवल्लभ ग्रन्थ में कुम्भा का वर्णन इस प्रकार है।

श्रीमेदपाटे नृपकुंभकर्णस्तदंघ्रिराजीवपरागसेवा।

समण्डनारव्यो भुवि सूत्रधारस्तेनोद्धृतो भूपति वल्लभो यः ॥१४॥४३॥

कुंभा ने संभवतः कुंभलगढ़ क्षेत्र में उसे नियुक्त किया था। कुंभलगढ़ मंडन की कीर्ति कौमुदी को चिरस्थायी बनाये हुए है।

सूत्रधार 'जइता'

सूत्रधार 'जइता' परिवार से सम्बन्धित कई लेख कीर्तिस्तम्भ पर उत्कीर्ण हैं। प्रासाद का कुछ भाग और कुम्भ स्वामी का मन्दिर भी इसने बनवाया था। सबसे पहला लेख वि. सं. १४९९ फाल्गुन पंचमी का है, जिसमें कुम्भा के राज्यकाल में सूत्रधार जइता और उसके पुत्र नापा, पुंजा द्वारा समाधीश्वर को अभिवादन करना

---

१. रूपमंडन में इस प्रकार उल्लेख है—
श्रीमद्देशे मेदपाटाभिधाने क्षेत्रारव्योऽभूत्सूत्रधारो वरिष्ठः।
पुत्रो ज्येष्ठो मण्डनस्तस्य तेन प्रोक्तं शास्त्रं मण्डनं रूपपूर्वम् ॥ ६४० ॥

२. श्रीनारायण भारती यशवंत भारतीगोसाई—राजवल्लभ मंडन (गुजराती) भूमिका पृ. ६

३. श्री हरिविलास शारडा—महाराणा कुंभा (द्वितीय संस्करण) पृ. १६७।

४. श्री नारायणबापुजी उतीकर—कलेक्टेड वर्क्स ऑफ श्री आर. सी. भण्डार कर पृ. ४२। एक प्रति जैन ज्ञान मंदिर बड़ोदा में सं. १३५१ है।

५. श्री उपेन्द्रमोहनदेव शर्मा—देवतामूर्तिप्रकरण एवं रूप मंडन की भूमिका पृ. ३।

Funding by IKS-MoE

६. श्री भगवानदास जैन द्वारा सम्पादित—प्रसाद मंडन की भूमिका पृ. १४।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंकित किया गया है, जिसमें स्वयं जइता का उल्लेख है। वि.सं. १५१० के दो लेख और हैं, एक ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी और दूसरा श्रावण शुक्ला एकादशी का है। प्रथम लेख में केवल सूत्रधार परमा का ही उल्लेख है। दूसरे में सूत्रधार जइता के पुत्र नापा भूमि (?) चूथी (?) आदि का भी नामोल्लेख है। वि.सं. १५१५ का पांच पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है। जिसमें 'जइता' के पिता का नाम लाषा (खा) दिया है और इसे 'सकल वस्तु विशारद' कहा गया है। वि.सं. १४९५ के महावीर जैन मन्दिर प्रशस्ति में सूत्रधार नारद को लाखा का पुत्र माना जाता है। जइता और नारद दोनों भाई रहे हो, ऐसा प्रतीत होता है। दो लेख ऐसे भी मिले है, जिनमें तिथि का उल्लेख कहीं है, इनमें महाराणा मोकल के पुत्र कुम्भा के आश्रित सूत्रधार 'जइता' आदि का विवरण दिया गया है।[१]

प्रासाद मंडन

शिल्प शास्त्र का यह ग्रन्थ सूत्रधार मंडन द्वारा विरचित है। यह आठ अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय में भूमि परीक्षण और चौदह प्रकार के प्रासादों का वर्णन है। प्रासाद के प्रकारों में आठ प्रकार के मुख्य माने गये हैं।

'मानसार' में नागर द्राविड़ और वेसर भाग किये गये हैं।

'समरांगण' में आठ, 'अपराजित पृच्छा' में चौदह भाग किये हैं। मंडन द्वारा इन्हीं दोनों के आधार पर ही वर्णन किया गया है। नामों का उल्लेख प्रायश: समरांगण से मिलता जुलता है। नागर, द्राविड़, भूमिज, लतिन, सार्वधार, विमान, नागर विमान पुष्पक[२] और श्रृंग। मंडन का मत है कि भूमि परीक्षण के पश्चात् उसे पंच गव्य से शुद्ध करना चाहिए। इस शुद्धि में मणि, सोना, रूपा, मूंगा और फल का प्रयोग बतलाया गया है। शुभाशुभ नक्षत्र का विचार किया जाना भी नितान्त आवश्यक है।

मंदिर या प्रासाद में देवता का निवास माना गया है। ऐसा भी माना गया है कि इसमें असुरों की वक्र दृष्टि रहती है एतदर्थ शान्ति कर्म की व्यवस्था की गई है। १४ शान्ति कार्यों के निम्नलिखित अवसरों पर किये जाने का वर्णन है।[३]

---

१. म.कु.—सोमानी, पृ. ३४७,४८
२. प्रा.पं. पहला अध्याय ६-८।
३. प्रा.मं. पहला अध्याय ३७-३८।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१ खात कर्म २ कर्मशिला ३ शिलान्यास ४ तल निर्माण ५ खरशिला ६ मंदिर द्वार की स्थापना ७ मंडप का मुख्य स्तम्भ स्थापन ८ स्तम्भ पर भारपट्ट की स्थापना व शिखर पर पद्मशिला की स्थापना १० गर्भ गृह के शिखर के समान ऊंचाई पर सिंहस्थापना ११ स्वर्ण पुरुष की स्थापना १२ आमलक स्थापन १३ कलश स्थापना एवं ध्वजारोपण करने का उल्लेख है।

प्रासाद की मर्यादित भूमि को 'जगती' कहा गया है।[१] मंडन ने लिखा है कि राजा के सिंहासन को रखने के लिए कोई निश्चित स्थान मर्यादित होता है, वैसे ही 'प्रासाद' के निर्माण के लिए भी भूमि मर्यादित रखी जाती है।

'जगती' के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए' अपराजित पृच्छा में लिखा है कि प्रासाद शिवलिंग का स्वरूप है एवं उसके चारों और पीठिका होती है, वह 'जगती' रूप कहलाती है[२] जहां तक हो सके जगती को प्रासाद के अनुरूप बनानी चाहिये। प्रासाद के विस्तार को ध्यान में रखते हुए तीन गुणी चार या पांच गुणी होनी चाहिए।

जगती के थरमान के सम्बन्ध में मंडन का कथन है कि इसके २८ भाग कर लिए जावे एवं इसमें ३ पद का जाड्य कुंभ, दो का कर्णिका, तीन का ग्रासा जो पद्मयुक्त हो, दो भाग का खुरा, सात भाग का कुंभ, तीन भाग का कलश, एक भाग का अन्तरपत्र तीन भाग की 'कपोताली' (केवाल) चार भाग का पुष्प कंठ बनाना। चाहिए[३] जगती से मंडप में जाने के लिए सीढ़ियां बनाकर इसके दोनों ओर हाथियों की सुन्दर आकृति बनाना चाहिए। तोरण बनाना चाहिए। मंदिर के सम्मुख देव का वाहन स्थान भी बनाना चाहिए। इसकी ऊंचाई एवं निर्माण के सम्बन्ध में विशेष नियमों का उल्लेख किया गया है।[४]

---

१. प्रासादानामधिष्ठानं जगती सा निगद्यते।
यथा सिंहासनं राज्ञः प्रासादस्य तथैव सा ॥ १ प्रा.म. २ अध्याय

२. जिन प्रासाद की संरचना वैष्णव मन्दिर से कुछ भिन्न होती है। जिन प्रासाद में कवली मंडप के आगे गूढ मंडप, चौकी मंडप, नृत्य मंडप आदि होते हैं, जब की वैष्णव मन्दिर में इतने मंडप नहीं होते हैं।

३. अग्रतः पृष्ठतश्चैव वामदक्षिणयोर्दिशः।
प्रासादं कारयेदन्यं नाभिवेध विवर्जितम् ॥ २७ ॥ प्रा. मं. दूसरा अध्याय।

४. प्रासादो लिंगमित्युक्तो जगती पीठमेव च ॥ सूत्र ११५ श्लोक ५।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जिन जिन प्रासाद के आगे समवसरण एवं ७२, ५२ वा २४ देव कुलिकाएं होना चाहिए[१] देवालय में जहां सुलभ हो सके, पीछे की तरफ रथशाला, दक्षिण में मठ, उत्तर में रथ का प्रवेश द्वार होना चाहिए।

मुख्य प्रासाद के आगे पीछे बांयी और दाहिनी ओर दूसरे प्रासाद सब नाभिवेध को छोड़कर बनाये जाते थे।[२]

शिल्प ग्रन्थों में लिखा गया है कि शिवलिंग के सम्मुख कोई दूसरा देवता देवपूजनार्थ नहीं रखे। जहां तक सम्भव हो सके ब्रह्मा के सामने ब्रह्मा का विष्णु के सामने विष्णु का एवं जिनदेव के सामने जिनदेव का मंदिर ही बनाना चाहिए, इससे नाभिवेध नहीं हो सकता है। विष्णु और ब्रह्मा दोनों परस्पर एक ही नाभि में है अतएव इनका देवालय सम्मुख हो सकता है। इसी प्रकार चंडिका के सामने मातृदेवों, यज्ञ, क्षेत्रपाल, भैरवादि देव स्थापित किये जावे तो कोई दोष नहीं।[३] इसके पश्चात् देवों के आयतन के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है।[४] सूर्य के आयतन के मध्य में सूर्य उसके प्रदक्षिणा क्रम से गणेश विष्णु चण्डी देवी और महादेव स्थापित करना चाहिये। गणेश आयतन के मध्य में गणेश उसके प्रदक्षिणा क्रम में चंडीदेवी, महादेव, विष्णु और सूर्य होना चाहिए। विष्णु के आयतन में मध्य में विष्णु प्रदक्षिणा क्रम में महादेव, गणेश, सूर्य और विष्णु होना चाहिए। इसी प्रकार शिव पंचायतन में मध्य में शिव एवं प्रदक्षिणाक्रम से गणेश, चंडी और विष्णु की स्थापना चाहिए। त्रिपुरुष देव की स्थापना के लिए मध्य में महादेव, उसके बायीं ओर विष्णु ओर दाहिनी और ब्रह्मा की मूर्ति होना चाहिए। प्रत्येक देवों की ऊंचाई का मान भी बतलाया गया है।[५]

---

१. प्रा. मं. दूसरा अध्याय श्लोक ११ से १४

२. वृषभ की ऊंचाई शिवलिंग के विष्णु भाग तक रखना चाहिए। वाहन की दृष्टि गर्भ गृह स्थित देवमूर्ति के चरण जानु एवं कमर तक ऊंचाई रखना चाहिए। प्रा. मं. के दूसरा अध्याय का २१ वां श्लोक, अपराजित पृच्छा के सूत्र २०८ से मिलता हुआ है।

३. दृष्टिवेध के परिहार के लिए भी नियम बने हुए है। शिवालय और अन्य देवालयों के मध्य राजमार्ग या दीवार हो तो कोई दोष नहीं है। (प्रा. मं. २।३१)

४. प्रा. मं. अध्याय २ के श्लोक ४१ से ४५ तक।

५. अपराजित पृच्छा के सूत्र १३६ से वर्णित शिव मुख के एक तृतीयांश भाग तक विष्णु के मुखार्द्ध तक ब्रह्मा की ऊंचाई रखना चाहिये इसी प्रकार का प्रा. मं. के दूसरे अध्याय के ४७ वें श्लोक में वर्णन है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रासाद को धारण करने वाली जो आधार शिला मानी जाती है इसको 'स्वरशिला' कहते हैं। इसे अति स्थूल बनाना चाहिए। यह जगती के ऊपर बनती है। इसके ऊपर भिट्ट नामक 'थर' बनता है। इसकी ऊंचाई के नाप के लिए लिखा है कि एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को चार अंगुल का भिट्ट बनाना चाहिए। एवं तत् पश्चात् लम्बाई प्रासाद के अनुपात से रखी जानी चाहिए अर्थात् पूरे हाथ तक प्रत्येक हाथ के लिए एक २ अंगुल, ८ से १० हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ के लिए पोने २ अंगुल, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ पांव बढ़ाकर भिट्ट बनाना चाहिए। यही क्षीरार्णव, अपराजित पृच्छाआदि में मिलता है। उसके ऊपर पीठ बनाई जाती है। पीठ प्राय: कामदुकण और गजपीठ तीन प्रकार की बनती है। जिस पीठ में गज अश्व आदि घर बने हुए हो उसे गजपीठ कहते है। इस पीठ को छोड़कर जो केवल जाड्य कुंभ, कर्णिका ग्रास पट्टी वाली ही हो उसको कामदपीठ तथा जाड्यकुंभ तथा कर्णिकावली को कर्णपीठ कहते हैं। पीठि का आधार होने से बहुत ही महत्वपूर्ण है। 'मंडोवर' के भागों के विविध भाग करने के लिए प्रासाद की दीवार के १४४ मान (१) करके इसमें ५ का खुरा, २० कुंभ, ८ का कलश, २ ॥ बाग का अन्तराल, ८ भाग के वाल, ९ भाग की मंची, ३५ भाग की जंघा, १५ भाग का उद्गम (उर जंघा) १८ भाग की भरणी, १० भाग की शिरावटी, ८ भाग की कपोतियां (केवाल) २ ॥ भाग अन्तराल एवं १३ भाग का छज्जा रखे जाने का उल्लेख मिलता है। मेरू मंडोवर में एक से अधिक जंघा होती है। बिना थरों का मंडोवर सामान्य मंडोवर कहलाता है।

मंडप के स्तम्भ और मंडोवर को समसूत्रता लाने के लिए कई नियम बना दिये थे। मंडोवर का कुंभ और स्तम्भ की कुंभी स्तम्भ का मथाला और मंडोवर का उद्गम स्तम्भ की भरणी और मंडोवरी की भरणी, मंडोवर की कपोताली और स्तम्भ की शिरावटी आदि को सम सूत्र रखा जाता था।[१]

प्राय: गर्भ गृह के बाहर देहली या उदुम्बर को मंडोवर के कुंभ के समसूत्र रखा जाता था। देहली के तीन भाग करके इसमें मध्य का भाग मंदारक और दोनों ओर ग्रास मुख या कीर्तिमुख बनाने का विधान किया है।[२]

---

१. म.कु., रा.व. सोमानी पृ. २५१।

२. प्रा.म. श्लोक ३ ।३९-४०।' उदुम्बर को कुंभ के उदय से कम भी कर सकते है' या कुंभी के आधे से अधिक कम नहीं हो सकता कहीं कहीं ऐसा भी माना जाता है कि देहली को

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

द्वार के ऊपर का भाग उत्तरंग कहलाता है। उत्तरंग से उदुम्बर तक त्रिशाखपंचशाख या नवशाख द्वार स्तम्भ बनाये जाते हैं। इन पर गंगा यमुना की मूर्तियां भी बनाई जाती है[1]

गर्भ गृह प्रासाद की समचोरस भूमि, भूमि के १० भाग करके उनमें से २ की दीवार भ्रमणी एवं शेष ६ भाग का गर्भ गृह बनाना चाहिए।[2] गर्भगृह के बाहर कोली मंडप बनाया जाता है। वैष्णव और जैन मन्दिर में यह व्यवस्था अलग अलग है। जिन प्रासाद के आगे गूढ मंडप इसके आगे चौकी वाले त्रिक मंडप और उसके आगे नृत्य मंडप बनाया जाता है। नृत्य मंडप के बाहर श्रृंगार चौकी मंडप भी बनाया जाता है। सूत्रधार मंडन ने गूढ़ मंडपों का विस्तार से वर्णन किया है, जब कि प्राग्रीव मंडपों का काम कुंभा के समय बने मंदिरों में अधिकांशतः प्राग्रीव मंडप बने हुए हैं। गूढ़ मंडप ८ प्रकार के वर्णित किये हैं। प्रथम सम चोरों, सुभद्र प्रतिरथवाला सुखभद्र वाला, दो या तीन प्रतिरथ वाला कर्ण एवं जलान्तर वाला अथवा भद्र जलान्तरवाला।[3] मंडप के ऊपर गूमटों के विस्तार मान का भी वर्णन मिलता है। मंडप के चंदोवा के उदय में प्रथम पाट पर अष्टास्त्र बनाकर उसके ऊपर षोडशास्त्र व उसके ऊपर गोलाई बनती है, यह बाग मंडप के विस्तार से आधा होना चाहिये इसके घरों में प्रथम कर्ण दादरिका, दूसरा रूपकंठ बनता है। वितान शुद्ध संघाट। संघाट मित्र, क्षिप्त एवं उत्क्षिप्त चार प्रकार के होते है[4] शिखर अथवा श्रृंगों के लिए लिखा है कि ये प्रासाद के अंडक माने जाते हैं एवं तवंग तिलक तथा सिंह कर्ण ये प्रासाद के आभूषण श्रृंग एक के ऊपर एक दो अथवा तीन अनुक्रम से चढ़ना चाहिये। प्रासाद के भद्र के ऊपर १ से ९ तक डर: श्रृंग चढ़ाये जाकर शिखर के लगभग आधे भाग तक ऊंचाई पर इन्हें बनाये जाते थे।[5] शिखर के उदय के लिए

कुंभ से नीचे उतारने की आवश्यकता हो तो स्तम्भ की कुत्रियों को भी नीचे उतारनी चाहिए, किन्तु क्षीरार्णव एवं अपराजित पृच्छा में ऐसा विधान नहीं है। म.कु., पृ. २५२, रा. व. सोमानी।

१. प्रा. मं.—श्लोक ३।५८-६८।

२. वही श्लोक ४।३।

३. वही श्लेक ४।१६-१७।

४. वही श्लोक ७।२९-३४।

५. 'शिखर के उदय के १३ भाग करके ७ भाग तक ३२ श्रृंग बनाने का विधान है एवं शिखर पर गोलाई लाने के लिए नियम है कि अगर नीचे के १० हिस्से हो तो ऊपर आते आते वह छः भाग ही रह जाना चाहिए।' म.कु., पृ. २५३, रा. व. सोपानी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ग्रीवा आमलसार कलस, शुकनास और सिंह स्थान भी बनाया जाना चाहिए। शिखर में शुकनास का महत्वपूर्ण स्थान है । मंडन के अनुसार प्रसाद के शिखर पर एक हिरण्य पुरुष की स्थापना की जाती है ।

इस प्रकार देव मन्दिर बनाने की कल्पना अत्यन्त सुन्दर है । इसमें सृष्टि के निर्माता ब्रह्म जिसे वेदों में हिरण्यगर्भ भी कहा है, निवास स्थान है । मनुष्य के शरीर के अनुरूप ही प्रासाद बनाने की कल्पना है । पैर या जगती पृथ्वी भाग है, मंडोवर आदि मध्य भाग अन्तरिक्ष है एवं शिखर द्युलोक है । इस प्रकार यह अखिल ब्रह्माण्ड का प्रतीकात्मक है ।[१]

इसका और प्रकाशन 'कलकत्ता-संस्कृत-सिरीज नं. ३२ से हो चुका है ।

राज वल्लभ मंडन

अध्यायों में लिखा गया यह ग्रंथ शिल्प शास्त्र की अद्वितीय कृति हैं । इसमें राजमहल, साधारण घर, नगर आदि की संरचना का विशद वर्णन है । मनुष्य का घर उसके जीवन का महत्त्वपूर्ण स्थान रहता है, जहां धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्तिं के साधन जुटाये जाते हैं । उसके सम्बन्ध में इस प्रकार का अध्ययन भी आवश्यक है । इसमें भी प्रासाद—मंडन की तरह सर्व प्रथम भूमि परीक्षण का वर्णन है । घर बनाने के लिए सम चौकोण भूमि जिसमें पानी का बहाव सुविधा पूर्वक हो सके, दरार नहीं हो, सूर्य का प्रकाश पूरा मिलता हो अथवा उत्खनन के समय अस्थियां नहीं निकलती हो, उसे लेना चाहिये । शल्य (हड्डियां) के निकलने की यदि संभावना हो, तो उन्हें दूर फिकवा देनी चाहिए, क्यों कि भूमि में इनके रह जाने पर नाना प्रकार के कष्टों की संभावना रहती है ।[२] मंडन का क़थन है कि जिस भूमि पर गृह निर्माण, हो, उसमें अगर गौ की हड्डियां रह जाय तो राज्य भय, अश्व की हड्डियां रहे तो रोग भय, कुत्ते की अस्थियां हो तो क्लेश आदि की संभावना रहती है । शिला के स्थापना के समय नागचक्र बनाने नाग मुख देख करके खात कर्म किया जावे । नींव को इतनी गहरी खोदना चाहिये कि पानी निकल आवे अथवा पक्का

---

१. श्री वासुदेव शरण अग्रवाल (श्री भगवानदास जैन द्वारा सम्पादित प्रासाद मंडन की भूमिका पृ, १८ ।

२. रा.म. अध्याय १ श्लोक ३१ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पत्थर आ जावे। मन्दिरों की तरह अन्य प्रासादों में शांति पूजा अधोलिखित समय पर अत्यावश्यक है।[१]

१ प्रथम सूत्र कर्म के समय

२ शिला स्थापन के समय

३ द्वार निर्माण के समय

४ स्तम्भ बनवाने के समय तथा।

५ नवीन गृह में निवास करने के समय

घर के समीपवर्ती वृक्ष लगाने का भी वर्णन किया गया है। मंडन का लिखना है कि घर के समीप अधिक फलवाले कांटों युक्त एवं दूध वाले वृक्ष व जिन वृक्षों में भूत प्रेतों के निवास का भय हो, वे भी नहीं लगाना चाहिए, किन्तु वटवृक्ष, गूलर और पिपली जरूर लगाना चाहिए, क्यों कि इनमें देवता का वास होता है। वास्तु पूजन को बड़ा महत्त्व दिया गया है। इसको प्रासाद के आकार के अनुपात से बनाया जाता है।

दुर्गों का निर्माण करवाना राजाओं के लिए सर्व श्रेष्ठ कृत्य माना गया है। मंडन लिखता है कि पर्वतीय दुर्ग के निर्माण कराने से राजाओं को कूप, तालाब, यज्ञ देव मन्दिर आदि का जो फल होता है, उससे भी अधिक इसका फल अधिगत होता है। मण्डन के काल में मेवाड़ में युद्धों का समय था। अतएव पर्वतीय दुर्गों का उत्कृष्ट महत्त्व था[२] उसका कथन है कि जैसे सिंह पर्वतीय गुफा में रहकर अपने

---

१. भवनपुरसुराणां सुत्रणेपूर्वमुक्ता
कथित दूहपृथिव्याः शोधने च द्वितीयः।
तदनुमुखनिवेशे स्तम्भसंरोपगेस्याद्
भवनवसनकाले पंचधावास्तुयज्ञः॥ २७.
अध्याय १८ रा.व.मं.

२. वापीकूपतडागदेवभवनान्यारामयाज्ञादिकं।
तीर्थोनामवगाहनं च विधिवत्कन्याप्रदानादिकं॥
सर्वं पुण्यमिदं नृपः सुलभते यः कारयेत्पर्वते।
दुर्गं सर्वं जनायशमर्जनं विश्राममेकं परं॥
रा.मं. अध्याय ४॥ श्लोक १॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शत्रुओं को विनष्ट कर देता है वैसे ही राजा विशाल सैन्य वाले शत्रुओं का भी नाश कर देता है। दुर्ग के प्रमुख चार प्रकार हैं:—

१—भूमि, २—जल ३—गिरि ४—गव्हर दुर्ग। इन दुर्गों में अन्न, घी, जल, तेल, नमक, लकड़ी एवं घास की तथा संग्राम की सामग्री जैसे यन्त्र, उपस्कर, बाण आदि रखने की व्यवस्था थी।

नगरों को विभिन्न परिमाण के आधार पर वर्णित किया गया है। चतुरस्र नगर को माहेन्द्र, लम्बा एवं चतुरस्र नगर को सर्वतोभद्र, गोल आकृति वाले को सिंह, लम्ब गोल आकृति वाले को वारुण, विभिन्न कोणों वाले को नन्द, स्वस्ति का कृति वाले को नंदावर्तक। जय के आकार वाले का नाम जयन्त एवं पर्वत के ऊपर अवस्थित नगर को दिव्य कहा गया है।

अष्टदल नगर को पुष्पपुर, पुरुषाकार नगर को पौरुष, पर्वतकी छाया में हो तो उसे स्नाह, लम्बे नगर को दंडनगर नदी के पूर्व पर स्थित को शक्रपुर, नदी के पश्चिम में होवे तो कमलपुर, नदी के दक्षिण में होवे तो धार्मिकपुर, दो नदियों के मध्य अवस्थित नगर को महाजय, नदी के उत्तर में हो उसे सौम्य, एक दुर्ग वाले को श्रीनगर, दो दुर्ग वाले को रिपुघ्न और अष्टकोण नगर को स्वस्तिक कहा गया है।[१] यह वर्णन अपराजित पृच्छा के अनुसार है। इनके अतिरिक्त कनिष्ठ, मध्यम, और उत्तम भेद भी होता है। कनिष्ठ नगर १००० हाथ का, मध्यम १५००, और उत्तम नगर २००० हाथ का होता था। उत्तम प्रकार के नगर में १७ मार्ग, मध्यम नगर में १३ और कनिष्ठ में नौ मार्ग बनवाए जाने चाहिए। नगर के नाम से आधा ग्राम और ग्राम से आधा खेड़ा खेड़ा से आधाकूट और कूट से आधाखर्वट होता था। राजा के रहने के लिए ४००० हाथ का अथवा ८००० हाथ का नगर बनाना अच्छा माना गया है। ग्राम में बनाये जाने वाले मार्गों का भी वर्णन मिलता है। ग्राम में मौखेटक में, पांच कूट में तीन और खर्वट में दो मार्ग होने चाहिये। किले की दीवारों की ऊंचाई सत्ताईस हाथ होनी चाहिए। इनमें दो हाथ न्यूनाधिक भी हो सकती है। आधे हाथ के लगभग कंगुरे बनाने चाहिए। दीवारों में कोठे और विद्याधर भी बनाये जाकर कोठों की चौड़ाई देश से चौदह हाथ रखनी चाहिए।

---

१. रा.मं.चतुर्थ अध्याय, ४ से ६ श्लोक।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नगरों में चार मुख्य द्वार और आठ खिड़की द्वार होने चाहिए। नगरों में बाजार की व्यवस्था का भी उल्लेख किया गया है।[१] फूलों की, सुगंधित पदार्थों की, रत्नों की, दुकानें राजद्वार के या देव मन्दिर के आगे होना चाहिए। नगर के पूर्व में ब्राह्मणों के, दक्षिण में क्षत्रियों के, उत्तर में शूद्रों और मध्य में व्यापारी वर्ग की निवास देना चाहिए। ईशान कोण में रंगरेज, कुविंद (बुनकर) धोबी को तथा चर्मकार, धांची और कलालों को दक्षिण दिशा में बसाना चाहिए। पश्चिम दिशा में कुवा, तालाब, बावड़ी, आदि बनवाया जाना शुभ माना है। बावड़ियां चार प्रकार की, दस प्रकार के कुएं चार प्रकार के कुंड और छह प्रकार के तालाब बनाने का विवरण मिलता है।

राजा के दरबार और महल के लिए भी सविस्तार वर्णन मिलता है। ग्राम या नगर के १।१६ भाग में राजमहल या दरबार चाहिए। ये जहां तक हो सके नगर के मध्य अथवा पश्चिम भाग में बनना चाहिए। पर्वतीय दुर्ग समचौरस भूमि पर बनना चाहिए। राजा के महल के आधे भाग का महल मंत्री का होना चाहिए। इनमें अनुक्रम से काम करते अधिकारियों के मकान बनाने चाहिए। राजमहल में बायें भाग में कोषालय, वस्त्रागर, वेदघर, धातुलक्ष्मी, अश्वशाला अन्तपुर आदि बनाना चाहिए। दाहिने भाग में अग्नि, गाय जल, हस्तिशाला[२] शस्त्र और अन्तपुर का अवशेष भाग बनाया जावे। इनके अतिरिक्त गंधर्वशाला, नृत्यागार[३] राजमाता का स्थान, पट्टरानी के महल, ऊंटों के लिए अलग स्थान एवं धान्य के कोष्ठागार रखने की व्यवस्था की गई है।

राजमहल के सम्मुख सुन्दर मंडप एवं उसके पास में पुत्र, पौत्रादिकों के महल बनाना चाहिए[४] राजमहल के बाहर वाम भाग में शस्त्रधारी सैनिकों के आवास का भाग है एवं दाहिने में शिरच्छत्र पकड़ने वाले चामर उड़ाने वाले, गुरु एवं तम्बोलियों के आवास थे। राजमहल में अध्ययन शाला एवं वादित्र शाला बनाने

---

१. वही चतुर्थ अध्याय, श्लोक १६।

२. 'भागे दक्षिण वामके च करिणां शाला हरेर्दारितः' रा.मं.४।२९

३. नृत्यानार के लिए कुंभा द्वारा विरचित संगीतराज के नृत्यरत्न, कोश के नाट्यवेश्य नामक अंश सविस्तार वर्णन किया है।

४. राजकुमार अथवा पटरानी के महलों को पांच प्रकार के बतलाये है रा.मं.के ९ वां अध्याय के ३१-३२ वां श्लोक। म.कु., पृ. २५६, रा.व. सोमानी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का भी विधान था । मुख्य द्वार के समीप त्रिपोलिया द्वार भी बनाया जाकर वहां धूप घड़ी रखीं जाती थी ।[१]

साधारण मनुष्यों के घर एक शाला से लेकर दश शाला तक के बनते थे । ध्रुव धान्य जय, नन्दखरकान्त, मनोरम सुवक्तृ दुर्मुखकुर, विपक्ष, घनद, क्षय, आक्रन्द्र वैपुल और विजय नामक सोलह प्रकार के घर बनते थे ।[२] इनका अतिविस्तार से वर्णन किया गया है । घरों के वर्णन में मण्डन की अपनी मौलिकता अधिक है । दश शाला के घरों में एक से चार तक तो प्रस्तार से एवं पांच से दश संयोजन से बनते थे । इसमें गुरु और लघु का छन्द शास्त्र की तरह एक दूसरे को मिलाकर घर बनाने का उल्लेख है । गुरु का अर्थ मिस्ति और लघु का अर्थ अलिंद से है । अपराजित पृच्छा से भी मंडन का वर्णन मिलता है । पंचशाला ६ प्रकार के संयोजन से, षट्शाला नौ प्रकार के संयोजन से, सप्तशाला ग्यारह प्रकार के संयोजन से, अष्टशाला पन्द्रह प्रकार के संयोजन से,नव शाला अट्ठारह प्रकार के एवं दस शाला तेईस प्रकार के संयोजन से बनती थी । इस प्रकार मंडन का वर्णन अधिक स्पष्ट मालूम होता है । गुरु लघु के प्रस्तार का रूप भी अधिक स्पष्ट है ।[३] इनके पश्चात् राजा की शैय्या बनाने का वर्णन है । इसमें राजा की शैय्या सौ अंगुल, राजपुत्र की नब्बे, मंत्री की चौरासी, सेनापति की बौहत्तर राजगुरु उनसित्तर एवं ब्राह्मणादि वर्गों के लिए षडसट अंगुल की बनाई जाना शुभ माना गया है । राजा का सिंहासन साठ अंगुल का होना चाहिए । इसके अतिरिक्त पचास और चालीस अंगुल के सिंहासनों का भी उल्लेख किया गया है । सिंहासनों पर सुन्दर नक्काशी होती थी । इन पर नरथर, वेदी, सुखासन आदि बनाये जाये थे ।

राजा की सभा आठ प्रकार की बतलाई गई है । नन्दा, भद्रा, जय, पूर्णा, दिव्या, यथ्ती, रत्नोभ्यदा (रतिनोभ्दविका) एवं उत्पला उनके नाम हैं । इन सभाओं में कई स्तंभ तोरण आदि बनाये जाते थे । मंडन लिखता है कि स्तम्भों एवं दीवारें पर हस्ति, घोड़ा, सिंह, नृत्य करती हुई नर्तकियां बनाई जावें । एवं रंग भूमि बनाई जावे, जिस के आगे क्रीड़ा करने के लिए एक मंडप भी बनाया जावे सभा के दाहिनी और

---

१. रा.मं.५ वें अध्याय के श्लो.सं.४४-४७ ।
२. पोहर भाई अम्बांशंकर मंकड—अपराजित पृच्छा भूमि का पृ.७८ से ८६ तक ।
३. रा.मं.छटे अध्याय के श्लो.सं.३-५ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वेदिका बनाकर उस पर चार स्तंभ बनाये जाकर मंडप बनाना चाहिये एवं वहां स्वर्ण, मोती, पटकूल और मणियां लगाई जानी चाहिए ।

राजा की क्रीड़ा करने के लिए वाटिका अथवा उपवन होना चाहिए । पहले प्रकार का एक सौ दंड दूसरा दो सो दंड, और तीसरे प्रकार का तीन सौ दंड लम्बाई वाला होना चाहिए । इस बाग में जलयंत्र बनाया जाकर उसमें सात सात कोठे बनाये जावे एवं एक जल वापिका उसके चारों ओर बनाई जावे । बाग में कई प्रकार के वृक्ष व पौधे जिनमें चम्पा, कुंद, सुवर्ण केतकी, नारंगी, लाल कनेर, आम, जामुन, केले, चन्दन, वड़ा पीपल, हरड़े, आंवला, आशापाला, कदम्ब, नीम, खजूर, दाड़िम, अंगूर, पलाश (खाखरा) आदि लगायें जावे । ऐसे बाग में वर्षा और वसंत ऋतु में बाला, मध्या, और प्रौढ़ा जाति की स्त्रियां सुन्दर सरस गान हेतु रहती थी । ग्रीष्म और शरद् ऋतु में शीतल जल में जल क्रीडा की जाती थी ।

इसके अतिरिक्त सेनापति, सामंत, राजाओं ज्योतिषियों के घर, सभासदों राजगुरु पुरोहित, वैद्य आदि के आवास स्थान का भी वर्णन है ।[१] इसका प्रकाशन 'कलकत्ता संस्कृत सीरीज नं. ३२ से हो चुका है ।

देवता मूर्ति प्रकरण एवं रूप मंडन

'उपर्युक्त दोनों ही ग्रन्थ मूर्तिकला पर लिखे गये हैं । देवता मूर्ति प्रकरण में आठ और रूप मंडन में छह अध्याय हैं । इनमें सर्व प्रथम शिला परीक्षण है । शिलाओं में पुरुष नारी और नपुंसक जाति की शिलाओं का वर्णन है । कौन से देवों की मूर्तियां किस किस जाति की शिला से बनाना चाहिए, इसका वर्णन मिलता है । मूर्तियों की लम्बाई आदि का भी वर्णन है । कमलासन स्थित विरंचि, सावित्रि, चारों वेद, और नृत्य शास्त्र की प्रतिमाओं का वर्णन है । बारह सूर्य और उनके प्रतिहार दश दिक्पालों आदि का वर्णन है । विष्णु के चौबीस अवतारों का वर्णन हैं । यह वर्णन देवता मूर्ति प्रकरण से रूपमंडन में सम्यग् प्रतिपादित किया गया है । इन मूर्तियों में अत्यन्त साम्य है । एक मात्र अन्तर शंख, चक्र, गदा और पद्म नामक आयुधों के धारण करने का है । विष्णु के दश अवतारों एवं उनकी विशेष मूर्तियां, जिनमें वैकुण्ठ, विश्वरूप, अनन्त, त्रैलोक्य, मोहन आदि का वर्णन दोनों में समान रूप से मिलता है । इसके पश्चात् रुद्र मूर्तियों का वर्णन है । द्वादश शिव मूर्तियों

---

१. रा.मं.८ वें अध्याय के श्लोक सं.२०-२४,
म.कु., पृ.२५३-२५८, रा.वा.सोमानी

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का वर्णन दोनों ही ग्रंथों में समान रूप से हुआ है। युग्म मूर्तियों में देवता मूर्ति प्रकरण का वर्णन अधिक विस्तार से है।

धनुर्विद्या सम्बन्धी मंडन का 'कोदण्ड मंडन' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है।[१]

मंडन के समय में इस प्रकार की कई उल्लेखनीय प्रतिमाएं बनी थी। रूपमंडन के अनुसार बनी वैकुण्ठ की प्रतिमा चित्तौड़ के कुंभश्याम के मन्दिर और एकलिंगजी के मन्दिर में एवं विश्वरूप की प्रतिमा उदयपुर संग्राहालय में है। विष्णु के चौबीस रूपों की कुछ प्रतिमाएं और गौरी प्रतिमाएं उदयपुर संग्रहालय में विद्यमान है।[२]

इन इन ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि मंडन कई शास्त्रों का ज्ञाता था। वह ज्योतिष का पंडित था। उसने अपने ग्रन्थों में इनका सविस्तार वर्णन दिया है। प्रासाद मंडन में प्रतिष्ठा मुहूर्त आदि का वर्णन है। राजवल्लभ में ग्यारह से चौदह अध्यायों में इसका सविस्तार वर्णन मिलता है। विभिन्न नक्षत्रों, राशियों के अनुसार आय-व्यय का विचार करना, किस किस तिथि को कौन सा कार्य करना शुभ है और कौन कौन सा कार्य अशुभ है, इसका अधिक वर्णन है। १३ वें अध्याय में बच्चे के सीमान्त अन्नप्राशन कर्णवेध के लिए शुभाशुभ तिथि एवं नक्षत्र का वर्णन है। किस तिथि को क्षौर कर्म कराया जावे व किस तिथि को नये वस्त्र, चूड़ा, आभूषण आदि पहने जावे आदि का वर्णन किया गया है।

दिशा साधने का उसको पूरा ज्ञान था। रात्रि और दिन में दिशा साधन का ध्रुव और धूप के आधार पर करने का उसने उल्लेख किया है। गणित का और विशेष तौर पर ज्यामिति का उसका ज्ञान उल्लेखनीय था। भूमि का नाम एवं क्षेत्रफल निकालने का कई स्थलों पर उल्लेख है। क्षेत्रफल निकालने में वृत मंडप, गोलस्तंभ, गोलदेवालय आदि का वर्णन दिया हुआ है। राजवल्लभ और प्रासाद मंडन में नाप का उल्लेख कई स्थलों पर आता है।

श्री उपेन्द्र, मोहनदेव शर्मा ने मंडन पर दक्षिणी भारतीय और विष्णु धर्मोत्तर का अत्यधिक प्रभाव माना है। उनका अपना दृष्टि कोण है, किन्तु अपराजित पृच्छा

---

१. शोधपत्रिका वर्ष २ अंक २ पृ.७१-७२।

२. शोथपत्रिका भाग २ अंक ३ पृ.१से १२।
शोधपत्रिका वर्ष ९ अंक १ पृ.८ से १९।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

का अधिक प्रभाव है। विभिन्न मूर्तियों का वर्णन इसके मिलने पर बहुत अधिक साम्य दिखलाई देता है। विष्णु की प्रतिमाओं में अनन्त विश्वरूप, त्रैलोक्य मोहन, वैकुण्ठ आदि की प्रतिमाओं को चौबीस रूपों की प्रतिमाओं आदि इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यत्र तत्र मूलश्लोकों की ही प्रतिलिपि मालूम होती है।[१]

रूपावतार

सूत्रघार मंडन ने मूर्तिकला—शास्त्र पर 'रूपावतार' नामक ग्रन्थ की जो रचना की है, वह मूर्तिकला के विषय पर विस्तार से प्रकाश डालता है। ग्रन्थकार मूर्तिनिर्माण में व्यवहृत विभिन्न उपकरणों का उल्लेख करता है। ग्रन्थ में विभिन्न मूर्तियों के अंग संगठन के विषय में कुछ सिद्धान्त दिये गऐ हैं।

अधिकारों के नाम इस प्रकार हैं:—

(१) शिलापरीक्षाधिकार:

(२) प्रतिमातालनिर्णयाधिकार:

(३) प्रतिमापदस्थानाधिकार:

(४) ब्रह्मसूर्यनवग्रहदशदिक्पालाधिकार:

(५) विष्णुशालग्रामभेदाधिकार:

(६) रुद्रमूर्ति लिंगाधिकार:

(७) जिनमूर्तिचतुर्विंशतियक्षयक्षिण्यधिकार:

(८) अष्टम अधिकार अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है, अत: पुष्पिका के अभाव में, साधिकार रूप से नहीं कहा जा सकता है कि इसका नाम क्या था ? तथापि अधिकार में वर्णित विषय का गम्भीर अवलोकन करने से यह माना जा सकता है कि सम्भवत: वह 'नवदुर्गागणपतिकार्तिकेयाधिकार:' हो। ग्रंथकर्ता ने इसमें विशेषत: दुर्गा, गणेश, तथा कार्तिकेय की मूर्ति रचना का ही वर्णन किया है। ग्रन्थ के अपूर्ण मिलने से आठवां अध्याय अन्तिम है, यह कहना कठिन है।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में रचयिता ने देवताओं के शिल्पकार विश्वकर्मा की स्तुति की है।[२]

---

१. म.कु.पृ.२५८—२५९,रा.वा.सोमानी।

२. आदौ य: सूत्रधारम्त्रिभुवनरचना सूत्रणेडलक्ष (क्षय) रूपे

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथम अधिकार में सर्वप्रथम लेखक ने मूर्ति निर्माण में व्यवहृत जिन विभिन्न उपकरणों का उल्लेख किया है वे हैं:—धातु, रत्न, पत्थर, लकड़ी और रंग (धातुरत्नशिलाकाष्ठचित्रलेपसमुद्भवम्)। इसके पश्चात् विभिन्न प्रकार के पत्थरों के पहचानने के कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख है। इन पत्थरों में कुछ पुंशिला कुछ स्त्रिशिला और अन्य षण्डशिला कहे गये हैं। लेखक ने आगे चलकर यह बतलाने का प्रयास किया है कि मूर्तिरचना देवप्रासाद के तोरण द्वार के अनुपात से हो, और इस विषय की होतो उससे क्या लाभ और हानि होती है ? इसका भी उल्लेख किया गया है।

द्वितीय अधिकार में मूर्ति की ऊंचाई का विवेचन है, और यह भी बतलाया गया है कि उसमें विभिन्न अंगो की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई उसके अनुपात से होनी चाहिए।

तृतीय में प्रतिमा के पादपीठ के स्वरूप का विवेचन है तथा किस किस देव विशेष का मुख किस किस दिशा विशेष में होना चाहिए, यह भी बताया गया है।[१]

चतुर्थ अधिकार में ब्रह्मा, नवग्रह, दश दिक्पाल आदि की मूर्तियों की रचना का विवेचन है। उनके द्वारा घृत अस्त्रशस्त्रादि विशेष, उनके वाहन, तथा उनकी मुखमुद्रा एवं अगंभंगिमा का विस्तृत उल्लेख है।

पंचम में उसी भांति विष्णु, उनके रामनृसिंहादि अन्य अवतार तथा शालिग्राम की मूर्ति-रचना का विवेचन है।

षष्ठ अधिकार में शिव के विभिन्न स्वरूप तथा उनके लिंग की रचना का उल्लेख है। इसी में सम्मिलित मूर्तियों का भी उल्लेख है जिनमें कोई दो देवताओं के स्वरूपों को मिश्रित कर दिया गया है। जैसे अर्धनारीश्वर, कृष्ण-शंकर, कृष्ण

यैनेदं देवदैत्योरगधरणिधरं पर्वताकाशरूपम् ॥
सृष्टं चित्रं विचित्रं जगदिति सकलं जन्तुवृक्षादि सर्वं
वन्दन्योऽसौ सृष्टिकर्ता सुरदनुजनरैः सर्वविद्याधरादयैः ॥ १ ॥

१. 'नगराशा भमुखा(:) श्रेष्ठा (१) मध्येब्रह्म (?) च देवताः।
शिवोब्रह्माजिवो विष्णुः सर्वशाभिमुखाः शुभाः।
गणेशो भैरव श्चण्डी नकुलाशो ग्रहस्तथा।
भूतादया धनदा दक्षिणास्याः शुभाः स्मृताः।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्तिकेय । इस प्रकार की मिश्रित मूर्ति रचना से सम्बन्धित पद्य को उद्धृत करना असंगत न होगा ।[१]

इसी अधिकार के लिंगरचना प्रकरण में स्फटिक, दारु, रत्नविशेष, आदि के द्वारा बने शिवलिंगों का भी विवेचन है ।

सप्तम में जिन, यक्ष एवं यक्षिणियों की मूर्तियों का उल्लेख है ।

अष्टम में गौरी, नवदुर्गा गणेश आदि की मूर्तिरचना का विवेचन है ।

इससे यह स्पष्ट है कि ग्रन्थ में विभिन्न देवों के शरीर का ही वर्णन किया गया है, मूर्ति रचना परक कुछ निश्चित सिद्धान्त तात्विक शास्त्रीय रूप से नहीं दिये गये हैं । तथापि प्रस्तुत ग्रन्थ मूर्तिकला एवं भारत में उसके विकास पर एक प्रकाश डालता है और उसी कारण इसका भारतीय कला के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान मानना चाहिए । साथ ही यह ग्रन्थ इसी विषय पर रचित अन्य ग्रन्थों की रचना परम्परा की ओर भी संकेत करना है, (यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ में इस विषय के किन्हीं प्राचीन आचार्य अथवा ग्रन्थकारों का उल्लेख नहीं) जो प्रस्तुत ग्रन्थ से प्राचीनतर होंगे, और यदि उनको अन्धकार के गर्भ से निकाल लिया जाय तो भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में महती अभिवृद्धि करेंगे ।

प्रस्तुत ग्रन्थ रचयिता के अनुसार 'वस्तुशास्त्र' विषयक है, जैसा कि पुष्पिका में लिखा गया है—'विरचिते वास्तुशास्त्रे रूपावतारे'। पाश्चात्य मतानुसार वास्तुकला और मूर्तिकला दोनों भिन्न भिन्न कलाएं मानी गई है, किन्तु सम्भव है भारत में दोनों के लिए 'वास्तु' का ही प्रयोग किया जाता हो । मूर्तिकला से सम्बन्धित होने के कारण ग्रन्थ के विषय में 'वास्तुशास्त्र' के स्थान पर 'मूर्तिकला शास्त्र' शब्द का प्रयोग किया गया है ।[२]

---

१. 'कृष्णशंकर ततो वक्षे[१] कृष्णाद्वैत तु संयुतम् ।
कृष्णाद्वै मुकुटं कुर्याज्जटाभारं च दक्षिणे ॥
कुण्डलं दक्षिणे भागे वामे मकरकुण्डलम् ।
अक्षमालां त्रिशूलं चक्रं वैशसमेवच ॥'(४५-४६)

(१) प्रथम चरण में नौ अक्षरों के कारण छन्दोभंग है ।

२. शो. प.—भा. २, अं. १,४८-५१ भोलाशंकर व्यास

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सूत्रधार मण्डन कृत रूपावतार और रूपमंडन ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में वास्तुविद्या पर हैं। एक प्राचीन भवन निर्माता के वंशज के अधिकार में ये देखे गये है, जिसका नाम चम्पालाल है। इसके पास एक ताम्रपत्र जिसमें यह बताया गया हैं कि मण्डन को मोकलान ने गुजरात से विशेष रूप से बुलवाया था, क्यों कि मेवाड़ दरबार में उस समय कोई विशिष्ट स्थापत्य कलाविज्ञ नहीं था और उसे एक गांव भेट रूप में दिया गया। इस ताम्रपत्र का समय १४६२ है। मोकलान वही मोकल है, जिसने १२९८ ई. में अपने भाई को गद्दी से उतार दिया था। यह कहा जाता है कि मण्डन ने कुम्भलगढ़ और उसके भाई नाथा ने चित्रकूट का कुछ अंश बनाया था।[१]

वास्तुमंजरी

सूत्रधार नाथाकृत हैं। यह क्षेत्र का पुत्र और मण्डन का भाई था।

उद्धारधोरणी, कलानिधी-द्वारदीपिका

सूत्रघार मण्डन के पुत्र गोविन्द ने इन तीनों ग्रन्थ की रचना की और भण्डारकर ने 'राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज' नामक एक विशिष्ट विवरण में उपर्युक्त ग्रन्थों का उल्लेखमात्र दिया है।[२]

कामराज रतिसार शतक

यह शतक राजस्थान प्रा. वि. प्र. उदयपुर के ग्रन्थ सं. १७४२-४८ के गुटके में पत्र सं. १४५ पर लिखा हुआ है, जिसमें कुल श्लोक बत्तीस ही हैं। कदाचित् अन्य श्लोक लुप्त या विनष्ट हो गये हैं। प्रथम श्लोक में 'करेण नीविं' एकलिंग माहात्म्य में जो श्लोक है, लिखकर पार्वती का स्मरण कर मंगलपाठ किया गया है।

श्लोक सं. ६ से १५ तक नायक के लक्षण एवं भेदों को बतलाया गया है। इसके अनन्तर ३१ वें श्लोक तक नायिका लक्षण एवं भेदों का विवेचन किया

---

१. राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज के विषय में एक विशिष्ट विवरणी। श्री धररामकृष्ण भण्डार, प्रकाशन—राजस्थान प्रा. वि. प्र. जोधपुर (राज) ग्रन्थांक—३१ पृ. ४२,४३

२. राजस्थान में सं. सा. की खोज—ग्रथांक ३१, पृ. ४२-५३ श्री धर रामकृष्ण भण्डार।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है ।[१] श्री अगरचन्द नाहटा की मान्यतानुसार अहमदाबाद में मुनि पुण्य विजय जी के पास विद्यमान इस ग्रन्थ में सात अंग हैं । आरम्भ में गणपति, वागीश्वरी, और कामदेव की स्तुति कर मंगलाचरण किया गया है । प्रत्येक अंग में संक्षिप्त प्रशस्ति में कुंभा के विशेषण के रूप में विरुद भी दिये हैं । प्रथम अंग का नाम कामशास्त्रोत्पत्ति तत्पारंपर्य प्रयोजन राजवंश वर्णन, दूसरा अंग का नाम पद्मन्यादि जात्यादि वर्णन, तीसरा अंग—प्रीत्यादिवर्णन, चतुर्थ अंग- सात्वादि वर्णन आदि नामकरण हैं ।

एक अपूर्ण प्रति बीकारनेर के 'अनूप संस्कृत पुस्तकाल' में भी है । यह ग्रन्थ विजयादशमी को पूर्ण हुआ था । इसका रचना स्थल कलशमेरु' अर्थात् कुंभलगढ़ है । ग्रन्थ के प्रथम अंग के हाशिये में प्रति लेखक द्वारा 'श्री हीरानन्द सूरि दत्तोपदेशतः' लिखा मिलता है । हो सकता है, हीरानन्द कुम्भा का गुरु रहा हो और उसने इस ग्रन्थ के निर्माण में सहयता दी हो । बीकानेर वाली ग्रन्थ की प्रति संक्षिप्त दो पत्र में ही है । हमीर से कुंभा तक की वंशावली दी गई है । श्रीपुण्यविजय वाली प्रति पत्रांक ९३ से १०० तक लिखी हुई है । कुम्भलगढ़ निर्माण का वर्णन है । १८ वें श्लोक में संगीतराज का कर्ता और २१ वें में नाटकराज का प्रणेता कामशास्त्र विशारद विरुद कुम्भा के लिए वर्णित है ।[२]

---

१. वात्स्यायनादि तन्त्रेभ्यः सारमुद्धृत्य भूपतिः,
कुम्भकर्णो विनिर्माति कामराजरतेशतम् ॥ २ ॥
कामराजरतेः सारं यो नायकः पठेत्,
प्रौढ़ांगनानां सप्राण समो भवेत् ॥ ३ ॥
असिद्धाया सुखं सिद्धिः सिद्धायाश्चातुरजनं ।
रक्तायाश्चरतिसम्यग्कामतन्त्रप्रयोजनम् ॥ ४ ॥
युवा सुवेषः सुमुखो गाथा कामकथा प्रियः ।
त्रिभागा लोकने दक्षो विनयीस्त्रीषु वल्लभः ॥ ५ ॥
गीते वाद्ये तथा नृत्ये रस शास्त्रे विचक्षणः ।
कामं शास्त्राधिकारिस्थाच्चतुरः स सुनागरः
नराणां जातयः तिस्त्रः शशकाश्व वृषाह्वया,
तेषांलिंगप्रमाणं तु षण्णवद्वादशागुंलम् ॥ ७ ॥

२. शो.प वर्ष १७ अंक, अगरचन्द नाहटा ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्री महाराणा प्रतापसिंह

राज्यकाल (१६२८ से १६५३)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विश्ववल्लभ

मथुरा के चक्रपाणि मिश्र द्वारा इसकी रचना की गई ।[१] यह ग्रन्थ वृक्षायुर्वेद विषयक है, जिसमें पौधों की सुरक्षा किस ऋतु में किस प्रकार करना चाहिये आदि का वर्णन है । कूपों का खोदना, उद्यान लगाना आदि विषयों का विवरण है । इसकी रचना महाराणा प्रतापसिंह के आदेश से हुई है । अन्त में दिया हुआ वि. सं. १६३४ इसका रचना काल हो सकता है ।[२]

इसकी एक प्रतिलिपि लक्ष्मीनारायण के द्वारा की गई जो रा. प्रा. वि. प्र. जोधपुर ग्रन्थ सं. ५८६१ पर विद्यमान है। कुल पत्र ११ हैं। जिनका माप ११ ॥'५ ॥' है । प्रति पृष्ठ में १३ पंक्तियां और प्रतिपंक्ति में ६० अक्षर के लगभग लिखे हुए हैं । कुल श्लोक सं, ५४० है ।

ग्रन्थ के आरम्भ में भगवान् रामचन्द्र को स्मरण कर मंगलाचरण किया गया है । सर्व प्रथम जल के सम्बन्ध में और वृक्षारोपण विधा-विवरण दिया गया है ।[३] यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है ।

मुहूर्तमाला

मुहूर्तमाला के नाम से चक्रपाणि मिश्र का एक और ग्रन्थ मिलता है जो ज्योतिष विषयक है । यह ग्रन्थ सं. ५९५ पर 'राजस्थान प्रा. वि. प्र. उदयपुर में विद्यमान है । कुल पत्र सं. १४ है । यह द्वितीय विरचन (अध्याय) तक ही अपूर्णतः प्राप्त है ।[४]

---

१. जयति जगति वंश माधुराणां द्विजानां,
व भदखि विद्योडु (१) गुरुस्तत्र मिश्रः ॥
मुहूर्तमाला—चक्रपाणिमिश्र अन्तिम पं.

२. राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज
—पृ. ४२, ४३. श्रीधर राम कृष्ण भण्डारकार ।

३. श्रीराघवेंद्रांह्वि सरोजयुग्मं नत्वा गुरोरपि तथा कथयामि शाश्वत् ।
ज्ञानं जलस्याथ तदाश्रयाणां विधिंद्रुमाणामपि रोपणाद्यम् ॥ १ ॥ विश्व वल्लभ, । ।

४. राघवेन्द्रं नमस्कृत्य गुरुं भक्त्यार्थसिद्धये ।
मालामहं मुहूर्तानां कुर्वे लोकहिताय च ॥ १ ॥ मूहुर्तमाला—चक्रपाणि मिश्र

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजरत्नाकर

'राजरत्नाकर' रत्न परीक्षा विषयक ग्रन्थ ढुंढिराज के द्वारा राणा राजसिंह (प्र.) के राज्यकाल में राजपुरोहित गरीबदास की आज्ञा से लिखा गया है। प्रति 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर' में ग्रन्थ सं. ३८३५ पर विद्यमान है। जिसमें कुल पत्र संख्या ६३ हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ में कहीं भी श्लोक संख्या नहीं दी गई है। मंगलाचरण में राणा राजसिंह का उल्लेख किया गया है। भट्टकुल में उत्पन्न ढुंढ़िराज के पिता का नाम वीरेश्वर और पितामह पं. लक्ष्मण था। रत्नों का वर्ण, उनकी जाति का उल्लेख 'रत्नदीपिका' के आधार पर किया गाया है।[१] इसकी एक प्रति रा. प्र. वि.प्र. उदयपुर में भी है।

रुक्मिणी विवाह कौतुक

भट्ट मोटा द्वारा विरचित 'रुक्मिणी विवाह कौतुकम्' नामक ग्रन्थ 'राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, उदयपुर' में ग्रन्थांक ८५१ पर सुरक्षित है। इसमें कुल पत्र सं. १६ हैं। विषयवस्तु नाटक की प्रणाली पर कृष्ण रुक्मिणी के विवाह विषयक है। भट्टमोटा के पिता का नाम श्री कमलाकांत सूरि लिखा मिलता है। प्रति में वि. सं. १८२० श्रावण सुदि बारस शनिवार लिखने का काल दिया गया है। यह दशोरा ज्ञाति के मित्र सीताराम द्वारा लिखा गया है। कुल श्लोक सं. २५१ में लिखा हुआ है।[२]

---

१. ख्यातः सर्वमहीपदपऊ (ह) तड् निर्माणधाराधंरौ,
दानाम्भोधरवारिवर्द्धित बृहत् कीर्तिद्रुमालंकृतः।
गौरीकान्तपदारयुगलं भ्राम्यद्विरेफोत्तमः,
शूरः श्रीनृपराजसिंह मघवा विद्वज्जनानंदनः॥
आसीत् भट्टकुले हि लक्ष्मणबुधो मीमांसकालंकृति-
स्तत् सुनुः किल सर्वशास्त्र निपुणो वीरेश्वराय धृती॥
तज्जातः किंल ढुंढिराज विबुधः श्रीमद्गरीबाज्ञया।
राज्ञांधारण योग्यरत्न विषये ब्रूतेमितं साम्प्रतम्॥
गरीबदासाख्य पुरोहिताज्ञया श्रीराजरत्नाकर एष तन्यते।
रत्नाकरस्तस्य करोतु भव्यं श्रीराजसिंहस्यचिरं प्रसन्नः॥
तत्ररत्नाति धारयेत् कोशे शुद्धानि गुणवंति च।
संभवंति यथा जातिगुणास्तेषां परीक्ष्येदिति रत्न दीपिका॥ राजरत्नाकर—ढुंढ़राज।

२. इति श्रीकमलाकांतसूरि सूनुभटमोट्टा विरचितं रुक्मिणी विवाह कौतुकं नाम नाटकं परिपूर्तिमगात्। शुभं भवतु। संवत् १८२० [illegible] श्रवण सुदि १२ शनिवासरे लिखितं

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने उदयपुर के राणा के यश की कामना की है।

शब्दार्थचिन्तामणिकोश

महाराणा श्री सज्जनसिंह के आश्रय में रहते हुए 'सुखानन्दनाथ' के द्वारा 'शब्दार्थचिन्तामणि' नामक बृहद् कोश की रचना की गई। यह कोश चार भागों में विभक्त है। 'अ' से लेकर 'इ' पर्यन्त अकारादि क्रम से बनाया गया है। शब्दों की व्युत्पत्ति के साथ अप्रसिद्ध शब्दों के प्रयोग शास्त्रों में कहां कहां हुए हैं? उनके संदर्भ भी दिये गये हैं। अन्त में 'स्वराजवंश वर्णन' नाम से प्रशस्ति के रूप में कुल ३३३ श्लोकों में वंशीधर द्वारा मेवाड़ का इतिवृत्त अंकित किया गया है।

चार भागों में से प्रथम दो भाग वि. सं. १९२१ मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी गुरुवार को आगरा में रामप्रसाद के निरीक्षण में घासीराम कन्हैयालाल के संस्कृत यन्त्रालय से प्रकाशित हुए। इसके पश्चात् अर्थाभाव के कारण आगे का कार्य न हो सका, इसलिए उत्तरार्ध के दो भाग महाराणा सज्जनसिंह ने अनुग्रह कर अपने सज्जन यंत्रालय उदयपुर में छपवाने का आदेश देने के लिए मंत्री श्यामलदास को कहा, तदनुसार पं. बंशीधर वाजपेयी के प्रबन्ध में वि. सं. १९४० में आरम्भ कर वि. सं. १९४२ श्रावण सप्तमी को छपकर महाराणा फतहसिंह के शासन काल में पूर्ण हो गया। सुखानन्द ने अपने गुरु 'हरिहरानन्द भारती' का नामोल्लेख किया है।

---

(१) दसोरा ज्ञाती मीस्त्रसीताराम ॥ श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥ श्री ॥ श्लोक संख्या २५१
इति ललतिनिवोद्गीत कीर्तेर्मुरारेस्त्रिभुवन जयलक्ष्मीरुक्मिणी रत्नलाभः।
समजनि समकालं यद्यथा तत्तथात्राप्युदयपुरनरेंद्र श्री यशोवृद्धिरस्तु ॥ १ ॥
श्री रुक्मिणी हरणकौतुककीर्तनेन श्रीसुंदरोदयपुरेन्द्रभूदेकृतेन
मोटाभिधोपि कविरस्तु परः कृतार्थः संतु प्रसन्नमनसः सुमनः समाजाः ॥ २ ॥
आनंदाय समस्तमस्तु जगतां वृंदावनेन्दोः कला,
कौशल्यंकृत कंसवंशतिमिरध्वसं प्रशंस्यात्मनः।
यस्य स्फारकरप्रसारणविधेः संसारतापत्रयी
नाशश्चाशु समस्तसज्जनमनो भोज प्रकाशश्चिरम् ॥ १ ॥
स जयति नंद यशोदानंद यशोदायकः कृष्णः। वृंदारण्यन विहारी योंबारहारी तु नारीणां नाद्यंते सूत्रधारः। भो भो वयस्याः पारिषद्यो महाभोगींद्र भोगो परिभ्राजमानभूमण्डलमंडनीभूतस्य जगदुभ्दव भावनाभाव भवितात्मनो भगवतः श्री कृष्ण देवस्य कथा कुतूहलेन श्रीमतांमानसान्यानंदयितुमिच्छामस्तदेकमनसो महाभागाः।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि. सं. १९१७ माधकृष्णा सप्तमी शनिवार को सांगोपाग रूप से सम्पूर्ण कर दिया।[१]

---

१. शम्भुं ज्ञानावगम्यं निखिलनिधिकरं सुज्ञवंशीधरोऽयं,
नत्वा विख्यात कीर्तेर्नृपति कुलमणेस्सज्जनक्ष्माधिपस्य।
तत् सूनोः कीर्तिमूर्तेः फतहपदपरः सिंहशब्दोऽस्य नाम्नि,
वंश श्रेणीं विशालां रचयति सचिव श्यामलस्यातिदेशात् ॥ १ ॥
श्रीमच्चिद्हृदयात्मकं हरिहरानन्दादिनाथं निजं,
स्मारं स्मारमजस्त्रमेकमतुलं संसारपाशच्छिदम्।
नत्वा तच्चरणाम्बुजात्म सुखपूर्णानंदनाथो मुदे ॥
साधूनां सुधियां चकार सुखदं शब्दार्थचिन्तामणिम्।
अत्यष्टकं धरामित वर्षे चैवांगिरो नाम्नि।
माघासित सप्तम्यां शनौ समाप्तिं गतो ग्रन्थः ॥
श्रीसुखानन्दनाथस्य कृतिरेष जगद्धिता।
प्रीत्ये भूयाभ्दगवतो भवानी विश्वनाथयोः ॥
इति श्री हरिहरानन्दनाथ भारती शिष्य ब्राह्मावधूत श्री सुखानन्दनाथ संगृहीतः शब्दार्थचिन्तामणिः समाप्तिः ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षष्ठ अध्याय

प्रशस्ति साहित्य (शिलालेख)

(वि.सं. ५४७ से २००० पर्यन्त)

अभिलेखों का महत्त्व

प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त किसी न किसी भाषा में प्रशस्ति साहित्य अभिलेखों के रूप में लिखकर शिलोत्कीर्ण होता रहा है। पुरातन इतिहास को जानने के लिए शिलाओं पर उत्कीर्ण प्रशस्ति साहित्य बहुधा मन्दिरों, मठों, वापिओं, कन्दराओं, स्तूपों और स्तम्बों पर मिलते रहे हैं। ये संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा देशी भाषाओं में गद्य पद्य दोनों में लिखे गये हैं।

बाह्य भौगोलिक ज्ञान

बाह्य भौगोलिक परिज्ञान की दृष्टि से उनका परम महत्त्व है। उत्कीर्ण अभिलेखों से बाह्य पक्ष भौगोलिक सीमा, इनमें निर्दिष्ट नगरों के नामों का ज्ञान, विजय यात्राओं एवं अभियान मार्गों का परिचय प्राप्त होता है। साहित्यिक एवं यात्रा सम्बन्धी विवरणों से मेवाड़ की भौगोलिक स्थिति का दिग्दर्शन मिलता है। कुंभा, सांगा, प्रताप और राजसिंह आदि के द्वारा विजित प्रदेशों के विवरण का ज्ञान होता है। शिलालेखों के अध्ययन के माध्यम से तत्कालीन राजा की राजनीतिक स्थिति और सम्बन्धित अभिलेख की उपलब्धि का स्थान उस राज्य की सीमा का निर्देश करता है। आर्यावर्त के प्राचीन राजा महाराजाओं के विजय-प्रयाण का मार्ग, प्राचीनकाल के यातायात एवं व्यापारिक सम्बन्धों का इतिवृत्त प्रस्तुत किया जाता है। इनके अध्ययन से स्थल एवं जल मार्ग का संकेत मिलता है। जैसे कुंभा और राजसिंह के द्वारा मांडव्य पुर, सपादलक्ष,[१] शाकंभरी[२] डीडवाणा, नराणा, मालपुरा

---

१. सपादलक्ष-नागौर जिला के आसपास का भूभाग 'सपादलक्ष' कहलाता था।

२. शाकंभरी-संस्कृत में वर्तमान 'सांभर' को शाकंभरी कहा है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अंग, बंग, कलिंगादि प्रदेशों तक अपनी विजय वैजयन्ती फहराई गई। तीर्थ-यात्रा एवं दानों के प्रसंग में किसी शासक विशेष के द्वारा परिभ्रमण किया जाता है, उसी तरह राणा क्षेत्रसिंह, मोकलसिंह और जगत्सिंह के द्वारा प्रयाग, गया और ओंकारेश्वर की यात्राओं का उल्लेख तथा नर्मदा के तट पर जो तुलादान किया गया, उस भू भाग का ज्ञान होता है।

इसी तरह राजसिंह के द्वारा राजसमुद्र जैसे महासागर का निर्माण और उसका सम्पूर्ण इतिहास शिलापट्टों पर उत्कीर्ण करवाना, वापी कूप जलाशयों को बनवाना, जिनमें से त्रिमुखी नामक वापी, जनासागर (बड़ी का तालाब) आदि प्रमुख हैं। उनसे सम्बन्धित प्रशस्ति अभिलेख उत्कीर्ण हैं, जो उस समय के भौगोलिक विवरण को स्पष्ट करते हैं। धार्मिक एवं राजनीतिक प्रयोजन से राजदूत एक दूसरे राज्य में भेजे जाते रहे। राजप्रशस्ति में लिखित विवरण के अनुसार राणा प्रताप एवं राजसिंह के समय में मुगल बादशाहों के पास राजदूत जाते रहे, जिनका वृत्त लिखते समय विभिन्न प्रदेशों के नामों को अंकित किया गया है तथा इतर प्राप्त प्रमाणों के साक्ष्य के आधार पर भौगोलिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। इस तरह विजय यात्रा, धार्मिक यात्रा के समय में बीच में आये हुए प्रदेश, पर्वत, नदियां आदि का ज्ञान प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष किसी न किसी रूप में हमें भौगोलिक ज्ञान का परिचय मिलता है अतः ये अभिलेख भौगोलिक ज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्त्व रखते हैं।

आन्तरिक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की दृष्टिः

सर्व विदित है कि इतिहास-प्रणयन में इन प्राचीन शिलालेखों से पर्याप्त मात्रा में उपादेय तत्वों की उपलब्धियां हुई हैं। अभिलेखों के मूल्यांकन का जहां तक प्रश्न है कि ये शिलालेख, (प्रशस्ति-साहित्य) कहां तक योग देते रहे हैं? तो वस्तुतः इनके अतिशयोक्ति पूर्ण साहित्यिक अंश को छोड़ कर ऐतिहासिक प्रमाणों की प्राप्ति में ऐतिह्य पर विचार किया जाए तो अवश्य ही उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है। मेवाड़ के इतिहास लेखन में प्रायः सभी इतिहासकारों ने यहां के शिलालेखों से पर्याप्त मात्रा में प्रामाणिक सामग्री ग्रहण की है, जो स्पष्ट है ही। इतिहास लिखने के लिए पुरातत्व उपकरणों में इन अभिलेखों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्य सब के लिए बोधगम्य नहीं है, अतः पुरातत्व विषयों की सहायता से इतिहास की रचना होती है। इतिहास का लेखक केवल लिखित साधनों पर जहां अवलम्बित रहता है, वहां पुरातत्वीय सामग्री सहस्रों वर्षों के प्राचीन खण्डहरों से

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राचीनतम इतिहास को हमारे आंखों के समक्ष उपस्थित कर देती है। इसके साक्ष्य के लिए मेवाड़ के प्राचीनतम इतिहास के ज्ञान के लिए नगरी से उपलब्ध शिलालेख के प्रमाण हमारे सम्मुख हैं। इसके पश्चात् वि. सं. ७०३ शीलादित्य कालीन सामोली का १०१० राजा अल्लट के समय का एवं १०२८, १०३४ के क्रमश: नरवाहन और शक्तिकुमार के शासनकाल के ये प्राचीन अभिलेख तत्कालीन सामाजिक,धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था एवं मूल्यों की ओर संकेत देते हैं। उनके शासन की राजनीतिज्ञता, धार्मिक सहिष्णुता, प्रजावत्सलता एवं स्वयं के प्रताप, पौरुष का पूर्ण चित्र उपस्थित करते हैं। यदि इन अभिलेखों के लिखने की प्रथा नहीं होती तो बड़े बड़े पराक्रमी राजाओं, विख्यात साधु संत महापुरुषों के स्वरूप का अद्यावधि पर्यन्त चित्रण नहीं हो पाता और न ही समाज उनके आदर्शों एवं मर्यादाओं का अनुकरण ही कर पाता। ये अभिलेख मेवाड़ के लिए स्पष्ट प्रमाण हैं कि यहां के सूर्यवंशी राणा नरेशों की मान-मर्यादा प्रारम्भ से जो चली आई है, उसका अन्त तक निर्वाह हुआ है। शौर्य गाथाओं से परिपूर्ण मेवाड़ के अभिलेखों में वंशानुगत युद्ध-भावना का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। ये शिलालेख जैसे राजप्रशस्ति में तो ब्रह्मा से लेकर तथा इतर प्रशस्तियों में मेवाड़ के मूल पुरुष गुहिल से लेकर राजवंश की वंशावली प्रस्तुत करते हैं। उनसे प्रत्येक राजा के शासनकालीन राज्य व्यवस्था का पर्याप्त परिचय मिलता है। शासन पद्धति में राज्याधिकारियों आदि का आवश्यक इतिवृत्त अवश्य ही दिया जाता है, जिसमें राजा, राजकुमार, प्रधानामात्य, सेनापति, बलाधिकृत, दण्ड-नायक, सामन्त, सान्धिविग्रहिक आदि का उल्लेख इन अभिलेखों में है, जिसका ज्ञान प्राप्त होता है। प्रजातान्त्रिक पद्धति का दिग्दर्शन मेवाड़ के वि.सं. ७०३ के सामोली शिलालेख में दृष्टिगोचर होता है। उद्योगपति जेन्तक ने वहां के निवासियों के लिए आगार स्थापित किया, जो लोक-जीवन के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। इस लेख से तत्कालीन जन-जीवन साहित्य, कला, उद्योगादि का सम्यक् प्रभाव दृष्टिगत होता है। राजतन्त्र के दृष्टिकोण से अभिलेखों द्वारा राजा के प्रजाहित चिन्तन तथा आदर्श राज्य शासन व्यवस्थाओं की चर्चाओं का परिज्ञान होता है। राजकर के प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। सामाजिक उत्सव, शिक्षण-संस्था, धार्मिक स्थिति, सहिष्णुता आदि का तिथि संवत् के साथ पूर्ण वृत्त इसमें मिलता है। इस प्रकार इन अभिलेखों से पर्याप्त मात्रा में ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है एवं साथ ही साहित्यिक ज्ञान की ओर उत्तरोतर विकास होता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस प्रकार साहित्यिक सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समय समय पर रचित मेवाड़ का यह प्रशस्ति साहित्य विपुल मात्रा में शिलोत्कीर्ण हुआ है, जिसका अधिकांश भाग खण्डित एवं विनष्ट हो गया, जो अभी तक अलभ्य ही है। उपर्युक्त दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण स्रोत होने के साथ साथ यह मेवाड़ के संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि है। इस अध्याय में जो शिलालेख दिये जा रहे हैं। वे संस्कृत भाषा में रचित साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हीं को लिया गया है, अन्यथा दो चार पक्तियों मे लिखित प्रस्तर खण्ड अनेक मिलते हैं, जिनकी पूरी तरह से विषय वस्तु आदि स्पष्ट मालूम नहीं होती हैं, उनकी परिगणना मात्र विशेष उपयोगी दृष्टिगत नहीं होती। कविराजा श्यामलदास, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, रामनारायण दूगड़, आदि अनेक विद्वान् इतिहासकारों द्वारा मेवाड़ पर लिखे गये इतिहास के लिए इन्हीं शिलालेखों प्रशस्ति-साहित्य का अवलम्बन लिया गया और आशान्वित हैं कि ये आगे भी सहायक सिद्ध होंगे।

वि. सं. ५४७ छोटी सादड़ी के भंवरमाता के मन्दिर का शिलालेख

इस प्रशस्ति का लेखक 'ब्रह्मसोम' था। इसके पिता का नाम मित्रसोम था। सत्रह पक्तियों के लेख में प्रथम दो पद्यों में देवी का स्मरण कर मंगलाचरण किया गया है। पश्चात् गौर वंशीय क्षत्रियों के कुल में 'पुण्यशोम' नाम का राजा हुआ, जिसका पुत्र 'राज्यवर्धन' हुआ। इसके बाद राष्ट्र और यशोगुप्त का वर्णन है। देवी के मन्दिर बनाने का उल्लेख किया गया है। इस लेख में वर्णित राजा औलिकर वंश का था। अक्षरों के घिस जाने से अस्पष्ट सा हो गया है।

लेख की भाषा संस्कृत और लिपि कुटिल है। यह एपिग्राफिया इण्डिका भाग ३० में प्रकाशित हुआ है।

इस समय यह प्रताप संग्रहालय उदयपुर में सुरक्षित है।

वि. सं. ७०३, सामोली का शिलालेख

मेवाड़ के गुहिल वंशी शासक शीलादित्य के समय का सामोली गांव में मिलने के कारण यह सामोली शिलालेख कहा गया है। इस समय यह पुरातत्व-संग्रहालय-अजमेर में सुरक्षित है।

यह शिलालेख गुहिलवंश का सबसे प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण है। तत्कालीन सामाजिक जीवन, साहित्य, कला, संस्कृति एवं औद्योगिक पक्षों पर अच्छा प्रकाश डालता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेख की प्रथम चार पक्तियों में महिषासुरमर्दिनी चण्डिका की स्तुति तथा सिंहासनारूढ़ रूप में उसके देदीप्यमान नूपुरों, अग्नि ज्वाला सदृश सिंह के गर्दन के बालों, त्रिशूलद्वारा विदीर्ण महिषासुर के वक्षःस्थल से प्रवाहित रक्त आदि का वर्णन किया गया है । इसमें आगे देव, द्विज, गुरु प्रजा का आनन्ददायक, शत्रुसंहर्ता राजा शीलादित्य की जयकार की गई है । पांचवी से नवीं पंक्तिपर्यन्त महाजनों के प्रमुख 'जेक' (जेन्तक) का, जिसने आरण्यक प्रदेश(जावर का समीप वर्ती) के कूपगिरि नामक स्थान में मनुष्यों की आजीविका के लिए आगार स्थापित किया, जिससे वह श्लाघा का पात्र रहा । वहां की देवी के लिए मन्दिर बनवाने और मन्दिर में विभिन्न प्रदेशों से आये हुए दर्शकों की भीड़ लगी रहती थी आदि इतिवृत्त दिया गया है । दशवीं पंक्ति में देवी की प्रतिष्ठा की गई, उसका संकेत है । आगे का वृत्तान्त अक्षरों के नष्ट हो जाने से प्रतीत नहीं होता है । संभवत: आगे का विवरण जेन्तक पंचत्व को प्राप्त हुआ, उससे सम्बन्धित हो ।

इस लेख का प्रमुख नायक जेन्तक है, जिसने जनहिताय, लोकसुखाय अरण्य प्रदेश में आगार स्थापित कर कल्याणकारी कार्य किया । अधिकांश लेख राजा महाराजाओं के प्रशस्ति गान के रूप में लिखे गये हैं, किन्तु यह लेख जेन्तक जैसे साधारण नागरिक के लिए लिखा जाना जनतन्त्रीय भावना का द्योतक है ।

लेखक ने लेख में अपना नाम नहीं दिया है । प्राकृत लौकिक शब्द 'जण' आदि का प्रयोग हुआ है । इसे डी.आर.भण्डारकर[१] रामकरण आसोपा[२] आर.आर. हलधर[३]और बलसिंह मेहता ने[४] प्रकाशित करवाया है ।

वि. सं. ७१८ 'कूंडा' ग्राम का अभिलेख

'शीलादित्य' के पश्चात् 'अपराजित' हुआ । उसके समय वि.सं. ७१८ मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी का शिलालेख है, जो नागदा के समीपवर्ती, 'कुण्डेश्वर' के मन्दिर से प्राप्त हुआ । इस समय 'प्रताप-संग्रहालय-उदयपुर' में विद्यमान है ।[५]

---

१. रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, रिपोर्ट सन् १९०८,९, इण्डियन ऐंटिक्केरी, भा.९ ।

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भा. १, सं. १९७७ ।

३. एग्राइ., सन् १९३० ।

४. अन्वेषणा, वर्ष-१, अंक२

५. संवत्सर शतेषु सप्तसु अष्टादशाधिकेषु मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी प्रतिष्ठा वासुदेवस्य नमः पुरुपोत्तमाय ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लेख की रचना दामोदर के पौत्र ब्रह्मचारी के पुत्र दामोदर ने क़ी । अजित के पौत्र और वत्स के पुत्र यशोभट्ट ने इसे शिला पर उत्कीर्ण किया ।[१]

प्रथम दो श्लोक में विष्णु का स्तवन किया गया है । पश्चात् प्रतापी राजा अपराजित ने दुष्टों का दमन किया और वह अनेक राजाओं से पूजित जगत् का आभूषण था । इस प्रकार से अपराजित के शौर्य को प्रदर्शित कर उसके सेनापति वराहसिंह का पराक्रम कार्तिकेय स्वामी के समान था । उसके पिता का नाम शिव (शिवसिंह) था । उसके पतिव्रता, शालीन, प्राणवल्लभा पत्नी यशोमती थी, जिसने विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया ।[२]

कुल बारह श्लोकों में रचित यह प्रशस्ति लम्बे समस्त पदों के होने पर भी सरस तथा प्राञ्जल भाषा में है । तृतीय चतुर्थ श्लोक में उपमा अंलकार का प्रयोग किया है । पहला, तीसरा श्लोक शार्दूलविक्रीडित, दूसरा, नवां, दशवां स्रग्धरा, चौथा और सातवां उपजाति, पांचवां द्रुतविलम्बित, छठा रथोद्धता, आठवां शिखरिणी, ग्याहरवां श्लोक अनुष्टुप् इस तरह छोटी सी रचना विविध छन्दों में चित्रित की गई है । इतिहासकार दूगड़ ने 'समाक्रान्त भुजङ्ग शत्रुः' से अनुमान लगाया है कि इनके शासनकाल में मौर्यों पर भी आक्रमण किया था । ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इस प्रशस्ति का मूल पाठ कविराजा श्यामलदास ने प्रकाशित किया है ।[३]

---

१. दामोदरस्य पौत्रेण सूनुना ब्रह्मचारिणः ।
नाम्ना दामोदरेणैव कृता काव्य विडम्बना ॥ ११ ॥
बालेनाजित पौत्रेण स्फुटा वत्सस्य सूनुना ।
यशोभटेन पूर्वेयमुत्कीर्णा विकटाक्षरा ॥ १२ ॥

२. लक्ष्मीलीलोपधानं प्रलयजलनिधिस्थायिनोगण्डशैला,
दर्पोद्धृता सुरेन्द्रद्रुमगहनवनच्छेददक्षाः कुठाराः ।
संसारापारवारि प्रसर रयसमुत्तार बद्धकुक्ष्याः,
दोर्दण्डाः पान्तु शौरेस्त्रिभुवन भवतोत्तम्भनस्तम्भभूताः ॥१२ ॥
राजा श्रीगुहिलान्वयामलपयोराशौ स्फुरदीधिति,
ध्वस्तध्वान्तसमूह दुष्ट सकल व्यालावलेपान्तकृत् ।
श्रीमानित्यपराजितः क्षितिभृतामभ्यर्चितो मूर्धभिः,
वृत्तस्वच्छतयेव कौस्तुभमणि र्ज्जातो जगद्भूषणम् ॥
शिवात्मजो खण्डितशक्तिसंपद्धुर्यः समाक्रांतः भुजंगशत्रुः ।
तेनेन्द्रवत् स्कन्द इव प्रणेता, वृतो महाराज वराहसिंहः ॥ ४ ॥

३. वी.वि.भा.१, पृ.३७७, श्यामलदास ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि.सं. ७७० का मौर्यराजा मानमोरी का लेख

यह लेख चित्तौड़ के पास मानसरोवर नामक तालाब के किनारे एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण किया हुआ था। मूल लेख तो नष्ट हो चुका, जिसका हिन्दी अनुवाद कविराजा श्यामलदास ने वीर विनोद में प्रकाशित किया है।[१]

लेख में महेश्वर भीम और भोज राजाओं का उल्लेख है। अन्त में राजा मान[२] के गुणों का उत्कर्ष बताया गया है।

'नागभट' के पुत्र 'पुष्प' ने इस लेख की रचना की। 'करूग' के पौत्र शिवादित्य ने इस लेख को उत्कीर्ण किया।

बापा रावल

बापा शब्द मेवाड़ के इतिहास में विद्वानों के लिए विवादास्पद रहा है। यह किस राजा की उपाधि थी, इस विषय पर विभिन्न इतिहासकारों ने अपने दृष्टिकोण से अलग-अलग राजाओं की उपाधि माना। यह तो निर्विवाद सिद्ध हो चुका कि बापा शब्द उपाधि सूचक है।

मेवाड़ के शिलालेखों, दानपत्रों एवं बापा की स्वर्ण-मुद्राओं पर बापा, बप्पक, वप्पक,बंप्पाक, बाप्प और बापा लिखा मिलता है।[३]

कर्नल टॉड, श्यामलदास, ओझा, दूगड़[४] सभी इतिहासकार बापा शब्द उपाधि हैं। इस पर सहमत हैं, किन्तु अपने अपने विचारों से पृथग् पथग् राजाओं को बापा उपाधि से सम्बोधित किया है।

ओझा की मान्यतानुसार (संस्कृत में 'वप्' वपनार्थक धातु से बाप् बीज का वपन कर्ता) अथवा पितृतुल्य पूजनीय माना। इस शब्द के विभिन्न रूपों का अर्थ सर्वत्र प्राचीनकाल से चला आ रहा है।

वि.सं. १०३४ रावल शक्तिकुमार के समय की आघाटपुर (आहड़) की प्रशस्ति के अनुसार मेवाड़ के राजवंश का क्रम निम्नांकित रूप से स्थिर होता है, जो अधिकांश विद्वानों में मान्य रहा:—

---

१. वही. पृ. ३७८ श्यामलदास।

२. यह वही मानमोरी था, जिसने संसार को नश्वर मानकर मानसरोवर झील का निर्माण करवाया।

३. उ.रा.इ. भा. १, प्र. ४०५,१५,४१।

४. एनल्स एण्टिक्विटीज, भा.१, पृ. १८२, ८३, टॉड, वी.वि., भा.१, पृ. २५०, श्यामलदास, उ.रा. इ. भा.१, पृ. ४०५ टिप्पणी सं. ३, ओझा, मे.इ.पृ. ३४, ३५ रा.ना.दूगड़।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१) गुहदत्त (गुहिल)	(६) अपराजित
(२) भोज	(७) मंहेन्द्र (द्वितीय)
(३) महेन्द्र(प्रथम)	(८) कालभोज
(४) नागादित्य (नाग)	(९) खुम्माण
(५) शील	(१०) मत्तक[१]

दूगड़ ने और कर्नल टॉड ने कुम्भगढ़ प्रशस्ति के अनुसार नागादित्य के पुत्र शील को बापा माना था, किन्तु वि.सं. ७१८ की प्रशस्ति उपलब्ध होने के पश्चात् श्यामलदास ने इसका खण्डन कर दिया, क्योंकि उस समय शील का पुत्र अपराजित नागदा में राज्य करता था ।[२] कविराजा श्यामलदास ने सिद्ध किया कि वि.सं. ७७० मोरी वंशोत्पन्न मानमोरी चित्तौड़ का अधिपति था तथा बापा ने वि.सं. ७९१ में उसको परास्त कर चित्तौड़ दुर्ग हस्तगत किया, इसलिए कविराजा श्यामलदास के अनुसार शील के पौत्र अपराजित के पुत्र महेन्द्र(द्वितीय) को बापा उपाधि थी । इसकी पुष्टि के लिये रायमल्ल कालीन निर्मित ग्रन्थ एकलिंग-माहात्म्य में भी बापा का पुत्र भोज और भोज का पुत्र खुम्माण दिया हुआ है, जिससे महेन्द्र (द्वितीय) की उपाधि बापा सिद्ध होती है ।[३] ओझा जी ने कविराजा श्यामलदास के उपर्युक्त मत को नहीं मानते हुए लिखा है कि कविराजा ने वि.सं. ७१८ में अपराजित को विद्यमान माना और बापा ने वि.सं.८१० में सन्यास ग्रहण किया, इन दोनों बातों को कविराजा मानते हैं, तो ऐसे स्थिति उक्त दोनों राजाओं के मध्य अनुमानत: सौ वर्ष का अन्तर आता है, जो समुचित प्रतीत नहीं होता । दूसरी बात और है कि नैणसी और बड़वा की ख्यातों में भी बापा के पुत्र का नाम खुम्भाण लिखा हुआ है, इसलिए कालभोज बापा की उपाधि से विभूषित था । एकलिंग माहात्म्य का वंशक्रम अशुद्ध एवं अपूर्ण माना । उसमें उल्लिखित भोज कालभोज न होकर गुहदत्त गुहिल का पुत्र भोज होना चाहिए । इन विचारों के अनुसार ओझा जी ने कालभोज की बापा उपाधि थी और वही बापा रावल के नाम से अभिहित हुआ, जिसे माना है ।[४]

---

१. वी.वि.भा.१,पृ.३८३ से, संग्रह, श्यामलदास ।
२. वी.वि.भा.१,पृ.२५०, श्यामलदास ।
३. वही. २५०,५१ " ।
४. उ.रा.इ.भा.१,पृ.४०९, ओझा ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

।।महारावल श्री बापाजी महेन्द्रू-राजपे. वि. सं. ७९१ सन्यास वि० सं० १८१० ।।

राज्यकाल (७९१ से ८९०)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेवाड़-संस्कृत साहित्य के काव्य ग्रन्थों, प्रशस्तियों में बापा को मानने के लिये विभिन्न राजाओं का उल्लेख है, जिनका विवेचन यथास्थान यथानुरूप किया गया है। एक दृष्टि से सारांश यह है कि:—

(अ) वि.सं. १०२८ की नाथों के मन्दिर की प्रशस्ति वि.सं. १३३० चीरवा 'गांव का लेख' और वि.सं.१५५७ का नारलाई का लेख बापा को गुहिल का पुत्र बतलाया है।

(आ) वि.सं. १३३१ चित्तौड़गढ़ का लेख, वि.सं. १३४२ आबू का और राणकपुर का वि.सं. १४९६ का अभिलेख बापा को गुहिल का पिता निर्दिष्ट किया हैं।

(इ) वि. सं. १५४५ दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में गुहिल को बापा माना है।

(ई) राजप्रशस्ति महाकाव्य में गुहिल के पुत्र भोज के लिए बापा अंकित किया है।

(उ) वि.सं. १५१७ की कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में शील को बापा स्वीकार किया है।

बापा के राज्य अधिगत करने में एक जनश्रुति 'एके-एकाणवे' अर्थात् सं. १९१ में बापा ने राज्य प्राप्त किया, यह जनश्रुति मेवाड़ में रही, जिसे ओझा और कविराजा दोनों ने इस आधार पर स्वीकार किया कि वि.सं. ७९१ जैसा कि ऊपर दिया जा चुका है, बापा ने राज्य प्राप्त किया। इसमें प्राचीन लिपि का ज्ञान नहीं रखने वाले व्यक्ति ने ७ के अंक को १ पढ़ लिया और यह जनश्रुति चल पड़ी, किन्तु यह केवल जनश्रुति ही नहीं है, प्रत्युत ' महाकाव्य राजप्रशस्ति' और एकलिंग माहात्म्य (जो प्रति ओझाजी के पास थी) उसके हाशिये पर 'ततः शशिनन्दचन्द्र सं. १९१ वर्षे' लिखा था, जिसे उन्होंने स्वीकार किया।[१] ऐसे लिखित प्रमाण के आधार पर केवल कल्पना से ७ की १ पढ़ लिया होगा, मान लेना, समुचित प्रतीत नहीं होता है।

यदि इतिहासकारों के मतानुसार मान लिया जाय कि यह व्रंश वलभी से आया, जो उस समय वलभी में गुप्त संवत् का प्रचार था, जिसका वि.सं. से ३७६ का अन्तर है। मेवाड़ में सं. १९१ में चित्तौड़ लेने का जन प्रवाद प्रचलित था। वह

१. उ.रा.इ.भा.१ पृ.४१३ ओझा, वी.वि. भा.१ पृ.२५१ श्यामलदास।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विक्रम संवत् न होकर गुप्त संवत् है । इस संवत् को विक्रम संवत् बनाने के लिए आवश्यक ३७६ वर्ष जोड़ दिये जावे तो वि.सं. ५६७ होता है । इस वि.सं. ५६७ में बापा गुहिल ने चित्तौड़गढ़ मौर्य से लिया होगा, किन्तु वह चिरकाल तक उनके अधिकार में स्थिर न रह सका और सतत आक्रमणों के फलस्वरूप पुनः मौर्यवंश के अधिकार में चला गया । अनन्तर बापा रावल कालभोज ने अपने आधिपत्य में लिया । कुछ शिलालेखों में गुहिल को बापा का पिता और कुछ में उसे बापा का पुत्र अंकित किया है, जैसा कि यह विवरण ऊपर दिया जा चुका है । इस विषय में यह स्पष्ट है कि जहां गुहिल को बापा का पिता माना है, वह दूसरे गुहिल का और जहां उसे पुत्र माना है, वहां पहले गुहिल का नाम छोड़ दिया है । इस स्थिति में यह मानना होगा कि शील से पूर्व पांच राजा नहीं हुए, अपितु सात राजा हुए, जो एकमात्र सामंजस्य के स्थापनार्थ उक्त विचार पं. गिरिधरजी व्यास शास्त्री ने दिये हैं । इसकी विशद जानकारी के लिए उनका बापा रावल नामक लेख पढ़ना चाहिए ।[१]

अन्ततो गत्वा निष्कर्ष के रूप में यही माना जा सकता है:—

(क) बापा एक उपाधि थी, जो अतिप्राचीनकाल से मेवाड़ के राजाओं के नाम के साथ लगाई जाती थी और यह परम्परा कालभोज तक चलती रही । उसने अपने पराक्रम से अन्त में चित्तौड़ को अधिगत किया, इसलिए उसके साथ अधिक विख्यात रही ।

(ख) सर्व प्रथम बापा गुहिल ने वि.सं. ५६७ (गुप्त संवत् १९१) में चित्तौड़गढ़ अधिकार में कर लिया, किन्तु उसका स्थायित्व न रह सका और अनवरत आक्रमणों के अनन्तर 'बापा काल भोज' ने वहां पूर्णाधिकार किया ।

(ग) चित्तौड़गढ़ वि.सं. ७७१ में अपने आधिपत्य में लिया, उस समय बापा रावल काल भोज की आयु पन्द्रह वर्ष की थी ।

(घ) बापा रावल काल भोज ने चालीस वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् वि.सं. ८९० में सन्यास ग्रहण कर लिया ।

बापा रावल की जटिल समस्या को लेकर विद्वान् वयोवृद्ध पं. गिरिधर जी व्यास शास्त्री ने एतद्विषयक विस्तार के साथ अपने विचार निबन्ध के रूप में

---

१. 'बापा रावल' पं. गिरिधरजी व्यास, शोध प.भा.२ १ पृ. २१, साहित्य संस्थान विद्यापीठ, उदयपुर ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशित करवाया है उसमें विभिन्न इतिहासकारों के मतों का, अलग अलग प्रशस्ति साहित्य में लिखित उल्लेखों तथा जनश्रुति आदि का समन्वय दृष्टिगत होता है जो पर्याप्त है।[१]

वि.सं. १०१० सारणेश्वर (षाण्नाथ) महादेव के मन्दिर का शिलालेख

उदयपुर के ईशान कोण में सारणेश्वर (षाण्नाथ)महादेव का मन्दिर है। उसमें राजा अल्लटकालीन यह प्रशस्ति लगी हुई है।

राजा अल्लट की माता महालक्ष्मी और उसके पुत्र नरवाहन का उल्लेख किया गया है। अल्लट के सांधिविग्रहिक दुर्लभराज, अक्षपटलिक[२] मयूर और समुन्द्र प्रधान वैद्य रुद्रादित्य स्तुतिपाठक नाग आदि का निर्देश है। उसका प्रधानामात्य 'मम्मट'था। ये दोनों मेवाड़ के हैं, अत:कश्मीर के अल्लटएवं मम्मट (काव्य-प्रकाशकार) से भिन्न हैं तथापि नामों का साम्य अत्यन्त विचित्र है।

मन्दिर की व्यवस्था के लिए कर्णाट, मध्यप्रदेश, लाट आदि देशों के जो भी मनुष्य उस समय वहां निवास करते थे, सभी अपनी ओर से प्रचुर दान द्रव्य देकर अपना योग देते थे।

अग्रट नामक सूत्रधार ने मन्दिर का निर्माण कार्य वि.सं. १००८ कार्तिक शुक्ला पंचमी को आरम्भ किया था और वि.सं. १०१० के वैशाख शुक्ला सप्तमी को इसमें वराह भगवान् की प्रतिमा स्थापित की गई थी। इस प्रकार का इतिवृत्त इस लेख में दिया गया है। प्रशस्ति वंशस्थ, उपजाति, वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा और अनुष्टुप् छन्दों में लिखी गई है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का अच्छा दिग्दर्शन मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से रचना महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृत भाषा में रचित उस प्रशस्ति का मूलपाठ कविराजा श्यामलदास ने वीरविनोद में प्रकाशित किया है।[३]

वि.सं. १०२८ लकुलीश मन्दिर की प्रशस्ति

राजा अल्लट का उत्तराधिकारी उसका पुत्र नरवाहन हुआ। उसके शासनकाल का यह एक ही शिलालेख मिलता है, जो एकलिंगजी के निकटवर्ती

---

१. वही 'बापा रावल' पं. गिरिधरजी व्यास शास्त्री

२. आय और व्यय का विवरण रखनेवाला मंत्री अक्षपटलिक कहलाता है।

३. वी.वि.,भा.१ पृ.३८०।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहाड़ी पर लकुलीश (लकुटीश) के मन्दिर के बाहर की ओर लगा हुआ है। इस मन्दिर को नाथों का मन्दिर भी पुकारते हैं। यह प्रशस्ति वि.सं. १०२८ की है।

सुरक्षा के अभाव में वर्षा के जल आदि से शिलालेख के अक्षर दिनों दिन नष्ट होते जा रहे हैं इसलिए विषयवस्तु अच्छी तरह से नहीं जानी जा सकती है। जितने भी अंश के अक्षर सुरक्षित रहे उसी रूप में कविराजा ने वीरविनोद में प्रकाशित किया है।[१] किन्तु अधिकांश लेख नष्ट ही हैं, शेष की विषयवस्तु निम्नांकित है।

सर्व प्रथम लकुलीश एवं सरस्वती को अभिवादन किया गया है। नागहृद (नागदा) तथा बापा का वर्णन है। बापा को गुहिल वंश का तेजस्वी पृथ्वी का रत्न राजाओं में चन्द्र के समान कहा गया है।[२] लकुलीश की उत्पति का वर्णन किया गया है। किसी नारी के आभूषणों का उल्लेख तथा भस्म रंजित शरीरवाले, वल्कलवस्त्र एवं जटाजूट धारण किये हुए पाशुपत योगसाधक लकुलीश आदि योगियों का वर्णन है। स्याद्वाद (जैन) और सौगत (बौद्ध) आदि को वाद विवाद में जीतनेवाले वेदांग मुनि एवं उनके कृपापात्र शिष्य आदित्यनाग के पुत्र आम्र कवि के द्वारा इस प्रशस्ति की रचना की गई, जिसका उल्लेख किया गया है। संस्कृत भाषा में निबद्ध यह प्रशस्ति सामाजिक ऐतिहासिक इतिवृत्त प्रस्तुत करती है अतः इसका एक विशेष महत्त्व है।

वि.सं.१२०७ कुमारपाल का चित्तौड़ का शिलालेख

यह अभिलेख समिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर चित्तौड़गढ़ में लगा हुआ है, जो काली शिला पर उत्कीर्ण है। कुछ अट्ठाईस पंक्तियों में लिखे गये इस लेख के मध्य में एक यन्त्र बना हुआ है। इसका रचयिता दिगम्बर विद्वान् रामकीर्ति था, जो जयकीर्ति का शिष्य था।[३]

लेख के प्रारम्भ में शर्व, मृड, समाधीश्वर नामों से शिव की स्तुति की गई है। पश्चात् देवी सरस्वती की स्तुति के अनन्तर-चालुक्य वंश का श्लाघात्मक वर्णन कर मूलराज का उल्लेख किया है। सिद्धराज के पश्चात् कुमारपाल के शासक

---

१. वी.वि.भा.१, पृ.३८१, श्यामलदास।

२. अस्मिन्नभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रचन्द्रः। श्रीबप्पकः क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम्॥

३. श्रीजयकीर्तिशिष्येण दिगंवर गणेशिना।
प्रशस्तिरीदृशीचक्रे—श्री राम कीर्तिना॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

बनने का तथा शाकंभरी (सांभर) के राजा को पराजित करने का ऐतिहासिक विवरण है। इससे सिद्ध होता है कि वि.सं.१२०७ के पूर्व कुमारपाल की सपादलक्ष पर विजय हुई। कुमारपाल, चित्तौड़गढ़ की शोभा का अवलोकन करने के लिए शालिपुरा ग्राम में गया। चित्तौड़ की छवि को निहारते हुए उत्तर की ओर स्थित समिद्धेश्वर के मन्दिर की ओर आया। मन्दिर में शिव की पूजा कर एक ग्राम भेंट किया।

प्रशस्ति छोटी होने पर भी ऐतिहासिक सूचनाओं के कारण विशिष्ट महत्त्व रखती है। इसका प्रकाशन एपिग्राफिया इण्डिका, इण्डियन एण्टेक्केरी, जैन लेख संग्रह में प्रकाशित हुआ है।[१] प्रशस्ति का सार रामवलल्भ सोमानी ने वीरभूमि चित्तौड़ में दिया है।[२] प्रशस्ति के अन्त में इसके लिखने का संवत् १२०७ है। उक्त विवरण से मिलता जुलता कुमारपाल का द्वितीय लेख भी है।[३]

वि.सं. १३२२ घाघसा का शिलालेख

इस प्रशस्ति के रचयिता चैत्रागच्छ के आचार्य रत्नप्रभ सूरि थे। इसका रचना काल वि.सं. १३२२ कार्तिक १ रविवार है। महारावल तेजसिंह के राज्यकाल का महत्वपूर्ण यह लेख चित्तौड़ के समीप घाघसे की बावड़ी का है।

तेजसिंह के पिता जैत्रसिंह द्वारा मालवा, गुजरात, तुरुष्क और सांभर के सामन्तों की पराजय का उल्लेख है। पद्मसिंह से लेकर तेजसिंह तक वंशावली दी गई है तथा तेजसिंह के पौरुष का वर्णन है। डींडू वंश के श्रेष्ठी गाल्हू, माल्हू, वलभद्र आदि के विवरण के साथ रत्ना ने उपर्युक्त वापी का निर्माण करवाया, जिसका उल्लेख है।

लेख की अट्ठाईस पंक्तियों में तैंतीस श्लोक लिखे हुए हैं। इस समय यह प्रताप-संग्रहालय-उदयपुर में शिलालेख सं. २२ पर विद्यमान है। परमेश्वर सोलंकी ने इसका प्रकाशन वरदा में करवाया।[४] शिल्पकार का नाम केलिसिंह दिया हुआ है। यह तेजसिंह राज्यकालीन ऐतिहासिक शिलालेख है।

---

१. एग्राइ.,भा. २, पृ.यश-२४, इण्डियन एण्टेक्केरी भा.२, पृ.५२१, जैन संग्रह, भा.३, पृ. ८२-८४।

२. वी.भू.चि.,पृ.२२२-२२५, रा.व.सोमानी।

३. वी.भू.चि., पृ.२२४-२२५ रा.वा.सोमानी।

४. वरदा,वर्ष ५, अंक३।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि.सं. १३२४ का शिलालेख

इसमें चैत्रागच्छ के रत्नप्रभ सूरि के उपदेश से कांगा नामक श्रेष्ठी द्वारा दिये गये दान पुण्यादि का विवरण है। यह गंभीरी नदी के आठवें कोठे पर लगा हुआ है। कविराजा श्यामलदास और रत्नचन्द्र अग्रवाल ने प्रकाशित करवाया।[१] यह लेख भी तेजसिंह के राज्यकाल का है।

वि.सं. १२२६ बिजोलिया के पास जैनमन्दिर का शिलालेख

बिजोलिया के लगभग एक मील दूर पार्श्वनाथ के मन्दिर के कुंड से उत्तर की ओर कोट के पास चट्टान पर उत्कीर्ण है। वि.सं. १२२६ फाल्गुन कृष्णा तृतीया को इस प्रशस्ति का लेखन कार्य पूर्ण हुआ। दिगंबर संप्रदाय के पोरवाड़ा महाजन लोलाक की प्रेरणा से इस प्रशस्ति की रचना गुणभद्र मुनि ने की[२] लोलाक ने पार्श्वनाथ का मन्दिर और अन्य सात छोटे मन्दिर बनवाये। कायस्थ छीत्तिग के पुत्र केशव से इसकी प्रतिलिपि करवाई। सूत्रधार हरसिंह से उसके पुत्र पाल्हण और पाल्हण के पुत्र माहड ने जिनमन्दिर बनवाया। नानिग के पुत्र गोविन्द और पाल्हण पुत्र देल्हण इन दोनों ने प्रशस्ति को शिला पर उत्कीर्ण किया।

इसमें कुल श्लोक ९३ हैं। सांभर के राजा तथा अजमेर के चौहान वंशी नरेशों की वंशावली दी गई है। महाजन लोलाक के पूर्वजों का उल्लेख और उसके द्वारा बनवाये गये मंदिरादि का विवरण है। चौहान नरेश पृथ्वीराज (द्वितीय) ने मोराकुरी और सोमोश्वर ने रेवणा ग्राम पार्श्वनाथ जी को भेंट किये। लेखक ने गुरु जिन चन्द्रसूरि का स्मरण किया है। इस अभिलेख में ऐतिहासिक वृत्त होने के कारण इतिहास के लिए बड़े महत्त्व का है। इसका मूल पाठ कविराजा श्यामलदास ने प्रकाशित किया है[३] और एपिग्राफिया इण्डिका में भी प्रकाशित है।[४]

वि.सं. १३३० चीरवा गांव का शिलालेख

यह प्रशस्ति उदयपुर से आठ मील उत्तर की ओर चीरवा गांव के मन्दिर में लगी हुई वि.सं. १३३० कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा की है। इसकी रचना रत्नप्रभसूरि

---

१. वरदा, वर्ष ९, अंक १। वीवि., भा.१ पृ.३९६ श्यामलदास।

२. श्रीमन्– रसिंहोऽभूद्‌भुणभद्रो महामुनिः।
कृता प्रशस्तिरेषा च कविकंठविभूषणा ॥ ८८ ॥

३. वी.वि. भा.१, ३८५-३८९।

४. एग्राइ.भा.२६।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ने की, जिसमें उसके गुरु भुवनसिंह सूरि के साथ चैत्रागच्छ के अन्य आचार्य भद्रेश्वर देवभद्र सूरि, सिद्धसेन सूरि, जिनेश्वर सूरि और विजयसिंह सूरि के नामों का उल्लेख किया गया है।

यह प्रशस्ति कुल इक्वावन श्लोकों में लिखी हुई है। शिव, भवानी की स्तुति के पश्चात् गुहिल वंशी बापा के वंशज मथनसिंह पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह का उल्लेख किया गया है। समरसिंह के राज्यकाल में टांटरड (टांटेड) जाति के तलारक्षकों का पूर्वज उद्धरण राजा मथनसिंह के राज्यकाल में हुआ। उद्धरण के योगराज स्तूभ आदि आठ पुत्र हुए, जिनमें से योगराज यशस्वी हुआ। उसके पमराज, महेन्द्र, चंपक और क्षेम चार पुत्र हुए, इस तरह विस्तार से इनकी वंशावली के पश्चात् रावल समरसिंह को पराक्रमी शत्रु संहार कर्ता, चन्द्रवत् धवल कीर्तिमान्, धर्म मर्मज्ञ कहा गया है। योगराज ने पद्मसिंह की सेवा के फलस्वरूप महती आयवाला चीरकूप (चीरवा) गांव प्राप्त किया। पश्चात् उसने वहां योगेश्वर (शिव) और योगेश्वरी देवी का मन्दिर बनवाया। उसके पिता उद्धरण ने विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया। इनका वंशज मदन शिव की आराधना में दत्तचित्त रहा तथा उक्त मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया, उसने कालेलाय (कालेला) सरोवर के पीछे अपने दो खेत भगवान् शिव को समर्पित किये। एकलिंगप्रभु का सेवक पाशुपत योगियों में अग्रगण्य धर्मात्मा शिवराशि उस समय मन्दिर का अधिष्ठाता था। इस प्रकार के इतिवृत्त से युक्त यह प्रशस्ति ऐतिहासिक महत्त्व लिए हुए हैं। प्रकाशन मूलपाठ कविराजा श्यामलदास ने वीर विनोद में प्रकाशित किया है।[१] इसका प्रकाशन एपिग्राफिया इण्डिका में भी हुआ है।[२]

वि.सं.१३३१ रसिया की छत्री चित्तौड़गढ़ का शिलालेख

यह प्रशस्ति वेदशर्मा द्वारा विरचित है, जो चित्तौड़ में कीर्तिस्तम्भ के पास रसिया की छतरी नामक स्थान पर लगी हुई है। इसका लेखन काल वि.सं. १३३१ आषाढ़ शुक्ला तृतीया अंकित है। इस तरह इस प्रशस्ति के कुल ६१ श्लोक ही उपलब्ध हैं। इसमें लिखित "अनन्तरं वंश वर्णनं द्वितीय प्रशस्तौ वेदितव्यम्" के अनुसार संभवतः इस प्रशस्ति की और भी उत्कीर्ण शिलाएं होनी चाहिए।

---

१. वी.वि.,भा.१,पृ.३८९,श्यामलदास।

२. ए.ग्रा.इ.,भा.२४।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपलब्ध शिलालेख की विषयवस्तु इस प्रकार है। समाधीश्वर (शिव), गणेश की स्तुति के अनन्तर 'गुहिल वंशमपारशाखम्' आदि वर्णन कर गुहिल वंश का श्लाघात्मक विवरण दिया है। मेवाड़ प्रदेश का सरस, मनोहर चित्रण किया गया है।[१] बापा एकलिंग प्रभु की सेवा में रत रहा, अपने गुरु हारीतराशि के आर्शीर्वाद से राज्यलक्ष्मी को अधिगत किया।[२] इस तरह बापा को वरप्रदान किया, जिसका विवरण है। गुहिल को बापा का पुत्र बताया गया है। गुहिल, शील, कालभोज और मत्तट के शौर्यपूर्ण कार्यकलापों का उल्लेख किया गया है। राजसिंह' का नामोल्लेख है, इस प्रकार संक्षिप्त इतिवृत्त कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

वेदशर्मा द्वारा संक्षिप्त ऐतिहासिक वंशक्रम और गुहिल को बापा का पुत्र बतलाया इसके कारण श्रीरामवल्लभ सोमानी को इसमें त्रुटि दृष्टिगत हुई, जिसके लिए उन्होंने "प्रशस्तिकार वेदशर्मा इतिहास का विद्वान् नहीं था।" वीरभूमि चित्तौड़ नामक पुस्तक में उल्लेख किया है।[३] राणा हमीर से ऊपर का मेवाड़ के राजवंश का वंशवृक्ष पुष्ट प्रमाणों के आधार पर अभी तक स्थिर न हो सका है, यत् किंचित् रूप में जो वंशावली मिलती है, वह संदेहास्पद है ही ऐसी स्थिति में कवि के लिए इतिहास के ज्ञान का अभाव बतलाना श्री सोमानी के ये विचार कहां तक उचित है ? कवि की यह रचना साहित्यिक सौन्दर्य के साथ प्राञ्जल भाषा में निबद्ध है।[४]

वि.सं. १४८५ श्रृंगी ऋषि का शिलालेख

एकलिंगजी के दक्षिण पूर्व की ओर चार मील दूर विखरनी नामक गांव से डेढ़मील पश्चिम में सुरम्य पर्वतमालाओं से मण्डित श्रृंगी-ऋषि नामक स्थान पहाड़ों

---

१. तीर्थैर्मन्दिरकंदरैरिव मनोहृद्यैः पुरैः स्वश्रियो,
लाण्यैरिव विस्तृतैः सितमणिस्वच्छैः सरोभिश्च यः।
व्योम श्रीमुकुरैरिव प्रतिपदं स्फीतो जगत्यंगना,
सौन्दर्यैक निकेतनं जनपदः श्रीमेदपाटाभिधः॥ ६॥

२. सदैकलिंगार्चनशुद्धबोधः संप्राप्तसायुज्य महोदयस्य।
हारीतराशेरसमप्रसादादवाप बप्पो नवराज्यलक्ष्मीम्॥ ११॥

३. वी.भू.चि.पृ.२२७ रा.व.सो.।

४. वी. वि., भा. १, पृ, ३९२,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के मध्य एक टेकरी के ऊपर है, जहां यह शिलालेख मन्दिर के नीचे छोटे बरादमे के पश्चिम की तरफ दीवाल में लगा हुआ है ।

यह काले पत्थर पर उत्कीर्ण है । इस समय यह शिलालेख तीन स्थान से त्रुटित है, मध्य में दो दरारें पड़ी हुई है, जिससे उस स्थान की विषय वस्तु अवगत नहीं होती है ।

कविराज वाणीविलास योगीश्वर ने इस प्रशस्ति की रचना की ।[१] वि.सं.१४८५ श्रावण शुक्ला पंचमी को वापी प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ । सूत्रधार हादा के पुत्र फेना ने शिला पर उत्कीर्ण किया ।

महाराणा मोकल ने स्वर्गवासिनी रानी गौराम्बिका की स्मृति में इस स्थल पर वापी का निर्माण करवाया और यह सुन्दर सरस काव्यात्मक प्रशस्ति यहां लगवाई, जिसमें निहित विषय वस्तु इस प्रकार है ।

कवि ने सरस्वती की वन्दना कर बापा के वंश में हमीर क्षत्रसिंह, लक्षसिंह हुए । हमीर ने उसके शत्रु भीलों पर विजय प्राप्त कर उनके नगर चेला को अपने आधिपत्य में किया । पल्लाणपुर को भस्मसात् कर दिया । हमीर के पश्चात् उसका पुत्र क्षेत्रसिंह शत्रुओं के लिए कालानल था, जिसने अमीशाह को परास्त किया तथा बादशाह के अधिकृत मांडलगढ़ को विध्वस्त किया । क्षेत्रसिंह के पश्चात् उसका पुत्र लक्षसिंह बड़ा वीर और धार्मिक प्रकृति का था । तत्कालीन शासक मोहम्मद ने धार्मिक तीर्थों काशी, प्रयाग, गया पर कर लगा रखा था । लक्ष्यसिंह ने इस कर से मुक्त कराया । लक्षसिंह के पश्चात् उसका पुत्र मोकल राज्य पर आसीन हुआ, जिसने नागौर के स्वामी फिरोजखां और गुजरात के शासक सुलतान अहमद (प्रथम) को युद्ध में परास्त किया, दोनों रणक्षेत्र छोड़कर भाग निकले । मोकल ने लगभग पच्चीस स्वर्ण और रजत तुलादान किये । एकलिंगजी के मन्दिर के चारों ओर स्फटिक के समान सुन्दर प्राकार बनवाया । इसके अनन्तर कवि ने निर्मित वापी के माहात्म्य के विषय में लिखा है कि इसमें स्नान करने से ब्राह्मण वेदादि विद्या से अलंकृत, क्षत्रिय

---

१. योगीश्वरेण कविता रचिता मनोज्ञा,
सेयं प्रशस्ति रुचिरामृतपूर्णवर्णा ।
आकर्ण्य यां सुविबुधाः सुखिनो भवन्ति,
श्रीभारतीयमिव कथां कलुषापहर्त्रीम् ॥ ३५ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निष्कण्टक राज्य, वैश्य कुबेर की तरह सम्पत्ति का स्वामी और शूद्र भी उत्तम स्थान को प्राप्त होता है।[१]

कवि योगीश्वर की यह प्रशस्ति सरस परिमार्जित, प्राञ्जल भाषा में है। साहित्यिक सौन्दर्य के लिए स्फटिक के समान शिला प्राकार का बताना उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।[२] शार्दूलविक्रीडित वसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा और अनुष्टुप् विविध छन्दों में रचित यह कृति मनोरम एवं हृदयाकर्षक बन पड़ी है। कवि द्वारा हमीर, क्षेत्रसिंह, लक्षसिंह मोकल के युद्ध सम्बन्धी उल्लेखों के कारण अपना ऐतिहासिक महत्त्व लिये हुए है। इस तरह यह रचना साहित्यिक एवं ऐतिहासिक मूल्य रखती है।

कवि योगेश्वर वाणीविलास और कविराज की उपाधियों से विभूषित था। इससे विदित होता है कि उस समय का लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् था। इससे अधिक लेखक का परिचय नहीं मिलता है। एक मात्र श्लोक सं. १९ वें में स्वर 'ऋ' के स्थान में 'रू' का प्रयोग करने से प्रतीत होता है कि यह दक्षिणभारत का निवासी रहा होगा।

उदयपुर निवासी विद्वान् पं. अक्षयकीर्ति व्यास ने इसका संपादन कर एपिग्राफिया इण्डिका में प्रकाशन करवाया है।[३]

---

१. वाप्यां पुण्यसरिज्जलेन सततं संपूरितायामिह,
स्नानं यः कुरुते द्विजः स हि भवेद्वेदादि विद्याकृती।
राजन्यो यदि कंटकैर्विरहितं प्राप्नोति राज्यं चिरम्,
वैश्यो वैश्रवणाधिकां श्रियमहो शूद्रोऽपि सौष्ठं परम्॥ २५॥

२. येन स्फाटिकसच्छिलामय इव ख्यातो महीमंडले,
प्राकारो रचितः सुधाधवलितो दैवेक—।
—सत्कपाटविलसत् द्वारत्रयालंकृतः,
कैलासं नु विहाय शंभुरकरोद्यत्राधिवामे मतिम्॥ १६॥

३. एग्राइ.भा.२३।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हरोस्तु रोहनामोना हव्य कव्य हसेलसे।।
हसस्य सहतो प्रीतो हरते रहसीरसी।।१।। (१)

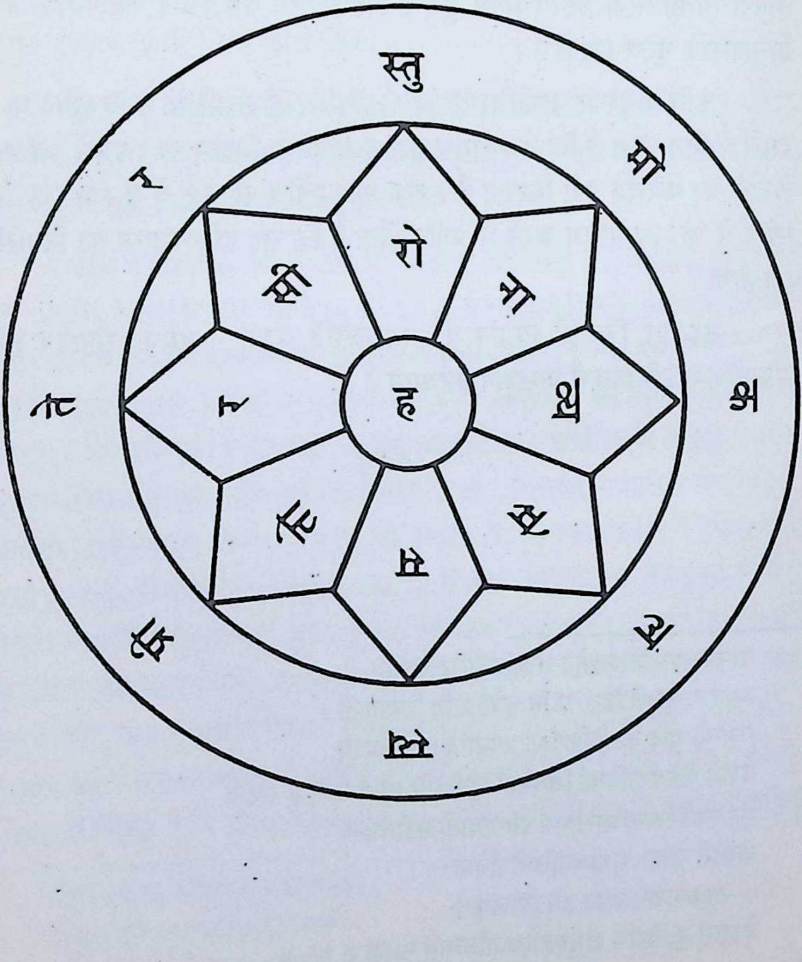

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि.सं. १४८५ समिद्धेश्वर महादेव चित्तौड़ के मन्दिर की प्रशस्ति

इस प्रशस्ति का रचयिता एकनाथ दशोरा ब्राह्मण जाति का था। इसके पिता का नाम विष्णुभट्ट था। यह आलेख चित्तौड़ गढ़ पर समिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर में श्यामपट्ट पर उत्कीर्ण है, जिसमें कुल श्लोक पिचोत्तर है। पंक्ति संख्या इक्कीस से उन्तीस के मध्य एक यन्त्र बना हआ है, जो कमलबन्ध में चित्रकाव्य के रूप में अनुष्टुप् श्लोक दिया हुआ। मोकल ने देवप्रतिष्ठा वि.सं. १४८५ फाल्गुन शुक्ला तृतीया को की, वही समय प्रशस्ति का रचनाकाल दिया हुआ है। बीजल का पुत्र मना उसके पुत्र वीसल ने अनेक प्रासाद और समिद्धेश्वर महादेव के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया तथा इस प्रशस्ति को शिला पर उत्कीर्ण किया। प्रशस्ति की विषयवस्तु इस प्रकार है।

स्वधर्म संस्थापक गुहिलवंश का वर्णन कर रण में कर्ण के समान पराक्रमी अरिसिंह के गुणों का उल्लेख किया है। राणा हम्मीर की तुलना अच्युत, ब्रह्मा, कामदेव और भगवान शंकर से अतिशयोक्ति पूर्ण की है। उसके पुत्र क्षेत्रसिंह को शौर्योदार्य से मण्डित गुणों का सागर कहा है। क्षेत्रसिंह के पुत्र लक्षसिंह को भगवान् राम के सदृश पुरुषार्थी बतलाया है। उसके पुत्र मोकल ने चीन, कश्मीर और नागोर के सुल्तान फिरोज आदि राजाओं पर विजय प्राप्त की, जिसका उल्लेख तथा उसके द्वारा तुलादान एवं द्वारकाधीश के मन्दिर को बनवाने का विवरण दिया है। इसके पश्चात् अन्त में चित्तौड़ का वर्णन किया है।

यह प्रशस्ति सरस शब्दावली में रचित होने के कारण काव्य सौष्ठव की दृष्टि से अवलोकनीय है। राणा हम्मीर के ऐश्वर्य, सौन्दर्य और पौरुष को निम्न श्लोक में प्रदर्शित किया है।

शूरः सुनृतवागनून विभवो वंशावतंसः सुत-
स्तस्य न्यक्कृतरत्नसानुगरिमो हम्मीरवीरो जयी।
विख्यातः स्मररूपजित्वरवपुर्लक्ष्मीनिवासाच्युतो
वाग्देवी चतुराननो रिपुकुलप्लोषोग्ररूपो महान्॥ १३॥

राणा मोकल ने विभिन्न प्रदेशों पर विजय प्राप्त की, उसका ओजपूर्ण वर्णन किया है।

अंगाःसंप्राप्तभंगाः स्मृतव(घ) नविटपाः कामरूपाः विरूपाः
बंगा गंगैकसंगा गतविरुदमदा जातसादा निषादाः।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चीना: संग्रामदीना:स्खलदसि धनुषो भीति शुष्कास्तुरुष्का:,
भूमि पृष्ठे गरिष्ठे स्फुरति महिमनि क्ष्मापतेर्मोकलस्य ॥ ४६ ॥

सरस पदावली में गुम्फित दीर्घ समासों वाली यह प्रशस्ति कवि की काव्य प्रतिभा का ज्वलन्त उदाहरण है। प्रशस्ति का आरम्भ शार्दूलविक्रीडित छन्द से होता है। स्रग्धरा, मालिनी, शिखरिणी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। चित्रकाव्य के रूप में कमलबन्ध में चित्रित श्लोक कवि कर्म के वैशिष्ट्य का द्योतकहै।[१]

प्रशस्ति के अध्ययन से महाराणा मोकल के असारण व्यक्तित्व उसके ऊर्जस्वी गुण, कर्म, दानादि तथा दूरदर्शी ज्ञान का पता चलता है। प्रशस्तिकार एकनाथ के प्रखर पाण्डित्य के साथ संस्कृत काव्य परंपरा के दूरभूत इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है, एतदर्थ इस प्रशस्ति का एक ओर साहित्यिक महत्त्व है तो दूसरी ओर क्षेत्रसिंह, लक्ष्यसिंह और मोकल द्वारा विजित देश विदेशों की सूचना के कारण ऐतिहासिक महत्त्व भी न्यून नहीं है। श्लोक १८वां कवि ने हम्मीर विषयक कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति से लिया है।

प्रशस्ति मूल रूप में वीरविनोद में प्रकाशित है।[२] संक्षिप्त सारांश रामवल्लभ सोमानी ने वीरभूमि चित्तौड़ नामक पुस्तक में दिया।[३] गो.ही. ओझा ने अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में इसका उल्लेख किया है।[४] एपिग्राफिया इण्डिका और भावनगर इनस्क्रिप्सन में भी यह प्रकाशित हुई।[५]

वि.सं.१४९५ महावीर प्रासाद प्रशस्ति

इस प्रकार के रचयिता चारित्ररत्नगणि थे। सर्वज्ञ और सरस्वती की वन्दना कर ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर पांचों तीर्थंकरों की स्तुतियां की गई हैं। उच्च प्रासाद एवं कीर्तिस्तम्भ से सुशोभित इस मेवाड़-देश का वर्णन किया गया है। हमीर को तुरुष्कों और मोकल को सपादलक्ष का विजेता कहा

---

१. हरोस्तु रोहनामोना हव्यकव्य हसेलसे।
हसस्य सहतो प्रीतो हरते रहसीरसी ॥ १ ॥ द्रष्टव्य-२५५ पृ. पर।
यह श्लोक प्रशस्ति क्रम में नहीं दिया हुआ है अतःयहां पृथग् से लिखा गया है।

२. वीरविनोद, भा.१ पृ.४०२ श्यामलदास।

३. वी.भू. चि.पृ. २३४-२३५, रा.व. सोमानी।

४. उ.रा.इ.भा.२ पृ.५९१, ओझा।

५. ए.ग्रा.इ., भा.२ पृ.४१०-२१। भावनगर इनस्क्रिप्सन्स पृ.९६-१००।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गया है । कुम्भा का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण है । चित्तौड़ मेवाड़ रूपी तरुणी का मुकुट है,इस प्रकार सुन्दर रूपक अलंकार में चित्रण किया गया है ।[१]

इसके अनन्तर मन्दिर के निर्माण करने वाले साधु गुणराज की वंशावली दी गई है । चित्तौड़ में श्रेष्ठी वीसल था । उसका पौत्र आसपाल कर्णावती व्यापार करने गया । उसके चार पुत्र थे । संगम, गोड़ा, समरा और चाचा । चाचा ने अहमदाबाद में जैन मन्दिर बनवाया । उसके दो पत्नियां लादी और मुक्तादे थी । लादी के तीन मुक्तादे के चार पुत्र हुए । गुणराज मुक्तादेका पुत्र था और गुजरात के बादशाह की सभा का सदस्य था । उसके अन्य भाई अम्बक, लीम्बक और जयता थे । उनकी पत्नियों के नाम क्रमशः, गंगा, माणिक्य देवी, हेमादेवी और जसमादेवी था । अम्बक साधु हो गया । वि.सं.१४६८ में भीषण दुर्भिक्ष के समय इस परिवार ने अगणित धन व्ययकर मनुष्यों की बड़ी सहायता की । वि.सं. १४७७ में आचार्य सोमसुन्दर सूरि के तत्वावधान में शत्रुंजय की तीर्थ यात्रा निमित्त एक संध निकाला गया । जिनसुन्दर सूरि को सूरि पद पर स्थापित करने के महोत्सव का वर्णन किया गया है । गुणराज के पांच पुत्र गज, महीराज, बाल्हा, कालू और ईश्वर थे । राणा मोकल से बाल्हा ने अच्छा सम्मान प्राप्त किया । वह व्यवसाय के लिए चित्तौड़ में निवास करता था । कालू उच्च राजकीय पद पर था । मोकल की आज्ञा से चित्तौड़ में मन्दिर बनवाने का उल्लेख दिया है ।

इसका सम्पादन श्री देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने किया एवं संक्षिप्त इतिवृत्त रामवल्लभ सोमानी ने महाराणा कुम्भा नामक पुस्तक में प्रकाशित किया ।[२] यह प्रशस्ति जैन मुनियों के उल्लेख के साथ गुणराज के पूर्वजों का एवं उसके परिवार का विवरण प्रस्तुत करती है । गुणराज के कुटुम्ब की उदारता को बतलाती हुई जैन समाज की सूचना देने के दृष्टिकोण से उपयोगी है ।

वि.सं. १४९६ राणकपुर जैन मन्दिर की प्रशस्ति

गौढ़वाड़ (मारवाड़) जिले में राणकपुर नामक नगर में विख्यात जैन मन्दिर है । यह प्रशस्ति गद्य रूप में लिखी गई है । 'बापा' से लेकर कुम्भा तक की वंशावली दी गई है, जिसमें अम्बाप्रसाद का नाम छूट गया है ।

---

१. श्रीमेदपाटधरिणी तरुणीललांटपट्टे स्फुटं मुकुटतामुपटीकते— ॥ २१ ॥

२. म.कु.पृ.३३८, रा.व. सोमानी ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुम्भा को सर्वगुण सम्पन्न सार्वभौम राजा कहा है। सारंगपुर, नागपुर, गागरण, नराणा, अजमेर, मंडोर, बूंदी, चाटसू आदि उसके विभिन्न प्रदेशों की विजय का उल्लेख है। पौरवाल जाति के सागर सुत कुरपाल, धरणाक, लाखा, धारलपुत्र जाझा, जावड़ा आदि ने राणकपुर में तपागच्छ के आचार्य सोमसुन्दर सूरि की प्रतिष्ठा करवाई। आचार्य ने प्रशस्ति लिखी, जिसका उल्लेख दिया गया है।

इसका मूलपाठ कविराजा श्यामलदास ने प्रकाशित करवाया है।[१] आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया की वार्षिक रिपोर्ट में भावनगर इन्सक्रिप्शन्स, एवं भावनगर प्राचीन शोध संग्रह में भी दूसरा प्रकाशन हुआ है।

वि.सं. १५०० कड़िया ग्राम की प्रशस्ति

उदयपुर से लगभग सौलह मील दूर कडिया गांव है। इस प्रशस्ति का लेखक कल्याण था, जिसके पिता का नाम मुरारि था। छत्तीस पंक्तियों में लिखित प्रशस्ति के कुल साठ श्लोक हैं। सूत्रधार हादा ने इसको महाराणा कुम्भा के शासनकाल में शिला पर उत्कीर्ण किया।

कवि ने प्रशस्ति के प्रारम्भ में गणपति और कृष्ण का स्मरण कर भारद्वाज मुनि के वंश का महत्त्व मन्दाकिनी के राजहंश के समान बतलाया है। उनके वंश में वेदों का निष्णात सीहड़ और उसका पुत्र राम नाम का हुआ, जिसने विश्वव्यापिनी कीर्ति प्राप्त की। उसके श्रौत स्मार्त विषयक ग्रन्थों का प्रणेता तिल्ह भट्ट नामक पुत्र हुआ। जो राणा लक्षसिंह और मोकल का गुरु था एवं अनेक शास्त्रार्थों में विजयी रहा। राणा लक्षसिंह ने गुरु दक्षिणा में गादोली और वाजवी गांव भेंट किये और मोकल ने कड़िया गांव समर्पित किया। उसके पश्चात् कुम्भा ने भी तिल्ह भट्ट का आश्रय लिया, जिसकी कृपा से वाणी के रहस्य का प्रकाशन किया, गीत गोविन्द की टीका की। इस तरह तिल्हभट्ट उपर्युक्त क्रमश: तीन राणाओं का गुरु रहकर इस राजवंश की महती सेवा की तथा राजगुरु के पद से सम्मानित रहा। उसके चन्द्रात्रेय गोत्र की पतिव्रता तारा नाम की पत्नी थी। कवि ने विस्तार से तारा के गुणों का वर्णन किया है।

---

१. वी.वि.भा.१,पृ.४०९, श्यामलदास; वार्षिक रिपोर्ट ऑफ दी आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया ई.स.१९०७-८, पृ. २१४,१५, भावनगर इनस्क्रिप्शन्स, पृ.-११४ और भावनगर प्राचीन शोध संग्रह पृ. ५६-५८।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि ने अपनी इस रचना को विरोधाभास, श्लेषादि अलंकारों के प्रयोग से सरस सुन्दर रूप दिया है । माधुर्य एवं प्रसादगुण से परिपूर्ण इस कृति में बोभोक्ति, मोमोक्ति (श्लोक सं. ३२) में यङ् लुगन्त रूप तथा देवगुरूयते, गोत्रायते, निधीयते, तरणीयते, वसिष्ठायते,मौलीयते, हीरायते (श्लोक सं. १२) में प्रयुक्त नामधातु रूप क्रियाओं से ज्ञात होता है कि कवि व्याकरण शास्त्र का विद्रान था । विरोधाभास एवं श्लेष, की छटा दर्शनीय है ।

त्रिलोचनाख्यं किल सद्विजेशं तारापरं संजुषतां सदैव ।

चित्रं न तद्विस्मितमत्र मन्ये तेजप्रकाशं लभते सुतारा ॥ ४१ ॥

तारा तारादेवी गंगा के समान है । (सद्विज ईश) अर्थात् समर्थ त्रिलोचन (तिल्ह) भट्ट की सेवा सदैव करती रहे । पक्षान्तर में आकाश में वर्तमान तारा (स-द्विजेश) चन्द्र सहिता त्रिलोचन शंकर के आश्रय में सदैव बनी रहे । इसमें कोई आश्चर्य नहीं । आश्चर्य इसमें है, वह तारा त्रिलोचन से (तिल्ह से या शंकर से) प्रकाश को पाती है । तारा को प्रकाश सूर्य से मिलता है, त्रिलोचन से नहीं, इसलिए इस श्लोक में विरोधाभास अंलकार है । और भी

तारापतिः श्रीद्विजराजतिल्हः अर्कप्रभाभिः कृतिनीं विघत्ते ।

तारां विचित्रं कथमेव तस्मै वाचः सुधाः सा दिशति प्रसूताः ॥ ४२ ॥

(द्विजराज चन्द्र तारापति है, नक्षत्रों का स्वामी है, इसी प्रकार द्विजराज ब्राह्मणों का राजा तिल्हभट्ट भी तारापति है, तारा नामक ललना का पति है । चन्द्र सूर्य की कान्ति को अपनी आत्मा में संग्रहकर उसके द्वारा तारा को आलोकित करता है, इसी प्रकार यह द्विजराज तिल्ह भी सूर्योपासना से सूर्य के तेज को प्राप्त कर उस तेज के द्वारा अपनी तारा नामक पत्नी को अनुगृहीत करता है । आश्चर्य तो यह है कि तारा स्वयं उत्पन्न की हुई वचन-सुधा तिल्ह द्विजराज को कैसे देती है ? कारण यह कि तारा कभी चन्द्र को अमृत नहीं देती । द्विजराज अन्य वस्तु देता उसके बदले में यह तारा स्वयं की उत्पन्न की हुई वस्तु देती है)

उपर्युक्त वर्णनानुसार यहां तारापति, द्विजराज शब्दों में श्लेष अलंकार प्रयुक्त हुआ है ।

वस्तुतः रचना कवि के पाण्डित्य की द्योतक है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति वि.सं. १५१७

महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भा) ने युद्ध की दृष्टि से अपरिमेय महत्त्व रखने वाले स्वनिर्मित कुंलभमेरु (कुम्भलगढ़) की प्रतिष्ठा वि.सं. १५१५ चैत्र कृष्णा त्रयोदशी को करवाई। उसने कुम्भलगढ़ पर कुंभ स्वामी का मन्दिर बनवाया, जिसे मामादेव का मन्दिर भी पुकारते हैं। इनसे सम्बन्धित यह प्रशस्ति लगभग पांच बड़ी बड़ी शिलाओं पर उत्कीर्ण हैं। काल की कुटिल गति के कारण समय समय पर होने वाले यवनों के आक्रमण प्रत्याक्रमणों के फलस्वरूप शिलाओं का अधिकांश भाग नष्ट भ्रष्ट हो गया, कुछ अंश भूगर्भ में भी विलीन हो गया। शनैःशनैःअन्वेषण के पश्चात् अभी तक चार शिलाएँ प्राप्त हो पाई हैं। कुम्भलगढ़-प्रशस्ति के ये चारों शिलालेख प्रताप संग्रहालय-उदयपुर की मेवाड़ के शिलालेख संज्ञक दीर्घा में विद्यमान है। इन शिलालेखों की भाषा संस्कृत और लिपि देवनागरी है।

प्रथमशिला

आकार में प्रथम शिला ३ फुट १० इंच चौड़ी और ३ फुट ७ इंच ऊंची है। चारों ओर २ इंच का भाग अलिखित हाशिये के रूप में छूटा हुआ है। इसमें १ से ६८ संख्या तक के श्लोक उत्कीर्ण हैं। शिलापट्ट पर पद्यभाग की कुछ पचास पक्तियां श्लोक बद्ध लिखी हुई हैं। अक्षराकृति सुवाच्य, स्पष्ट, गोल हैं। अक्षरों की ऊंचाई ओसतन लगभग २/५ इंच है। यह अभिलेख शुद्ध रूप में लिखे हुए हैं। प्रथम शिलालेख में कहीं कहीं सन्धि नहीं की गई हैं। यथा श्री + एकलिंग प्रभु (श्लोक सं.८), प्रलयकृत + यो (श्लोक सं. ५६), ब के स्थान पर व का प्रयोग हुआ है। यथा-वाधेलावर्मनम् (बाधेलावर्णनम्) ष के स्थान पर स प्रथम शिला में दो चार बार प्रयुक्त हुआ है। (सर्वंकसः श्लोक सं. ६१, कलुसाशयो श्लोक सं. ६८)

प्रथम शिला लेख सारांश

प्रारम्भिक श्लोक में गणेश, सरस्वती और एकलिंग महादेव का स्मरण कर कवि ने आशिष, प्रकरण एक से चौदह श्लोक पर्यन्त लिखा है। इसमें काव्यात्मक रूप से मेवाड़ के पर्वत, सरोवर, तीर्थस्थानों आदि का भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न देवी देवताओं गजानन, विन्ध्यावासिनी, एकलिंग, पिनाकी और सूर्य की स्तुति की है। प्रथम श्लोक में किस देवता का स्मरण किया गया है? श्लोक का कुछ अंश नष्ट होने से प्रतीत नहीं होता है।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसके अनन्तर त्रिकूट नामक पर्वत का वर्णन श्लोक १५ से १७ तक किया गया है । प्रत्येक वर्णन का आरम्भ अथ और इति लिखकर संकेत के रूप ने दिया गया है । त्रिकूट पर्वत की उपत्यकाएं निर्मल जल एवं सुगन्धित पुष्पों से पुष्पित हैं, इस प्रकार वह अपने प्राकृतिक रूप में एकलिंगजी के मन्दिर एवं गांव के पास में विद्यमान है ।

श्लोक सं. १८ वें और १९वें में कुटिला नदी का वर्णन है, जो मानो मन्दाकिनी शिव की आराधना के लिए आई हो । यह त्रिकूट गिरि के पास ही केवल वर्षाऋतु में बहती है । श्लोक सं. २० से २२ तक जगज्जननी माता विन्ध्यवासिनी का मन्दिर प्रभु एकलिंग के पास बाहर की ओर है । इसके पश्चात् विख्यात एकलिंगजी के मन्दिर का वर्णन श्लोक सं. २३ वें और २४ वें में किया गया है । हारीत राशि की तपस्या के परिणाम स्वरूप भगवान् शम्भु यहां एकलिंग के रूप में अवतीर्ण हुए । इस मन्दिर का मूलरूप से संस्थापक बापा रावल था, यही जनश्रुति चली आई है । शताब्दियों पश्चात् यवनों के आक्रमण के कारण इसकी शिल्प कलात्मक कृति को क्षति पहुंचाई गई । राणा मोकल ने मन्दिर के चारों ओर प्राकार का निर्माण करवाया । कुम्भा और रायमल्ल ने भी समय समय पर जीर्णोद्धार करवाया । श्लोक सं. २५ से २८ तक रमणीय इन्द्रसागर नामक सरोवर का वर्णन दिया गया है । कवि ने इसे इन्द्रतीर्थ भोजसर कहा है । सरोवर को इन्द्र के समय का मानकर कवि ने इसके अतिप्राचीन होने की ओर संकेत किया है । श्लोक सं. २९ वें और ३० वें में त्रिकूट पर्वत की कन्दाराओं में विचरण शीला कामधेनु का विवरण दिया गया है । भुजंगाधिराज तक्षक ने यहां आकर निवास किया । एकलिंग के चरणारविन्द की शरण ली, इसका वर्णन श्लोक सं. ३१ से ३३ पर्यन्त किया गया है । श्लोक सं. ३४ वें और ३५ वें में धारेश्वर महादेव के मन्दिर का इतिवृत्त दिया गया है, जो एकलिंग मन्दिर से कुछ ही दूर पश्चिम की ओर पर्वत के पास विद्यमान है । श्लोक सं. ३६ वें और ३७ वें में वैद्यनाथ महादेव का उल्लेख किया गया है । बाघेला नामक तडाग का वर्णन श्लोक सं. ३८ से४० तक है । इसे महाराणा मोकल ने अपने अनुज बाघसिंह की स्मृति में बनवाया था । श्लोक सं. ४१ से ५० पर्यन्त चित्रकूट (चित्तौड़) के किले पर कीर्तिस्तम्भ के पास ही दक्षिण की ओर समाधीश्वर महादेव का मन्दिर विद्यमान है, जिसका वर्णन किया गया है । श्लोक सं. ५१ से ५४ तक चित्तौड़ गढ़ पर स्थित महालक्ष्मी के मन्दिर का उल्लेख है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस मन्दिर के समीपवर्ती कुक्कुटेश्वर (शिव) और गदाधर(विष्णु) मन्दिर का भी संकेत दिया गया है ।

चित्तौड़ दुर्ग पर महाराणा कुम्भा द्वारा कुम्भ स्वामी के मन्दिर का निर्माण करवाया गया, जिसे कवि ने वराहमन्दिर के नाम से भी उल्लेख किया है, सम्भवत: कुम्भा ने अपने नाम से इस मन्दिर को विख्यात किया हो, यह वर्णन श्लोक सं.५५ से ५८ तक दिया गया है । इस समय इस मन्दिर में विष्णु प्रतिमा की पूजा होती है । श्लोक सं. से ६८ पर्यन्त मेदपाट (मेवाड़) के प्राकृतिक भू भाग नदियां, सरोवर और पर्वतों का साधारणतया वर्णन किया गया है ।

शिलालेख की अन्तिम गद्य पक्तियों में वि.सं. १५१७, शक संवत् १३८२ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ सोमवार अंकित किया गया है, जो इसके लेखन काल को व्यक्त करती हैं ।

श्लोक संख्या अनुसार

प्रथम शिला में प्रयुक्त छन्दों का विवरण:

शार्दूलविक्रीडित-१,८,१०,१७,२२,२४,२९,
३१,३६,४१,४७,४९,५३,५६, ५७,५९,६०,६१,

स्रग्धरा- १३,२३,४२,

वसन्ततिलका- २,२६,४८,५२,

अनुष्टुप्- ९,१२,१४,५०,५४,५५,६३,६५,६७

रथोद्धता- १६,२१,२७,३२,३३,३४,

शिखरिणी- ४,१९,

प्रहर्षिणी- ३,

आर्या- ७,१८

प्रमिताक्षरा- १५,२८,३७,४०,

इन्द्रवज्रा- ४५,

गीति- ६;

मालिनी- ११,६२,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उपजाति-	२५,४४,४६,५८,६८
पृथ्वी-	३०,३५,५१
मन्दाक्रान्ता-	३८
मंजुभाषिणी-	३१,
शालिनी-	४३
वंशस्थ-	६४,

कवि ने प्रथम शिला में प्रहर्षिणी, इन्द्रवज्रा, गीति, मन्दाक्रान्ता, मञ्जुभाषिणी, शालिनी, वंशस्थ छन्दों का प्रयोग एक बार, शिखारिणी, आर्या, मालिनी का दो बार, स्रग्धरा, पृथ्वी का तीन बार, वसन्ततिलका, प्रमिताक्षरा का चार बार, उपजाति का पांच बार, रथोद्धता का छः बार, शार्दूलविक्रीडित और अनुष्टुप् छन्दों का प्रयोग विशेष किया है ।

द्वितीय शिला

इस प्रशस्ति की यह शिला कई वर्षो पूर्व ही नष्ट हो चुकी थी । बहुत छोटा सा अंश प्राप्त हुआ, ऐसे त्रुटित प्रस्तर खण्ड से वृत्त स्पष्टतया प्रतीत नहीं हो सकता है, सम्भवत: मेवाड़ के प्रमुख स्थानों का वर्णन होना चाहिए । प्रथम एवं तृतीय शिलालेखों में लिखे गये श्लोक संस्था के आधार पर इस द्वितीय शिला में श्लोक सं. ६९ से १२० तक कुल ५२ श्लोक लिखे होने चाहिए । प्राप्त इस शिला का अंश 'प्रताप संग्रहालय उदयपुर' में रखा हुआ है । इसमें अपूर्ण छः पंक्तियां हैं ।

तृतीय शिला

इस शिलापट्ट की चौड़ाई ३ फुट १ इंच और ऊंचाई ३ फुट ६ इंच तथा चारों ओर १ ॥" अलिखित हाशिये का भाग है । इसमें श्लोक सं. १२१ से १७९ पर्यन्त कुल ५९ श्लोक टंकित किये गये हैं । पद्य भाग की ४९ पंक्तियां खुदी हुई हैं । अक्षर सुन्दर आकार में सुवाच्य एवं स्पष्ट हैं ।

इस शिला में भी सन्धि दृष्टिगत नहीं होती है । यता-रभूत् + श्री जैत्रसिंहो (च्छ्री). श्लोक सं. १५४) 'ब' के स्थान पर 'व' लिखा गया है यथा अम्वाप्रसाद (श्लोक सं. १४२)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तृतीय शिला सारांश

इस शिलालेख की पट्टिका में श्लोक सं. १२१ से १२६ तक महारावल बापा का तथा उनके गुरु हारीत राशि का वर्णन है। बापा अपने गुरु हारीत राशि के चरणारविन्द की सेवा में रत रहता था। मेवाड़ के इष्टदेव भगवान् एकलिंग की आराधना और गुरु हारीत राशि के आशीर्वाद से बापा ने मेवाड़ का शासन अधिगत किया। इसके पश्चात् श्लोक सं. १२७ से १३३ तक बापा के पुत्र गुहिल के प्रताप एवं शौर्य का गुणगान किया गया है। अनन्तर श्लो. सं. १३४ से १३७ तक रावल खुम्माण के द्वारा अंग, बंग आदि अनेक प्रदेश को जीतने का तथा उसके पौरुष पूर्ण कार्यों का वर्णन दिया गया है।

इसके पश्चात् राजवर्णन प्रारम्भ होता है। गुहिल वंश में भोज नामक राजा हुआ, जिसके महेन्द्र, नाग, बापा(शील), पराजित, महेन्द्र भट्ट , कालभोज, खुम्माण, मत्तट, भर्तृपट्ट, अल्लट, नरवाहन, शालिवाहन और शक्तिकुमार आदि राजाओं से लेकर लखमसी (लक्ष्मणसिंह) पर्यन्त राजाओं के पुरुषार्थ का दिग्दर्शन किया गया है, यह वर्णन श्लोक सं. १३८ से १७९ तक सविस्तार से मिलता है।

इस प्रथम एवं तृतीय शिला का पं. अक्षयकीर्ति व्यास ने संपादन कर एपिग्राफिया इण्डिका में प्रकाशित करवाया।[१]

तृतीय शिला का वृत्तानुसारी विवरण:—

उपजाति-१२२,१२५,१३०,१३१,१३५,१५७,१६९,१७४,७६,१७७,

शार्दूलविक्रीडित-१२४,१३७,१५८,१६७,१७१

स्रग्धरा-१२३,१३४,१३६,१५५,१६२,१६८,१७८,

वसन्ततिलका-१२१,१२६,१२७,१३३,१६०,

मालिनी-१२९,१६०,१६१,१६३,१६४,१७२,

अनुष्टुप्-१२८,१३८-१४८, १५०,१५२,१५३,१६५,१७०,१७९,

आर्या-१४९,१५१,१५४,१७३,१७५,

हरिणी-१५६,

१. एग्रा.,भा.२४,पृ.३०४ से २८ तक।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चतुर्थ शिला

इस शिला पट्टिका पर श्लोक सं. १८० से २७० तक कुल ९१ श्लोक उत्कीर्ण हैं, जो ५१ पंक्तियों में है । अन्त में संवत् मिति गद्य भाग में दिया हुआ है । अक्षर औसतन २/५ इञ्च के लगभग हैं । शिला पर लिखित भाग करीब ३'९"×३" ।

ब के स्थान पर व खुदा हुआ है—विभेद श्लोक सं. १८२, वभूव श्लोक सं. १९६, पिवत् श्लोक सं. १९७, वलि श्लोक सं. २०५, व्राह्मणी श्लो.सं.२०९, व के स्थान पर ब उत्कीर्ण है—पराबधि श्लो.सं. २३३, बिख्यात श्लो.२४५, व्यजंनों का द्वित्व दिखलाया गया है—वर्णन प्रारम्भ करते समय लिखते हैं यथा-अथ वर्ण्णनम्, रद्दंड श्लोक सं. १९३, शिलापट्ट पर विसर्ग अंकित नहीं है—सुतवरैस्ते पूतै श्लोक सं.१ विसर्गभी कहीं कहीं अनावश्यक शिलालेख पर है:—

एवास्य धामः श्लोक संख्या-२५१ ।

उपर्युक्त व्याकरण की अशुद्धियां व के स्थान पर ब और ब के स्थान पर व कहीं विसर्ग का छूट जाना अधिक लग जाना व्यजंनों का द्वित्व रूप लिखा जाना आदि त्रुटियां सूत्रधार के द्वारा असावधानी से उत्कीर्ण होने के कारण ही दृष्टिगत होती है ।

चतुर्थशिला का सार

कुम्भलगढ़ प्रशस्ति के इस शिलालेख में श्लोक सं. १८०,१८१ में बापा रावल के वंशज पराक्रमी, वीरवर लक्ष्मणसिंह द्वारा तत्कालीन युद्ध में अपने सात पुत्रों सहित चित्तौड़ के रक्षार्थ प्राणों की आहुति देने का वर्णन है । मालवा के राजा गोगादेव को परास्त किया आदि विवरण है । श्लोक सं. १८२ से १८५ तक वैरियों के गज कुम्भस्थलों को विदीर्ण करने वाले अरिसिंह का उल्लेख है । श्लोक सं. १८५ से १९० पर्यन्त रणरंगधीर वीर राणा हम्मीर के पौरुष का विवेचन किया गया है । यह 'विषमघाटीपंचानन' की उपाधि से विभूषित हुआ । चेलवाट पर विजय प्राप्त की । ईश्वर आराधना में दत्तचित्त परम दानी था । श्लोक सं. १९१ से २०३ तक हमीर के पुत्र प्रतापी क्षेत्रसिंह (खेता) ने मालवा के स्वामी अमीशाह को युद्ध में ऐसा आहत किया कि स्वप्न में भी भय विह्वल होकर उसको देखता था, जैसे सांप मेढ़क को पकड़ता है, उस तरह अमीरशाह को पकड़ा । हाड़ावती (हाडौती) के राजा को जीतकर उसके प्रदेश को अपने अधीनस्थ किया । ऐल (ईडर) का अधिपति रणमल्ल शककुल की वनिताओं के वैधव्य की दीक्षा में दक्ष था, उसको

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भी क्षेत्रसिंह के बन्दीगृह में जहां सौ सौ नृपति पहले से विद्यमान थे, वहां बिछौना तक प्राप्त नहीं हुआ, जिसका उल्लेख है। श्लोक सं. २०४ से २१५ तक लक्षसिंह (लाखा) ने त्रिस्थली(गया, प्रयाग, काशी) को शक और यवन राजाओं द्वारा हिन्दुओं के धार्मिक तीर्थों पर लिये जाने वाले कर से मुक्त कराकर अनेक तुलादान किये। मेदो (मेरों)के पहाड़ी प्रदेश वर्धन (बदनोर) को अपने अधिकार में किया, उसका वर्णन दिया गया है। श्लोक सं. २१६ से २३२ पर्यन्त लक्षसिंह के पुत्र मोकल ने सपादलक्ष[१] को नष्ट किया। जालन्धर[२] वालों को कंपित किया। शाकंभरी (सांभर) को अपने अधीन किया तथा गुजरात के शासक सुलतान अहमदशाह (प्रथम) को युद्ध में पराजित किया, संभवतःइस अहमद को प्रशस्ति में यहां महंमद लिख दिया हो।[३] चित्तौड़ पर समाधीश्वर (शिव)मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया।

इसके अनन्तर श्लोक सं. २३३ से २७० पर्यन्त सविस्तार महाराणा कुम्भा द्वारा विभिन्न प्रदेशों के जीतने का विवरण दिया गया है। बंबावद (बेबावदा), मंडलकर (मांडलगढ़) हाडावटी (हाड़ोति) षटपुर (खटकड़) तथा वृन्दावती (बूंदी) आदि के राजाओं पर विजय प्राप्त की, उनके दुर्ग को अधिकृत कर उनसे कर प्राप्त किया, जिसका उल्लेख श्लोक सं. २६२ से २६४ तक किया गया है। सारङ्गपुर में अगणित यवन स्त्रियों को कारागृह में बन्दी किया। महंमद (महमूद) के महामद को दूर किया। उसके राज्य मालवा को भस्मसात् कर मुनि अगस्त्य की तरह अपने खड्गरूपी चुल्लू से मालवा समुद्र का पान कर गया। इस प्रकार से कुम्भकर्ण (कुंभा) के पौरुष का श्लोक सं. २७० पर्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है।

काव्यात्मक विशेषताएं

काव्य सौष्ठव की दृष्टि से यह रचना मेवाड़ के प्रशस्ति साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है। श्लेष अलंकार का चित्रण द्रष्टव्य है।

---

१. सपादलक्ष-नागौर का समीपवर्ती प्रदेश पहले सपादलक्ष कहलाता था। उ.रा. इति.भाग २, पृ. ५८५ ओझा टिप्पणी सं.६। इनका लेख-'राजपुताने के भिन्न भिन्न विभागों के प्राचीन नाम' ना.प्र.भा. ३ पृ. ११७-४०)

२. जालन्धर सामान्य रूप से त्रिगर्त (कांगड़ा, पंजाब में) प्रदेश का सूचक, किन्तु संभवतः यहां प्रशस्तिकार ने जालन्धर शब्द का प्रयोग जालोरके लिये किया हो। ओझा-वही पृ.सं.।

३. उ.रा.इति.भाग.२, पृ.५८६, ओझा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनो घिनोतु नो लीनोमीनो धीनो बु(ब) नो पिनो ।
विनोदनो मनोधानोऽहीनो ज्ञानो न नोदनो ॥ १४ ॥

श्लोक में न का अनुप्रास और अहीन अहि कालिय सर्प का नियन्त्रण करने वाला कृष्ण और (ईन:-ए र्लक्ष्म्या: इन: पति:) लक्ष्मी के पति विष्णु अर्थ होता है ।

धीरं नीरं कमलममलं मंजुला वंजुलाली,
स्फीतं गीतं मृदु मधुलिहां वीतशोकाश्च कोका: ।
यत्रागाधे सरसरसितं जृंभते सारसानां,
काम्यां याम्यां दिशमनुसर: शंकरात्तच्चकास्ति ।

र, ल,ज,स अक्षरों की पुनरावृत्ति से अनुप्रास की छटा मनोरम बन पड़ी है ।

निम्नलिखित श्लोक में कवि का अन्त्यानुप्रास वीर रस का परिचायक है ।

हम्मीरवीरो रणरंगधीरो वाङ्माधुरी तर्जितकेकिकीर: ।
धराधवालंकरणैकहीरस्तत्तद्घ्नी भूषित सिन्धुतीर: ॥ १८५ ॥
जवाली दवाली शिखावाच्छिखाली समालीढ़ भाली कराली प्रताली
गभीरांधकारं क्षणाधस्य संख्ये क्षिपत् क्षेप्यमन्यै:नयद्भूपदीपै: ॥ २५५ ॥

कवि का दृष्टान्त अंलकार अवलोकनीय है ।

नानादिभ्यो राजकन्या: समेत्य, क्षेणीपालं कुम्भकर्णं श्रयन्ते ।
सत्यं रत्नं जायते सागरादौ, युक्तं विष्णोर्वक्ष एवास्य धाम ॥ २५१ ॥

राणा कुम्भकर्ण का वक्ष और विष्णु के वक्ष का अवलम्बन दोनों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने से यह दृष्टान्त अलंकार का अच्छा उदाहरण है ।

कुम्भलगढ़ प्रशस्ति विषय वस्तु की दृष्टि से सुव्यवस्थित रूप में लिखी गई है । इसका इतिवृत्त क्रमबद्ध दिया हुआ है । विभिन्न राजाओं के शौर्य एवं पराक्रम का ओजस्वी भाषा में वर्णन करना तथा विभिन्न छन्दों में लिखा जाना उसके साहित्यिक महत्त्व को प्रदर्शित करता है । प्राचीन इतिहासकार श्यामलदास, ओझा, दूगड़ आदि ने अपने अपने इतिहास लेखन में इस प्रशस्ति के पर्याप्त उद्धरण देकर अपनी बात की पुष्टि की है । इस दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्त्व तो सर्वदा से बना रहा है, इसलिए यह प्रशस्ति साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से मेवाड़ के शिलालेखों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि.सं. १५१७ की कुम्भलगढ़ की इतर प्रशस्ति

उल्लिखित चारों कुम्भगढ़ 'प्रशस्ति की शिलाओं के अतिरिक्त एक शिला कुम्भगढ़ प्रशस्ति से सम्बन्धित मिली है, जो प्रताप संग्रहालय-उदयपुर के शिलालेखों में सं.६ पर विद्यमान है। इसमें कुल ६४ श्लोक उत्कीर्ण हैं। चतुर्थ पंक्ति में कुटिला नदी आदि का भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। मेदपाट वर्णन तथा चित्रकूट वर्णन श्लोक सं. ४४ वें से ६४ तक दिया गया है।[१] कुम्भलगढ़ प्रशस्ति के कुछ ही श्लोक छोड़कर शेष इसमें संकलित किये गये हैं। अन्त में इसकी तिथि "वि.सं. १५१७ वर्षे श्लोक १३८२ प्रवर्तमाने मार्गशीर्ष वदि ५ सोमे प्रशस्ति सम्पूर्ण श्री कुंभकर्ण मही महीन्द्र संस्थापित" दिया हुआ है।

शिलालेख का प्रारम्भिक भाग लगभग ३० पंक्तियों तक के अक्षर नष्ट हैं। किनारे पर ऊपर से नीचे तक पूरे अक्षर मिट चुके हैं। मध्य में स्थान स्थान पर शिला पर छोटे छोटे खड़े दृष्टिगोचर होते हैं जिससे विषयवस्तु नष्ट ही है।

कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़ की प्रशस्ति

महाराणा कुम्भा द्वारा अपार धन सम्पत्ति का व्यय कर कीर्ति स्तम्भ बनवाया गया, जो उसके यश को दिग् दिगन्त में विस्तारित कर रहा है। मालवा और गुजरात विजय के अनन्तर कुम्भा ने कीर्तिस्तम्भ का निर्माण अपने आराध्य देव विष्णु के निमित्त करवाया[२] भारतीय संस्कृति के प्रतीक विभिन्न देवी देवताओं की प्रतिमाएं कीर्ति-स्तम्भ की भित्तियों पर उत्कीर्ण है, जो संस्कृति के संरक्षकत्व, पोषक एवं अनुराग को स्पष्ट परिलक्षित करती है।

विजय-स्तम्भ के निर्माण के लगभग १० वर्ष पश्चात् इस पर महाराणा कुम्भा ने अपनी राजनीतिक सफलताओं तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख करने वाली एक प्रशस्ति बनवाई, इस प्रशस्ति को उत्कीर्ण कराने के लिए कई शिलाओं की आवश्यकता हुई।

---

१. तत् दुर्गं जयति वसुमति मंडलं भूरि भूमिम् ॥ ६४ ॥

२. राजुपताना म्यु.ए.रि. १९२१, पृ.५, राजवल्लभ मंडन-४-२०, उ.रा.इति. भाग.२, पृ.५९९ ओझा।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कार्य वि.सं. १५०५ माघ शुक्ला दशमी को पूर्ण हुआ ।[1] सम्बन्धित प्रशस्ति की पहली शिला में श्लोक सं १ से ४२ तक और अन्त की शिला में श्लोक सं. १२५ से १९२ तक उत्कीर्ण हैं । लगता है प्रशस्ति कुल चार शिलाओं पर खुदी हुई थी, जिनमें से दूसरी और तीसरी अब तक प्राप्त नहीं है । इस अनुमान का आधार यह है कि पहली शिलापर ४२ श्लोक हैं और बीच के ८२ श्लोक अर्थात् इसके लगभग दुगने इस समय अनुपलब्ध हैं । चौथी शिला जिसमें ६८ श्लोक हैं, पहली से कुछ बड़ी है । अवशिष्ट दोनों शिलाएं कीर्ति-स्तम्भ की गुम्बज (छतरी) में लगी हुई विद्यमान हैं । प्रशस्ति में महाराणा कुम्भा का वर्णन सविस्तार किया गया है । तृतीय व चतुर्थ श्लोक में कुम्भा ने विपक्षी राजाओं के गर्व को खर्वकर मांडव्यपुर (मंडोर) से हनुमान् की प्रतिमा लाकर कुम्भलगढ़ पर स्थापित की पंचम श्लोक में सपादलक्ष तथा शाकंभरी क्षेत्रों पर विजय प्राप्त करने एवं कर लेने तथा वहां निरन्तर वेदपाठ की व्यवस्था करने का वर्णन है । छठा श्लोक डीडवाना तथा नराणा क्षेत्रों के राजाओं से कर प्राप्त करने का उल्लेख करता है । श्लोक ८वें और ९ वें नष्ट-भ्रष्ट वसन्तपुर (सिरोहीजिले में) को फिर से बसाने और वहां पर अपने उपास्यदेव विष्णु के निर्मित सप्त सरोवर का निर्माण करवाने की ओर संकेत है । श्री एकलिंग मन्दिर के पूर्व की ओर परमआश्चर्यकारी कुंभ मंडप बनवाने का उल्लेख दशवें श्लोक में किया गया है । श्लोक ११ से १४ तक अर्बुदशैलराज (आबूपर्वत) पर वेगगामी अश्वारोहियों को लगाने, कुंभस्वामी के मन्दिर का निर्माण तथा वहां से लिए जाने वाले कर आदि का विवरण दिया गया है । १५ वें श्लोक में जगत् के पालनकर्ता विष्णु के जल विहारार्थ चार जलाश्य बनवाने का उल्लेख है ।

श्लोक सं. १६ से २५ तक गुजरात, मालवा, जागंलप्रदेश, घुंखराद्रि, और खंडेला जीतने का विस्तार से वर्णन किया गया है । कुंभा ने गुजरात और मालवा के सुलतानों का मद चूर्ण कर अनायास नागपुर (नागोर) पर आधिपत्य कर लिया । पेरोज (फिरोज) द्वारा निर्मित उच्च मस्जिद को भस्मीभूत कर दिया । दुर्ग को नष्ट

---

१. पुण्ये पंचदशे शते व्यपगते पंचाधिके वत्सरे,
माधे मासि वलक्षपक्षदशमी देवेज्यपुष्पायुधे ।
कीर्तिस्तम्भमकारयन्नरपतिः श्रीचित्र कूटाचले,
नानानिर्मितनिर्जरावतरणै मेंरो र्हसंतं श्रियम् ॥ १८६ ॥ की स्त.प्र.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

किया। खाइयों को पुन: भर दिया। गजों को छीन लिया। यवनियों को कारावास में डाल दिया। इस प्रकार छिन्न भिन्न कर नागोर को गोचर योग्य बना दिया। शम्सखां के रत्न संचित कोश से प्रचुरमात्रा में संम्पत्ति का अर्जन किया।

श्लोक सं. २६ से चित्तौड़ दुर्ग का सरस एवं सजीव चित्रण प्रारम्भ होता है महाराणा कुम्भा ने चित्तौड़ किले पर सुरम्य विशाल सरोवर बनवाये, जिसमें विकसित कमलों के सौन्दर्य की उपमा तीरागत रमणियों के मुखारविन्द से की गई है। तत्पश्चात् महाराणा ने दुर्ग पर असंख्य हेम कलशों से मण्डित, अखिल भू मण्डल के मुकुट स्वरूप कुम्भ स्वामी का मन्दिर बनवाया, जो कैलाश और सुमेरु पर्वत से अपना साम्य रखता है। क्या यह कैलास का प्रतिनिधित्व करता है? भूतभावन भवानी पति भगवान् शम्भु का अट्टाहास है? धवल चन्द्रिका का पुंज है अथवा पर्वतराज हिमालय का कर्णावतंस है। आदिवराह का मन्दिर, रामकुण्ड (बावड़ियां) जलयन्त्र (रहट) आदि कई रमणीय कौतुकपूर्ण वस्तुओं का भी निर्माण करवाया गया।

श्लोक सं. ३३ में गगन चुम्बी कीर्तिस्तम्भ के बनवाने का उल्लेख किया गया है। चित्तौड़ दुर्ग पर मनुष्यों के सुखपूर्वक जाने के लिए महाराणा कुंभा ने सुगम रथमार्ग का भी निर्माण करवाया।

प्रथम शिला के अन्तिम श्लोकों (३४-४२,१२५) में चित्तौड़ किले पर पहुंचते हुए मार्ग में रामरथ्या (रामपोल) हनुमान् गोपुर (हनुमानपोल)भैरवांक विशिखा (भैरव पोल) महालक्ष्मी रथ्या (महालक्ष्मी द्वार) चामुण्डाप्रतोली(चामुण्डाद्वार) ताराथ्या (तारापोल) और राजप्रतोली (राजद्वार) नामक विभिन्न बड़े बड़े द्वारों का निर्माण करवाये जाने का उल्लेख है।

श्लोक सं. ४३ से १२४ पर्यन्त की शिला नष्ट हो जाने के कारण विवरण नहीं दिया जा सका है। संभवत: अप्राप्त विवरण में राज प्रसादों आदि का वर्णन हो सकता है।

श्लोक सं. १२६ से १३७ तक कुम्भलमेरु(कुम्भलगढ़) का वर्णन दिया गया है, जिसमें प्राकार, गोपुर (द्वार) आदि का विस्तृत उल्लेख है। १४६ वें श्लोक में किसी विपक्षी दुर्ग से गजानन की प्रतिमा लाकर स्थापित करने का विवरण है। तदनन्तर कुम्भा के व्यक्तित्व एवं गुणों का निर्देश है, उसे राजगुरु दानगुरु और शैलगुरु कहा गया है। चारों दिशाओं के नृपति उसके चरणों में नत मस्तक रहते

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं। कुंभा ने अपने पिता के वैरियों को मारकर उनका प्रतिशोध लिया, जो १५० वें श्लोक में दिया हुआ है। उसके द्वारा गया तीर्थ को भी यवनशासकों के कर से मुक्त कराया गया (श्लोक सं. १५५)।

महाराणा कुम्भा प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने संगीत शास्त्र के अपूर्व ग्रन्थ संगीतराज का निर्माण किया। सूड प्रबन्ध की रचना की। चण्डी शतक और गीत गोविन्द की व्याख्या लिखी। कर्णाटकी, महाराष्ट्री आदि चार भाषाओं में चार नाटकों का रचियता कुम्भा, वेद, स्मृति, पुराण, उपनिष्द् मीमांसा, नाट्यशास्त्र, राजनीति, गणित, तर्क, व्याकरण और साहित्य शास्त्र, में निष्णात था। इसमें किंचित् मात्र भी संदेह नहीं कि उसके द्वारा रचित ये ग्रन्थ ही उसकी विद्वत्ता के पूर्ण परिचायक हैं। आगे के श्लोकों में कुम्भा के उत्कर्ष का वर्णन करते हुए उसे युद्ध में धीरोद्धत, संसद में धीरप्रशांत, मित्र तथा भूपति वर्ग में धीरोदात्त, और कान्ताओं के मध्य धीर ललित नायकों के गुणों से उपेत बताया गया है। परम पराक्रमी महाराणा कुंभा ने गुजरात और मालवा दोनों के सैन्यरूपी समुद्र का मन्थन किया, जिसका उल्लेख १७२ वें श्लोक में किया गया है। महाराणा कुम्भा अपने अनेक विरुदों के साथ तोडरमल्ल (तोडनमल्ल) विरुद भी रखता था। अश्वपति (हयेश) गजपति (हस्तीश) और नरपति (नरेश) ने तीनों विरुदों को धारण करने वाले राजाओं के बल को तोड़ने में मल्लवत् होने के कारण महीमहेन्द्र कुंभा अपने 'तोड़रमल्ल' विरुद को सार्थक करता था।

अन्त में कवि कुम्भकर्ण एवं कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति इन दोनों के लिए मंगल कामना करता है, चन्द्र, दिवाकर हिमालय, सागर एवं वसुन्धरा जब तक स्थित हैं तब तक दोनों अक्षुण्ण रहें। श्लोक सं. १८५ तथा १८७ से पता चलता है कि वि.सं. १५१५ चैत्र कृष्णा त्रयोदशी को कुंभलमेरु (कुंभलगढ़) की प्रतिष्ठा तथा वि.सं. १५०९ माघ शुक्ला पूर्णिमा को आबू अपने अधिकार में करने के अनन्तर अचलेश्वर के समीपवर्ती उच्चश्रृंग पर अचलदुर्ग की प्रतिष्ठा कराई गई।

प्रशस्ति का रचनाकाल

कवि के द्वारा प्राप्त शिलाओं में प्रशस्ति लेखन का समय अंकित नहीं किया गया है। पं. गौ.ही.ओझा ने उदयपुर राज्य के इतिहास में इसका रचना काल वि.सं.१५१७ मार्गशीर्ष कृष्णा ५ सोम दिया है[१] जो सम्भवत: प्रतिलिपित 'प्रशस्ति-संग्रह' नामक रा.प्रा. वि.प्र. उदयपुर के ग्रंन्थाक सं. ४५६ के आधार पर

१. 'प्रशस्ति-संग्रह' ग्रन्थ सं.४५६ रा.प्रा.वि.प्र.उदयपुर

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिया गया है । इस 'प्रशस्ति-संग्रह' को राणा राजसिंह (प्र.) के राज्य काल में वि.सं. १७२७ आषाढ़ कृष्ण १२ रविवार को शम्भु के पुत्र सदाशिव के द्वारा प्रतिलिपि करने का उल्लेख मिलता है ।[१] प्रतिलिपि कहां से की गई ? इसका कुछ भी विवरण नहीं दिया है ।

कवि ने कीर्ति स्तम्भ के सम्पूर्ण बन जाने का समय वि.सं.१५०५ माघ शुक्ला १०वीं अंकित किया है ।[२] इस तिथि से लेकर वि.सं. १५१७ तक कुल १२ वर्ष का लम्बा समय होता है । इतना लम्बा समय इस प्रशस्ति की रचना के लिए सर्वथा अधिक ही है । कीर्ति स्तम्भ के बनने के पश्चात् भी राणा कुंभा ने इसकी प्रशस्ति लिखने का आदेश कवि को दिया हो तो चार पांच वर्ष अनुमानतः वि.सं. १५१० तक बनकर तैयार हो सकती हैं । वि.सं. १५१० के पश्चात् शिलाओं पर उत्कीर्ण होने का कार्य प्रारम्भ हुआ हो और सभी तरह से शिलाएं तैयार होने के पश्चात् कुम्भा के द्वारा स्थापित की गई, जिसका उल्लेख प्रशस्ति संग्रह के अन्त में 'कुम्भकर्णेन स्थापिता' वि.सं. १५१७ उपर्युक्तानुसार लिखा हुआ है । इससे सिद्ध होता है कि यह तिथि उत्कीर्ण शिलाओं के स्थापन की है । प्रशस्ति-रचना का यह समय सम्भव नहीं हो सकता है ।

प्रशस्तिकार अत्रि और महेश

भृगुवंश में विद्वान् पं.सोमनाथ उत्पन्न हुए । उनका पुत्र वेदवेदान्त का वेत्ता नरहरि हुआ । उसके यशस्वी पुत्र केशव हुआ, जो अपने प्रखर पाण्डित्य के कारण झोटिंग उपनाम से विख्यात हुआ । केशव के पुत्र का नाम अत्रि था । वह न्याय, वेदान्त, मीमांसा और साहित्य शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित था । इसके द्वारा इस प्रशस्ति की रचना की गई । अत्रि ने इस प्रशस्ति को कहां तक लिखा ? इसका कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है कि इसको सम्पूर्ण करने का श्रेय अत्रि के पुत्र महेश कवि को मिला, जिसको राणा कुंभा ने दो हाथी देकर सम्मानित किया ।

काव्य सौष्ठव

सरस प्राञ्जल शब्दावली में ग्रथित वसन्ततिलका, उपजाति शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरादि विभिन्न छन्दों में निर्मित प्रशस्ति का विशिष्ट साहित्यिक महत्त्व है । इसका लेखक काव्य कला में कुशल, एक उच्च कोटि का

१. वही.
२. कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति, श्लोक सं. १८५ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि था। कुम्भा के वर्णन में उसको धीरोदात्त, धीरललितादि चारों नायकों के लक्षणों से युक्तियुक्त बतलाया।[१] मालवा और गुजरात के प्रति सैन्य प्रयाण का उल्लेख ओजस्वी भाषा में वीर रस से ओतप्रोत करना, ओज गुण का परिचायक है।

स्फूर्जद् गुर्जरदेशदाहनविधावुद्दामधूमावलीं,
यामुद्वेलवतीं व्यचीकरदिलां वेलावधिं सर्वतः।
यस्तस्यामुदजृम्भतः प्रियतमा धंमिल्लमंजुद्युति-
र्जानीमो गगनस्थलं मलिनिमा सोऽयं समालिंगति ॥ १६ ॥ की प्र.।

कुंभा की रानियों का अनुप्रासालंकार युक्त श्रृंगाररस से परिपूर्ण वर्णन प्रसाद एवं माधुर्य गुण का द्योतक है।

वेणीव्याजवलद् भुजंगललनालावण्यलीलालयान्,
सौन्दर्यामृतदीर्घिका परिलसन्नालीकनेत्रद्वया।
कुंभारंभकुचद्वयोपरिलसन्नामुक्त मुक्ता च या,
यस्यानंगकुतूहलैकपदवी कुंभल्लदेवी प्रिया ॥ १८० ॥ की प्र.

चित्तौड़ पर विद्यमान कुम्भस्वामी विष्णु मन्दिर का वर्णन सन्देह अलंकार में बड़ा ही चमत्कार पूर्ण हुआ है, जो द्रष्टव्य है।

कैलाशस्य प्रतिनिधिरिदं शंकरस्याट्टहास,
ज्योत्स्नाराशिः किमु हिमवतः कर्णिकाभूधरस्य।
इत्थं नानाविषयविषयं चित्रकूटस्य श्रृंगे,
रम्यं हर्म्यं व्यरचयदिलाधीश्वरचक्रपाणेः ॥ २९ ॥

कुम्भ स्वामी का यह मन्दिर क्या कैलाश का प्रतिनिधि है? क्या शंकर का अट्टहास है? क्या चन्द्र का ज्योत्स्ना पुंज है? अथवा हिमालय का कर्णाभरण है?

कवि की हृदयाकर्षक सरस उपमा का अवलोकन करिये:—

सरांसि यत्रातितरान् महंति, वहंति नीलारुणसारसाली।
विभाति तीरागतमानिनीनां, मुखारविन्दप्रतिमामिवात्र ॥ २७ ॥

---

१. कीर्त्तिस्तम्भ प्रशस्ति, श्लोक सं. १६५।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नवोढ़ा, मानिनी युवतियों के मुख की उपमा कमल से दी गई है । साहित्यिक महत्त्व के साथ कुम्भा द्वारा शाकंभरी(सांभर) डीडवाणा, नराणा आदि अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त कर वहां से कर प्राप्त करना, वेदों के अध्ययन की व्यवस्था करवाना, कुम्भलगढ़, कीर्तिस्तम्भ और अचल दुर्ग के निर्माण की तिथियां अंकित करना प्रशस्ति के ऐतिहासिक महत्त्व को प्रदर्शित करता है । इस प्रकार की यह प्रशस्ति साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दोंनो दृष्टियों से अपना वैशिष्ट्य रखती है, एवं कवि के वैदुष्य को प्रदर्शित करती है ।

वि.सं. १५४५ श्री एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति

अत्रि के पुत्र महेश्वर भट्ट (महेश) दशोरा ने राणा रायमल्लकालीन इस प्रशस्ति की रचना की । वि.सं. १५४५ चैत्र शुक्ला दशवीं गुरुवार को यह सम्पूर्ण रूप से उत्कीर्ण होकर तैयार हो गई, जो इसका रचना काल है ।[१] प्रशस्ति लेखक एवं उसके पूर्वजों का विस्तार पूर्वक परिचय पहले कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के वर्णन में दिया जा चुका है ।

कवि ने प्रभु एकलिंग और पार्वती का स्मरण कर मंगलाचरण किया है । अपने गर्व का परिहार करता हुआ राणा रायमल्ल की कृपा से रचना में प्रवृत्त होने के लिए बतलाया है । मेवाड़, चित्तौड़ और नागदा का वर्णन, हारीतराशि द्वारा बापा को राज्य प्राप्ति का वरदान, हम्मीर एवं क्षेत्रसिंह के विजय का वर्णन और श्री एकलिंगजी के लिये पनवाड़ गांव समर्पित किया, जिसका उल्लेख दिया गया है । लक्षसिंह ने हिन्दुओं के तीर्थ गया को यवन कर से मुक्त किया । लेखक के पूर्वज केशव को पीपली और धनेश्वर को पंचदेवला गांव दिया । लक्षसिंह के शासनकाल में जावर में चांदी जस्ता की खान का अन्वेषण हुआ । उसका पुत्र राणा मोकल बड़ा दानी था, एकलिंगजी को बांधनवाड़ा और रामा गांव-भेंट किये । महाराणा कुम्भा की विद्वत्ता और पराक्रम आदि का विशद वर्णन इसमें किया गया है । राणा रायमल्ल ने प्रशस्ति लेखक महेश को रतनखेड़ा गुरु गोपाल भट्ट को प्रहाण और थूर गांव दिये । नौवापुर गांव एकलिंग प्रभु को समर्पित किया । एकलिंग जी के मन्दिर का जीर्णोद्धार सूत्रधार अर्जुन के द्वारा करवाया गया, इस प्रकार का वर्णन दिया गया

१. एकलिंग दक्षिण द्वार प्रशस्ति श्लोक सं.९६ एवं
वत्सरे नृपति विक्रमात्ययात् बाणवेदशरभूमि संमिते ।
चैत्रशुक्लदशमी गुरुवारे पूर्णतामलभत स्तुतिपट्टिः ॥ ९९ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हैं। अन्त में यह प्रशस्ति 'यावच्चद्दिवाकर' राणा रायमल्ल के यश को अमर करे, इस मंगल कामना के साथ प्रशस्ति समाप्त की गई है। इसके पश्चात् और मेवाड़ी भाषा में उक्त संक्षिप्त विषयवस्तु उत्कीर्ण है।

काव्यात्मक दृष्टि से सरस सुबोध शैली में रचित यह प्रशस्ति विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। प्रारम्भ में एक मात्र पृथ्वी का रमणीयतम मेवाड़ का वर्णन सरस रूप में चित्रित हुआ है, जो द्रष्टव्य है।

अस्ति स्वस्तिमती सुपर्वजगती सौन्दर्यसर्वस्वभू-
र्भूरि श्रीर्महतीमहं विदधती श्रीमेदपाटावनिः।
भूवृन्दारकवृन्दमन्दिरशिरः स्फूर्जत् पताकोच्छलच्-
चेलांदोलनवीज्यमानतरणिर्विभ्राजि राजन्वती ॥ ६ ॥

वीर रस के वर्णन में अनुप्रास अलंकार का अच्छा चित्रण हुआ है, जो अवलोकनीय है।

कोणोकूणितकर्णधारविभवः श्रीमोकलोभूधवः,
प्रौढ़िं नावमुपेयुषो जलचरः पीरोजपृथ्वीभुजः।
स्कन्धावारमपारवारणमजद्वाजिव्रजव्याकुलं,
व्यावल्गत्तरवारिवारिणी रणाकूपारगर्भेऽक्षिपत् ॥ ४४ ॥

श्लोक में क,ण, व,र क्षरों की बार-बार आवृत्ति के कारण अनुप्रास अलंकार बन गया है।

इस प्रशस्ति के लेखक कवि महेश भट्ट का विशेष जीवन वृत्त एवं साहित्यिक मूल्यांकन कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के विवरण में दिया जा चुका है। मेवाड़ के संस्कृत-साहित्य के निर्माण में इस परिवार का महान् योगदान रहा, जिससे अत्यधिक साहित्य की अभिवृद्धि हुई।

वि.सं. १५५४ जावर की प्रशस्ति

महाराणा के कुम्भा की पुत्री रमाबाई का विवाह गिरनार के राजा मंडलीक के साथ हुआ था। मोहम्मद बेगड़ा ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उसे परास्त कर दिया और वह भी हिन्दू धर्म छोड़कर मुसलमान हो गया, इसलिए रमावाई मेवाड़ में चली आई, यहां उसे जावर नामक गांव जागीर में दिया हुआ था, जहां उसने रमास्वामी नामक मन्दिर और एक कुंड भी बनवाया, इससे सम्बन्धित प्रशस्ति

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महेश्वर कवि ने लिखी । मन्दिर की प्रतिष्ठा वि.सं. १५५४ के चैत्र शुक्ला ७ रविवार को करवाई गई ।

रमाबाई संगीत शास्त्र की विदुषी थी । भरतादि मुनियों द्वारा प्रणीत शास्त्रों का अच्छा ज्ञान था । प्रशस्ति को क्षेत्र खेता सूत्रधार के पुत्र मंडन और उसके पुत्र ईश्वर ने उत्कीर्ण किया ।

वि.सं. १५५६ चित्तौड़ का शिलालेख

प्रताप संग्रहालय उदयपुर के संख्या २३ पर यह बृहत् शिलालेख है । इसमें श्लोक सं. ८३ से १२८ तक है । इसके पूर्व का आलेख नष्ट एवं अप्राप्य है । श्लोक सं. १०८ से ११८ तक में जिनवर्धन, जिनहर्ष, जिनचन्द्र, विवेकरत्न आदि जैनमुनियों के पाण्डित्य को बतलाया गया है । महाराणा रायमल्लकालीन यह प्रशस्ति है । विवेकरत्नसूरि का शिष्य जयकीर्ति उपाध्याय रहा था । भण्डारी भोजा परिवार तथा कई जैन साधुसन्त हर्षोपाध्याय आदि के उपदेशों का संकेत दिया हुआ है । राजशीलन राजवीलन साधु ने इस प्रशस्ति को लिखा ?

वि.सं.१५५७ नारलाई गांव के आदिनाथ जैन मन्दिर का शिलालेख

यह लेख जोधपुर के गोडवाड़ जिले के नारलाई गांव के जैन मन्दिर (आदिनाथ) के स्तम्भ पर गद्य रूप में खुदा हुआ है । यह राणा रायमल्ल के शासन काल का है । उनके राजकुमार पृथ्वीराज के आदेश से सायर में निर्मित मन्दिर की देवकुलिकाओं का उद्धार करवाया और उपर्युक्त मन्दिर में भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा स्थापित की गई, जिसका वर्णन है ।

ऊकेश (ओसवाल) वंशी मंत्री सीहा और समदा एवं उनके कुटुम्बीजन मंत्री. कर्मसी, धारा, लाखा आदि ने उक्त कार्य करवाया ।

आचार्य श्री ईश्वरसूरि ने इस प्रशस्ति को वि.सं. १५५७ के वैशाख शुक्ला ६ शुक्रवार को लिखा और सूत्रधार सोमाक ने शिला पर खोदा था ।

प्रशस्ति को मूलरूप में कविराजा श्यामलदास ने वीरविनोद में प्रकाशित किया ।[१] और गौ.ही. ओझा ने स्वयं नारलाई जाकर उक्त संवत् का निश्चय कर अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में इसका उल्लेख किया है ।[२]

१. वीरवि.भा.१,पृ.४२४ श्यामलदास ।
२. उ.रा.इ., भाग.२ पृ.६५७ ओझा ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वि.सं. १७०० रामेश्वर प्रासाद प्रशस्ति

यह प्रशस्ति मथुरानाथ ने अरसी (अरिसिंह) के आदेश से उदयपुर में लिखी। अरिसिंह राणा राजसिंह के अनुज थे। सूत्रधार बाजू के पुत्र जोधा ने गगन-चुम्बी रामेश्वरप्रासाद बनाया। अन्त में सम्बन्धित प्रशस्ति वि.सं. १७०० का माघ शुक्ला १२ गुरुवार को लिखी गई और अरसीजी की घाय का देवरा (मन्दिर)का कार्य संपूर्ण कराया गया। प्रशस्ति में कुल श्लोक संख्या २३ हैं।[१]

प्रथम श्लोक में रामेश्वर की वन्दना है। द्वितीय श्लोक से सूर्यवंशी उदयपुर के राणा उदयसिंह से लेकर राजसिंह पर्यन्त राणाओं के यश एवं पराक्रम के साथ उपर्युक्त उल्लेख किया है।

वि.सं. १७०४ औंकारनाथ की प्रशस्ति

राणा जगत्सिह (प्र.) ने वि.सं. १७०४ में मांघाता (औंकारेश्वर) जाकर मुक्ता, रत्न और स्वर्ण से उनकी महापूजा की एवं आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के रविपर्व पर स्वर्णतुलादान किया।

प्रशस्ति के आरम्भ में शंकर महादेव और श्रीराम का स्मरण किया गया है। शिवदत्त राजा के वंशज बापा और राहप हुए, यहां से लेकर राणा जगत्सिह तक वंशावली दी गई है।

प्रशस्ति में कुल चौदह श्लोक हैं। सूत्रधार माना, मुकुन्द, भूधर, पंचोली कल्ला और उसके पुत्र 'सुजरण' के नाम दिये हुए हैं।

वि.सं. १७०९ जगन्नाथराय (जगदीश) मन्दिर उदयपुर की प्रशस्ति

यह प्रशस्ति जगदीश मन्दिर उदयपुर के मण्डप द्वार के दोनों ओर चार बड़ी काली शिलाओं पर उत्कीर्ण है। सुन्दर अक्षराकृति में उत्कीर्ण है। एक शिला के टूटने से दस खण्ड हो गये है, इसमें उत्कीर्ण कार्य भी सुन्दर रूप में नहीं हुआ है।

---

१. अरसीभूप निदेशादुदयपुरे लेखिता कविना।
मथुरानाथेयं प्रशस्ति निर्माणपटु मतिना ॥ २३ ॥
हयशतचन्द्र मितेब्दे तपसि च मासे तथासिते पक्षे।
रविमित दिवसे सगुरौसंपूर्णो देवलयासीत् ॥ २९ ॥
वसुंधराधीश निदेशनाद्यो रामेश्वरस्योदयराजधान्याम्।
वाजूतनूजः किल जोधनामा प्रासादमभ्रंदलिहमाततान ॥ २३ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राणा जगत्सिंह (प्र.) का श्लाघात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है, राणा जगत्सिंह के पुत्र राजसिंह का विस्तार से इतिवृत्त दिया हुआ है सम्भवतः यह शिला बाद में तैयार कर लगाई गई हो । संस्कृत भाषा में शुद्ध परिष्कृत रूप में लिखी गई इस प्रशस्ति में अशुद्धियां नहीं है, जो कुछ भी अशुद्धियां न को ब (क व च १-११) अथवा विसर्ग, अनुस्वार छूट जाना अधिक लग जाना आदि सूत्रधार के अज्ञान का कारण ही हो सकता है ।

इस प्रशस्ति का रचयिता लक्ष्मीनाथ भट्ट था, जो कठौंडी ग्राम का निवासी तैलंग ब्राह्मण था । उसके पिता का नाम श्रीकृष्ण भट्ट था । कवि ने अपने पूर्वजों का उल्लेख भास्कर, माधव, रामचन्द्र सर्वेश्वर, लक्ष्मीनाथ रामचन्द्र और श्री कृष्ण भट्ट इस क्रम से दिया है ।[1] प्रशस्ति में वर्णित विषय वस्तु इस प्रकार है ।

शिला प्रथम संक्षिप्त विषयवस्तु

इसमें गणपति, शिव और दुर्गा का स्मरण कर कवि ने मंगलाचरण के पश्चात् मेवाड़ राणाओं की वंशावली रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र से आरम्भ की है । इस वंश में बापा हुआ । बापा शब्द की विशिष्ट व्युत्पति बतलाई गई है, यथा यह संसार जिस वायु (प्राणवायु) से अभिव्यक्त है, अर्थात् जिससे संसार के प्राणिमात्र जीवित हैं, रक्षित हैं, (वातीति वायुः, या रक्षणार्थक घातु से पातीति 'पा'-वापा) इसी तरह रावल शब्द के लिए भी कवि ने बतलाया है 'रा' अक्षर आगमन के अर्थ में दक्षिण में प्रयुक्त होता है । बल में महाबलिष्ठ वापा माना गया है, जिसको राज्य देने के लिए मेदपाट (मेवाड़) में श्रीएकलिंग ने बुलाया (रावं लातीति) रावलति-आह्वयति) । कवि ने इनके पूर्वज पद्मादित्य का दक्षिण में जाना लिखा है । इस व्युत्पति के अनुसार तब से लेकर उसके वंशज रावल इस शब्द से अभिहित हुए ।[2] इसके अनन्तर इस

---

१. राणा श्रीमज्जगत्सिंहप्रशस्ति कृष्णसूनुना ।
कठौड़ी ग्राम तैलंग लक्ष्मीनाथेन तन्यते ॥ ४ ॥ शिलाप्रथम ।
श्रीमद्भास्करपुत्रमाधवसुत श्रीरामचन्द्रोद्भवः
श्रीसर्वेश्वर भट्टसूनुरभवत् पूर्वस्थ लक्ष्मीपदः,
नाथस्तत्सुत रामचन्द्र तनुज श्री कृष्णभट्टांगभू ।
लक्ष्मीनाथ कृता प्रशस्तिरतुला दद्यात् सतां मंगलम् ॥ ४४ ॥ शिला तृतीय ।

२. बापाभिधोयोऽजनि मेदपाटे तस्यान्ववाये शिवदत्त राज्यः ।
संग्रामभूमौ पटुसिंह रावं लातीत्यतो 'रावल' इत्यभाणि ॥ ७ ॥
वातीति यस्मात् त्रिजगत् सुनित्यं वा शब्द वाच्यः किल तेन वायुः ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रावल वंश में राणा राहप हुआ, जिसने राणा शब्द (रणे साधुः इति) को चरितार्थ किया । राहप से लेकर जगत्सिंह (प्र.) तक वंशावली दी गई है । कुम्भलगढ़ का निर्माण, महाराणा संग्रामसिंह(सांगा) की ऐतिहासिक विजय, वि.सं. १६८४ वैशाख शुक्ला पंचमी को राणा जगत्सिंह (प्र.) का राज्याभिषेक हुआ, डूंगरपुर रावल पुंजराज (पूंजा) की पराजय आदि का इतिवृत्त बांसठ श्लोकों में इस शिला में अंकित किया गया है । पश्चात् तीन श्लोक सूत्रधार विषयक हैं ।

शिला द्वितीय

राणा जगतसिंह ने अपने राजपुरोहित के परामर्श से मांधाता (औंकारेश्वर) की तीर्थ यात्रा की । ब्राह्मणों को प्रुचर दान दक्षिणा देकर सम्मानित किया । पुण्य सलिला रेवा (नर्मदा) और कावेरी में अपने राजकुमारों सहित स्नान किया । वि.सं. १७०६ में सूर्यग्रहण के अवसर पर स्वर्णतुलादान एवं उज्जयिनी में महाकालेश्वर के दर्शन किये । पतित पावनी शिप्रा के तट पर स्नान कर द्विजों को दान दिया आदि राणा जगत्सिंह के द्वारा किये गये दान पुण्यादि का विवरण दिया गया है, जिसका उल्लेख राजप्रशस्ति में भी दिया जा चुका है । इस तरह शिला में श्लोक संख्या तरेसठ से लेकर श्लो.सं. एक सौ इक्कीस तक वर्णन किया गया है ।

शिला तृतीय

इसमें जगदीश मन्दिर के निर्माण, मन्दिर की प्रतिष्ठा महोत्सव, राणा जगत्सिंह द्वारा कल्पलता, हिरण्याश्व नामक दान सहस्त्रों गायें, ग्राम दान, बहुमूल्य वस्त्राभरणादि दिये गये सभी का विस्तार से वर्णन किया गया है । जगत्सिंह के पितामह अमरसिंह पिता कर्णसिंह के द्वारा निर्मित राजप्रासादों का उल्लेख है । जगत्सिंह ने पिछोला में मोहन मन्दिर,श्रीएकलिंगजी(कैलासपुरी) में राष्ट्रसेना (राठासेनी) देवी का मन्दिर, केलि मन्दिर, आहड़ में रूपसागर बनवाये, जिनका इतिवृत्त दिया गया है । राणा उदयसिंह द्वारा बनवाये गये उदयसागर तथा जावर में विद्यमान अम्बिका देवी का उल्लेख किया गया है । यह विवरण कुछ अड़तालीस

तं प्राणवायुं जगतीतलेऽस्मिन यत् पाति 'वापा' इति तेन जातः ॥ ८ ॥
आगच्छ शब्दे किल दक्षिणस्यां 'रा' शब्द एव क्रियते जनेन ।
बलेति संबुध्य महाबलिष्ठं वापा' नृपं तं किल दाक्षिणात्यम् ॥ ९ ॥
राज्यं प्रदातुं पटुमेदपाटे यद्रावलेत्याह्वयदेकलिंगः ।
ततः प्रभृत्यस्य नृपस्य वंश्या दधुस्तदारव्यां भुवि रावलेति ॥ १० ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

श्लोकों में है । तथा मन्दिर के निर्माण कार्य के अधिकारी पंचोली अर्जुन का वृत्त दिया हुआ है ।

शिला चतुर्थ

इसमें पुनः बापा के उल्लेख के साथ राणा राहप से लेकर राजसिंह (प्र.) तक वंशवृक्ष दिया गया है । राजसिंह का राज्याभिषेक, उसके यश, प्रताप शौर्योदार्यादि का विस्तार से विवेचन हुआ है, वंशावली की पुनरावृत्ति करने से विदित होता है कि यह शिला राणा राजसिंह के राज्यकाल में तैयार कर लगवाई गई है । इसमें श्लोक संख्या भी पुनः एक से लेकर सैंतालिस तक उक्त विषय वस्तु की दी है तथा बाद के पांच श्लोक सूत्रधार से सम्बन्धित है ।

राणा जगत्सिंह ने अत्यधिक द्रव्य व्यय कर राजप्रासाद के उत्तर की ओर इस मन्दिर का निर्माण करवाया । यह मन्दिर गूगावत पंचोली अर्जुन के निरीक्षण में बना । भंगोरा जाति के सूत्रधार मुकुन्द तथा अनुज भूधर ने इस मन्दिर को बनाया । मुकुन्द के पिता का नाम भाणा था । मन्दिर की प्रतिष्ठा वि.सं. १७०९ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के शुभपर्व पर कराई गई । राणा ने इस महोत्सव पर अनेक दान पुण्य किया । सूत्रधार मुकुन्द और भूधर को स्वर्ण तथा रजत के निर्मित गज़ मापने के लिए दिये गये और देवड़ा ग्राम भी दिया ।

स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, उपजाति, अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, गीति, शिखरिणी, शालिनी आदि विविध छन्दों में प्रशस्ति का निर्माण हुआ है । ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण इस कृति का साहित्यकि सौन्दर्य भी दर्शनीय है । अनुप्रास अलंकार से युक्त कवि का निम्न श्लोक अत्यन्त चमत्कार जनक है ।

भवानीभयभृद्भुभृद्भुजंगभजनाभृतः ।
भवतो भवतो भूयात् भव्यं भव्यं भवे भवे ।। २ ।। शि.प्र.

पद्य में भ, व, और य अक्षरों की पुनरावृत्ति से कवि प्रयुक्त अनुप्रास अलंकार उसके वैदुष्य का प्रतीक है ।

वि.सं. १७३३ त्रिमुखी वापी की प्रशस्ति

महाराणा राजसिंह की राजमहिषी रामरसदे ने देवारी के पास जया नामक वापी का निर्माण राणा की आज्ञा से करवाया, जो वि.सं. १७३२ माघ शुक्ला द्वितीया गुरुवार को पूर्ण हुआ तथा राजप्रशस्ति कर्ता रणछोड़ भट्ट ने इस वापी की प्रशस्ति कुल साठ श्लोकों में लिखी एवं प्रतिष्ठा वि.सं. १७३३ वैशाख शुक्ला बुध को

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सम्पन्न हुई । इस समय यह वापी त्रिमुखी बावड़ी के नाम से विख्यात है, जो उदयपुर से पूर्व की ओर देवारी गांव के समीप ही है ।[१]

राजपुरोहित गरीबदास ने वापी की प्रतिष्ठा करवाई । रानी ने बड़े उत्साह के साथ इस अवसर पर हरिराम, जयदेव, कह्न, भाना भट्ट और कृष्ण ब्राहणों को गौ एवं भूमिदान किया । इस वापी के बनवाने में २४००० रुपये व्यय हुए ।[२]

प्रशस्ति के प्रारम्भिक दो श्लोक में देवी और चतुर्भुजधारी विष्णु की स्तुति की गई है । कवि वंशवर्णन बापारावल से आरम्भ करता है । उसके वंश में राहप सर्वप्रथम राणा पदवी धारण करने वाला हुआ । उसके हरसू,नरू, जसकर्ण क्रमशः हुए । राजसिंह पर्यन्त वंशवृक्ष बताया गया है ।[३]

राणा राजसिंह और पिता राणा जगतसिंह के द्वारा विविध दान पुण्य मन्दिर और तड़ागों का निर्माण, वैवाहिक सम्बन्ध विषयक जो वृन्तान्त इस प्रशस्ति में दिया गया है, यह सब राजप्रशस्ति में मिलता है ।[४] अजमेर जिले के परमार रायसल की

---

१. श्रीरामरसदे सृष्टा वापी वर्णन सुंदरी ।
कुर्वे प्रशस्तिः शस्ता श्रीराजसिंह नृपाज्ञया ॥ ३ ॥
सेयं श्रीराजसिंहस्य राज्ञी सौभाग्यसुन्दरी ।
श्रीरामरसदे नाम्नी जयति क्षितिमंडले ॥ ४६ ॥
दहबारी महाघट्टे शाला श्लष्टे विशंकटे ।
जयावहा जयानाम्नी वापी पाप प्रणाशिनी ॥ ४९ ॥
विदधेराजसिंहस्य प्राणाधिकमहाप्रिया ।
अभिरामगुणैर्युक्ता श्रीरामरसदेवधूः ॥ ५० ॥
शते सप्तदशेपूर्णे वर्षेद्वात्रिंदाह्वये
माघे धवलपक्षे च द्वितीयायां बहृस्पतौ ॥ ५१ ॥

२. श्रीमान् गरीबदासाख्य पुरोहित शिरोमणिः,
प्रतिष्ठितप्रतिष्ठायां वाप्या रचितवान् विधिः ॥ ५२ ॥
श्रीराजसिंहदेवेन साधिता हितकारिणी ।
वापि प्रतिष्ठा विदधे श्रीरामरसदे वूधः ॥ ५३-५८ ॥
सहस्त्रै रुप्यमुद्राणां चतुर्विंशतिसंमितः ।
एकाग्रैः पूर्णतां प्राप्तं वापी कार्यमहाभ्दुतम् ॥ ६० ॥

३. त्रिमुखी वापिका की प्रशस्ति-श्लो. १-१९ ।

४. त्रि.वा.प्र. श्लोक-२० से ३९ पर्यन्त ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रपौत्री जुझारसिंह की पौत्री पृथ्वीसिंह की पुत्री रामरसदे ने वि.सं. १७३२ में उक्त बावड़ी का निर्माण करवाया ।[१] जैसे दशरथ के सुमित्रा चन्द्र के रोहिणी, दिलीप के सुदक्षिणा थी, वैसे ही राणा राजसिंह के लिए पातिव्रत्य की पुण्यमूर्ति रामरसदे थी । दोनों को कवि चिरकाल तक जीवित रहने के लिए आशीर्वाद प्रदान करता है ।[२]

राजप्रशस्ति और इस प्रशस्ति का लेखक एक ही कवि रणछोड़ भट्ट है । कवि ने दोनों में दी गई वंशावली में अन्तर कर दिया । राजप्रशस्ति में राहप का पुत्र नरपति उसके जसकर्ण दिया हुआ है । इसके विपरीत इस प्रशस्ति में राहप का पुत्र हरसू उसके नरू लिखा हुआ है । रणछोड़ भट्ट ने अपनी पृथग् कृतियों में भिन्न भिन्न विवरण क्यों दिया ? यह विचारणीय है ।

यह प्रशस्ति अधिकांशतः अनुष्टुप छन्द में लिखी गई है । अन्त में राजसिंह महीपति की जाया रामरसदे ने वापिका का निर्माण करवाया, प्रशस्ति रणछोड़ भट्ट ने लिखी । लाल चैचाणी धाभाई शतीदास की बधू चन्द्रकुंवरं, रामचन्द्र, साहलाला, पोरवाड़ गजधर, नाथू, गोड़ भूधर आदि नाम गद्य में देकर प्रशस्ति समाप्त की गई है ।

वि.सं. १७३४, जनासागर (बड़ी का तालाब) की प्रशस्ति

राणा राजसिंह ने अपनी माता धर्मनिष्ठा, विष्णु पूजा परायणा जनादेवी (कर्मेती) की स्मृति में जो मेडितया राठोड़ राजसिंह की पुत्री थी, उसके नाम से उदयपुर से पश्चिम की ओर बड़ी गांव के समीप जनासगर का निर्माण करवाया । महादानी राणा जगत्सिंह की भार्या जनादे सीता लक्ष्मी, गौरी, लोपामुद्रा और शची के गुणानुवर्तिनी थी ।

इस सरोवर का निर्माण कार्य वि.सं. १७२५ के माघ शुक्ला दशमी को पूर्ण हुआ । इसके निर्माण कार्य, प्रतिष्ठा, दान, पुण्यादि में सभी मिला कर २६१००० रुपये व्यय हुए ।

राणा राजसिंह के आदेशानुसार इस प्रशस्ति का रचयिता कठौडी कुल मंडन तैलंग जाति तिलक श्री कृष्ण भट्ट का पुत्र लक्ष्मीनाथ था, इसके द्वारा विरचित जगदीश मन्दिर की प्रशस्ति में इसका विशेष जीवन वृत्त दिया गया है । यह प्रशस्ति

---

१. ओझा उ.रा.इ.भा.२,पृ.८८५

२. त्रि.वा.प्र.-श्लोक ४०-४९ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसने वि.सं. १७३४ वैशाख कृष्णा त्रयोदशी को समाप्त कर दी थी। इसका मूलपाठ कविराजा श्यामलदास ने वीर विनोद में प्रकाशित किया है।[१]

वि.सं. १७७० उदयपुर (दक्षिणा मूर्ति महादेव) की प्रशस्ति

यह लेख उदयपुर बड़ीपाल के पीछे दक्षिणा मूर्ति नामक शिवालय के वहां उत्कीर्ण है। प्रशस्ति में वि.सं. १७७० चैत्र शुक्ला पूर्णिमा इस लेख का समय अंकित है।

राणा संग्रामसिंह (द्वि) के शासन काल में वैद्यनाथ महादेव के मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई, उससे सम्बन्धित प्रशस्ति में मंत्र शास्त्र के विद्वान् दक्षिणा मूर्ति नामक ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है। उसकी प्रेरणा से राणा संग्रामसिंह ने शिवालय एवं वापी बनवाकर मन्दिर में भगवान् की उक्त समय में प्रतिष्ठा की इसलिये इसका नामकरण भी दक्षिणा मूर्ति के नाम से किया गया और उस स्थान पर प्रशस्ति लगवाई गई। यह प्रशस्ति कुल अठ्ठारह श्लोकों में रचित है एवं उसका मूलपाठ कविराजा ने वीर-विनोद में प्रकाशित किया है।[२]

वि.सं. १७७५ वैद्यनाथ प्रासाद प्रशस्ति

वैद्यनाथ महादेव का मन्दिर उदयपुर से पश्चिम की ओर लगभग छः कि. मी. दूर सीसारमा गांव में है, जो वास्तु एवं शिल्पकला की दृष्टि से अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। मन्दिर के मंडप के प्रवेश द्वार में ही दाई ओर दीवार पर उक्त मन्दिर की प्रशस्ति लगी हुई है। यह प्रशस्ति कुल १०६ पंक्तियों में लिखी गई है।

प्रशस्ति की विषयवस्तु वंशवर्णन, संग्रामसिंह पट्टाभिषेक, दान, चाहुवाणोद्भव तथा प्रतिष्ठा प्रकरण नामक पांच प्रकरणों में विभक्त है। वैद्यनाथ महादेव के मन्दिर की प्रतिष्ठा राणा संग्रामसिंह द्वि. राज्याभिषेकोत्सव वि. सं. १७६७ ज्ये. शुक्ला पंचमी-गुरुवार के पश्चात् वि.सं. १७७२ माघ शुक्ला द्वादशी गुरुवार

---

१. तैलंगज्ञातितिलकं कठौडीकुल मंडनम् ॥४॥
श्रीमंतंमिसरं कृष्णभट्ट वंदे प्रतिक्षणम् ॥४॥
महाराणाधिराजश्रीराजसिंह निदेशतः।
लक्ष्मीनाथ कविः कुर्वे जगासागरवर्णनम् ॥५॥
वी वि,भा.२,पृ.६३५-३७।

२. विवि.भा.२,पृ.११६५।

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की हुई । तदनन्तर यह प्रशस्ति वि.सं. १७७५ ज्ये. कृ. तृतीया को रूप भट्ट के द्वारा प्रतिलिपि की गई ।[१]

कवि प्रारम्भ में शिव, गणपति, सरस्वती एवं एकलिंग स्वामी का स्मरण कर मंगलाचरण करता है । प्रशस्ति में हारीत और बापा के उल्लेख के पश्चात् राणा राहप का यशोगान अमरसिंह (द्वि) पर्यन्त वंशवृक्ष दिया हैं ।

द्वितीय प्रकरण में राजपुरोहित सुखाराम ने अमरसिंह (द्वि.) के पुत्र संग्रामसिंह (द्वि.) का राज्यपट्टाभिषेक विधि विधान पूर्वक किया । पश्चात् राणा ने अपने नाम वाले रावल संग्रामसिंह को मेवातियों के दमनार्थ भेजा, वहाँ दलेलखां को मारकर स्वर्गवासी हुआ । राणा का प्रधानामात्य बिहारीदास ज्ञान मान का धनी था, जिसका उल्लेख किया गया है ।

तृतीय प्रकरण में राणा संग्रामसिंह के सौजन्य, औदार्यादि गुणों का उत्कर्ष बतलाते हुए उनके द्वारा दिये गये दानों का विवरण प्रस्तुत किया है । राणा के आश्रय में रहने वाले मंत्रशास्त्र का पं दक्षिणामूर्ति, वैद्य मंगल, विधिवेत्ता वाराणसी निवासी दिनकर, भट्ट सुखानन्द, याज्ञिक पुण्डरीक और देवराम, ज्योतिषी कमलाकान्त आदि विद्वानों को स्वर्ण गज,गौ,रथ, एवं ग्राम दानादि यथानुरूप देकर पुरस्कृत किया, जिनका विवरण मिलता है ।

चतुर्थ प्रकरण में राणा की जननी चहुवाणवंशीया देवकुमारी के पितृवंश का विस्तार से वर्णन किया गया है । चहुवाण (चौहाण) की उत्पत्ति विषयक गाथा प्रस्तुत की गई है । देवकुमारी के पितृवंश में चतुरंग चहवाणं, संग्रामराव, प्रतापराव, बलचन्द्र, रामचन्द्र, सबलसिंह और सुलतानसिंह उत्पन्न हुए । देवकुमारी के पिता का नाम सुलतानसिंह था । संग्रामराव को मेवाड़ के राणा ने अपने राज्य में निवास करने के लिए आमन्त्रित किया था । राणा जयसिंह के पुत्र अमरसिंह (द्वि.) के साथ देवकुमारी का पाणिग्रहण हुआ । उनके पुत्र संग्रामसिंह ने इन्द्र के समान शासन किया । राजमाता देवकुमारी परम उदारहृदया थीं, जिसने पिछोला के पश्चिमीय तटवर्ती श्रीशारमा (श्रीश: यत्रआरमते-श्रीशारम:) सीसारमा ग्राम में बैद्यनाथ महादेव के भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया । तीन वार रजत तुलादान किया । श्रीनिवास उपनाम राम को शिलालय में पूजा के लिए नियुक्त किया । इस तरह कवि ने

१. वैद्यनाथ प्र.श्लो. सं.५० संग्रामसिंह पप्र.श्लोक सं. १८ प्रतिष्ठा प्र.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजमाता देवकुमारी के पितृवंश इसके सौहाद्रपूर्ण उदार व्यक्तित्व का परिचय दिया है।

पंचम प्रकरणान्तर्गत वैद्यनाथ महादेव के मन्दिर की प्रतिष्ठा कार्य राजपुरोहित सुखाराम ने विधिविधानतः सम्पादित किया। पुरोहित के परामर्शानुसार राजमाता ने अनेक दानों के साथ इस शुभपर्व पर चौथा रजततुलादान किया ऐसे पुण्यतम महोत्सव पर मंगलवाद्यों के निनाद से दिशाएं मुखरित हो उठी। वाराणसी का प्रकाण्ड विद्वान् चेन्दु(चन्दु, चेरू ?) आदि गण्यमान्य मनीषि तथा कोटा नरेश भीम, डूंगरपुर का अधिपति रावल रामसिंह इस प्रतिष्ठा महोत्सव के दर्शनार्थ उपस्थित थे। मंत्री हरजी अपने कार्य में रत था। राजमाता की विश्वसनीया परिचारिका प्रेमा थी। उसका पुत्र ऊदा कार्य मे दक्ष था। इस विवरण के साथ अन्त में इसके लेखक हरिश्चन्द्र के द्वारा वैद्यनाथाष्टक के उल्लेख के साथ लिपिक रूपजी भट्ट का नाम निर्दिष्ट है।

आद्योपान्त यह एक विशुद्ध ऐतिहासिक काव्य है। वंशवर्णन एवं तत्कालीन घटनाएं इतिहास सम्मत है। मेवाड़ राजवंश के इष्टदेव प्रभु एकलिंग है, बापा और हारीत शिव भक्त थे। राहप ने सर्व प्रथम राणा पदवी अधिगत की उसके पश्चात् सभी राणाओं ने अपनाई। राजमाता देवकुमारी के पितृवंश का सविस्तार वर्णन आदि इसके ऐतिहासिक महत्त्व को प्रदर्शित करते हैं। इसके साथ ही यह रचना काव्य सौष्ठव की दृष्टि से उपादेय है। प्रशस्ति काव्य में भारवी के किरातार्जुनीय श्लोकों की प्रतिच्छाया परिलक्षित है, जो द्रष्टव्य है, यथा:—

सदादुकूलेति किरातपद्यमस्मिन् द्वये सार्थकतामवाप्तम्।
सदानुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः॥ १-४॥

कविराजा ने इसका सर्वप्रथम मूलपाठ वीरविनोद में प्रकाशित किया। पश्चात् श्री परमेश्वर सोलंकी का उसके ऐतिहासिक महत्त्व पर 'वरदा' में लेख प्रकाशित हुआ,किन्तु इसके रचयिता के विषय में निश्चित निर्णय पर नहीं पहुंच पाये। ऐसा माना जाता रहा है कि कोई भी लेखकगण अपने काव्य के साथ इतर विद्वानों की रचना का समावेश देता हो ऐसा नहीं देखा गया है, इस दृष्टिकोण से स्पष्ट है कि अन्त में वैद्यनाथाष्टक में कवि ने अपना नाम हरिशचन्द्र दिया है, इसलिये वह इस प्रशस्ति का कर्ता हो सकता है, अन्यथा अपनी रचना को एक दूसरे अपने काव्य के साथ उत्कीर्ण करवाने के लिए क्यों सहमत होते ? यह एक विचारणीय

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बात हैं। प्रशस्ति काव्य ऐतिहासिक एवं साहित्यिक दोनों पक्षों से अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।

वि.सं. १७९० उदयपुर (श्री हरबेन के द्वारा निर्मित शिवालय) की प्रशस्ति

यह प्रशस्ति श्री हरबेन के द्वारा बनवाये गये शिवालय के प्रमुख द्वार के दोनों ओर काले पत्थर पर उत्कीर्ण है। इसमें कुल ३० श्लोक हैं। प्रशस्ति का लेखक रामकृष्ण भट्ट था। इसके पिता का नाम रूपभट्ट दिया हुआ है। इस शिव मन्दिर का प्रतिष्ठा कार्य वि.सं. १७९० वैशाख शुक्ला त्रयोदशी को हुआ।

प्रशस्ति में शिव की स्तुति के पश्चात् उदयपुर के संस्थापक राणा उदयसिंह से लेकर जगत्सिंह (द्वि.) तक वंशावली देकर राणाओं के गुणों का आख्यान किया गया है। राणा जगत्सिंह (द्वि.) के राज्यकाल में उक्त शिवमन्दिर और वापी का निर्माण हरिवंश ने करवाया। उसके पूर्वज रेवादास, ताराचन्द्र वड़े धार्मिक प्रकृति के संत पुरुष हो गये, जिनका उल्लेख प्रशस्ति में किया गया है। प्रशस्ति का मूल पाठ वीरविनोद में प्रकाशित है।[१]

वि.सं. १७९५ (उदयपुर(गोवर्धनविलास कुण्ड) की प्रशस्ति

इस प्रशस्ति का रचयिता भी रामकृष्ण भट्ट था। वि.सं. १७९५ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी के दिन गूजर जाती के केशवदास के पुत्र धायभाई मानजी ने उक्त कुण्ड बनवाकर प्रतिष्ठा करवाई। इसके निर्माण में कुल ४५१०१ रुपये में व्यय हुए। प्रशस्ति में गुजरवंश की उत्पत्ति तथा मानजी के पूर्वज झांझा, नाथा, तेजा और केशवदास हुए, जिनका विवरण दिया गया है। कवि ने कुल अट्ठाईस श्लोकों में रचना की है, इसका रचना काल वि.सं. १७९९ चैत्र शुक्ला प्रतिपदा गुरुवार दिया हुआ है। इसका मूलपाठ वीरविनोद में प्रकाशित हुआ है।[२]

वि.सं.१८०० (पंचोलियों के मन्दिर), की प्रशस्ति

उदयपुर में बाईजीराज के कुंड के सामने पंचोलियो के मन्दिर में प्रवेश द्वार के दोनों ओर दीवाल पर लगी हुई है। पं. नाथूराम इस प्रशस्ति का रचियता था। राणा जगत्सिंह (द्वि.) के शासनकाल में कायस्थ कुलोत्पन्न देवजित् राणा का कृपापात्र था, उसने इस मन्दिर का निर्माण करवाया और वि.सं.१८०० वैशाखं शुक्ला अष्टमी के दिन मन्दिर में देव प्रतिष्ठा करवाई।

---

१. वी.वि.,भा.२,पृ.१५१८।

२. वी.वि.भाग,२,पृष्ठ,१५१९

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यह प्रशस्ति कुल उन साठ श्लोकों में लिखी हुई है तथा अन्त में संवत् मिति का उल्लेख मेवाड़ी भाषा में दिया हुआ है ।

प्रशस्ति के आरम्भ में गणेश, क्षेमंकरी देवी, शिव, रवि और भगवान त्रैलोक्यनाथ हरि का स्मरण कर चित्रगुप्त नामक व्यक्ति ने अपने (काय) देह से इतनी तपस्या की, जिससे वह ब्रह्मा के समान लोक में प्रतिष्ठित हो गया, उसी कारण लोकविश्रुत कायस्थ संज्ञा से अभिहित हुआ । उसके वंशज भट्टनागर संज्ञा से विख्यात हुए । देवजित् की पत्नी का नाम वसन्तकुमारी था । कवि ने आगे देवजित् के पुत्र पौत्रादि का उल्लेख किया है । देवजित् बड़ा धार्मिक था, उसके द्वारा देवालय धर्मशाला, वापी जैसे निर्माण कार्य हुए । दीन दुःखियों को दान पुण्य किया, जिसका विवरण दिया हुआ है ।

प्रशस्ति स्रग्धरा, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, अनुष्टुप् छन्दों में लिखी गई थी । छोटी सी सरल सुबोध प्रशस्ति देवजित् के पुण्य कार्य कलापों को बतलाने वाली है । इसके मूलपाठ का संपादन कविराजा ने किया है ।[१]

वि.सं. १८१९ प्रभुनारायण की वापी और मन्दिर की प्रशस्ति उदयपुर

उदयपुर में प्रभुनारायण नामक वापी की प्रशस्ति वि.सं. १८१९ ज्येष्ठ शुक्ला चतुर्दशी की है, जिसमें महीदोज (दर्जी) जाति की तुलसाबाई की पुत्री प्रभुबाई द्वारा विष्णु मन्दिर, धर्मशाला और वापी बनवाने का विवरण दिया गया है । प्रशस्ति कुल श्लोक सं. १२ में लिखी गई हैं । अन्त में मेवाड़ी भाषा में भी इतिवृत्त दिया हुआ है ।

प्रशस्ति के आरम्भ में गणेश सरस्वती और कृष्ण का स्मरण कर राणा अरिसिंह (तृ.) के शौर्य का उल्लेख किया गया है । इसका मूल पाठ कविराजा ने वीरविनोद में प्रकाशित किया है[२]

वि. सं. १८४७ रामप्यारी वाटिका के मन्दिर की प्रशस्ति उदयपुर

उदयपुर के पूर्व दिशा की ओर लगभग तीन कि. मी. दूर रामप्यारी वाटिका है, उसमें रामप्यारी के पति रत्नाख्य ने श्री रामनारायण प्रभु को रत्न समर्पित कर पूजा की । इस प्रशस्ति की रचना शिवलाल ने वि. सं. १८४७ ज्येष्ठ शुक्ला

---

१. वी.वि. भा २ पृ.१५२१-२२ ।

२. वी.वि. भा.२,पृ.१६६९-७०, श्यामलदास ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रयोदशी को की । शिवलाल के पिता का नाम शंभु माता का नाम शिवा तथा ज्येष्ठ भाई वैद्यनाथ था ।

राणा भीमसिंह की माता बाईजीराज सर्दारकुंवरी की कृपा-पात्रा बडारण ख्यातिप्राप्ता रामप्यारी बाई दासी थी । इसके द्वारा श्रीरामनारायण का मन्दिर वापी, बगीची का निर्माण करवाया गया, जिनका उल्लेख है । राणा जगत्सिंह (द्वि.) का पुत्र अरिसिंह हुआ । उसके हमीरसिंह और भीमसिंह हुए । कविराजा ने इस मूलपाठ का वीर विनोद में प्रकाशन किया है ।[१]

वि.सं. १८८१ सीतामाता के मन्दिर की प्रशस्ति उदयपुर

पिछोला सरोवर के पश्चिमी तट पर सीता माता का मन्दिर है । इसका लेखक कृपाराम भट्टमेवाड़ा था । वि.सं. १८८१ आसाढ़ शुक्ला नवमी गुरुवार को हनुमानदास बाबाजी ने हनुमान मन्दिर का निर्माण करवाया । विकली की चारणी गंगा के पुत्र कर्ण की स्त्री रंता ने अत्यधिक द्रव्य व्यय कर उक्त मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया । इस प्रकार का इतिवृत्त १३ श्लोक में लिखित है । मूलपाठ वीर विनोद में प्रकाशित है ।[२]

वि.सं. १८८५ भीम पद्मेश्वर महादेव के मन्दिर उदयपुर की प्रशस्ति

रमणीय पिछोला नामक सरोवर के पश्चिम की ओर तट पर सुन्दर विशाल भीम पद्मेश्वर महादेव का मन्दिर है । उसमें तीन शिलाओं पर उत्कीर्ण, कुल चवालीस श्लोकों में निम्नांकित विषय वस्तु है ।

पं. ब्रजलाल और शिवलाल ने इस प्रशस्ति का आरम्भ कर शिव, सरस्वती और भीमपद्मेश्वर महादेव का स्मरण कर मंगलाचरण किया है । बापा के वंश में प्रतापी राणा संग्रामसिंह हुआ, जिसने दिल्लीश्वर बाबर के साथ युद्ध किया, इस तरह राणा संग्रामसिंह (सांगा) से लेकर राणा भीमसिंह के पुत्र जवानसिंह पर्यन्त वंशवृक्ष दिया गया है । इसके पश्चात् भीमसिंह की रानी पद्मकुमारी के पिता राठोड़ सुरतानसिंह उसके पूर्वज रायसिंह का उल्लेख किया गया है । पद्मकुमारी के दान पुण्य, औदार्यादि गुणों को प्रदर्शित किया गया है । राणा भीमसिंह और रानी पद्मकुमारी ने शिवालय बनवाने की इच्छा से भीमपद्मेश्वर नामक भव्य शिल्पकलाकृति युक्त मन्दिर बनवाया, जो ताप, पाप को हरने वाला है । वि.सं.

१. वी.व.भा.२, पृ.१७७२-७४, श्यामलदास
२. वीवि., बा.२, पृ.१७७९-८०, श्यामलदास ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१८८४ श्रावण कृष्णा त्रयोदशी सोमवार को शुभ मुहूर्त में भगवान शम्भु की स्थापना की गई । इस सुअवसर पर रानी ने तुलादान किया । स्वर्ण और रजत का अत्यधिक दान षड्रसों से युक्त विविध पक्वान्नों से ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया । सुन्दर सुबोध भाषा में लिखित यह शिलालेख राणा सांगा के युद्धों का संकेत रानी के पितृवंश का परिचय देना आदि ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान् है । उसका प्रकाशन कविराज ने वीरविनोद में किया ।[१]

वि.सं. १९०४ प्रभु श्री जगत्शिरोमणि के मन्दिर की प्रशस्ति उदयपुर

यह मन्दिर राजप्रासाद उदयपुर के बाहर ही विद्यमान है । मन्दिर में प्रवेश द्वार के दोनों ओर काली बड़ी बड़ी दो शिलाओं पर सुन्दर सुवाच्य अक्षराकृति में उत्कीर्ण हैं ।

इस प्रशस्ति का रचयिता कृष्णलाल था । पौराणिक भट्टमेवाड़ा ब्राह्मण व्रजलाल इसके पिता थे । कृष्णलाल राणा जवानसिंह के शासन काल में सप्ताह पर्यन्त भागवत का पारायण करने सदुपदेश देने से ख्याति को प्राप्त हो गया । दशोरा ब्राह्मण कोटेश्वर ने प्रशस्ति को लिखा । सूत्रधार नाथू और जीवा ने प्रशस्ति को शिला पर उत्कीर्ण किया । प्रशस्ति की विषय वस्तु संक्षेप में इस प्रकार है ।

आरम्भ में कृष्ण, गणेश की वन्दना कर मंगलाचरण किया है । बापा के वंश का उल्लेख कर कवि राणा जगत्सिह (प्र.) से वंशावली प्रारम्भ कर जवानसिंह पर्यन्त वंशवृक्ष बतलाकर सम्बन्धित राणाओं के शौर्यपूर्ण, दान पुण्यादि क्रियाकलापों का दिग् दर्शन किया गया है, जिसके पश्चात् राणा जवानसिंह ने उक्त मन्दिर का निर्माण करवाया, जिसके मूल में उनकी बाघेल वंशीया, परम धर्म निष्ठा भगवद् भक्ति परायणा रानी ही एकमात्र कारण थी । राणा जवानसिंह के पश्चात् राणा सर्दारसिंह ने भी मन्दिर की सुव्यवस्था बनाये रखने में अपनी अभिरुचि का परिचय दिया । इसके बाद राणा स्वरूपसिंह ने मन्दिर पर कलश स्थापित किया । मन्दिर में भगवद् पूजा निमित्त साचोरा ब्राह्मणों को नियुक्त किये । तैलंग ब्राह्मण जाति के गोपालकृष्ण भट्ट को ससम्मान बुलाकर, शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय पद्धति के अनुरूप श्री जगत्शिरोमणिजी का सेवा श्रृंगार होने लगा । वि.सं. १९०४ वैशाख शुक्ला द्वादशी को भगवान् की प्रतिष्ठा की गई । विष्णुदास ने इस अवसर पर गायत्री पुरश्चरण जप किया । राणा स्वरूपसिंह ने विधि विधान पूर्वक सभी कार्य का

१. वी.वि.भा.२ पृ.१७८०-८३, श्यामलदास ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संपादन किया। इसके पश्चात् कवि द्वारा प्रासाद वर्णन किया गया है। वल्लभसंप्रदाय के अनुसार सभी लीला महोत्सव का विवरण दिया गया है। साचोरा ब्राह्मण कथावाचक केदारेश्वर पूजा के लिए नियुक्त हुआ। इस तरह कुल ९८ श्लोकों में लिखित इस प्रशस्ति का प्रकाशन वीर विनोद में हुआ है।[१] इसका इतिवृत्त इतिहास के लिए अत्यन्त ही उपादेय है।

वि.सं.१९३३ प्रभु श्रीगोकुलचन्द्रमा के मन्दिर की प्रशस्ति उदयपुर

यह मन्दिर भगवान् श्री जगत्शिरोमणि के मन्दिर के बाद ही है। इसकी प्रशस्ति मन्दिर के प्रवेश द्वार में दीवालों पर दो बड़ी वड़ी काली शिलाओं पर सुन्दर सुस्पष्ट, सुवाच्य अक्षराकृति में उत्कीर्ण है।

वि.सं.१९३१ के वैशाख माह में मन्दिर की प्रतिष्ठा की गई। धर्मशास्त्र का वेत्ता अमृतराम ने वास्तुपूजा सम्पन्न करवाई। इसके अनन्तर वल्लभ सम्प्रदाय के अनुसार पूजा पद्धति होती रहे, जिसके लिए वैष्णव ब्राह्मणों को नियुक्त किया गया। राणा ने इस मन्दिर के भोग के लिए भुवाणा, सामता, कविता, तणवाखेड़ा दशहजार की आय वाले ग्रामों को भेंट में दिये। वि.सं. १९३३ कार्तिक शुक्ला पंचमी को काशीदत्त ने इस प्रशस्ति की रचना सम्पूर्ण कर दी, जिसके लिए पुरस्कार स्वरूप राणा ने हज़ारों रुपये और पांच गांव प्रसन्नता से काशीदत्त को दिये। इसके पिता का नाम कृष्णदत्त था। वि.सं. १९३४ आषाढ़ शुक्ला द्वितीया के दिन काशीदत्त के शिष्य गुर्जरगौड़ ब्राह्मण जीवन के पुत्र रामप्रताप ने प्रशस्ति को लिपिबद्ध किया। सूत्रधार चेतराम ने प्रासाद का निर्माण किया और उसके पुत्र जीवन ने प्रशस्ति को शिला पर उत्कीर्ण किया।

प्रशस्ति के आरम्भ में एकलिंग, सरस्वती और परब्रह्म परमात्मा का स्मरण कर शिवभक्त बापा का उल्लेख किया गया है। राणा उदयसिंह से लेकर सज्जनसिंह तक वंश वृक्ष दिया गया है। प्रत्येक राणाओं के राज्याभिषेक का उल्लेख संवत् के अनुसार देकर विद्यानुरागी राणा सज्जनसिंह ने वाणी विलास नामक बृहद् पुस्तकालय की स्थापना की। इसके पश्चात् राणा सज्जनसिंह के परिवार वाले बागौर के शिवदानसिंह, शेरसिंह, शार्दूलसिंह तथा बाबा शक्तसिंह के पुण्यादि कार्यों का संकेत कर विशिष्ट राज्याधिकारियों के नामों का उल्लेख किया गया है।

---

१. वी.वि., भा२,पृ.१०४८-५५,श्यामलदास।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस तरह कुल एक सो चार श्लोकों में रचित यह प्रशस्ति निर्दिष्ट ऐतिहासिक वृत्त के कारण इतिहास ज्ञान की दृष्टि से परम उपयोगी है । कैलासीयति (श्लो.सं. ९१) में नाम धातु रूप के प्रयोग से ज्ञान होता है कि कवि को व्याकरण का अच्छा ज्ञान था । सरल सुबोध शैली में विरचित यह प्रशस्ति कवि के पाण्डित्य की परिचायक है । कविराजा श्यामलदास ने इसका प्रकाशन वीरविनोद में करवाया है ।[१]

नोटः विभिन्न प्रशस्तियों और काव्य ग्रन्थों के आधार पर मेवाड़ राज्य की वंशावली ।

आघाटपुर (आहड़) लेख वि.सं १०३४	चित्तौड़ का लेख वि.सं. १३३१	राणकपुर का लेखवि.सं. १४९६	कुम्भलगढ़ का लेख वि.सं. १५१७	शिलालेखों से निश्चित ज्ञात विक्रम संवत्
१	२	३	४	५.
१.	बप्प	बप्प—		
२.गुहदत्त	गुहिल	गुहिल	गुहिल	
३. भोज	भोज	—	भोज	
४. महेन्द्र	—	—	महेन्द्र	
५. नाग	—	—	नाग	
६. शील	शील	शील	बप्प	७०३
७. अपराजित	—	—	अपराजित	७१८
८. महेन्द्र (द्वि.)	—	—	महेन्द्र (द्वि.)	
९. कालभोज	कालभोज	कालभोज	कालभोज	
१०. खुम्माण	—	—	खुम्माम	
११. मत्तट	मत्तट	—	मत्तट	

१. वीवि.,भा.२,पृ.२१२९-३८ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१२.	भर्तृपट	भर्तृभट्ट	भर्तृभट्ट	भर्तृभट्ट	
१३.	सिंह	सिंह	सिंह	१	
१४.	खुम्माण (द्वि.)		—	—	
१५.	महायक	महायक	महायक	—	
१६.	खुमाम्ण (तृ.)	खुम्मण	खुमाण	—	
१७.	भर्तृपट्ट (द्वि.)		—	—	९९९,१०००
१८.	अल्लट	अल्लट	अल्लट	अल्लट	१०००८।१०१०
१९.	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	नरवाहन	१०२८
२०.	शालिवाहन	—	—	शालिवाहन	
२१.	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	१०३४
२२.		आम्रप्रसाद	—	अंबाप्रसाद	
२३.		शुचिवर्मा	शुचिवर्मा	—	
२४.		नरवर्मा	—	नृवर्मा अनन्तवर्मा	
२५.			कीर्तिवर्मा	यशोवर्मा	
२६.	अग्रिम द्वितीय		योगराज	योगराज	
२७.	शिला		वैरट	वैरट	
२८.	अप्राप्त		वंशपाल	हंसपाल	
२९.			वैरिसिंह	वैरिसिंह नरेन्द्र	
३०.			वीरसिंह	वैरसिंह	११६४।११७३
३१.			अरिसिंह	अरिसिंह	
३२.	बप्प (बापा) के वसंज		चौड़सिंह	चौड़	
३३.			विक्रमसिंह	विक्रमसिंह	
३४.			रणसिंह	रणसिंह	
३५.			क्षेमसिंह	क्षेमसिंह	
३६.			सामन्तसिंह	सामन्तसिंह	१२२८,१२३६

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३७.	कुमारसिंह	कुमारसिंह	
३८. मथनसिंह	मथनसिंह	मथनसिंह	
३९. पद्मसिंह	पद्मसिंह	पद्मसिंह	
४०. जैत्रसिंह	जैत्रसिंह	जेत्रसिंह	१२७०,७९,८४,१३०९
४१. तेजसिंह	तेजसिंह	तेजसिंह	१३१७,२२, २४
४२. समरसिंह	समरसिंह	समरसिंह	१३३०,३१,३५, ४२,४४,५६,५८
४३.		रत्नसिंह	१३६०
४४.	भुवनसिंह		
४५.	जयसिंह		
४६.	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह	
४७.	अजयसिंह		
४८.	अरिसिंह	अरिसिंह	
४९.	हम्मीर	हम्मीर	

एकलिंग माहात्म्यवि.सं. १४९०-१५२५	जगदीशमन्दिर की प्रशस्ति वि.सं. १७०८	राजप्रशस्ति महाकाव्य वि.सं. १७३२	अमरकाव्य वि.सं. १७१८-३७
६	७	८	९
	विजयभूप	शीलादित्य	शीलादित्य
गुहदत्त	पद्मादित्य	केशवादित्य	केशवादित्य
	बापा	नागादित्य	नागादित्य
		भोगादित्य	भोगादित्य
		देवादित्य	देवादित्य
		आशादित्य	आशादित्य
		कालभोजादित्य	कालभोज

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

	ग्रहादित्य	ग्रहादित्त (बापा)
कालभोज	वापा	—
खुम्माण	खुम्माण	खुम्माण
गोविन्द	गोविन्द	गोविन्द
	मेहन्द्र	महेन्द्र
आलू	अल्लट	आलू (अल्लट)
सिंह	सिंह	सिंह
शक्तिकुमार	शक्तिकुमार	
शालिवाहन	शालिवाहन	
नरवाहन	नरवाहन	
	अम्बाप्रसाद	
	कीर्तिवर्मा	
	नरवर्मा	
	नरपति	
	उत्तम	
	भैरव	
	पुंजराज	
	कर्णराज	
	कर्णादित्य	
	भावसिंह	
	गोत्रसिंह	
	हंसराज	
	वैरट	
	वैरिसिंह	
	तेजसिंह	

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

		समरसिंह	
		कर्णसिंह	
		राहप	
समरसिंह		नरपति समरसिंह	
कर्णभूमीन्द्र		जसकर्ण	कर्णसिंह
		नागपाल	
		पुण्यपाल	
राहप	राहप	राहप	राहप
हरसू	नरपति	नरपति	नरपति दिनकर
ब्बरू	दिनकर	जसकर्ण	जसकर्ण
नागपाल	जसकर्ण	नागपाल	नागपाल
पूर्णपाल	नाथपाल	पुण्यपाल	पुण्यपाल
केशर	पूर्णपाल	पृथ्वीपाल	पृथ्वीपाल
भुवनसिंह	पृथ्वीपाल	भुवनसिंह	भुवनसिंह
भीमसिंह	भुवनसिंह	भीमसिंह	भीमसिंह
जयसिंह	भीमसिंह	जयसिंह	जयसिंह
लक्ष्मसिंह	जयसिंह	लक्ष्मसिंह	लक्ष्मसिंह
	लक्ष्मीसिंह	अजयसिंह	अरसी
अरिसिंह	अजयसिंह	अरिसिंह	अजेसी
हम्मीर	अरिसिंह	हम्मीर	हमीर
	हम्मीर		

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सप्तम अध्याय

शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय

संस्कृत साहित्य

१—श्रीनाथजी का मेवाड़ में आगमन

२—श्रीहरिराय (साहित्य)

३—श्रीगोवर्धन (गट्टूलालाजी) तथा अन्यान्य कवि

श्रीनाथजी का मेवाड़ में आगमन

उदयपुर से ५० कि. मी. उत्तर की ओर नाथद्वारा नगर में वल्लभ संप्रदाय के प्रमुख उपास्य देव 'श्रीनाथजी' का मन्दिर है। अखिल आर्यावर्त के वल्लभ संप्रदाय के अनुयायी वैष्णव जन 'श्रीनाथजी' के इस स्थान को अपना पुण्य तीर्थ मानकर यात्रार्थ आते हैं और श्रद्धा एवं सामर्थ्य के अनुसार भेंट चढ़ाते हैं।

वल्लभ संप्रदाय के संस्थापक श्रीवल्लभाचार्य तैलंग जाति के सोमयाजी यज्ञनारायण भट्ट के वंशज लक्ष्मण भट्ट के पुत्र थे। इनका जन्म वि. सं. १५३५ (ई. १४७८) में चम्पारण्य में हुआ थां। इन्होंने वेदादि शास्त्रों का अध्ययन किया था। भारतवर्ष के अनेकों स्थानों पर प्रकाण्ड विद्वानों से शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त कर शुद्धाद्वैत संप्रदाय की स्थापना की। इनका सम्प्रदाय इन्हीं के नाम के आधार पर वल्लभ संप्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। उत्तरोत्तर इनके अनुयायियों की संख्या में वृद्धि होती गई। गोवर्धन पर्वत पर इनको 'श्रीनाथजी' की मूर्ति मिली, ऐसी प्रसिद्धि है। वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथजी 'गोस्वामी' की पदवी से विभूषित हुए, तभी से इनके वंशज 'गोस्वामी' नाम से अभिहित हुए। विट्ठलनाथजी के सातपुत्र थे, जिनके पूजन की मूर्तियां पृथक पृथक थी। ये ही वैष्णव जनों के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लिये आराध्यदेव 'सप्तस्वरूप' नाम से प्रख्यात हुए। उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरिधरजी टीकायत (तिलकायती) थे, एतदर्थ उनके वंशज नाथद्वारा के गोस्वामी तिलकायत कहलाये। श्रीनाथजी की मूर्ति गिरिधरजी के पूजन में रहती थी।[१]

वादशाह औरंगजेब ने हिन्दुओं की मूर्तियां तोड़ने की आज्ञा दी, उससे भयभीत होकर उक्त महाराज के पुत्र दामोदरजी (बड़े दाऊजी) अपने काका गोविन्द जी, बालकृष्णजी, वल्लभ और गंगा बाई के साथ श्रीनाथ जी की प्रतिमा को रथ में बैठाकर वि. सं. १७२६ (ई. १६६९) आश्विन शुक्ला पूर्णिमा के दिन गुप्त रूप से गोवर्धन से निकल गये। सर्व प्रथमआगरा में १६ दिन रहे बूंदी, कोटा पुष्कर और कृष्णगढ़ में ठहरते हुए चांपासणी गांव में जो जोधपुर से १० कि. मी. दूर है वहां पहुंचे[२] जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह के अधिकारियों में निष्ठा तथा दृढ़ता का अभाव देखकर गोस्वामी जी के काका गोविन्दजी उदयपुर के महाराणा राजसिंह के पास आये और श्रीनाथ जी को मेवाड़ में लाने की इच्छा व्यक्त की। हिन्दू धर्म के रक्षक महाराणा राजसिंह ने प्रसन्नता प्रकट कर कहा कि अवश्य ही भगवान् श्रीनाथजी को आप पधरावें। उन्होंने विश्वास दिलाया कि मेरे एक लाख राजपूतों के शिर कट जाने के पश्चात् भी औरंगजेब श्रीनाथजी का स्पर्श न कर पायेगा। तदुपरान्त गोविन्दजी बड़ी प्रसन्नता से चांपासेणी पहुंचे और विक्रम सं. १७२८ (ई. १६७१) कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को वहां से प्रस्थान कर 'मेवाड़' की तरफ चले। मेवाड़ की सीमा के पास श्रीनाथजी का आगमन सुनकर महाराणा राजसिंह स्वयं स्वागत सत्कार पूर्वक उन्हें लेने गये, अपने देश में उदयपुर से ५० कि. मी. उत्तर की ओर बनास नदी के तट पर 'सिंहाड़' गांव के पासवाले 'खेड़े' में मन्दिर बनवाकर विं. सं. १७२८ के फाल्गुन कृष्णा सप्तमी शनिवार के दिन वेदोक्त विधि से पुण्याहवाचन और वास्तुप्रतिष्ठा कर श्रीनाथजी को पाट पर स्थापित किया। श्रीनाथजी के मेवाड़ में आगमन से इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों के प्रचार प्रसार एवं प्रणयन की भूमि मेवाड़ बना। इस सम्प्रदाय के अनेक आचार्य हुये, जिनमें

---

१. श्रीमद्वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त—व्रजनाथ भट्ट, पृ. ३४

२. हिंदमुसलमान, दंडोतीघाट, बूंदी, कोटा, ढूंढार, मारवाड़ बांसवाड़ा, डूंगरपुर इतने के बीच २ वर्ष ४ महीना ७ दिन पर्यन्त श्री जी ने अपने ही रथ में विराजते हुए भ्रमण किया। (श्री नाथ जी की प्राक्ट्य वार्ता पृ.७५)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रमुख आचार्यों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व इस अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है ।[१]

श्रीहरिराय जी

श्रीहरिरायजी जगत्गुरु श्रीमन् महाप्रभुजी श्रीवल्लभाचार्यजी के सुप्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए । श्रीमहाप्रभुजी की पांचवी पीढ़ी में अवतीर्ण श्री हरिराय जी श्री मद् वल्लभाचार्य जी के द्वितीय पुत्र विट्ठलेशजी के प्रपौत्र थे । आपके पिता का नाम श्रीकल्याणरायजी था । ये कल्याणरायजी श्रीगोविन्दरायजी के ज्येष्ठ पुत्र थे ।[२]

श्री हरिराय वि. सं. १६४७ के गुर्जर भाद्रपद् ५ के दिन उत्पन्न हुए ।[३] इनका यज्ञोपवीत संस्कार आठवें वर्ष में वि. सं. १६५५ में हुआ श्री गोकुलेशजी का उनके प्रति अत्यन्त ममत्व था, एतदर्थ वे हर समय इनको अपने पास रखते थे, जिससे इनमें सम्प्रदाय के आचार विचार, मर्यादा, सेवाभावना, व्यवहार, चातुर्य सभी सद्गुण प्रस्फुरित हुए ।[४]

हरिरायजी की प्रतिभा श्रीकृष्ण महाप्रभु और गुसाईजी के समान ही थी । श्री कृष्ण ने ६४ दिन में सम्पूर्ण शास्त्रों का अध्ययन कर लिया । गोसाईजी ने चारमास में समग्र शास्त्रों का अवलोकन किया । उसी प्रकार हरिरायजी ने भी अत्यन्त अल्पकाल में अपने पितृचरणों में रहकर उनके मुखारविन्द से सकल शास्त्रों का अवधारण किया ।[५]

इस प्रकार की प्रसिद्धि है कि श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य की तरह २४ वर्ष में आपका पाणिग्रहण संस्कार हो गया । आपके प्रथम पुत्र श्री गोविन्दजी का प्राकट्य वि. सं. १६७५ में हुआ, उस समय आपकी आयु २८ वर्ष की थी ।[६]

हरिरायजी की अपने गुरु के प्रति अद्वितीय भक्ति थी। इनके गुरु श्री गोकुलेश थे । श्री गोकुलेश इस भूतल पर जब तक विराजे आप उनके दर्शन

---

१. श्रीनाथ जी की प्राकट्य वार्ता ७६-७९ प्रकाशन—विद्याविभाग नाथद्वारा । वी. वि. भा. २, पृ. ४५२, ५३ श्यामलदास ।
२. हरिरायजी नु जीवन चरित्र पृ. १
३. „ „ पृ. ८
४. „ „ पृ. १०
५. „ „ पृ. १४
६. हरिरायजी नु जीवन चरित्र पृ. १५

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चरणस्पर्श नित्यप्रति करते थे। गुरु के आश्रय को ही एक मात्र उन्नति का साधन मानते थे, उनका कथन है कि 'तत्र हेतु स्तद् गुरु संश्रयः'

इनके शिक्षा पत्रों की विषय वस्तु गहन एवं हृदयस्पर्शी है। भाषा एवं रचना शैली हठात् चित्त को आकर्षित किये बिना नहीं रहती। पुष्टिमार्गीय तत्वों का चिंतन इस प्रकार से इनके शिक्षा पत्रों में हुआ है कि सरलता से बोध गम्य होना इनकी महती विशेषता है। वल्लभ संप्रदाय के गहन दार्शनिक पक्ष को भी अपनी सरल, तलस्पर्शी भाषा में ऐसा निबद्ध किया है, जिसके पठन मात्र से उसकी चारुता दृष्टिगत हो जाती है।

इन्होंने सम्प्रदाय के आचार धर्म आदि को समझाने के लिए अनेक शिक्षा पत्र लिखे हैं। 'पुष्टि मार्ग' के लक्षण के लिए लिखा है।

सर्वसाधन राहित्यं फलाप्तौ यत्र साधनम्।

फलं वा साधनं यत्र पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥ १ ॥ हरिराय वा. मु. पृ. १३० ॥

जिस लक्ष्य के लिये मार्ग में लौकिक अलौकिक सभी साधनों का अभाव ही पूर्ण आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण की प्राप्ति साधन रूप है, अर्थात् प्रभुप्राप्ति में दैन्य भाव ही साधन है, वही शुद्ध 'पुष्टि' भक्ति मार्ग है और भी क्या—

समस्त विषयत्यागः सर्वभावेन यत्र वै।

समर्पणं व देहादेः पुष्टिमार्गः स कथ्यते ॥ १९ ॥ हरिराय वा. मु. सभी

सब कुछ लौकिक विषयों का परित्याग कर सभी भाव से सदेह समर्पण ही पुष्टि मार्ग कहलाता है। कृष्ण शब्दार्थ का निरूपण किया है।

'कृषिर्भूवाचकः शब्द, इति श्रुत्यन्तरेण च।

सदानन्दो हि भगवान् स्फुटं कृष्णो निरूपितः ॥ २ ॥ हरिराय वा. मु. प-. २९७

कृष् धातु का अर्थ भूवाचक सत्ता और 'णा' का अर्थ आनन्द है अर्थात् कृष्ण स्वरूप आनन्द स्वरुप ही है। कृष्ण का स्वरुप वर्णन शिक्षा पत्र में दिया है यथा—

यशोदोत्संगलालितः, कचग्रथितवेणिकः
मुक्ताफललसद्भालश्चलत्कुटिलकुन्तलः ॥ १ ॥

मुक्ताफलावलिभालप्रांतकर्णविभूषितः।
कस्तूरिका तिलक युग्भालभषातिसुन्दरः ॥ २ ॥ हरिराय शि. प. द्वितीय

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पद्यों में ल,भ, की पुनरावृत्ति से अनुप्रास अलंकार का सुन्दर चित्रण हुआ है।

श्री गोवर्धन (गट्टूलाला जी)

गट्टूलाला जी का जन्म वि. सं. १९०१ माधकृष्णा द्वादशी को कच्छ प्रदेश में हुआ। इनके पिता का नाम घनश्याम भट्ट शर्मा था तथा माता का नाम 'लाडूबेटी जी' था।

सौराष्ट्र के प्रसिद्ध गिरिनार (जूनागढ़) में इनका अपने मातामह गोस्वामी श्री व्रजवल्लभजी महाराज के यहां पालन पेषण हुआ। सातवें वर्ष के वैशाख शुक्ल में पिता के द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार किया गया, तथा मातामह ने अपने संप्रदाय की दीक्षा दी। नवें वर्ष में (वि. सं. १९०९) शीतला रोग के कारण इनकी दोनों आखों की दर्शन शक्ति लुप्त हो गई।

अपने पितृचरण से ही इन्होंने वेदवेदांगादि बहुशास्त्रों का अध्ययन किया। इनकी दश वर्ष की अवस्था होने पर इनके पिता की इच्छा बम्बई में रहने की हुई। पिता के सान्निध्य में रहकर इन्होंने वहां विद्यालक्ष्मी 'नामक पाठशाला की स्थापना की। उसमें विद्यार्थियों को अध्यापन कराने के साथ साथ भोजन निवासादि की व्यवस्था भी करवाते थे।[१]

शैशव से ही उनकी प्रतिभा ने लोगों को आश्चर्यान्वित कर दिया था। त्रयोदश वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने 'रुक्मिणी चम्पू' की रचना की। यह जन श्रुति है, ग्रन्थ अप्राप्य है। व्याकरण, न्याय, मीमांसा वेदान्त एवं साहित्य में ये प्रखर पाण्डित्य रखते थे, यह सभी आपके द्वारा रचित सत् सिद्धान्त मार्तण्ड 'मारुत शक्ति' तथा २१ वें वर्ष में निर्मित 'वेदान्त चिन्तामणि' आदि ग्रन्थों के अवलोकन से सिद्ध होता है।

वि. सं. १९४९ के पूर्व ही इन्होंने शतावधान प्रयोग से तथा शास्त्रादि एवं काव्य निर्माण से अपने यज्ञ को सम्पूर्ण भारत में विस्तृत कर दिया। विद्या के केन्द्र बनारस तथा कलकत्तादि शहरों में प्रकाण्ड पण्डितों की सभा के मध्य

१. मारुत शक्ति प्रस्तावना पृ.८। स्वर्ण की छड़ी को नौकर इनके साथ लेकर चलता था, जो इनके संमान को बतलाती थी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

महामहोपाध्याय महेशचन्द्र, शिवकुमार, गंगाधर शास्त्री उद्‌भट विद्वानों को इन्होंने अपने वैदुष्य से संतुष्टकर 'वेदान्त भट्टाचार्य' भारतमर्तण्ड "आशुकवि" आदि उपाधियां अधिगत की । अनेक राजाओं से सम्मानित रहे । कृष्णगढ़ नरेश ने इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर एक स्वर्ण यष्टिका प्रदान की चौबीस मिनट में लगभग सौ श्लोकों का निर्माण कर लेने की इनकी प्रतिभा शक्ति थी । इन्होंने सभी शास्त्रों पर निबन्ध लिखे, किन्तु निस्सन्तान होने से एवं प्रबन्धकों के अभाव में अनेक ग्रन्थ, लेखादि लुप्त हो गये ।

वि. सं. १९३९ भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा के उचितकारिणी सभा के अधिवेशन में सर्व प्रथम पधारे । उसमें चार चार घंटों तक भाषण देकर सिद्ध किया कि वल्लभ संप्रदाय ४०० वर्षों से ही न होकर आदि वेदों से मान्य है ।

उपलब्ध ग्रन्थों का उल्लेख नीचे लिखे अनुसार है । जयपुर प्रान्तीय लक्ष्मण गिरि नामक एक दण्डी स्वामी ने संप्रदायक विषयक आठ प्रश्न लिखकर भेजे । उन आठों प्रश्नों के आठ उपप्रश्न थे । इस तरह कुल ६४ प्रश्न गोस्वामी श्रीजीवनजी महाराज बम्बई वाले को प्राप्त हुए, जिनका उत्तर 'सत् सिद्धान्त मार्तण्ड' नामक ग्रन्थ में दिया है । यह ग्रन्थ लक्ष्मण गिरि द्वारा किये गये प्रश्नों उपप्रश्नों के उत्तर में ही रचित है । ग्रन्थ की रचना तिथि वि. सं. १९२४ फाल्गुन कृष्णा सप्तमी रविवार दी हुई है, जीवनजी महाराज ने उसका खण्डन क्यों नहीं किया इसके लिए स्वयं गट्टूलालाजी ने एक श्लोक लिखा है जिसका अभिप्राय है 'जिन सिंहों के नख मदोन्मत्त हाथियों के गंडस्थल की खुजलाहट को नष्ट करने वाले हैं वे नख छोटी चुहिओं के समुदाय पर नहीं पड़ते' ।[१]

---

१. श्रुति ४ हड़ २ मंद ९ शशि १ मिते वैक्रमे क्रमेण वर्षेऽस्मिन् ।
रविवासणन्विता यां तपस्यमासस्यमलसप्तम्यां ॥ १२ ॥
श्री बालकृष्णमन्दिर आस्थाने जीवनेश विभोः ।
हरिगुरुचरणसरोज निसपर्यया पर्यपूर्यत निबंध ॥ १३ ॥
वेतंडमंडलीगंडकण्डूपाण्डित्यखंडिनः ।
निपतन्ति नखाः नैव हरीणां गिरिकागणां ॥
सत् सिद्धान्तनाममार्तण्डारव्य पुष्पिका
मुंबापुर्या गणपतकृष्णाजी मुद्रायंत्रालये प्रकाशितः शकाब्दाः १७९२

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आपने 'कठोपनिषद्भाष्य' पर कठवल्ली 'नामक भाष्य टीका लिखी। हरिओं सहनाववतु—माविद्विषावहे। इस मन्त्र पर इनकी विद्वत्तापूर्ण भाषा टीका अवलोकनीय है।[1]

प्रभुचरण श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के 'विद्वन्मण्डन' तथा गिरिधरजी (काशी निवासी) के 'शुद्धाद्वैत' नामक ग्रन्थों का खण्डनाभास रूप में 'सहस्राक्ष' नामक ग्रन्थ किसी यति ने विरचित किया था। उस 'सहस्राक्ष' ग्रन्थ के पुनः खण्डन में विट्ठलनाथ जी ने 'प्राभंजन' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। उस 'प्राभञ्जन' की टीका' मारुत शक्ति नाम से भारतमार्तण्ड श्री गोवर्धन (गट्टूलालाजी) ने लिखी इसके अन्त में क्षमा प्रार्थना स्वरूप भाव प्रधान श्लोक मिलते हैं, जिनमें अनुप्रास की छटा अवलोकनीय है। वि. सं. १९३८ के मार्गशीर्ष कृष्णा नवमी को प्रभुचरण गोस्वामी विट्ठलनाथजी के महोत्सव के दिन वह टीका समाप्त हुई।[2]

---

१. स ह नाववविति। स सर्ववेद प्रसिद्धः परमात्मा। ह स्पष्टम्। नौ आवां गुरुशिष्यौ। अवतु रक्षतु। प्रत्यगाशिषि प्रर्थनायां वा लोट्। न शोकस्यापि नाशेऽध्ययनंसम्भवतीति। अथवा नौ गुरुशिष्यौ सहैव रक्षतु। न हि जीवतोरपि विप्रकृष्टोरध्ययनं सम्भवतीति। अथ श्रवणे सिद्धेऽपि देवकृत विन्धवशात् कथंचिदपि मोक्षसिद्धौ व्यर्थ एव प्रयासः स्यादिति तद्वारणार्थं प्रार्थयते—सह नौ भुनक्त्ववति। स परमात्मा ह स्पष्ट ? सह हृदये बहिश्च प्रादुर्भूतः सह नौ आवां भुनक्तु। ओदनादिवत् स्वस्मिन् प्रवेशनेन मृत्यु मया भावादमृतौ करोतु।

अथ मध्ये देवताकृत विन्ध्याभावं प्रार्थयते 'सहवीर्यं करवावहे इति। आवां सहैव वीर्यं देवताकृत विघ्न निवृत्तिपराक्रमं मनस्थैर्यादि रूपं करवावहै।

अथाऽऽन्तर विन्ध्याभावं प्रार्थयते—तेजस्विनावधीतमस्तु यो विद्विषावहे। नावावयोरधीतमध्ययनं ग्रन्थादिकं वा तेजसि मनन द्वारा ब्रह्मप्रकाशनशीलमस्तु।

२. वन्दे श्री सुखवृद्धये धृततनुं स्वैकाश्रितानाममुं,
तीव्रासारधनोद्यमोद्धत सहस्राक्षस्य भिन्दन् मदम्।
दासं स्वधं कृपया करेण मृदुना गोवर्धनं प्रोद्धरन्,
हृत्वार्तिं स निजव्रजं सुखनिधिं यो लीलयैव व्यधात्॥ १॥ मारुत श. मंग—पृ. १
श्री मच्चक्रधराऽऽस्यचन्दरुचां चंचत्चकरोराश्चिता
दुर्वादोन्नतगर्वपर्वतपविप्रायप्रचण्डोक्तयः।
श्रीमद्विठ्ठलनाथधाम विभवो गोस्वामिवर्याः सदा,
जीयासुः कुविदां विदारण कृते भंजनो यैः कृतः॥ ६॥
मार्तण्डेक्षणं संकटां घनघटां क्षेदैः क्षिपन्ती क्षणा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गटूलाल जी ने एक अन्य ग्रन्थ 'वेदान्त चिन्तामणि' (पंचदशी) लिखा जिसकी रचना वि. सं. १९२१ वर्ष में हुई थी। पंचदश प्रकरणों की कुल श्लोक सं. ११७१ हैं।

इसके प्रारम्भिक मंगलाचरण में जड़ जीवादि के कारण, सर्व शक्तिमान् सच्चिदानन्द श्री पुरुषोत्तम (विष्णु) का स्मरण किया गया है। मायावाद रूपी तम का नाश करने वाले भक्तिमार्ग के प्रदर्शक श्रीमद्वल्लभाचार्य और विट्ठलेशजी को सूर्य चन्द्र के स्वरूप माना है। पुनः अपने दीक्षागुरु मातामह व्रजवल्लभजी एवं शास्त्रों की शिक्षा देने वाले पिता घनश्यामजी का स्मरण कर बालकों के अवबोधनार्थ वेदान्त चिन्तामणि की रचना का उद्देश्य उल्लेखनीय है। वेदान्तचिन्तामणि का प्रारम्भ अखिल विश्व में नानारूप से दृष्टिगोचर होता है इनकी उत्पत्ति में कारण निहित है, इस तरह कारण और कार्य का विवेचन किया गया हैं।[१]

न्निन्धानाप्यशनिं सहस्रनयनं निर्गर्वयन्तीस्यतः।
पुष्णन्ती हरिभावमात्मजमसोवुच्छासयन्ती जना
जंजीयान् मारुशक्तिराशुगतिदा संजीवयन्ती जगत् ॥ ९ ॥ मारुक्ति पृ. २
वेदानुयायि विदुषः परभक्तिनिष्ठान् विज्ञापयामि चरणौ परिगृह्य नम्रः।
उद्यद्दयागुणदृशोन्यपरिश्रमज्ञा अस्मिन् प्रमादशतकानि मम क्षमध्वम् ॥ १२ ॥
अन्धोऽस्म्यहं निजकरेण न लेखशक्त
स्तल्लेखितं निखिलमेव करैः परेषाम्।
भ्रान्त्यादयो जगति मानुषबुद्धि धर्माः,
सर्वांशतो न परिहर्तुमिमे च शक्याः ॥ १३ ॥
श्री मद्बालमुकुन्दमिंदुवदनं वृन्दावना नंदितं,
वंदेसुन्दरमेकमेव न परान्निंदामि वृन्दारकान्।
वर्तन्तामचिरंतना दिविषदो नंता अनंतातले,
मंतुं ते गणयन्तुमाऽयमितरान् मूर्धाननन्तुं क्षमः ॥ १ ॥
वसुरामनन्दचन्दिरमितवर्षे विक्रमार्क शकगे सा।
मार्गकृष्ण नवम्यां सगुरौ श्रीविट्ठलोत्सवे पूर्णा ॥
सदालिवल्लभ श्रीमन् मुकुन्दचरणोर्पितः।
सामोदारो चिताकारो वाक्पुष्पांजलिरुज्जवला ॥ १४ ॥
मारुत शरुति अन्तिमपुष्पिका भाग १

१. पंचनदान्वय जनुषा तेनान्धेनापि सत्कृपैकदृशा।
भूदृशिदुर्गाशिशिमित विक्रम वर्षे व्यधामि पंचदशीं ॥ २८२ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत् स्नेह भाजन

श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रणीत 'तत्वार्थ दीप' नामक ग्रन्थ शास्त्रार्थ विषयक है। प्रकाश नाम की टीका भी श्रीवल्लभाचार्य की 'सप्रकाशस्तत्वदीप' है। इन निबन्धों के ऊपर 'सत् स्नेह भाजन सहितम्' नामक टीका गट्टूलालाजी की अपूर्ण रूप से प्राप्त हुई है। संस्कृत में गट्टूलालाजी की कितनी प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ टीका है? यह टीका के पादटिप्पणी में नीचे उद्धृत गद्यांश से अवगत हो जाता है।[१]

यः श्रीमद्वल्लभाभिधगुरोः स्पृष्ट कृपादृष्टिभिः
बाल्येऽगान्निखिलागमांश्च निपुणं तातादघनश्यामनः।
तूर्णं वर्णयते बहूनि युगपच्छोत्रिष्ट वस्तूनि यो
नानाकाव्य निबन्धकृत् स समभूद्गोवर्धनारब्धः कांबः॥ १८१॥
यो गोवर्धन वाक् सुधोदधिभवः सद्वांछितार्थप्रदः,
स्वान्तध्वान्तनिवारको गुरुधनश्यामोक्ति शाणोज्वलः।
विद्वद्धिः करुणापरै हृदिधृतः सोऽयं महीमण्डले,
यावच्चन्द्रदिवाकरं विजयतां वेदान्तचिन्तामणिः॥ २८॥
शुद्धाद्वैतं सर्वशक्ति जड़ जीवादिकारणम्।
साकारं सच्चिदानन्दं वन्दे श्रीपुरुषोत्तमम्॥ १॥
मायावादतमोनाश भक्तिमार्गप्रकाशयोः।
सूर्याचन्द्रमसौ स्तौमि श्रीमद्वल्लभविट्ठलौ॥ २॥
भक्तो गुरुश्रीव्रजवल्लभस्य पितुर्घनश्यामत आप्तविद्यः।
गोवर्धनो बालनिबोधनाय वेदान्त चिन्तामणिमातनोति॥ ३॥
अथैतद्विश्वमखिलं नानारूपं निरीक्ष्यते।
अतीव चित्रमेतस्य कारणं परिचिन्त्यताम्॥ ४॥
यत् पूर्ववृत्तिनियतं यदुत्पतावपेक्ष्यते।
तत्तस्य कारणं प्रोक्तं कार्यमुत्पाद्यमस्य यत्॥ ५॥

१. तत्वार्थ दीपः—
नमो भगवते तस्मै कृष्णायाभ्युत कर्मणे।
रूपनाथ विभेदेन जगत् क्रीडति यो यतः॥ १॥
तत्वार्थदीप प्रकाशः—
सर्वोद्धार प्रयत्नात्मा कृष्णः प्रादुर्बभूव ह।
तथा त्वं येन संसिद्धैदर्थं व्यास उक्तवान्॥ १॥
श्री वल्भाचार्य

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशु कवि नन्दकिशोर भट्ट

आशुकवि नन्दकिशोर भट्ट के पिता का नाम श्री रमेश भट्ट था। ये श्री गट्टूलाला जी के शिष्य थे। गद्य पद्य रचना में अत्यन्त प्रवीण साहित्य निष्णात एवं कवि सम्राट थे। श्री दामोदरलालजी महाराज का अध्यापन कार्य इन्होंने कराया उदाहरणार्थ इनका पद्य द्रष्टव्य है।

घटाभिः श्यामाभिर्नवजलमुचां व्योम्नि पिहिते
तटे श्रीकालिन्द्याः कुसुमितनिकुंजावलिवृते
श्रियां साहस्त्रीभिः परिचरित पार्श्वः प्रियतमा
समाश्लिष्टो दोलान्तरमधिगतः क्रीडति हरिः ।। १ ।।

गुरु पर इनकी अगाध आस्था थी। कहीं पर भी कविता वाचन के पूर्व श्री नाथजी नवनीतलाल, श्रीवल्लभाचार्य कह कर मंगलाचरण किया करते थे। अन्त में भारतमार्तण्ड श्री गट्टूलालाजी के प्रति अपनी गुरु भक्ति का प्रदर्शित करने के लिए एक श्लोक लिखा करते थे।

इति भारतमार्तण्डकरुणाकणिकांकितः ।
रमेशशास्त्रिणां सूनुर्मंगलाशासनं व्यधात् ।।
पद्यानां नूतनानां शतकमपि घटीमध्य एव व्यधुर्य
नानाभाषापदानां शतमतिकठिनं ये सकृत् प्रोक्तमूचुः ।

अथ श्रीमदाचार्यपादा देवोद्धारं वेदादिसारभूत श्री भागवतमार्गण कर्तुं तत् प्रकाशं तत्वार्थ दीपं प्रकाशयिष्यन्तो भगवत् प्रादुर्भाव श्री भागवतयोः स्वग्रन्थस्य प्रयोजनं वदन्तो व्याख्यानं प्रतिजानते।

सर्वोद्धारेति त्रिभिः। सात्विकादिभेदेन त्रिविधानपि जीवानुद्धर्तुं भगवत् प्रादुर्भव इति तृतीय प्रकरणे सेत्स्यति। अतः सर्वोद्धाराय प्रयत्नो यस्येति सर्वोद्धार प्रयत्नः। इदं पुष्टिस्थार्थम्। सर्वेषामुद्धारो यस्मात्तादृश प्रयत्नो यस्येति वा। इदं राजसार्थम्।

अतति व्याप्नोतीत्यात्मा पूर्वोक्तश्चासावात्मेति कर्मधारयः तादृशः प्रयत्न आत्मनि यस्येति गडुकण्ठादिवत् समासो वा। इदं सात्विकार्थम्। एवं सर्वजीवोद्धर्ता तु कृष्ण : "कृषिर्भूवाचकः शब्दोणश्च निवृत्ति वाचकः। तयोरेक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते' इतितापनीय श्रुत्वा सदानन्दरूपः पुरुषोत्तम एवास्ति नापरः सर्वं वाक्यं सावधारणमिति न्याययात्। सर्वोद्धार प्रयत्नात्मा कृष्ण इति भिन्नं वाक्यं (अ.२,पा.३ सू ४६) प्रतिपादिक लिंगेत्यत्र अस्ति भवन्ति परः प्रथमपुरुषोप्यप्रभुज्यमानोप्यस्तीति। संत् स्नेह भाजन—श्री गोवर्धन (गट्टूलाल जी)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सांगानां च श्रुतीनां विवृतिषु गुरवो दर्शनेष्वद्वितीया–
स्ते श्रीमदारतार्का: स्मृतिमनुपहतां देशिकेन्द्रा दिशन्तु ॥

इन्होंने अपने कार्यकाल में संस्कृत साहित्य के प्रचार एवं प्रसार के लिए इस तरह की विविध रचनाएं कर अपना मनोयोग पूर्वक योग दिया।

गिरनारा श्रीश्यामजी

आप वि. सं. १९३२ मार्गशीर्ष माह में नाथद्वारा आये। श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी पद पर नियुक्त थे। इनके पिता का नाम श्रीबालजी था। आप श्री गट्टूलालाजी के शिष्य थे। संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक एवं संस्कृत के अच्छे लेखक तथा समस्या पूर्ति में सिद्धहस्त थे। इस पद पर रह कर शाला की उन्नति हुई और छात्रों की संख्या में वृद्धि की।

समस्या–

'मक्षिका पादघातेन कंपितं भुवनत्रयम्॥

पूर्ति यथा भृंगापातप्रमत्तोयं मनुजो मनुते हृदि
मक्षिका पादघातेन–– ॥ १ ॥

कृष्णो पश्यत् पयः पात्रे मुखस्थं प्रतिबिंबितम्।
मक्षिका पादघातेन–– ॥ २ ॥

रविशास्त्री

भारतमार्त्तण्ड गट्टूलालाजी के शिष्य थे। जाति के औदीच्य ब्राह्मण थे। आचार्य के निजी सचिव के पद पर प्रतिष्ठित राजकीय अधिकारी के रूप में थे।

रचना—

एकः शैलं स्वकरशिखरे सप्तसंवत्सरीण–
स्त्रातुं स्वीयात् वहति करुणापूर पीयूषपूर्णः ॥
मातुः स्तन्यं धयति च परः प्रेंख पर्यंकशायी
द्वावप्येतौ मम हृदि सदा सन्निधत्तां मुरारी ॥ १ ॥

श्लिष्टः किन्नुत मालवाल विटपी कैशोरवीं वल्लरीम्,
Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पं. बालकृष्ण शास्त्री—

आप श्रीवत्सगोत्री पोतकूर्ची उपाह्व आंध्र तैलगं ब्राह्मण जाति के थे। आपका जन्म वि. सं. १९२२ कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को ग्राम जिला बुन्देलखण्ड में हुआ था। आपके पिता का नाम मुकुन्द शास्त्री था।

इन्होंने दतिया के महाराज को गायत्री का उपदेश दिया था तथा उन्हें संस्कृत पढ़ाते थे। ये राज्य की धर्मसभा के अध्यक्ष एवं राजवंश के गुरु थे। कोटा नरेश इनको अपने वहां ले गये, वहां की संस्कृत पाठशाला को सुव्यवस्थित रूप दिया।

पश्चात् गोवर्धनलालजी महाराज नाथद्वारा ने वि. सं. १९७० के लगभग इनको कोटा से नाथद्वारा लाकर अपने यहां के संस्कृत महाविद्यालय के प्रधानाध्यापक पद का कार्यभार दिया।

दरभंगा महाराज से संचालित 'चतु: सम्प्रदाय महासभा' से आपको 'विद्यानिधि' नामक उपाधि से विभूषित किया गया। आपके द्वारा रचित रचनाएं टीका ग्रन्थ आदि में मुख्यत: ईशावास्योपनिषद् पर व्याख्या प्रकाशित है।[१] इसके अतिरिक्त वैदिक सूक्तमन्त्रार्थव्याख्या, गीतार्थविचार, ब्रह्मसूत्रार्थविचार, भागवतार्थ विचार, श्रीकृष्णस्वरूप प्रतिपादन, श्रीनाथभावोच्चय, वल्लभाचार्य स्वरूपदीपिका, साम्प्रदायिक सिद्धान्त विमर्श, दीक्षामन्त्रार्थपर्यालोचन प्रमुख है।[२]

रचना का पद्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं।

ध्रुवविजयविजृम्भद्वीर्यसंरक्षिमां
यां निजवसतिमिव श्रीवत्सोऽधिशेते।
स्पृहयति च नवोढ़ां दिक्करीं कोपभोत्तुं
जयति भुवनभूषा सा विधुप्रेयसी पू: ॥ १ ॥

रमानाथ शास्त्री

तैलगं ब्राह्मण रमानाथ शास्त्री का वैसे मूल निवास जयपुर था। नंदकिशोर शास्त्री के पश्चात् इनको बम्बई से महाराज श्रीगोवर्धनलालजी ने बुलाकर

१. ईशावास्योपनिद् व्याख्या—बालकृष्णशास्त्रीविद्यानिधिकृत-प्रकाशन शु. महासभा सूरत वि. सं. २०१०।
२. उत्तरभारतीआन्ध्र तैलगं भट्ट—वंशवृक्षभाग २, प्रकाशन शु. महासभा विद्या विभाग कांकरोली

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्याविभागाध्यक्ष के पद पर प्रतिष्ठित किया, आशु कवि नन्दकिशोर भट्ट इनके मातुल थे। तभी से ये नाथद्वारा में अपनी साहित्यिक सेवा देते रहे। ये व्याकरण, साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान् होने के साथ ही वल्लभ संप्रदाय के मर्मज्ञ थे। शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय वल्लभ संप्रदाय के तत्व के प्रचारार्थ हिन्दी भाषा में अनेक छोटे बड़े ग्रन्थ लिखे, जिन्हें पढ़कर तद्विषयक ज्ञान सर्वसाधारण के लिए सुलभ हुआ।

इन्होंने संस्कृत में छान्दोग्योपनिषद् पर भाष्य लिखा। वेदान्त चिन्तामणि आदि प्राचीन ग्रन्थों का शोधपूर्ण प्रकाशन करवाया। अनेक पत्र पत्रिकाओं में इनके मार्मिक लेख प्रकाशित होते रहे। इनकी रचित कृतियां 'छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, स्तुति पारिजात, दशनादर्श, रासलीलाकाव्य, शुद्धाद्वैत दर्शन प्रमुख हैं। आपकी मनोरम रचना प्रस्तुत है।

सतां संगे वांछा, परगुणकथायां न विरति-
र्गुरौ नम्रा वृत्तिर्व्यसनमपि विधासु सततम्।
विपश्चित् सत्कार व्यसनि हृदयं किं बहु भुवि,
श्रिया नाथे भक्तिर्भवत इव कस्याप्यसुलभा॥

दामोदर शास्त्री

आपके द्वारा विद्याविभाग, उचितकारिणी सभा, सुदर्शन यंत्रालय, पोस्ट ऑफिस आदि की स्थापना हुई। नाथद्वारा में संस्कृत प्रचार प्रसार के एक मात्र सर्वेसर्वा थे। विवादों का निर्णय मिताक्षरा के आधार पर देते थे। हरिचन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका आपके समय में ही प्रकाशित हुई। बालकों को संस्कृत का ज्ञान कराने के लिए 'बाल ध्रुव चरित' नामक एक लघु संस्कृत नाटक लिखा गया। व्याकरण का ज्ञान सर्व साधारण को हो, जिसके लिए 'देववाणी' नामक एक पुस्तिका भी प्रकाशित की गई। इनको वीणावादन का अच्छा अभ्यास था, इस कारण महाराज गोवर्धनलालजी के परिचय में आये। उनके 'ध्रुव चरित्रं' नामक एक लघु ग्रन्थ का उदाहरण देखिये।

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः।
इदमेव सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा॥ ३॥
जले स्थले तथा दृश्ये अदृश्ये चापि वासकृत्
त्रयस्त्रिंशदेवतानां वन्द्यः स परमेश्वरः॥ १॥
अनन्तरूपोऽपि विशालमूर्तिरणोरणीयान् महतो महीयान्

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालस्वरूपो जगतीपतिः स मनोरथांस्ते परिपूरयिष्यति ॥ २ ॥

वामनाचार्य

ये मूल निवासी ग्वालियर के थे। व्याकरण साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। रुग्णावस्था में भी रात दिन अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने में अत्यधिक श्रम करते थे। फलस्वरूप इनके शिष्यों ने भी अच्छी विद्वत्ता प्राप्त की, जिनमें से प्रमुख कविकाव्य रत्नाकर श्री बलभद्र एवं श्री जगन्नाथ शास्त्री प्रतापगढ़ निवासी रहे थे। नाथद्वारा संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक पद का कार्यभार परिश्रम के साथ वहन किया। गद्य एवं पद्य दोनों में रचना किया करते थे। आपका निम्नांकित पद्य अवलोकनीय है।

यो विश्वं विविधं विधाय विशति स्वानन्दसंविद्वपु-
र्भक्तिं भक्तजने विभाव्य भवजां भीतिं विभिन्ते विभुः।
यश्चाद्यावधि भक्तपक्षमभितः पुष्णंश्च तिष्ठन्नसा-
वुद्बाहुः परयाश्रिया वितपते श्रीनाथनामा हरिः ॥

त्रिगृह बलभद्र भट्ट

ये श्रीदेवकीनन्दनदेव शर्मा के सुपुत्र थे। उन्होंने वामनाचार्य से शिक्षा प्राप्त कर व्याकरण, साहित्य एवं शुद्धाद्वैत वेदान्त पर प्रखर विद्वत्ता हस्तगत की। 'ईशावास्योपनिषद् पर भाष्य लिखा, यह प्रकाशित भी हो चुका है। संप्रदाय में रामनवमी पर जो विवाद चलता था, उसके लिए इन्होंने 'रामनवमीनिर्णय' लिख कर उस विवाद को समाप्त करने का सफल प्रयास किया। संप्रदाय के सुबोधिनी आदि कई ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया।

आपका सरस पद्य दर्शनीय है—

अन्यत्र संश्रयजुषः स्वजनान्निजस्य,
पादारविन्दमकरन्दलिहो विधाय।
सर्वात्मना तदभिवृद्धि विधायिने,
श्री गोवर्धनोद्धरणधीर ! नमो नमस्ते ॥ १ ॥

सदानन्द झा

मैथिल ब्राह्मणवंशीय सदानन्द झा न्याय, व्याकरण और साहित्य के उद्भट विद्वान् थे। स्थानीय संस्कृत पाठशाला के प्रधानाध्यापक पद पर प्रतिष्ठित रहे।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनकी साहित्यिक रचानाएं कई उपलब्ध हैं । तलस्पर्शी विद्वान्, महात्मा, सरल प्रकृति के थे, इनकी सरस रचना द्रष्टव्य है ।

सदा रासक्रीडावलितहृदयो दीन सदयो
भवाब्धेरूद्धर्ता सकल जनभर्ता प्रभुरसौ ।
मुदा वृन्दारण्ये प्रतियुवति सम्भिन्नसुतनु—
र्दधानः श्रीकृष्णो भवतु तव भव्याय सततम् ।। १ ।।

के. लक्ष्मीनारायण शास्त्री

ये चिन्तल पाटी तैलगं ब्राह्मण थे । आचार्य श्री दामोदरलाल जी के मामा थे । कवि होने के साथ साथ विभिन्न विषयों के विशिष्ट बहुश्रुत विद्वान् थे । किसी भी विषय का प्रश्न पूछने पर तत्काल उसका प्रत्युत्तर देना, उनकी प्रत्युत्पन्नमति का परिचायक था । 'रमल शास्त्र' में इतने पारंगत थे, जिससे कई प्रश्नों का समाधान कर देते थे । आपका सरस पद्य चित्ताकर्षक है ।

गोवर्धनं धारयतो मुरारे र्जयन्ति लावण्यतरंगितानि ।
व्रजांगनानां सतृषो दृशोयैरभीप्सितं पारणमाचरन्ति ।।

सु. म. मा. वि. सं. १९७७

पं. श्रीपुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदीः—

आपका जन्म टोड़ारायसिंह राजस्थान में हुआ। आपने बनारस से साहित्याचार्य व्याकरण मध्यमा तथा शुद्धाद्वैत दर्शन पर्यन्त शिक्षा प्राप्त की । 'गोवर्धन संस्कृत पाठशाला, नाथद्वारा' में अध्यापन कार्य किया । 'मेयो कॉलेज अजमेर' में प्राध्यापक पद पर रहते हुए सतत सुरभारती की सेवा में रत रहे । काशी नरेश के राजपण्डित का सम्मान प्राप्त करते हुए यहां के 'सस्वती भण्डार मुद्रणालय, विभाग' के अध्यक्ष पद का कार्यभार बड़े कौशल के साथ वहन किया ।

आपने हिन्दी रसगंगाधर नाम से तीन भागों में पण्डितराज जगन्नाथ कृत रसगंगाधर का हिन्दी में अनुवाद किया। नवरत्न शुद्धाद्वैतमार्त्तण्ड, वल्लभदिग्विजय, अम्बिकाविजयचम्पू, ध्वन्यालोकसार और हिन्दी में भारतीय व्रतोत्सव नामक पुस्तकें लिखी । घनश्याम कवि रचित छप्पनभोग वर्णन, छन्दोविन्मण्डल, वृत्तिदीपिका आपकी संपादित पुस्तकें है । भारतीय धर्म नामक मासिक पत्र एवं अन्य पत्रिकाओं का सम्पादन कार्य भी किया ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन की संस्कृत परिषद के अध्यक्ष पद को अलंकृत किया । अनेक विश्वविद्यालयों के परीक्षक रहे थे । आपके द्वारा रचित भारतीय दर्शनानि और मुकुन्त स्वत: के श्लोक अवलोकनीय हैं ।

यत् तत् यमप्रभृतिसंयमसाधनानि
संदर्शयन् प्रणववाच्य परात्मतत्वे
चेतो निरोधमवबोधयति प्रकृष्ट
योगाभिधं जयति तत् खलु दर्शनं नः ॥
यच्च प्रमाणपरिशोभित वस्तुतत्व
निर्णीत साधन मनोनुकूल युक्तिवादम्
सम्यक् समादिशति विप्रतिपत्तिरोध
न्यायाभिधेत न विदितं न हि दर्शनं तत् ।

इस तरह एक एक श्लोक में प्रत्येक दर्शन के सार को समझाया गया है ।

इन्दीवरस्ववपुषा कुमुदस्वकीर्त्या रक्तोत्पलं नखरुचा नयनेन पद्म
निर्जित्य यः कमलिनीमलिनी करोति तं मुकुन्दमरविन्ददृशं श्रयामः ॥
यस्य छवि श्चरणयोः सरसामगाध पाथस्तु कोकनदमन्तरयांचकार ।
रक्तं चकार निजमानुषमानसं च तं श्रीमुकुन्दमरविन्ददृशं श्रयामः ॥

पं. श्रीकण्ठमणि शास्त्री:—

पण्डित कण्ठमणि शास्त्री का जन्म दतिया (बुन्देलखण्ड) में हुआ । आपका मुख्य निवास स्थान कांकरोली में था । आपके पिता श्री बालकृष्ण शास्त्री व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे, जिनका उल्लेख किया जा चुका है । पिता और पुत्र दोनों ने ही कांकरोली के गोस्वामी महाराज को शिक्षा दीक्षा से दीक्षित किया । गोस्वामी महाराज के मन में वही उच्च गौरवमय पद राजगुरु का श्रद्धा एवं सम्मान के साथ घर किये हुए था ।

आप वेदान्तशास्त्री, विशारद, महोपदेशक, काव्यालंकार, शुद्धाद्वैत रत्न उपाधियों से विभूषित थे । अन्तिम तीनों में आपने स्वर्णपदक प्राप्त किया था, कांकरोली महाराज के निजी विद्या विभाग के अध्यक्ष पद को वर्षों तक सुशोभित किया, आपके निर्देशन में विद्याविभाग कांकरोली की बड़ी प्रगति हुई, यहां प्राचीन काव्य, दर्शन और धार्मिक ग्रन्थों का सरस्वती भण्डार नाम से सुन्दर सुव्यवस्थित संग्रह है । इसी तरह चित्रशाला में प्राचीन अर्वाचीन चित्रों का संग्रह दर्शनीय है ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुस्तकालय में संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं की पुस्तकें हैं, जिनमें संस्कृत, हिन्दी के विविध विषयों की पुस्तकें अधिक संख्या में सुरक्षित है। यह कांकरोली के गोस्वामी महाराज के विद्यानुराग का ही प्रतिफल है।

संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं पर विद्वानों ने संस्कृत साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि की, उसमें आपने भी पाकशास्त्र सम्बन्धी विविध जलेबी, रबड़ी, रसगुल्ला, पकौड़ी, पापड़, समोसा, दहीबड़ा, कचौरी, पक्वान्नों के विषय में रचना कर संस्कृत साहित्य के हास्यरस को समृद्ध किया है। इस प्रकार आपकी सरस माधुर्य गुण युक्त रचनाएं दर्शनीय है।

कठमुल्ला भजन्त्वल्लां कठमल्लास्तथाक्षरम्।
वयं तु रसगुल्लानां विना हल्लामुपासकाः ॥ रसगुल्ला,
वृथा जन्म वृथा विद्या वृथा तस्य गतं धनम्।
न यत्कर्णपथोपेतं रबड़ीत्यक्षरत्रयम् ॥ रबड़ी,
करारविन्देन पदं गृहीतां मुखारविन्दं सुसुखेन नीताम्।
चटस्य पत्रस्य पुटे शयानामहं पकौड़ी मनसा स्मरामि ॥ पकौड़ी,

पण्डित बिहारीलाल शास्त्री दशोराः—

आपका जन्म वि.सं. १९६१ श्रावण कृष्णा दशमी को देलवाड़ा जिला राजसमन्द में हुआ। आपके पिता का नाम श्री लालूराम व्यास माता का नाम गंगादेवी था। पिता तत्कालीन देलवाड़ा ठिकाना के राजज्योतिषी थे। देलवाड़ा के ठाकुर साहब द्वारा बड़ा राजसंमान प्राप्त था। माता धर्मपरायणा विदुषी थी। मैंने अपने अध्ययन काल में अनेक श्लोक आयुर्वेद शास्त्र के सुने। प्रारम्भ में मेरी शिक्षा आपके तत्वावधान में हुई। व्याकरण शास्त्र का गहन अध्ययन आपके स्नेह एवं वात्सल्य की छाया में ही कर सका।

आपने बनारस से व्याकरण शास्त्री की उपाधि अधिगत की। इसके अतिरिक्त ज्योतिष की शिक्षा पितृचरणों से प्राप्त हुई, जिसके फलस्वरूप लीलावती आदि गणित के दुरूह ग्रन्थों का अध्यापन बड़ी ही सुगम रीति से कराते थे, आपका प्रकाशित साहित्य भक्ति मार्ग प्रदर्शनी, वेधसिद्ध, ग्रहसाधन सारणी और पंचांग साधन सारणी है। इनमें से पंचाङ्ग साधन सारिणी की विशेषता यह रही है कि केवल जोड़ से सब काम हो जाता है, बाकी गुणा और भाग के करने की आवश्यकता ही नहीं रहती। यह आपकी ज्योतिष विषय में महती देन थी। सांख्य शास्त्र की ग्रन्थियों

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

को सुगम रीति से हृदयंगम करा देना महती विशेषता रही । इस तरह आपकी प्रतिभा के दर्शन, व्याकरण, साहित्य, सांख्य, वेदान्त, ज्योतिष में होते रहे । इन विषयों में अनेकानेक छात्र आपके अध्यापन से लाभान्वित हुए हैं । वर्षों तक शिक्षा विभाग तथा 'संस्कृत कॉलेज उदयपुर' में अध्यापन कार्य करते हुए देववाणी की सेवा की ।

आप राज्य सेवा से निवृत्त होकर घर पर ही ज्योतिष, व्याकरण, साहित्य आदि विषयों का अध्यापन छात्रों को कराते थे । आपकी सरस कविता माधुरी का रसास्वादन कीजिए ।

—गणेशवन्दना—

भक्ताभयप्रदमनादितमो वितानऽसंहारकारणमनेकदमेकदन्तम् ।
बालार्कमण्डलरुचिंजगदीशितारंस्मेराननं गणपतिं प्रणमामि भक्तया ॥
समदालिकुलाकुलगण्डयुगं मुदितस्वनिमीलितनेत्रयुगम् ।
अगजाननपद्मविकासकरं प्रणमामि गजाननमार्तिहरम् ॥

ब्रह्मचारी शंकरलालजी

नाथद्वारा निवासी श्री शंकरलाल जी आजन्म ब्रह्मचारी साधु सन्यासी के रूप में थे । शैशव में ही इनके माता पिता का देहावसान हो गया । लगभग पचास वर्ष तक नाथद्वारा में अपने तपोमय जीवन को व्यतीत करते हुए संस्कृत साहित्य की सेवा में रत रहे । अनेक ब्राह्मण बालकों को विद्याध्ययन करवाते थे । व्याकरण साहित्य के माने हुए विद्वान् थे । भारत मार्त्तण्ड गट्टूलालाजी के शिष्य थे । आपका रचित 'श्रीनाथाष्टक' नाथद्वारा के श्रीसुदर्शन यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ । शिखरिणी छन्द में लिखा गया सरस भाषा में निबद्ध भगवान् श्रीनाथजी के प्रति आपकी भक्ति भावना का प्रतीक है ।

रमाकान्तं स्वान्तः स्थितमखिललोकेशमलम्,
घनश्यामं सर्वाभरणलसितांगं सुखकरम् ।
शिशुक्रीडासक्तं व्रजनववधूवस्त्रहरकम् ।
व्रजेशं गोपीशं गिरिवरधरं नौमि सततम् ॥ १ ॥ श्री नाथाकाष्टकम् ॥

पं. आनन्दीलाल शास्त्री

पं. आनन्दीलाल शास्त्री का जन्म वि. सं. १९५९ फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को जयपुर के समीप 'राजमहल' ग्राम में हुआ था । इनके पिता का नाम जानकीलाल

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और माता का नाम भोली बाई था। पिता भगवद् भक्ति में परायण तथा परोपकार में निरत रहते थे।

शाहपुरा में पं. यमुनादत्त षड्शास्त्री से अध्ययन कर 'प्रथमा' परीक्षा उत्तीर्ण की। पश्चात् नाथद्वारा आकर 'गोवर्धन संस्कृत पाठशाला' के प्रधानाध्यापक पं. श्री सदानन्द झा से शिक्षा प्राप्त कर व्याकरण मध्यमा उत्तीर्ण हुए। विख्यात विद्वान् पं. श्रीमार्कण्डेय मिश्र से व्याकरण-शास्त्र का गहन अध्ययन कर प्रथम श्रेणी में वाराणसीय 'व्याकरणाचार्य' परीक्षा उत्तीर्ण की। वल्लभवेदान्त का अधययन पं. नन्दकिशोर शास्त्री से किया।

आप व्याकरण-शास्त्र एवं वल्लभ संप्रदाय के निष्णात विद्वान् थे। निम्नांकित संस्कृत की रचना इनके वैदुष्य की प्रतीक है।

सत्यं ज्ञानमनन्तमेवमखिलै र्वाक्यै र्हि वेदोदितैः,
शक्यं वर्णयितुं न यच्छमदमोपेतैश्च नासादितम्।
श्रीमद्वल्लभसेवितं व्रजवधूवश्यं परप्रेमतो,
लभ्यं तत्किमपि स्तुमो व्रजपतेरंके स्थितं सन्महः ॥ १ ॥

मार्कण्डेय मिश्र

मिथिला निवासी मार्कण्डेय मिश्र 'गोवर्धन संस्कृत पाठशाला' के प्रधानाध्यापक पद पर प्रतिष्ठित थे। ये व्याकरण, न्याय, वेदान्त, साहित्य, मीमांसा शास्त्र के उद्भट विद्वान् थे। अनेक शास्त्रार्थों में आप विजयी रहे। भारत के गण्यमान्य विद्वानों में आपका प्रमुख स्थान था। आपकी पाण्डित्य पूर्ण रचना अवलोकनीय है।

क्वणत्कनकनूपुरं मृदुकलं रणन्मेखलं,
विलोलवलयं स्खलन्मुकुटपिच्छमच्छन्वितम्।
पुरो व्रजनतभ्रुवां भ्रमदितस्ततः कर्दमे,
तमश्छवि सदा नवं तव शिवाय भूयान् महः ॥ १ ॥ सु. मं. म.

पं. गिरिधर व्यास शास्त्री

उदयपुर निवासी पं. गिरिधर व्यास शास्त्री का जन्म उदयपुर से पूर्व की ओर ननिहाल में ३२ कि. मी. दूर 'गादोली' नामक ग्राम में वि. सं. १९५० के चैत्र कृष्णा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एकादशी रविवार को हुआ । आपके पिता का गोवर्धन और माता का नाम 'रत्नबाई' तथा पत्नी का नाम 'रमाबाई था ।[१]

आपने 'बनारस-संस्कृत-कालेज' की शास्त्री उपाधि पर्यन्त गहन अध्ययन किया । नवीन साहित्य निर्माण कर सुर भारती की सेवा में सतत लगे हुए थे । ३७ वर्ष राज्य सेवा में रहकर हजारों छात्रों के सुन्दर भविष्य का निर्माण किया । 'आदर्श-विद्या-मन्दिर' नामक संस्था की स्थापना की । इसके विशाल भवन का निर्माण आपके सत् प्रयत्नों का ही फल है ।

लगभग ७५ वर्ष की आयु में भी सतत देववाणी संस्कृत की उपासना में लगे रहना, अपका श्लाघनीय एवं अनुकरणीय प्रयास रहा । नवीन शोध पूर्ण कई ग्रन्थों का निर्माण और प्रकाशन भी आपने किया । आपकी अत्यन्त ही श्रमसाध्य रचना' 'अभिनवकाव्यप्रकाश' है । इसमें काव्य के तत्वों का विवेचन नवीन विचार एवं समालोचना के साथ पांच हज़ार श्लोकों में किया है ।

पाणिनीय सूत्रों की दुरूहता के कारण छात्रों को संस्कृत-व्याकरण का ज्ञान सुगमता से हो जाय, इसके लिए 'पाणिनीय-प्रवेशिका' की रचना की ।[२]

'भाषा विज्ञान' विषयक रचना संस्कृत में अभी तक दृष्टिगोचर नहीं होती थी, जिसका प्रणयन कर 'भाषा विज्ञान' सम्बन्धी तत्वों का नवीन भारतीय दृष्टि से विवेचन किया, जो आपके विशिष्ट पाण्डित्य का द्योतक है ।[३] मेवाड़ी भाषा में समश्लोकी अनुवाद मेघदूत, गंगालहरी, करुणालहरी आदि का किया है ।

---

१. व्यासान्ववायवसुधाव्रजमण्डनेन, गोत्रेण वत्सपदपूतकलेवरेण ।
गोवर्द्धनेन सुहृदा विबुधादृतेन, रत्नाकरे गिरिधरोपल एष लब्धः ॥ ८० ॥
वर्षे व्योमशरांकभूपरिमिते, मासे मधौ श्यामले,
एकादश्यनुगे रवौ बुधकविस्पृष्टे घटस्योदये ।
चतुर्दशपलै र्युक्तेऽथ सूर्योदया नक्षत्रे श्रवणे
दिष्टे नागशरात्मके समजनि श्रीवत्सवंशांकुरः ॥ ८१ ॥
आत्म-चरित से उद्धृत ।

२. मुद्रण—'श्रीबालचन्द्र यंत्रालय मानवाश्रम दुर्गापुरा, जयपुर

३. हितचिन्तक प्रेस रामघाट वाराणसी ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेवाड़ी भाषा के स्वतन्त्र अस्तित्व को प्रदर्शित कर योगिराज महाराज चतुसिंहजी के मेवाड़ी साहित्य का संपादन किया। श्रीमद्‌भागवत के आधार पर कृष्ण चरित लिखा, जो रचना आपकी द्रष्टव्य है।

कंसं समुद्दिश्य हि कालनेमिं
ममावतारो वसुदेवगेहे।
खलान् समुन्मूलयितुं भवेद्धि
देवा भवन्त्वत्र सहायभूताः ॥ १२ ॥
इत्थं समाश्वास्य गिरा स्वयम्भू
र्जगाम भूयो भुवनं स्वकीयम्।
विश्वम्भराश्वासनसम्प्रणीता
विश्वम्भरा वापि जगाम भूयः ॥ १६ ॥
बम्भ्रम्यमाणो जगतो हिताय
नाशाय चैवाहितकृन्नराणाम्।
श्रीनारदः कंसमुपेत्य सर्वं
सर्वसहावृत्तमिदं जगाद ॥ १७ ॥

समश्लोकी मेवाड़ी भाषा में अनुवाद

अयि दीनतरं दयानिधे
दुखस्थं सकलैः समुज्झितम्।
अधुनापि न मां निभालयन्
भजसे हा कथमशमचित्तताम् ॥ १३ ॥
द्रवो नाथ सुखसागर अब तो, दुःख दावानल दे संताप।
छोड्यो कुटुम कबीलो सारो, छोड़ी जात पांत री छाप ॥
अतरा पर भी दया दृष्टि शूं, नी देखोगा दया निधान।
तो नि[illegible] कर लेवां मन में, हृदय आपरो चक्रसमान ॥ १३ ॥
सुमहन्ति जगन्ति बिभ्रतस्तव यो नाविरभून्मनागपि।
स कथं परमाप्तदेहिनां परमाणोर्मम धारणे श्रमः ॥ १४ ॥
Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्रिपाठी नारायण शास्त्री

आपका मुख्य निवास स्थान नाथद्वारा है । 'श्रीगोवर्धन संस्कृत पाठशाला' में व्याकरण, साहित्य, वेदान्तादि विषयों का गहन अध्ययन किया । ज्योतिष का भी अध्ययन कर 'श्रीनाथ पंचागं' का प्रणयन करते रहे ।

आपके पिता का नाम श्रीरामकृष्ण तथा माता का भूरिबाई हैं ।

काव्य शास्त्रीय दृष्टि से आपकी कविताएं प्रसादगुण युक्त गरिमा को लिए हुए है ।

'रामकृष्ण संस्कृत विद्यालय' नामक पाठशाला के संचालन के कार्यभार भी वहन करते रहे । इस विद्यालय से व्याकरण, साहित्य, आयुर्वेद, विषयक ज्ञान प्राप्त कर अनेकों छात्र परीक्षाओं में सम्मिलित होते रहे हैं । आपकी सरस कविता अवलोकनीय है ।

पार्थः प्रार्थयिता यथा विधिवशात् पीयूषमासादयन्,
विन्दन् दीनजनः समृद्धिर्महतं सिंहासनं भूपतेः ।
सूक्ति सत् कवि निर्मितां सहृदयः श्रृण्वन्यथा मोदते
श्रीगोविन्द तथैव जन्मदिवसं ते प्राप्य हृष्टा वयम् ॥ १ ॥

इन विद्वानों की ये कविताएं मन्दिर में होने वाले महोत्सव पर तथा गोस्वामी महाराज के जन्म दिवस के उपलक्ष पर बनाकर सुवर्ण मंगल मणिमाला के रूप में प्रकाशित कर सुनाई जाती थी । यहां के आचार्य संस्कृत साहित्य के प्रखर विद्वान् हुए तथा सर्वदा संस्कृत के विद्वानों को प्रश्रय देते रहे, जिसके परिणाम स्वरूप इस क्षेत्र में देववाणीके भण्डार में उत्तरोत्तर श्रीवृद्धि होती रही ।

पं. श्री लक्ष्मीनारायण पुरोहित
साहित्याचार्य, वाचस्पति, विद्यावारिधि, कवि- कलानिधि

पं. श्रीलक्ष्मीनारायण पुरोहित का जन्म महाप्रतापी महाराणा राहप के कुलगुरु, तपोनिष्ठ, विद्वान् पालीवात ब्राह्मण जाति के (शरशल्य) 'श्रीसरसल' के वंश में कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा वि. सं. १९६५ के दिन हुआ । राजपुरोहित श्री सरसल के

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आशीर्वाद से ही राणा राहप ने चित्रकूट (चित्तौड़) का राज्य शत्रुओं को पराजित कर हस्तगत किया ।[१]

इनका जन्म शुद्धाद्वैत वल्लभ सम्प्रदाय की पीठ के प्रभु श्री द्वारकाधीश की पुरी 'कांकरोली' जिला राजसंमद (राजस्थान) में हुआ । इनके पिता श्रीराधाकृष्ण पुरोहित तत्कालीन वहां के सार्वजनिक निर्माण विभाग के प्रधान थे । माता श्रीमती भूरीबाई सरल, सहृदया, पतिपरायणा, धर्मनिष्ठा, थी ।[२]

इन्होंने 'वाराणसेय संस्कृत महाविद्यालय' जो इस समय 'सम्पूर्णानंद विश्वविद्यालय बनारस' है, वहां की संस्कृत साहित्य में 'साहित्याचार्य' उपाधि अधिगत की । इसके अतिरिक्त न्याय, व्याकरण, वेदान्त और काव्य कर्म में लब्धप्रतिष्ठ व्युत्पन्न विद्वान् थे । 'भारतचम्पू काव्य की साहित्य दृष्टि से समीक्षा' नामक शोध प्रबन्ध लिखकर 'श्री सयाजीराव बड़ौदा विश्वविद्यालय' से 'वाचस्पति' की उपाधि प्राप्त की । इसके अनन्तर 'अलंकार समीक्षा' विषयक दूसरा शोध ग्रन्थ लिखकर 'श्री लालबहादुर राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) देहली' से 'विद्यावारिधि' की उपाधि से विभूषित हुए ।[३]

इनके गुरु पं. श्रीपुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी एवं श्रीमार्कण्डेय मिश्र थे । श्री चतुर्वेदी 'मेयो कॉलेज अजमेर' में संस्कृत विभाग के प्रधान थे ।श्रीमिश्र 'महाराणा संस्कृत कॉलेज उदयपुर' के प्रिंसिपल पद पर प्रतिष्ठित थे । ये व्याकरण, वेदान्त, साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् होने के साथ साथ महान् दार्शनिक थे । सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक मीमांसादि दर्शन शास्त्रों पर अनेक बार शास्त्रार्थ कर भारतवर्ष में ख्याति अर्जित की । श्री त्रिपालदास गुरु के पास से साङ्गोपाङ्ग शुक्ल यजुर्वेद का अध्ययन किया ।[४]

---

१. भव्याशिषा ब्राह्मण पल्लिवाल जातीय विद्वच्छरशल्यनाम्नः ।
श्री चित्रकूटे बललब्धराज्यं चक्रे ततो राहप एष वीरः ॥
राजप्रशस्ति महाकाव्य सर्ग ३ श्लोक ३१-३४

२. 'स्वर मंगला' वर्ष १५ अंक सित.दिस.१९९४ संयुक्ताङ्क 'राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर' पृ.—५०

३. 'स्वर मंगला' वर्ष १५ अंक सित.दिस.१९९४ संयुक्ताङ्क राजस्थान संस्कृत आकादमी जयपुर' पृ.५३

४. 'स्वर-मंगला' वर्ष १५ अंक सित.दिस.१९९० संयुक्ताङ्क 'राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर पृ.५१

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कवि कलानिधि पं. लक्ष्मीनारायण पुरोहित साहित्याचार्य, विद्या वाचस्पति, विद्यावारिधि 'श्री महाराणा राजकीय संस्कृत महाविद्यालय उदयपुर' के साहित्य, विभाग के विभागाध्यक्ष पद पर कार्यरत रहकर अनेकों छात्रों को संस्कृत साहित्य का अध्यापन कराया। इसके पूर्व प्रभु श्री द्वारकाधीश की पुरी कांकरोली में 'शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय वल्लभ संप्रदाय' के गोस्वामी आचार्यों ने अपने यहां के विद्याविभाग' के उपसंचालक पद पर नियुक्त किया। अपनी सभा के मान्य पंडित का स्थान दिया। श्री गोस्वामी आचार्यों की धार्मिक सभाओं में साथ रहकर वैदुष्यपूर्ण धार्मिक प्रवचन करते और गोस्वामी बालक बालिकाओं का अध्यापन कार्य किया, आचार्य पद पर बने रहे। 'आदर्श विद्या मंदिर उदयपुर' के प्रधानाध्यापक पद का कार्य निष्ठा से संपन्न किया। 'प्राचीन वार्ता रहस्य' के संस्कृत भाग एवं 'पालीवाल संदेश' के संस्काराङ्क का संपादन कार्य किया और राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन सप्तमाधिवेशन की विवरण पत्रिका का संपादन कर प्रकाशित करवाया।[१]

इनकी अप्रकाशित संस्कृत रचनाएँ श्री गोविन्द गुणार्णवः, भाववैभवम्, मुक्तकमणिमाला, गद्यतरंगिणी, पञ्चामृतकाव्यम्, निबंधनिर्झरिणी, चण्डीचरणरेणु-चिन्तनम्, चित्तौड़दुर्गः है।[२]

प्रकाशित हिन्दी रचनाओं में 'प्रतापदशक प्रताप जयन्ती' आदि पद्यकाव्य है। इन्होंने 'शब्द विशेष गत काव्यतावाद प्रतिष्ठा' विषयक संस्कृत का अनुसंधानात्मक लेख लिखा, जो 'राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर, से पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ। इस तरह अनेकों हिन्दी संस्कृत में लेख, गद्य, पद्य काव्य, कहानी लिखते रहे, जो दिल्ली के 'संस्कृत रत्नाकर,' जयपुर की 'भारती', काशी के सिद्धान्त, गोरखपुर के 'कल्याण' आदि पत्रों में प्रकाशित होते रहे। इनका 'संस्कृत शिक्षा विषयक निबंध 'अखिल भारतीय संस्कृत सम्मेलन' में सर्वोत्तम माना जाकर ये सुवर्ण पदक से पुरस्कृत हुए। इनकी कविता भी दिल्ली के आ.भा. संस्कृत कवि सम्मेलन में 'प्रथम श्रेणी' में द्वितीय स्थान पर मानी गई और 'राजस्थान

---

१. 'स्वर-मंगला' वर्ष १५ अंक सित. दिस. १९९० संयुक्ताङ्क राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर' पृ. ५०,५१

२. राजस्थान के संस्कृत कवि' भाग४, प्रकाशक—'राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर पृ. ६७

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्कृत साहित्य सम्मेलन' अजमेर में कविता प्रथम स्वर्णपदक से पुरस्कृत हुई। इनकी विभिन्न रचनाओं का रसास्वादन कीजिये। इन्होंने पञ्चामृतकाव्य में शिव की स्तुति की है:—

इति हिमवतः सुता, नृपति जह्नुजाताऽमुत,
इयं तपता कृशा, सबहुमानमेषाऽऽगता।
इतीव कलयन् शिवः शिरसि जह्नुजां स्थापयन्,
समर्चयति शैलजां स्वतनुसव्यता सेवया॥ ॥ पञ्चामृतकाव्य ॥
माधव। ते स्मितरश्मयो लोके यदि विलसन्ति।
तन्मन्ये सम्प्रति सतां सुकृतसम्पदः सन्ति॥ ॥ गोविन्द गुणार्णव ॥
विप्रैर्यत्र क्षिति परिवृढ प्रेधितैस्तन्यमाने,
यज्ञस्तोमे किसलयरुचिः प्रोत्थितो होमधूमः।
स्वर्बालानां श्रुतिपरिसरे पर्यटन् कर्णपुरः
वाञ्छां प्रौञ्छत् प्रतिदिनमहो। सैष चितौड़दुर्गः (चित्तौड़दुर्गकाव्य)
इन्दुस्त्वमार्य! तवनास्ति कलंकशंका,
सूर्यस्त्वमञ्च मधुरस्पृहणीयकान्तिः।
कल्पद्रुमोऽसि भुवि विश्वजनीन जन्मा,
ह्येकोप्यनेक गुणमण्डल मण्डितोऽसि॥(भाववैभव काव्य) [१]

संस्कृत हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में लेखों और काव्यों को प्रकाशित करवाते रहे। फलस्वरूप आपके रचना कौशल, शैली और प्रतिभा उत्कर्ष से परिचित होकर संस्कृत मनीषियों और गुरुजनों ने इनको 'कवि-कलानिधि' की उपाधि से विभूषित किया। 'राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन उदयपुर' के सप्तमाधिवेशन के स्वागत मंत्री रहे। 'उदयपुर मण्डल संस्कृत साहित्य समिति' के प्रधानमंत्री और उपाध्यक्ष पद पर रहकर संस्कृत साहित्य की सेवा की, अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन' की स्थायी समिति के सदस्य रहे।[२]

इस पुस्तक के लेखक डा० चन्द्रशेखर पुरोहित के पिताश्री थे।

---

१. स्वरमंगला वर्ष १५ अंक सित.दिस.१९९० राज.संस्कृत अकादमी जयपुर—पृ,५३-५७
२. राजस्थान के संस्कृत कवि भाग ४ प्रकाशक राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम) उदयपुर पृ.६८

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पं. बालकृष्ण व्यास शास्त्री का जन्म १४ जनवरी १९०६ ई. उदयपुर में हुआ। आपने 'गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज बनारस' से साहित्य शास्त्री एवं 'राजस्थान बोर्ड अजमेर' से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। आपके पिता का नास बंशीलाल और माता का नाम दाखी था।

गोविन्द दामोदरस्तोत्र, गंगालहरी, शिवस्तोत्र पंचकम्, भक्तामरस्तोत्र का समश्लोकी अनुवाद किया। भासकृत मध्यम व्यायोग का हिन्दी अनुवाद १९३३, नीतिशतक (भर्तृहरि) का हिन्दी अनुवाद १९४० में किया, पाणिनीय व्याकरण, शब्द निर्माण की अभिनव पद्धति एवं सिद्धांत कौमुदी का संस्कृत पद्यों में सोदाहरण ३००० पद्यों की रचना कर इतने सभी साहित्य का प्रकाशन करवाया।

राजस्थान सरकार द्वारा १९८५-८६ में पुरस्कृत और जिलाधीश उदयपुर द्वारा १९८६ में पुरस्कृत हुए। साथ ही देश-विदेश के संस्कृत समाज से प्रशंसित रहे। सम्प्रति आप 'शिवशक्ति पीठ' पुस्तकालय राजमहल उदयपुर (राजस्थान) के अध्यक्षपद रहते हुए, सतत देववाणी संस्कृत के प्रचार प्रसार व प्रकाशन में निरत है। आपका सिद्धान्तकौमुदी का एक पद सरल रूप में रचित है, जो अवलोकनीय है।

गुण सन्धिः

अकाराकारयोरग्रे, इकारो वा च ई भवेत्।
एकारः स्याद् द्वयोः स्थाने, नरेन्द्रो व नरेश भो॥

यण् सन्धिः

ह्रस्व दीर्घा इ उ ऋ लृ—वर्णानां पुरतः स्वराः।
यथाक्रमं य व र लाः जायन्ते सर्वदैव हि॥

कारक प्रकरणम्

नमः स्वस्तिः........

नमः स्वाहा स्वधा स्वस्ति, तथालं च वषड्भवेत्।
एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्, गणेशाय नमो नमः॥
दूरं दूरेण दूराद् वा, दूरे स्याच्चापि सप्तमी।
विभक्तयश्चतस्त्रोऽत्र, दूराद्यर्थे भवन्ति हि"
शीङ्स्थासामधिपूर्वाणा-माधारः कर्म जायते।
द्वितीया तत्र वक्तव्या, चाध्यशेतोदधिं हरिः॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अष्टम अध्याय

जैन संस्कृत साहित्य

जैन साहित्य (श्वेताम्बर)

सिद्धसेन दिवाकर

इनके पिता का नाम देवर्षि और माता का नाम देवश्री कहा जाता है, उज्जैन के समीप में इनका जन्म हुआ ।[१] चित्तौड़ में ये चिरकाल तक रहे और स्कन्दलाचार्य के पट्टधर थे । इनके जन्म काल के सम्बन्ध में अनेक मत मतान्तर है, किन्तु मुनि जिनविजय इन्हें ५३३ ई. में समीपवर्ती मानते हैं, जिसे अधिकतर विद्वानों ने उचित माना है ।[२]

इनका 'न्यायावतार' संस्कृत में पद्यबद्ध तर्कशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ है । जैन तर्कशास्त्र के आदि पुरुष उद्‌भट दिग्गज विद्वान् थे । कल्याण मन्दिर स्तोत्र इनका प्रमुख है ।[३] चित्तौड़ आने वाले जैन मुनियों में प्रथम माने गये हैं । आपके चित्तौड़ में पधारने का प्रसंग वि. सं. १३१४ में प्रकाशचन्द्र सूरि रचित 'प्रभावक चरित्र' एवं वि. सं. १४०५ में रचित राजशेखर सूरि के 'प्रबन्धकोष' में पाया जाता है कि सिद्धसेन चित्तौड़ आये, तब एक स्तम्भ काष्ठ पत्थर और मिट्टी निर्मित देखा । वह औषधि चूर्ण से बना हुआ मालूम हुआ । विपरीत औषधियों से घिसने पर स्तम्भ में छिद्र हो गया । छिद्र से स्तम्भ में एक विशाल पुस्तक संग्रह देख आश्चर्यान्वित हो गये । एक पुस्तक में स्वर्णादि का प्रयोग और उसके पश्चात् सरसों से घोड़े बनाने की विधि प्राप्त हुई, जिससे आप बड़े हर्षित हुए । शासन देवी ने दुरुपयोग

---

१. वी. भू. चि.—पृ १११, सोमानी ।

२. जैन साहित्य संशोधक खण्ड १, अंक १ पी. एल. वैद्य ने न्यायावतार की भूमि का में इनका काल निर्धारण ई. स. ७०३ के समीप माना है ।

३. वी. भू. चि पृ. ११३ सोमानी. श्री अगरचन्द नाहटा ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

होने की सम्भावना देखकर प्रति को ले लिया। उक्त दोनों सिद्धियों का प्रयोग सिद्धसेन ने 'कर्मार' के राजा देवपाल की सहायता के लिए किया, जिसके फलस्वरूप राजा ने आपको 'दिवाकर' की उपाधि से विभूषित किया।[१]

हरिभद्र सूरि

जैनाचार्यों में आचार्य 'हरिभद्र सूरि' का विशिष्ट स्थान है। इनके पिता का नाम 'शंकर भट्ट' और माता का नाम 'गंगा' दिया हुआ है।[२] जन्म स्थान के विषय में विद्वानों का मतभेद रहा है। 'कहावली' नामक प्राकृत कृति में इसके लिए' पिवंगुईए बंभपुणरि' लिखा मिलता है।[३] यह स्थान कहां है? इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं।[४] जब कि इतर प्राचीन ग्रन्थों में इनका जन्म स्थान चित्तौड़ दिया हुआ है।[५] 'गणधर सार्धशतक' की 'सुमतिगणि कृत वृत्ति' में स्पष्ट रूपेण इनका ब्राह्मण वंश में उत्पन्न होना माना गया है।[६] इनका आविर्भाव काल मुनि जिनविजय की मान्यतानुसार लगभग आठवीं शताब्दी स्थिर होता है, जिसे विद्वानों ने उचित माना है।[७]

दर्शन और योग के क्षेत्र में आपका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थों में 'षड्दर्शन समुच्चय' और 'शास्त्रवार्ता' समुच्चय विशेष उल्लेखनीय है। 'षड्दर्शन समुच्चय' में केवल मात्र सत्तासी पद्यों का संग्रह है। शास्त्रवार्ता समुच्चय, में कर्मवाद पर विशेष ऊहापोह हुआ है। 'अनेकान्त

१. जैन साहित्य और चित्तौड़ श्री अगरचन्द नाहटा शोध पत्रिका ४ भा. १, अंक १,
२. "संकरो नाम घटो, तस्य गंगा नाम भट्टिनी। तीसे हरिभोदृ नाम पंडिओ पुत्रो"। 'कहावली' भद्रेश्वर कृत अमुद्रिते पाटेण सिंघवी के पाड़े के जैन भण्डार की वि.सं. १४९७ में लिखित ताड़पत्रीय पुस्तक खण्ड २ सं. ३००।
३. वही " " " "
४. वी.भू.चि., पृ. ११४, रा.व. सोमानी।
५. (क) हरिभद्रसूरिकृत—६ उपदेश पद की श्री मुनिचन्द्रसूरिकृति टीका वि.सं. ११७४ (ख) गणधर सार्धशतक' की सुमतिगणि कृत वृत्ति वि.सं. १२९५,
(ग) प्रभाचन्द्र सूरिकृत 'प्रभावक चरित्र' नवम श्रृंग वि.सं. १३४।
(घ) राजशेखर सूरिकृत 'प्रबन्ध कोष' अमर नाम 'चतुर्विंशति प्रबन्ध' वि.सं. १४०५।
६. 'एवं सो पंडित गव्य मुव्यहमाणो हरिभद्दो नाम माहणो' कर्मसंग्रहिणी की प्रस्तावना से उद्घृत पृ. ५ अ।
७. वी.भू.चि., पृ. ११५, रा.व. सोमानी।

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जयपताका' में अन्य दर्शनों का खण्डन किया गया है। योग सम्बन्धी कई ग्रन्थ है, जिनमें से 'योग द्रष्टि समुच्चय' और योग बिन्दु विशेष महत्त्वपूर्ण है। इन विषयों के अतिरिक्त इन्होंने आचार शास्त्रादि पर कई टीकाएँ लिखी हैं। आगम कथा, ज्योतिष, स्तुति सम्बन्धी अनेकानेक रचनाएं संस्कृत और प्राकृत में लिखकर आपने देववाणी के भण्डार में अभिवृद्धि की है। रचनाएं मुनि श्रीजिनविजय ने 'आचार्य समदर्शी हरिभद्र' के नाम से स्वतन्त्र पुस्तक का प्रकाशन किया है, जिसमें उनके जीवनवृत्त, रचित कृतियों आदि का सविस्तार विवरण किया गया है।[१]

प्रद्युम्न सूरि

अल्लट कालीन प्रद्युम्न सूरि बड़े प्रसिद्ध विद्वान् थे। इन्होंने चित्तौड़ में चैत्यवासियों तथा दिगम्बरों को शास्त्रार्थ में पराजित किया, इतने पर भी दिगम्बरों और चैत्यवासियों का प्रभाव बना रहा।

बलभद्र सूरि

अल्लट की रानी 'हरियादेवी' हूण कुल की थी। मान्यता है कि वह खेती दोष से ग्रस्त थी। बलभद्र सूरि ने उसे इस रोग से मुक्त किया। महारावल 'अल्लट' ने हूणों की सहायता से चित्तौड़ पर आधिपत्य बनाया था। सोमदेव के नीति वाक्यामृत में हूणों के चित्तौड़ पर आक्रमण का उल्लेख मिलता है, इन विद्वानों का इतना ही परिचय मिलता है, रचनाएं दृष्टिगत नहीं हुई।[२]

आचार्य जिनवल्लभ सूरि

आशिका नगरी में चैत्यवासी आचार्य जिनेश्वर सूरि नामक एक मठाधीश रहते थे, उनके शिष्य जिन वल्लभ सूरि थे। अल्प आयु में ही इनके पिता का देहान्त हो गया, इसलिए माता ने ही पालन पोषण कर मठ में पढ़ने भेजा, दूसरे बालकों की अपेक्षा इनको अधिक प्रतिभासम्पन्न जानकर येन केन प्रकारेण माता से इन्हें अपने शिष्य के रूप में रखने के लिए मांग लिया।[३]

जिन वल्लभ ने चैत्यवासियों की शास्त्रविरोधी प्रवृत्तियों को देखकर इस मार्ग को छोड़ दिया और फिर पाटण में अभयदेव सूरि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण

---

१. 'आचार्य समदर्शी हरिभद्र सूरि'—मुनि श्री जिन विजय, राजस्थान प्रा. वि. प्र. जोधपुर।

२. वही „ „ „ पृ. ११६

३. जैन साहित्य ने संक्षिप्त इतिहास, पृ. १०९ मो. दु. देसाई।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

की ।[१] उपसम्पदा प्रदान करने के अनन्तर सर्वत्र विचरण करने की अनुमति भी प्रदान की । पश्चात् वे कुछ दिन गुजरात में विहार करते रहे, किन्तु वहां उन्हें अपने सिद्धान्त प्रचार में अभीष्ट सफलता नहीं मिली, क्यों कि उस समय गुजरात में चैत्यवासियों का महान् प्रभाव था । जिनवल्लभ जैसे क्रान्तिकारी, विचारक, कटु-आलोचक एवं निर्भयवक्ता का वहां प्रभाव जमना सरल न था, ऐसा सोच समझ उन्होंने चित्तौड़ में अधिक समय व्यतीत करने का निश्चय किया ।

यहां पर उनके गुरु आचार्य अभयदेव की पर्याप्त प्रतिष्ठा थी, अतएव यहां के व्यक्ति उनको अनादर की दृष्टि से नहीं देखते थे । वैसे तो चैत्यवासियों का चित्तौड़ में भी पूरा प्रभाव था, फिर भी चित्तौड़ में आकर चण्डिका देवी के मठ में निवास किया । देवी भी उनके ज्ञान एवं ध्यान से सिद्धिदात्री बन गई । उनके पास प्रतिदिन अनेक ब्राह्मण आने लगे तथा शास्त्र विषयक चर्चा होने लगी । शनैः शनैः उनके वैदुष्य की ख्याति, पाण्डित्य का प्रभाव सर्वत्र फैल गया । जैन श्रावक भी उनकी ओर आकर्षित होने लगे । विश्वास हो गया कि यह एक साधु महात्मा है, जो हमारे अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर सकता है । जिनवल्लभसूरि का वैशिष्ट्य यही था कि उनकी 'कथनी' और 'करणी' में अन्तर नहीं था । जिन सिद्धान्त वचनों की व्याख्या करते, उन्हीं को वे अपने आचरण में भी उतारते थे । वक्तृत्व शैली में अत्यन्त ही कुशल थे । कोई भी व्यक्ति उनके प्रवचन से ऊबकर उठता नहीं, मंत्रमुग्ध से उनके उपदेशों का श्रवण किया करते थे ।

दैव दुर्विपाक से इनके कई अमूल्य ग्रन्थ नष्ट हो गये, इस समय कुछ ही रचनाएं प्राप्त हैं जिनका उल्लेख निम्नांकित है—

धर्म शिक्षा प्रकरण

इस काव्य की रचना प्राणिमात्र के कल्याण के लिए की हो, ऐसा प्रतीत होता है । प्रसाद एवं ओज गुण युक्त कोमलकान्त पदावली का सन्निवेश इसमें देखने को मिलता है । विविध छन्दमयी योजना में अलंकारों का पर्याप्त समावेश दृष्टिगत होता है ।

आचार विचार युक्त अट्ठारह विषयों का प्रतिपादन मार्मिक शैली से किया गया है । दैव, गुरु और धर्म तीनों के वर्णन की प्राधान्यता है । अट्ठारह विषय निम्नांकित है ।:—

---

१. वी.भू.चि.पृ.२२७,रा.व.सोमानी ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भक्तिश्चैत्येषु शक्तिस्तपसि गुणिजने शक्तिरर्थे विरक्ति:
प्रीतिस्तत्त्वे प्रतीति: शुधगुरुषु भवाद् भीति श्रद्धात्मनीति:
क्षान्ति: दान्तिस्वशान्ति सुखवहति अबलावान्तिर भ्रान्तिराप्ते,
ज्ञीप्सा दित्सा विधित्सा श्रुतघनविनयेष्वसुधी: पुस्तके च ।।

प्रथम पद्य में जिनेश्वर को नमस्कार कर काव्य रचने की प्रतिज्ञा प्रदर्शित की है । द्वितीय पद्य में धार्मिक कर्तव्य करने का उपदेश कर तृतीय पद्य में अट्ठारह विषयों का निर्देश किया है । पद्य सं. चार से उञ्चालीस तक प्रत्येक विषय का दो दो श्लोक में वर्णन किया है । प्रथम और अन्तिम पद्य चक्रबन्ध काव्य रूप में लिखा गया है, जिसमें कवि ने अपना नाम 'वल्लभगणि वचनमिदम्' का संकेत किया है ।

इस परिपाटी के अनुरूप रचना श्वेताम्बर जैन साहित्य में सम्भवत: सर्व प्रथम आचार्य जिनवल्लभ ने की है ।

संघ पट्टक

इस कृति में कवि के जीवन का चरमोत्कर्ष निहित है । दीक्षा ग्रहण के पश्चात् आपने चैत्यवास का सक्रिय विरोध कर उसके आमूलोच्छेदन करने का प्रयत्न किया, जिसमें आंशिक सफलता भी अधिगत हुई ।

रचना में तत्कालीन चैत्यवासी आचार्यों का शैथिल्य, उनका उन्मार्गगामी होना एवं गुणिजनों के प्रति द्वेष रखना इत्यादि विषयों का प्रतिपादन करते हुए विधिपक्ष (खरतरगच्छ) के व्यावहारिक आचार विचारों का विवेचन किया गया है । संघ (विधिपक्ष) पट्टक (विधानशास्त्र) होने से कवि ने इसका नामकरण भी संघ पट्टक किया है ।[1]

भावारिवारण स्तोत्र

यह स्तोत्र संस्कृत प्राकृत में समश्लोकी लिखा गया है । इस तरह संस्कृत प्राकृत भाषा में साहित्य सर्जना करना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है । दोनों भाषाओं पर समानाधिकार होने पर ही यह संभव हो सकता है । भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से भी ऐसे साहित्य की विशेष महत्ता है । इस प्रकार की कृति सर्व प्रथम आचार्य हरिभद्रसूरि की 'संसारदावानल स्तुति' मिलती है ।

१. श्री संघस्य पट्टरूपं श्री संघराज्यपटक शास्त्रं चकार । (साधुकीर्ति अवचूरी)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इस स्तोत्र का लक्ष्य भगवान् की गुण गरिमा का गान करके संगीत की मधुर सरस विधियों द्वारा आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि करना है ।

पंचकल्याण स्तोत्र

इसके कुछ श्लोक स्रग्धरा वृत्त में ग्रथित है । दो दो श्लोकों में एक एक कल्याणक का वर्णन है और अन्तिम दो पद्यों में इन सबका महत्त्व प्रदर्शित किया गया है । इसकी रचना अलंकार पूर्ण, ओजमयी शैली में हुई है । समस्त पदावली में क्लिष्टता का आधिक्य होने पर भी सरलता से बोधगम्य होना, इसकी अपनी विशिष्टता है ।

कल्याण स्तोत्र

यह कुल श्लोक संख्या सात में रचित है । एक श्लोक में एक कल्याणक का वर्णन है । प्रथम तथा अन्तिम पद्य में इसकी महत्ता वर्णित है । कवि ने इस स्तोत्र को अनुष्टुप् छन्द में ही लिखा है ।

भारतीय स्तोत्र (सरस्वती स्तोत्र)

यह कृति ललितपदावली युक्त 'हरिणी' वृत्त में गुम्फित पच्चीस पद्यों में लिखी गई है । कवि ने सरस्वती का स्वतन्त्र रूप स्थापित करते हुए जिन वाणी को दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है ।

सर्वजिन स्तोत्र

वसन्ततिलका वृत्त द्वारा कुल तेईस पद्यों में जिनेश्वरों की स्तुति की गई है ।

पार्श्वजिन स्तोत्र

इसमें कुल श्लोक तैंतीस हैं । तेईसवें तीर्थंकर 'आश्वसेनीय पार्श्वनाथ' की स्तुति की गई है । शिखरिणी, मालिनी, वसन्ततिलका और हरिणी छन्दों के चार अंष्टकों में रचना की गई है । अन्तिम पद्य शार्दूलविक्रीडित छन्द उपसंहार रूप में लिखा गया है ।

इस आद्य स्तोत्र के उपसंहार पद्य में कवि के उस प्रतिभा के बीज का हमें भलिभांति दर्शन होता है, जो आगे जाकर अंकुरित पल्लवित और पुष्पित होती हुई नानारूप ग्रहण करके कवि की यशश्री को वृद्धिगत करती है । प्रथम रचना में होने वाले गुणापकर्ष के प्रति कवि स्वयं सजग है, जैसा कि उसने स्वयं लिखा है—

'अज्ञानात् भणिति स्थिते: प्रथमाभ्यासात् कवित्वस्य यत्'

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पार्श्वस्तोत्र

'विनय विनमद्' मंगलाचरण के प्रथम श्लोक का प्रथम पद है। इसके सोलह पद्य मालिनी वृत्त में तथा सत्तरहवां हरिणी छन्द है।

इन सब स्तोत्रों से उक्ति वैचित्र्य, शब्द चयन आलंकारिक प्रयोग का ज्ञान प्राप्त होता है। इसके साथ ओज और प्रासाद गुण की महिमा देखने को मिलती है। समास की जटिलता के साथ सरलता एवं व्याकरण के साथ दार्शनिक तत्वों का भी सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उपमा, रूपक, श्लेष, यमक, निदर्शना,विभावना, विशेषोक्ति अर्थान्तरन्यास, दृष्ठान्त और अतिशयोक्ति आदि तो इधर उधर मणिराजि के समान बिखरे पड़े हैं। लिखित यह स्तोत्र साहित्यिक विशिष्टता रखता है।

'भावारिवारण स्तोत्र न केवल संस्कृत और प्राकृत के एक साथ प्रयोग किये जाने की दृष्टि से चमत्कारक है, अपितु काव्य तत्व की दृष्टि से भी पद्य में अनुप्रास की छटा अवलोकनीय है।

निस्संग। निःसमर। निःसम। निःसहाय।
नीराग। नीरमण। नीरस। नीरिरंस।
हे वीरे। थीरिमनिवासनिरुद्धाधार—
संसारचार जयजीवसमूहबन्धोः ॥। २१ ॥

इस प्रकार 'क्ष' कार की छटा का कोमलवर्णों के सान्निध्य में जो अनुपम चमत्कार श्लोक से मिलता है—

क्षुण्ण क्षय क्षिपितमोक्ष विपक्षलक्षः
क्षीण क्षदक्षुभित पक्ष्मलद्दक्कटाक्षैः
क्षान्तिक्षत क्षमजिताक्ष सदक्षमंक्षु
रक्षक्षणं क्षतकमक्ष निरीक्षणान् माम् ॥ २१ ॥

पार्श्वनाथ स्तोत्र में सभी छंदों में एक एक ऐसे वर्ण का चयन हुआ है, जो उस मालिनी छंद की प्रत्येक यति पर आता है। सरस मनोहर 'अन्त्यानुप्रास अलंकार द्रष्टव्य है—

विनयविनमदिन्द्रं मन्मनोऽम्भोधिचन्द्रम्,
हितकृतिगततन्द्रं, प्राणिषु प्रीतिसान्द्रम्।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वचसिजलदमन्द्रं संस्तुवे पार्श्वचन्द्रं
त्रिजगदवितथेन्द्रं धैर्यधूताचलेन्द्रम् ॥ १ ॥

इस तरह अद्‌भुत व्यक्तित्व रखने वाले जिनवल्लभ में क्रान्तिकारी, प्रबलसुधारक, तपस्वी, आचार्य तथा विलक्षण कवित्व का समन्वय हैं।

-श्रृंगारशतक

कवि जिनवल्लभ की साहित्यिक कृतियों में 'श्रृंगारशतक' का विशिष्ट स्थान है। उपाध्याय जिनपाल और सुमतिगणि ने इस शतक का प्रबन्ध काव्य के रूप में उल्लेख किया है। 'जिन कृपाचन्द्रसूरि' ज्ञान भण्डार इन्दौर में सं. १५०७ की लिखित एक मात्र प्रति उपलब्ध है। प्रति त्रुटि पूर्ण एवं जीर्णशीर्ण है। अस्तु—

कवि की यह रचना आचार्य अभयदेव सूरि के पास से दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व की होनी चाहिए। इन्होंने 'तत् काव्यदीक्षागुरुं' इस वाक्य के उल्लेख से कूर्चपुरीय आचार्य जिनेश्वर की ओर संकेत किया है।

सम्भवत: कवि ने 'भरत' का 'नाट्य शास्त्र' और 'कामतन्त्र' का अध्ययन करके इस शतक की रचना की है। इस शतक में कुल एक सौ अक्कीस पद्य है। मालिनी, हरिणी, पृथ्वी, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, वियोगिनी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरादि छन्दों का प्रयोग कवि ने स्वच्छन्दता से किया है। आलंकारिक चित्रण सुन्दर हुआ है।

कवि ने प्रथम पद्य में जगदीश्वर और द्वितीय पद्य में सरस्वती की स्तुति कर तृतीय में 'कविवाणी' की प्रशंसा की है। पद्य संख्या चार से सात तक सज्जन, दुर्जन का उल्लेख और पद्य आठ से एक सौ उन्नीस तक भाव, विभाव, अनुभाव, संचारिभाव और स्थायीभावों के साथ लावण्य लीला विलसित नायिका के अंगोपांगों का तथा संभोग श्रृंगार का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है, जो हृदयाकर्षक है। पद्य एक सौ बीसवें और एक सौ इक्कीसवें में रचना का कारण और प्राचीन कवियों का आभार प्रदर्शन किया गया है तथा अपने नाम का उल्लेख किया है। मुनि होते हुए भी श्रृंगारशतक के उत्कृष्ट श्लोकों की रचना करना, तद्विषयक महत्ता को समझना, उनके विविध ज्ञान एवं वैदुष्य के प्रतीक निम्नांकित श्लोक द्रष्टव्य है—

मानिनी के कुटिल भ्रूभंग, दंतदंशन एवं हुंकार भी युवकों के मन को आन्दोलित करने वाला है, जिस बात को प्रकट करने के लिये भावानुकूल शब्द योजना का प्रयोग कैसा सरस बन पड़ा है ?:—

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मानिन्या: कुटिलोत्कटभ्रुसहसा सन्दष्टदन्तच्छदा-
स्वेदातंगभयेन मोचनकृते हुंकारगर्भं मुखम्
कामं केलिकलौ दृढांगघटना निष्पेषपीडोत्त्रस—
त्तिर्यग्मानभृतार्तनादवदिव प्रीणाति यूनां मनः ॥ १३ ॥

इसी प्रकार कुपिता नायिका के मुख कमल का सौन्दर्य वर्णन यथा

भुग्नभ्रुस्फुटरक्तगण्डफलकं प्रस्यन्दिदन्तच्छदं
लोलल्लोहितचक्षुरुभ्दिरदिव प्रौढ़ानुरागं हृदः
सर्वाकारमनोहरं सुतनु ! ते कोपेऽपि पश्यन् मुखं
दूयेनाऽस्मि यतस्ततो यमधुना मानानुबन्धेन ते ॥ ८५ ॥

लक्षणा और व्यंजना का आश्रय, ले, उत्कृष्ट संभोग श्रृंगार का वर्णन मर्मस्पर्शी हुआ—

'कृत्वा रागवदुद्धतं रतमथो मीलदृशं निःसहां
श्रोणीपार्श्वसमस्तहस्तवितताघातेऽप्यसंज्ञामिव
दृष्ट्वा मां सखिमूर्च्छिता किमुभृता सुप्तानु भीताथवे—
त्याकूताकुलधीरिव द्रुतमभूत् सोऽपि प्रियोऽस्मत्समः ॥ १११ ॥

यह तो हुई संभोगोपरान्त देहावस्था, वरन् उस समय की रसानुभूति का चित्रण जो अनिर्वचनीय हुआ, वह है—

कान्ते ! कल्पितकान्तमोहनविधावानन्दसांद्रद्रव—
द्रागावेग निमीलिताक्षियुगला वीक्षेम तं यद्यपि
नेत्रांनन्दकरं तथापि सखि ! मे तच्चुम्बनालिंगन
प्राक् संक्रान्त इव स्फुरन्त्यनुपमः कश्चित् रसश्चेतसि ॥ ११२ ॥

नारी के सौन्दर्य का वर्णन भी यत्र तत्र विशद एवं नैसर्गिक रूप में मिलता है। इसकी दन्त-ज्योत्स्ना गगन-मण्डल में फैलती हुई अखिल विश्व को अपनी धवलिका से आप्यायित कर रही है, ऐसी स्थिति में वह अभिसार के लिए चन्द्रोदय की प्रतीक्षा क्यों करे ?

मुग्धे दुग्धरिवाशा रचयति तरला ते कटाक्षच्छटाली
दन्तज्योत्स्नापि विश्वं विशदयति वियन् मण्डलं विस्फुरन्ती

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्फुल्लद् गंडपाली विपुलपरिलसत् पाण्डिमाडम्बरेण
क्षिप्तेन्दो कान्तमद्वाभिसर सरभसं किं तवेन्दूदयेन ॥ ७९ ॥

ये हैं जिववल्लभ की अलौकिक रसानुभूति के परिचायक।

जिनदत्त सूरि

क्षपणक भक्त वाछिग की धर्मपत्नी 'बाहड़ देवी' अपने पुत्र को साथ में लेकर साध्वियों के पास धर्मकथा सुनने जाया करती थी। साध्वियों ने सामुद्रिक शास्त्र के बल से पुरुष सम्बन्धी शुभ लक्षण से युक्त बालक को जानकर यह बात अपने गुरु धर्मदेवोपाध्याय को सुना दी, जिससे वे उसकी माता के पास पहुंचे, बालक को वस्तुतः वैसा ही देख अत्यन्त प्रसन्न हुए।

वि. सं. ११४१ में शुभ मुहूर्त देख दीक्षा दी और उस बालक का नाम सोमचन्द्र रखकर अपना शिष्य बना लिया। तदनन्तर प्रधान श्री देवभद्राचार्य ने इनको जिनवल्लभ सूरि का उत्तराधिकारी बनाया।

जिन दत्त द्वारा रचित (१) वीरस्तुति, (२) सर्वजिन स्तुति (३) चक्रेश्वरी स्तोत्र, (४) योगिनी स्तोत्र, (५) अजित शास्ति स्तोत्र ये स्तोत्र साहित्य संस्कृत भाषा में निबद्ध है। 'गणधर सार्द्धशतक' नामक ग्रन्थ में इन्होंने भगवान् महावीर के शिष्य 'गौतम गणधर' से लेकर अपने गच्छपतिगुरुजिन वल्लभसूरि तक के महावीर के शासन में होने वाले और संप्रदाय परंपरा में जाने वाले प्रधान गणधारी आचार्यों की स्तुति की है।

'सर्व जिन स्तुतिः'

शक्तो जिनस्तुतिकृतो न सुदेवसेव्यः,
शक्रोऽपिकस्तदपरः प्रकरोतितास
यद्वा जिनस्तुतिकृतेः किल केवलश्रीः
लाभो भवत्यपि वसाभवेन्न सेव्यम ॥ १ ॥
वन्दे जिनं गुणगुरुं गुणवर्द्धमानं।
सूरिं जिनेश्वरमिहाभयदेवमेव।
याचे तनोतु जिनवल्लभमादरेण।
ज्ञानादिमेकजिनदत्त हि तंतु देहि ॥ ४ ॥

विंशिका के प्राप्त श्लोक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कृतार्गि गण भदैण देवभद्रेण सूरिणा
श्री चित्रकूट दुर्गेऽस्मिन् सोऽपि सूरिपदे कृतः ॥ ३ ॥[१]

रत्नप्रभसूरि

चैत्रगच्छ के रत्नप्रभसूरि तेरहवीं शताब्दी में एक विशिष्ट विद्वान् और कवि हुए। इनके गुरु भुवनचन्द्र सूरि थे। ये घाघसा की वि. सं. १३२२ की प्रशस्ति तथा वि. सं. १३३० की चीरवा गंव की प्रशस्ति के रचयिता थे, जिनका विवेचन प्रशस्ति-अध्याय में हो चुका है।[२]

आचार्य हीरानन्द सूरि

'कामराज रतिसार' ग्रन्थ में 'श्री हीरानन्दसूरि दत्तोपदेशेन' वर्णन है। इससे विदित होता है कि हीरानन्दसूरि कुम्भा के समकालीन थे। महाराणा कुम्भा की राजसभा में इनका बड़ा सम्मान था। सम्भवतः ये कामशास्त्र के ज्ञाता विद्वान् भी रहे होंगे 'कामराज रतिसार' नामक ग्रन्थ जो वि. सं. १५१८ विजयादशमी को कुम्भलगढ़ में पूर्ण हुआ, उसमें इनका सहयोग रहा होगा।[३]

'सोम सुन्दर'

'तपागच्छीय' शाखा के जैन संतों में इनका प्रमुख स्थान था। इनका जन्म प्रहलादनपुरा (गुजरात) में हुआ था। इनके पिता का नाम 'सज्जन' श्रेष्ठि और माता का नाम 'माल्हण देवी' था। जयानन्द सूरि ने इनको १४३७ वि. सं. में दीक्षा दी थी। वि. सं. १४५० में राणकपुर जैन मंन्दिर प्रतिष्ठा के समय वाचक पद प्राप्त करने के पश्चात् देलवाड़ा आये थे।[४]

उस युग के (वि. सं. १४५७-१४९९) महान् आचार्य थे। वह युग एक प्रकार से सोमसुन्दर युग कहलाया तथा सोमसौभाग्य काव्य में सविस्तृत आपका जीवन वर्णित है। इन्हें वि. १४५७ में आचार्य पद प्राप्त हुआ। इनकी मृत्यु संभवतः १४९९ में हुई।[५]

---

१. (गणधर सार्द्धशतक गा.८४ की बृहद् वृत्ति से)
२. वी.भू.चि.–पृ.११८,रा.व.सोमानी।
३. वही पृ ११९,
४. विजयधर्मसूरि—देवकुल पाटक पृ.७। सौभाग्य काव्य पृ.७५ श्लोक १४
Funding by IKS-MoE
५. म.कु.पृ.२११,रा.व.सोमानी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इनके द्वारा लिखित ग्रन्थ भाष्यत्रयचूर्णि, कल्याणकस्तव, रत्नकोश, उपदेशबालावबोध, योगशास्त्र बालावबोध, षड़ावश्यक बालावबोध, भाष्यत्रय अवचूरि, कल्याण स्तोत्र, षष्ठि शतकबालावबोध, आधना पताका बालावबोध आदि मुख्य है ।[१]

मुनि सुन्दर

विद्वान् संत सोमसुन्दर के पश्चात् 'मुनिसुन्दर' हुए, जिनका जन्म वि. सं. १४३६ में हुआ तथा दीक्षा वि. सं. १४४३ में ग्रहण की, इनका राणकपुर से सम्बन्धित अन्तिम लेख वि. सं. १४९९ का है, इसी संवत् में वृद्धावस्था में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए, यह कार्यकाल स्वल्प ही रहा ।[२]

इनके निर्मित ग्रन्थ में अध्यात्म कल्पद्रुम, त्रिदशतरंगिणी, उपदेशरत्नाकर, स्तोत्ररत्नकोश, मित्रचतुष्चटक, शांतिकरस्तोत्र, तपागच्छपट्टावली, शान्तिरससार प्रमुख हैं ।[३] संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् थे । शांतिकरस्तोत्र देलवाड़ा (मेवाड़) में लिखा गया था ।[४]

'सोमदेव वाचक'

तपागच्छ के आचार्य 'सोमसुन्दर' के शिष्यों में 'सोमदेव' का प्रमुख स्थान था । सोमसौभाग्य काव्य से ज्ञात होता है कि राणकपुर मन्दिर के प्रतिष्ठा महोत्सव पर इनको 'वाचक' पद तथा आचार्य की उपाधि से विभूषित किया गया । 'सोम सौभाग्य काव्य' के नवम दशम सर्ग में[५] एवं वि. सं. १५४१ में रचित गुरुगुण-रत्नाकर'[६] काव्य में इनको शास्त्रार्थ में कुशल काव्य कला में प्रवीण बतलाया गया

१. शोध पत्रिका, भा. ६, अं २-३ पृ. ५५ । जैन संग्रह की भूमिका पृ. ८६ ।

२. म. कु., पृ, २१२, रा. व. सोमानी ।

३. श्री मोतीचन्द्र गिरधारीलाल कापड़िया—अध्यायत्मकल्पद्रुम की भूमिका ।

४. म. कु. पृ. २१२, रा. व. सोमानी ।

५. श्रीमेदपाटपतिरुत्कटशत्रु जैत्रः, श्री कुंभकर्णनृपतिग्मभानुः ।
यन्नव्यकाव्यकलया हृदये जहर्ष, श्रीहर्षतोयमधिकं च कविं स मेने ॥ सो. सौभा. १०-३८ ।

६. विद्याविवादमदमेहुरवादिवृन्दं वाक्यैर्निवार्य नृपपर्षदि हर्षवर्षैः ।
ये रंजितः स्वकवित्वकलातिरेकात् क्षुल्लेरपि क्षितिपतिः किल कुम्भकर्णः ॥
गुरुगुणरत्नाकर, २-१०७ ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

है। इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर महाराणा कुम्भा ने इनको कविराजा की उपाधि से अलंकृत किया। कुम्भा के द्वारा अत्यधिक सम्मानित थे।[१]

माणिक्य सुन्दर गणि

इन्होंने देलवाड़ा में वि. सं. १५०१ में 'भवभावना बालावबोध' नामक ग्रन्थ लिखा।[२]

खरतरगच्छ के आचार्य

खरतरगच्छ शाखा में कई विख्यात आचार्य हो गये। श्रीजिनराज आदि के समय में पूना में संग्रहीत 'आचारांगसूत्र चूर्णि' मिली है।[३] जिनवल्लभ और जयसागर नामक जैन कवि हो गये जिन्होंने अनेक प्रकार की स्तुतियां माहात्म्य पूजा सम्बन्धी रचनाएं लिखी। जिन सागर ने वि. सं.१४९२ में मेवाड़ के मुख्य मंत्री 'सहणमाल नवलखा' को प्रतिबोधित कर' आवश्यक बृहद् वृत्ति' का दूसरा खंड लिखवाया। उस समय देलवाड़ा में पुस्तकें लिखी जाती थीं, शास्त्र भंडार भरे पड़े थे।[४]

'सोम सौभाग्य काव्य'

कुम्भा के समकालीन जैन साधु 'प्रतिष्ठा सोम' विरचित यह काव्य १० सर्गों में विभाजित है। विद्वान् साधु ने इसकी रचना स्वसुखाय, स्वहिताय ही की थी। तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को व्यक्त कर कवि ने अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय दिया है।

जैन साधुओं की दीक्षा से लेकर मृत्यु पर्यन्त सम्यक् जीवन व्यतीत करने का क्रम प्रदर्शित किया गया है। श्रेष्ठियों द्वारा संघ निकालने तथा उनकी विलासिता का सुन्दर चित्रण हुआ है।

---

१. म.कु., पृ. २१२,२१३ वी.भू.वि.पृ.११९ रा.वा.सोमानी।

२. म.कु.-पृ. २१५,रा.वा.सोमानी।

३. वही „ २१६

४. वही „

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्कृत की रचना में गुजराती तथा देशी शब्दों का प्रयोग किया है । इसमें देलवाड़ा चित्तौड़, राणकपुर का सुन्दर वर्णन है तथा कुम्भा द्वारा, सम्मानित जैन साधुओं का भी उल्लेख है ।

सोम सौभाग्य के साथ 'गुरुगुणरत्नाकर' जिसमें मध्य कालीन राजस्थान के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर बड़ा प्रकाश डाला गया है ।[१]

'दान प्रदीप'

महावीर प्रसाद प्रशस्ति के रचयिता महोपाध्याय चरित्ररत्न गणि ने महावीरप्रसाद प्रशस्ति के चार वर्ष बाद एक बृहद् ग्रन्थ की रचना की, जिसका नाम 'दान प्रदीप' नामानुसार इस ग्रन्थ से ज्ञानदान, अभयदान, धर्मोपष्टम्भदान, सुमात्रदान आदि दान के प्रकारों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है । प्रसंगवश बहुत सी कथाएँ भी दान धर्म के विविध प्रकारों से सम्बन्धित दी गई हैं । सारा ग्रन्थ संस्कृत में पद्यबद्ध है और द्वादश विभागों में विभक्त है । अन्तिम प्रशस्ति के अनुसार इस ग्रन्थ का परिमाण ६६७५ श्लोकों का है । संवत् १४९९ चित्तौड़ में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ, इसमें ग्रन्थकार ने अपने को विद्याविधान जिनसुन्दर सूरि का शिष्य बतलाया है ।

प्रारम्भ में मंगला चरण में भी सोमसुन्दर सूरि के बाद जिन सुन्दर सूरि की स्तुति की गई है । ८ वें श्लोक में ग्रन्थ का नाम दानप्रदीप बतलाया गया है । प्रासंगिक कथाओं को लेकर ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ा दी गई है । अन्तिम प्रशस्ति के तीन पद्य और प्रारम्भिक मंगलाचरण के तीन पद्य नीचे दिये जा रहे है

श्रीसिद्धिभर्ता भगवान् सुमंगलाजानिर्जिनो यच्छतु मंगलानि वः ।
दानप्रणीतीर्यदुपज्ञमन्वहं त्रैलोक्यमद्यापि सुखाकरोत्यसौ ॥ १ ॥
इत्यर्हणीयस्तवभावमंगलंविधाय जैनागमजातवेदसः ।
नानार्थतेजः परिगृह्य दीपये दानप्रदीयं जिनशासनालय ॥ ८ ॥
विद्यानिधानजिनसुन्दरसूरिशिष्यः श्रीसोमसुन्दरगणेन्द्रनिदेशवश्यः ।
चरित्ररत्नगणिरल्पमतिर्व्यधत्त दानप्रदीपमिममात्मपरार्थसिद्ध्यै । १५ ॥
नवागंवार्धिशीतांशु १४९९ मिते विक्रमवत्सरे
चित्रकूट महादुर्ग ग्रन्थोऽयं समपद्यत ॥ १६ ॥

१. म.कु., रा.व.सोमानी पृ. २१४

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

षट्सहस्त्री षट्शतीच पंचसप्ततिसंयुता ॥ ६६७५ ॥
प्रशस्त्या सट्ट निर्णीतमत्र मानमनुष्टुभाम् ॥ १७ ॥[१]

वस्तुपाल चरित

ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति से विदित होता है कि तपागच्छीय आचार्य सोमसुन्दर सूरि के प्रथम शिष्य मुनिसुन्दरसूरि और जयचन्द्र सूरि हुए। इनमें से जयचन्द्र सूरि के शिष्य विद्वान् जिनहर्षगणी द्वारा वस्तुपाल चरित्र नामक एक ऐतिहासिक काव्य की रचना संवत् १४९७ में चित्तौड़ में की गई थी।

महामंत्री वस्तुपाल और तेजपाल १३ वीं शताब्दी के महान् राजनीतिज्ञ, कलाप्रेमी और विद्वान् थे। इनके बनाये हुए आबू, शत्रुंजय, गिरनार आदि के कलापूर्ण जैन मन्दिर प्रसिद्ध हैं। आबू का 'लूणिगवसही' नामक नेमनाथ जैन मन्दिर तो विश्व विख्यात है। ऐसे महान् भ्राता युगल के कीर्ति कलाप के संबन्ध में समकालीन कई जैन और जैनेतर विद्वानों ने संस्कृत काव्य और प्रशस्तियां लिखी हैं। वस्तुपाल स्वयं 'नरनारायणनंद' नामक संस्कृत महाकाव्य के रचयिता थे। उनके द्वारा लिखी हुई एक ताडपत्रीय प्रति भी खम्बात के जैन ज्ञान भण्डार में विद्यमान है। इन भाइयों और इनके परिवार की कई मूर्तियां आबू के उक्त मन्दिर में विद्यमान हैं। कवि जिनहर्ष गणि ने उनके करीब २०० वर्ष बाद 'श्रीवस्तुपाल चरित्र' नामक काव्य बनाया, उसका आधार प्राचीन सामग्री ही है। इसलिए यह काव्य ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।[२]

प्रस्तावना में उन्होंने ग्रन्थ गत आठ प्रस्तावों का संक्षिप्त सार दे दिया है। इसमें वस्तुपाल, तेजपाल चरित्र के अतिरिक्त प्रासंगिक कई दृष्टान्त और कथाएं भी दी गई हैं। मंगलाचरण के दो श्लोक और अन्तिम प्रशस्ति के चार श्लोक मूलरूप में उद्धृत हैं।

श्रीमानर्हन् शिवः स्वामी नाभिभूः पुरुषोत्तमः।
पुष्णातु भक्तिनिष्णानां श्रियं सर्वातिशायिनीम् ॥ १ ॥

---

१. ग्रन्थ का संपादन आगम प्रभाकर मुनिश्रीपुण्यविजयजी के गुरु चतुरविजयजी ने किया था। श्री जैन आत्मानंद सभा भावनगर सं. वि. संवत् १९७४ में पत्राकार में रूप में यह ग्रन्थ २०० पत्रों में प्रकाशित हो चुका है।

२. श्री क्षान्ति सूरि जैन ग्रन्थमाला से सन् १९४१ में पत्राकार रूप में प्रकाशन सम्पादन कीर्ति मुनिजी ने किया।

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लक्ष्मी सरस्वती लीलानानासत् पुण्य कर्मभिः ।
कोऽपि श्रीवस्तुपालस्य, न परं सदृशो भवेत् ॥ ६ ॥
तच्छिष्यः प्रथमः समर्थमहिमा त्रैविधगोष्ठीगुरुः ।
सूरिः श्रीमुनिसुन्दरः सुरगुरु र्ख्यातः क्षितौ प्रज्ञया ।
अस्ति प्रास्ततमोभरस्तदपरः सूरिस्तु भूरिप्रभाशाली-
श्रीजयचन्द्र इत्यभिधया सर्वत्र लब्धोदयः ॥ १० ॥
त्रैविधगोष्ठी गुरुरात्मवेत्ता, येषां विनेयो जिनमण्डनारव्य ।
श्रीवाचकेन्द्रो जनि जन्तुजात नीवातु वाग्वादिघटामृगेन्द्रः ॥ ११ ॥
विक्रमार्कान्मिते वर्षे, विश्वनन्दर्षि संख्यया ।
चित्रकूटपुरेपुण्ये श्री जिनेश्वरसद्मनि ॥ १२ ॥
जिनहर्षगणिः शिष्यः श्रीजयचन्द्र सद्गुरोः ।
जिनेन्द्रशासनोनन्त्यै वृत्तमिदं व्यधान् ॥ १३ ॥

दिगम्बर जैन साहित्यकार

दिगम्बर जैन साहित्यकारों में आचार्य 'ऐलाचार्य' और 'वीरसेनाचार्य' ख्याति प्राप्त विद्वान् हो गए। 'वीरसेनाचार्य' ने चित्तौड़ में शिक्षा प्राप्त की।[१] । चित्तौड़ निवासी महाकवि डड्ढ़ा 'प्राग्वाट' जैन थे। इनके पिता का नाम श्रीपाल था।[२] 'हरिषेण' भी चित्तौड़ के रहने वाले विशिष्ट विद्वान् हो गए थे। उनके पिता का नाम गोवर्धन और माता का नाम धनवती था।[३] 'रामकीर्ति' ने समिद्धेश्वर चित्तौड़ की प्रशस्ति की रचना की, जो वि.सं. १२०७ की है।[४] श्रीकीर्ति की विद्वत्ता से प्रभावित होकर पाटन के राजा ने उनको 'मण्डलाचार्य' की उपाधि से विभूषित

---

१. इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार श्लोक सं.१७६ से १७८

२. राजस्थान जैन साहित्य परिपद्, वार्षिक अधिवेशन पत्रिका (६८-६९) पृ.५३, कैलाशचन्द्र शास्त्रि का लेख—
श्री चित्रकूटवास्तव्य प्राग्वाट वणिजो कृते ।
श्रीपालसुत डड्ढ़ेण स्फुट प्रकृति संग्रहः ॥ उक्त पृष्ठ ।

३. वी. भू. चि., पृ. १२२, रा व. सोमानी ।

४. वही „ १२३,,

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्रिया। ये जैन संत संस्कृत साहित्य के विख्यात विद्वान् हो गये, जिनका उल्लेख मिलता है।[१]

भट्टारक सकलकीर्ति

महाराणा कुम्भा के समसामयिक विशिष्ट विद्वान् 'सकलकीर्ति' हुए थे। सकलकीर्ति का जन्म वि. सं. १४४३ में हुआ। इनके पिता का नाम 'करमसिंह' और माता का नाम 'शोभा' था। वि. सं. १४६३ तक संस्कृत प्राकृत का अध्ययन किया, चौतीसवें वर्ष में उन्होंने आचार्य पदवी ग्रहण कर अपना नाम 'सकलकीर्ति' रखा। इनके द्वारा प्रतिष्ठित कतिपय प्रतिमाएं उदयपुर के जैन मन्दिर में उपलब्ध हैं।

ये संस्कृत, प्राकृत तथा राजस्थानी भाषा के प्रकाण्ड पंडित थे। छन्द शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार इन्होंने २८ ग्रन्थ संस्कृत के और ६ ग्रन्थ राजस्थानी भाषा में लिखे हैं।

संस्कृत ग्रन्थों में विशेषत: उल्लेखनीय हैं—

मल्लिनाथचरित्र, यशोधरचरित्र, धन्यकुमारचरित्र, सुकुमारचरित्र, आगमसार, श्रीपाल चरित्र आदि है।[२]

इनके छोटे से सुभाषित ग्रन्थ में सेवा, त्याग, तपस्या आदि पर सुन्दर श्लोक लिखे हुए है। जो मानव जीवन के लिए शिक्षाप्रद एवं उन्नत करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण है—यथा—

सर्वेषु जीवेषु दया कुरु त्वं, सत्यं वचो ब्रूहि धनं परेषां।
चाब्रह्मसेवा त्यज सर्वकालं, परिग्रहं मुञ्च कुयोनिबीजम्॥
यमदमशमजातं सर्वकल्याणबीजं,
सुगतिगमन हेतुं तीर्थनार्थप्रणीतम्।
भवजलनिधिपोतं सारपाथेयमुच्चै—
स्त्यज सकलविकारं धर्मं आराधय त्वं॥
मायां करोति यो मूढ इन्द्रियादिकसेवनं।

१. वही ,, १२४ ,,
२. रा. जै. संत व्य. एवं—पृ. ९, डा. कस्तूरबन्द कासलीवाल।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मायां करोति यो मूढ इन्द्रियादिकसेवनं।
गुप्तपापं स्वयं तस्य व्यक्तं भवति कुष्ठवत्॥

पद्य प्रसादगुणयुक्त हैं। राग द्वेषादि से दूर रहकर मानव को प्रशस्त मार्ग अपनाना चाहिए इस ओर संकेत करते हैं।

भुवनकीर्ति

भट्टारक सकलकीर्ति के पश्चात् भट्टारक भुवनकीर्ति हुए जो विविध शास्त्रों के ज्ञाता थे। अहिंसा के परम उपासक तथा सकल कलाओं में निष्णात थे। शास्त्रार्थ में प्रबल पाण्डित्य प्रकट होता था। विहार के समय सर्वत्र आपका अच्छा स्वागत होता था। ब्रह्मजिन दास के शब्दों में कहा गया है कि इनकी कीर्ति विश्व विख्यात थी। अनेक साधुओं के अधिपति, मुक्ति मार्गोपदेष्टा, पूजनीय एवं पूर्ण संयमी थे। अनेकानेक काव्यों के रचयिता उत्कृष्ट गुणों के निधि थे।

ब्रह्मजिन दास ने अपने राम चरित्र काव्य में इन्हीं भट्टारक भुवनकीर्ति का गुणानुवाद करते हुए लिखा है कि वे अगाध के वेत्ता, कामदेव को भंजन करने वाले थे। संसार पाश को त्यागने वाले एवं अच्छे गुणों के धारक थे। अनेक साधुओं के पूजनीय यतिराज कहलाते थे।[१]

भुवनकीर्ति के बाद वाले सभी भट्टारकों ने इनका विविध रूप से गुणगान किया है। इनके व्यक्तित्व और पाण्डित्य से सभी प्रभावित थे। भट्टारक शुभचन्द्र ने इन शब्दों में स्मरण किया है।[२]

भट्टारक सकल भूषण ने उसकी 'उपदेशरत्न माला' में आपका इस प्रकार उल्लेख किया है।

---

१. पट्टेतदीये गुणवान् मनीषी क्षमानिधाने भुवनादिकीर्तिः
जीयाच्चिरं भव्यसमूह वंशो नानायतिव्रतनिषेवणीयः॥
जगतिभुवनकीर्तिभूतलख्यातकीर्तिः,
श्रुतजलनिधिवेत्ता अनंगमान प्रभेत्ता
विमलगुणनिवासः छिन्न संसारपाशः
सजयति यतिराजः साधुराजि समाजः॥ १८६ ॥ रामचरित्र (ब्र. जिनदास)

२. तत्पट्टधारी भुवनादि कीर्ति, जीयाच्चिरं धर्मधुरीण दक्षः॥ चन्द्रप्रभुचरित्र॥
शास्त्रार्थकारी खलु तस्य पट्टे भट्टारक भुवनादि कीर्तिः॥ पार्श्वकाव्य पंजिका॥
रा. जै. सं. व्य. कृ. पृ. १७५-७८, डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल।

Funding by IKS-MoE

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भुवनकीर्तिगुरुस्तत उर्ज्जितो भुवनभासनशासनमंडनः ।

अजनितीव्रतपश्चरणक्षमो, विविध धार्मसमृद्धिसुदेशकः ॥ ३ ॥

भट्टारक रत्नचन्द्र ने भुवन कीर्ति को सकल कीर्ति की आम्नाय का सूर्य मानने हुए उन्हें यहां तपस्वी एवं वनवासी शब्द से सम्बोधित किया है ।

गुरुभुवनकीर्त्याख्यस्तत्पट्टोदयभानुमान् ।

जातवान् जनितानन्दो वनवासी महातपः ॥ ४ ॥

भट्टारकज्ञानकीर्ति ने अपने यशोधरचरित्र में इनको क्लिष्ट तपस्या साधना के कारण उत्कृष्ट कीर्तिवाले साधुरूप में स्तवन किया है—'पट्टे तदीयेभुवनादि कीर्तिः तपो विधानाप्त सुकीर्ति मूर्तिम्' । इस तरह ये एक मुनि थे । सकलकीर्ति की मृत्यु के पश्चात् भुवनकीर्ति पहिले भट्टारक बने ।

आपके पाण्डित्य एवं तपस्या की चर्चा चारों ओर फैल गयी । इनका प्रधान लक्ष्य जनता का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्तर उच्च करना था, इसके लिए समाज को जाग्रत, सचेष्ट बनाया इस कार्य में पर्याप्त सफलता मिली । इन्होंने अपने शिष्यों को भी उत्कृष्ट विद्वान् एवं साहित्य सेवी के रूप में तैयार किया ।

ब्रह्मजिनदास

ब्रह्मजिनदास भट्टारक सकलकीर्ति के अनुज एवं शिष्य थे । अनवरत साहित्य-साधना ही आपका चरमोद्देश्य था । १५ वीं शताब्दी के विशिष्ट विद्वानों में आपकी गणना थी । संस्कृत राजस्थानी दोनों भाषओं पर समानाधिकार था । अपने साहित्य के प्रचारार्थ राजस्थानी को माध्यम बनाकर कई ग्रन्थों की प्रतिलिपियां करवाई । आज भी राजस्थान और गुजरात के अनेक ग्रन्थालयों में इनकी रचनाओं की प्रतिलिपियां मिलती है । सदा ही साहित्यिक प्रवृत्ति को संचालित करने की धुन में ही रहते थे ।

भट्टारक सकलकीर्ति के लघुभ्रता थे, जिसका उल्लेख इन्होंने 'जम्बूस्वामी चरित्र' की प्रशस्ति में किया है ।[१]

---

१. भ्रातास्ति तस्य प्रथितः पृथिव्यां, सद् ब्रह्मचारी जिनदास नामा ।
तनोति तेन चरित्रं पवित्रे, जम्बूदिनामा मुनि सप्तमस्य ॥ २८ ॥ जम्बूस्वामी चरित्र ॥

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

"हरिवंश पुराण" की प्रशस्ति में भी इन्होंने उसी तरह का उल्लेख किया है, जो दृष्टव्य है ।[१] ये पाटण के निवासी थे । इनकी माता का नाम शोभा एवं पिता का नाम 'कर्णसिंह' था । हूंबड़ जाति के श्रावक थे । समृद्ध परिवार के होने के कारण भी भोग विलास और ऐश्वर्य इनको साधु जीवन यापन करने की ओर से विमुख नहीं कर सका । अपने ज्येष्ठ भ्राता के मार्गानुयायी बने ।

ब्रह्मजिनदास ने अपनी दो रचनाओं 'रामराज्यरास' एवं हरिवंश पुराण में ही समय का उल्लेख किया है । जिनमें संवत् क्रमशः १५०८ तथा १५२० दिया गया है । भट्टारकसकलकीर्ति के अनुज होने के कारण इनका जन्म संवत् १४४५ के पूर्व तो संभव नहीं है । इतर इनकी किसी भी कृति में समय का निर्देश नहीं है ।

संस्कृत साहित्य के कथा, काव्य, पुराण पूजादि विविध साहित्य पर आपकी लेखनी चली है । मां भारती का वरदहस्त इनके ऊपर था । गहन अध्ययन एवं चिन्तन मनन के साथ काव्य, पुराण, कथादि साहित्य का सृजन किया । आत्मकल्याण के साथ साथ इनकी विशेष अभिरुचि साहित्य के प्रचार प्रसार की थी । अपने गुरु, सकलकीर्ति एवं भुवनकीर्ति के साथ विहार भी करते थे ।

संस्कृत रचनाएं

(१) काव्य, कथा,पुराण—

१. जम्बूस्वामी चरित्र
२. रामचरित्र (पद्य पुराण)
३. हरिवंश पुराण
४. पुष्पांजलिव्रत कथा

(२) पूजा एवं विविध साहित्य—

१. जम्बूद्वीप पूजा
२. सार्धद्वयद्वीपपूजा
३. सप्तर्षिपूजा
४. ज्येष्ठ जिन पूजा
५. सोलहकारण पूजा
६. गुरुपूजा
७. अनन्तव्रत कथा
८. जलयात्रा विधि[२]

---

१. सद् ब्रह्मचारी गुरुपूर्वकोस्य, भ्रातागुणज्ञोऽस्ति विशुद्धचित्तः ।
जिनसभक्तो जिनदासनामा, कामारि जेता विदितो धरित्र्याम् ॥ २९ ॥

२. डा. कस्तूरचन्दका. सं.—रा. जै. सं. व्य. कृ. पृ. २४

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जैनेतर महाकवि माहुक

महाकवि 'माहुक' 'भीनभाल' का निवासी था । इसके पिता का नाम 'माधव' और दादा का नाम कविवर 'मण्डन' था । माहुक भीनमाल से सम्भवतः चित्तौड़ आ गया था, इधर आने के पश्चात् इसने 'हरमेखला' नामक ग्रन्थ की रचना चित्तौड़ में की । यह महाकवि 'माघ' का वंशज था । इसने ग्रन्थ में स्वयं का परिचय देते हुए लिखा है कि यदि महाकवि माध कुँजर था तो माहुक कुंजर कलश है ।[१]

'हर मेखला' पांच परिच्छेदों में विभक्त है । प्रथम परिच्छेद की विषय वस्तु अज्ञात है । द्वीतीय परिच्छेद में दुष्टा कुट्टनियों को दण्ड देने का वर्णन है । तृतीय में प्रीति को बढ़ाना, घटाना, बालों को सफेद करना तथा अश्व सम्बन्धी अनेक प्रयोग दिये हैं । जो तन्त्र शास्त्र ज्ञान का परिचायक है । चतुर्थ में आयुर्वेद विषयक विख्यात प्रयोगों का दिग्दर्शन है । पंचम में ग्रन्थ शास्त्र का उल्लेख है । यवन ग्रन्थ शास्त्र के भी विवरण इसमें मिलता है । इस कवि को प्रकाश में लाने का सम्पूर्ण श्रेय डा. दशरथ शर्मा को ही है, जिन्होंने प्रवचनों एवं लेख के माध्यम[२] से इस कवि को समाज के सम्मुख रखा ।

उपलब्ध संस्कृत साहित्य का आकलन एवं उपसंहार

कुछ प्रकाशित और अधिकांश अप्रकाशित अथवा सम्यग् संपादित रूप में मेवाड़ का जो गौरवमय संस्कृत साहित्य उपलब्ध है अथवा बिखरे सन्दर्भों से ज्ञात हो सका है, उसका आकलन, विश्लेषण एवं मूल्यांकन पिछले पृष्ठों में करने का प्रथम विनम्र प्रयास किया गया है । इस साहित्य के सिंहावलोकन से इसकी श्री समृद्धि वैविध्य किन्तु साथ ही दुर्दशा का भी चित्र उभरता है । मेवाड़ का संस्कृत साहित्य एक और तो काव्यात्मक स्तुति परक है, तो दूसरी और इतिहास, धर्म, पारिभाषिक विज्ञान, जैन, वैष्णव दर्शन का आगार ।

प्रचुर मात्रा में रचे गये इस साहित्य के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मेवाड़ प्रदेश आर्यावर्त के इतर प्रदेशों में अपनी वैषम्यावस्था में भी संस्कृत साहित्य के निर्माण में सदैव ही अग्रसर रहा है । इतना अवश्य है कि विद्वज्जनों एवं शोध

---

१. तस्य निजजीवदयितशिष्यः श्रीभिल्लमालपुर निलयः ।
माघ महाकवि कुंजरकलयो माहुको नाम ॥

२. 'धरणी वराह ऑफ चितौड़ नामक लेख प्रोसिडिंग्ज ऑफ इ. हि. कांग्रेस १९६१ में प्रकाशित ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कर्मियों का ध्यान इस ओर नहीं गया, परिणामत: उत्कृष्ट साहित्य बहुत अंशों में नष्ट हो गया, भूगर्भ में विलीन हो गया अथवा अनजाने हाथों में मलिन एवं विशीर्ण हो रहा है। जो कुछ अवशिष्ट है उसमें से बहुत कुछ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सका है। उपलब्ध ग्रन्थों का समुचित सम्पादन अनुवाद तो अभी शेष है ही, जिनके पास अभी तक किंचित् मात्रा में यह साहित्य विद्यमान है भी तो वे बताने में अत्यन्त संकोच करते हैं, इसमें उनकी संकुचित रागात्मिका वृत्ति बहुत बड़ी बाधा है और जो अमूल्य सामग्री उनके पास है, उसके महत्त्व तथा उपयोगिता का उनको लवलेशमात्र ज्ञान नहीं।

मेवाड़ के राजवंश ने संस्कृत भाषा, उनके साहित्य और साहित्यकारों के संरक्षण, संपोषण एवं श्रीवर्धन के निमित्त जो अथक प्रयत्न किये उसी का यह परिणाम है कि मेवाड़ संस्कृत साहित्य की परम्परा निरन्तर विकासशील रही। महाराणा कुम्भा और राजसिंह के शासनकाल में उक्त परंपरा ने स्वर्णकाल की समृद्धि और गरिमा का अनुभव किया। यों तो मुख्यत: राज्याश्रित कवियों और विद्वानों ने ही मेवाड़ में संस्कृत साहित्य की सर्जना और श्रीवृद्धि में हाथ बढ़ाया तथापि शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय वैष्णव भक्तों और विद्वानों तथा यायावर जैन साधुसंतों का भी इस दिशा में योगदान उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता।

मेवाड़ में रचित संस्कृत के निर्माण में केवल ब्राह्मण और जैन संतों ने ही हाथ नहीं बटाया, अपितु राजन्य वर्ग के विशिष्ट व्यक्तियों ने भी अपना अमूल्य योगदान किया। इस संदर्भ में महाराणा कुंभा का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। महाराणा कुम्भा संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे, जिन्होंने संगीत शास्त्र पर 'संगीत राज' नामक एक विशाल ग्रन्थ का प्रणयन किया। गीत गोविन्द की 'रसिका प्रिया' नामक टीका तथा 'चण्डीशतक' की व्याख्या भी लिखी। उन्हीं के संरक्षण में सूत्रधार मण्डन उसके भाई नाथा व पुत्र गोविन्द ने शिल्पशास्त्र विषयक अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। कवि अत्रि उसके पुत्र महेश ने मेवाड़ मुकुट कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति की रचना की, जो साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक मूल्यवान् है।

मेवाड़ में प्रणीत संस्कृत साहित्य में काव्य रूपों का वैविध्य है। रणछोड़ भट्ट तथा सदाशिव नागर ने राजप्रशस्ति एवं राजरत्नाकर नामक महाकाव्यों की रचना की। इन काव्यों में राणा राजसिंह काल की राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिस्थितियों व प्रवृत्तियों का सांगोपांग निरूपण किया गया है । ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से इन दोनों महाकाव्यों को मेवाड़ी संस्कृत साहित्य में शीर्ष स्थान प्राप्त है । वि. सं. ५४७ से लेकर २० वीं शताब्दी पर्यन्त मेवाड़ में संस्कृत साहित्य के सृजन की परम्परा प्रायः अक्षुण्ण एवं अखण्डित रही है । इस विशाल साहित्य परंपरा में महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य, धार्मिक काव्य आदि विभिन्न प्रकार की रचनाएं सम्मिलित है । संगीत, शिल्प, ज्योतिष, कामशास्त्र, कोश, टीका, वनस्पतिशास्त्र आयुर्वेद आदि विविध विषयों से सम्बन्धित ग्रन्थों ने इस परम्परा को निरन्तर गतिशील और समृद्ध बनाया है ।

लगभग डेढ़ हजार वर्ष की सुदीर्घ अवधि में विविध विषयों पर रचित उक्त साहित्य को मोटे रूप में तीन कालों में विभक्त कर सकते है (१) आदि काल—(वि. सं. ५४७) से लेकर महाराणा कुम्भा के राज्यारोहण वर्ष (वि. सं. १४९०) पर्यन्त इस युग में मुख्यतया प्रशस्ति परक काव्यों का निर्माण हुआ । इसी आदि काल के अन्तर्गत रावल जैत्रसिंह के शासन काल वि. सं. १२८४ फाल्गुन कृष्ण अमावस्या के दिन 'औघनियुक्ति' ताड़ पत्र पर लिखी गई थी । तथा वि. सं. १३०९ माघ कृष्णा चतुर्दशी को 'पाक्षिक वृत्ति' नामक ग्रन्थ लिखा दोनों आहड़ में लिखे गये । जो इस समय खम्भात के शान्तिनाथ मन्दिर में सुरक्षित हैं ।[१] जैत्रसिंह के पुत्र तेजसिंह के शासन काल वि. सं. १३१७ माघ शुक्ला चतुर्थी 'श्रावक प्रतिक्रमण सूत्रचूर्णि' नामक पुस्तक आहड़ में ताड़ पत्र पर लिखी गई, जो इस समय पाटण गुजरात में सुरक्षित हैं ।[२] (२) मध्यकाल—महाराणा कुम्भा के शासनकाल (वि. सं. १४९०) से राजसिंह के राज्यकाल वि. सं. १७३७ तक इस साहित्य का मध्यकाल कहा जा सकता है । इस काल में अनेक विषयों पर महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य तथा कुम्भलगढ़, कीर्तिस्तम्भ, एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की रायमल्लकालीन आदि प्रशस्तियां सरस सजीव काव्यात्मक साहित्य एवं शैव, वैष्णव और जैन धर्म सम्बन्धी रचनाएं लिखी गई । इस काल में जितना विपुल मात्रा में साहित्य का निर्माण हुआ उतना पहले और पश्चात् नहीं हुआ, जिसका समस्त श्रेय महाराणा कुम्भा और राजसिंह को है, जो महान् विद्याप्रेमी, विद्वत्सेवी होने के साथ साथ स्वयं भी सृजनात्मक प्रतिभा के धनी थे । आधुनिककाल—वि. सं. १७३८ से महाराणा

१. उ.रा.इ., भा. १, पृ. ४७०,७१ मे इ., पृ. ४५ रा. ना. दूगढ़ ।
२. उ.रा.इ., भा. १, पृ. ४७३ ।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

फतहसिंह के राज्यकाल लगभग बीसनीं शताब्दी पर्यन्त माना जाता है। इस काल में भी अनेक कवियों ने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं द्वारा संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि की इन कवियों में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं यथा—वैकुण्ठ व्यास ने अमर सिंह (द्वि.) के राज्याभिषेक सम्बन्धी काव्य का निर्माण किया। कवि त्रिपाठी बिहारी ने संग्रामसिंह (द्वि.) के राज्य काल में इन्हीं के नाम का काव्य सरस, मञ्जुल शब्दावली में लिखा। वीरतरंगरंग, वीरवंशवर्णन, वीरभूमि नामक साहित्यिक ऐतिहासिक काव्य क्रमशः शाहपुरा निवासी पं. यमुनादत्त, बनेड़ा वासी पं. नगजीराम एवं उदयपुर निवासी पं. शोभालाल दशोरा ब्राह्मण ने लिखकर अपनी जन्मभूमि (मेवाड़) के प्रति भक्ति निष्ठा को प्रदर्शित किया है। सीसारमा गंव में वैद्यनाथ महादेव, जगत् शिरोमणि तथा गोकुलचन्द्रमा के मन्दिर की प्रशस्तियां इसी काल में उत्कीर्ण कराई गई। इनके अतिरिक्त भी अनेक प्रशस्तियां प्राचीन मन्दिरों, मठों और वापिकाओं आदि स्थानों पर शिलोत्कीर्ण हैं, जिनका विस्तार से प्रशस्ति-साहित्य के अध्याय में विवेचन किया जा चुका है।

इस प्रकार मेवाड़ संस्कृत साहित्य के विकास क्रम को आदि, मध्य और आधुनिक काल के रूप में देखा जा सकता है।

मेवाड़ के सूर्यवंशी राजवंश ने अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए आत्मोत्सर्ग कर शौर्य एवं पुरुषार्थ का जो जाज्वल्यमान आदर्श हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया, उसका विवेचन मेवाड़ के संस्कृत साहित्य में सर्वत्र परिलक्षित होता है। इस राजवंश ने अपनी मातृभूमि और स्वातन्त्रय-गौरव की रक्षा के लिए यवन-आक्रन्ताओं के साथ सतत संघर्षरत रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की उपासना एवं कला और साहित्य के संरक्षण संवर्धन के अपने पवित्र दायित्व की रंचमात्र भी उपेक्षा नहीं की।

अल्प जनसंख्या वाला मेवाड़ प्रदेश जिसका कि 'मानो हि महतां धनं' ही सर्वदा लक्ष्य रहा है, अपने गौरवमय त्याग और बलिदान से युक्त आदर्श के फलस्वरूप विश्व में आज परम सम्मान्य पद पर अधिष्ठित है। तदनुकूल ही संस्कृत साहित्य का निर्माण और उसकी सर्वतोमुखी अभिवृद्धि मेवाड़ में सतत होती रही। राणाओं द्वारा प्रदत्त राजकीय आदेशों के रूप में ताम्रपत्र, पट्टे, परवाने संस्कृत भाषा में लिखे जाते रहे हैं। इस प्रकार से संस्कृत भाषा में लिखित शासकीय आदेशों की उपलब्धि से अवगत होता है कि मेवाड़ की राजभाषा संस्कृत और मेवाड़ी थी।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

चिरकाल से लेकर आज तक मेवाड़ में संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने के लिए यहां के नरेशों ने देश के मूर्धन्य विद्वानों को मेवाड़ में आश्रय दिया तथा अनेकों विद्वान् कवियों को इस वीर भूमि मेवाड़ ने जन्म दिया, उनकी तपस्या एवं साधना ने मेवाड़ में संस्कृत साहित्य की धारा को अजस्त्र रूप में प्रवहमान रखा। प्रचुर संस्कृत साहित्य का नाथद्वारा और कांकरोली में शुद्धाद्वैत पुष्टिमार्गीय वल्लभ संप्रदाय विषयक अनेक रचनाएं हुई, जिसमें श्री गोवर्धनलाल जी (गट्टूलालाजी) ने शुद्धाद्वैत दर्शन के सूक्ष्म मर्म को समय समय पर दिये गये व्याख्यान तथा शास्त्रार्थ द्वारा प्रतिपादित किया। गट्टूलालाजी का योगदान वल्लभ दर्शन के स्थायित्व एवं समृद्ध करने की दिशा में स्तुत्य रहा है। हरिरायजी की रचनाएं भक्ति प्रधान हैं। दोनों ने गद्य एवं पद्य में नवीन साहित्य लिखकर मेवाड़ में शुद्धाद्वैत दर्शन का प्रचार किया। मेवाड़ में अपने नवीन साहित्य की रचना कर गट्टूलालाजी एवं हरिरायजी अमर हो गये।

मेवाड़ के चित्तौड़, देलवाड़ा, नागदा, आहड़, उदयपुर आदि प्राचीन ऐतिहासिक स्थानों में जैन संत संयमित जीवन यापन करते हुए संस्कृत साहित्य के भण्डार को उत्तरोत्तर बढ़ाते रहे, फलत: इन स्थानों पर आज भी हस्तलिखित ग्रन्थों के आगार विद्यमान है।

उपर्युक्त सिंहावलोकन से स्पष्ट है कि मेवाड़ में संस्कृत के विद्वानों को प्रश्रय एवं संरक्षण मिलता रहा, फलस्वरूप यहां विभिन्न विषयों पर संस्कृत भाषा में नयी नयी साहित्यिक कृतियों का निर्माण होता रहा। भारत की मुकुट मणि मेवाड़ मही ने अपने गौरव के अनुकूल भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा संस्कृत साहित्य के संरक्षण, विकास एवं श्रीवृद्धि में अपूर्व योगदान देकर उसे निरन्तर समृद्ध किया तथा इस प्रकार बृहत्तर भारतीय संस्कृति, कला और साहित्य के गौरव को बढ़ाया।

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट १

अधीत अप्रकाशित पाण्डुलिपियां

ग्रन्थनाम	लेखक
१. राजरत्नाकर	महाकाव्य— सदाशिवनागर
२. अमरसार	जीवंधर
३. जगत्सिंह काव्य	रघुनाथ पल्लीवाल (पालीवाल)
४. राज्याभिषेक पद्धति	चक्रपाणि मिश्र
५. राजपट्टाभिषेक पद्धति	जगन्नाथ
६. अमरकाव्य	रणछोड़ भट्ट
७. संग्रामसिंह महोदय काव्य	त्रिपाठी बिहारी
८. एकलिंग माहात्म्य	कन्हव्यास
९. एकलिंग माहात्म्य (पुराण)	,,
१०. एकलिंग स्तोत्र	—
११. एकलिंग पूजा पद्धति	अमृतराम
१२. गंगाभक्तानन्द सिन्धु	रघुनाथ
१३. कामराज रतिसार शतक	कुम्भा
१४. विश्ववल्लभ	चक्रपाणि मिश्र
१५. मुहूर्तमाला	,,
१६. राजरत्नाकर (रत्नपरीक्षण विषयक)	ढुंढ़िराज
१७. रुक्मिणी विवाह कौतुकम्	भट्टमोटा
१८. श्रृंगार शतक	जिनवल्लभ

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट (२)

अधीत प्रकाशित ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ नाम	लेखक
१. राज प्रशस्ति	रणछोड़ भट्ट
२. जगत्सिहाष्टक	मोहन भट्ट
३. राजसिंहाष्टक	मुकुन्द श्रोत्रिय
४. राजसिंहप्रभो र्वर्णन	लाल भट्ट
५. अमरसिंहाभिषेक काव्य	वैकुण्ठ व्यास
६. वीरतरंग रंग	पं. यमुनादत्त शास्त्री
७. वीरवंश वर्णन	पं. नगजीराम
८. वीरभूमि	पं. शोभालाल शास्त्री
९. चण्डीशतक टीका	कुम्भाकृत
१०. संगीतराज	"
११. सूडप्रबन्ध	"
१२. गीतगोविन्द (रसिक प्रिया टीका)	"
१३. प्रासाद मंडन	मण्डन रचित
१४. राजवल्लभ मंडन	"
१५. देवता मूर्ति प्रकरण एवं रूपमण्डन	"
१६. रूपावतार	"
१७. शब्दार्थ चिन्तामणि कोश	सुखानन्द
१८. शिक्षा पत्र	हरिराय कृत
१९. सत् स्नेह भाजन	गोवर्धन (गट्टूलालाजी)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२०. धर्मशिक्षा प्रकरण	जिनवल्लभ
२१ संघ पट्टक	..
२२. दानप्रदीप	चरित्र रत्न गणि
२३. वस्तु पाल चरित	जिन हर्षगणि
२४. ईशवास्योपनिषद् व्याख्या	बालकृष्ण शास्त्री सूरत वि. सं. २०१०

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परिशिष्ट (३)

सहायक ग्रन्थों की सूची

संस्कृत

ग्रन्थनाम	प्रकाशन स्थान व समय
१. वाल्मीकिरामायण	ओरियण्टल इंस्टिट्यूट बड़ोदा सन् १९६० आगे।
२. महाभारत	भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान पूना सन् १९३३ तथा आगे।
३. श्रीमद्भागवत	गीता प्रेस गोरखपुर १९६२,
४. वायुपुराण	आनन्दाश्रम सं. सी. पूना १९०५
५. शिवपुराण	वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई १९०९
६. कूर्म पुराण	,, ,, १९०६
७. मत्स्य पुराण	आनन्दाश्रम सं. सी. पूना १९०५
८. सर्वदर्शन संग्रह	माधव पूना
९. योग दर्शन	पदचन्द्रिका व्याख्या सहित, बम्बई, संवत् १९८३
११. विक्रमांक देव चरित	बिल्हण—सम्पादक पं. विश्वनाथ शास्त्री भारद्वाज प्र. भा. सं. १९५८ द्वि. भा. सं. २०१९ तृ. भा. सं. २०२०
१२. नवसाहसांक	पद्मगुप्त परिमल—व्याख्याकार—जितेन्द्र चन्द्र भारतीय चौ. वि. वाराणसी, १९६३

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१४. कथा सरित् सागर	सोमदेव भट्ट (प्रथम खण्ड) अनुवादक केदारनाथ शर्मा, विहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना, वि. सं. १९६०
१५. काव्य प्रकाश	मम्मट-व्याख्याकार आचार्य विश्वेश्वर ज्ञान-मण्डन वाराणसी ।
१६. साहित्य दर्पण	विश्वनाथ, लक्ष्मीटीका, चौ. सं. सी. बनारस सं. २००४
१७. मेघदूत	कालिदास—निर्णय सागर बम्बई सन् १९१८
१८. नीतिशातक भर्तृहरिकृत	मास्टर खेलाड़ीलाल, काशी संवत् १९७६
१९. आर्यासप्तशती	गोवर्धनाचार्य—व्याख्याकार रमाकान्त त्रिपाठी चौ. वि. वाराणसी १,१९६५
२०. अमरुशतक	अमरुकृत—मित्र प्रकाशन इलाहाबाद
२१ मनुस्मृति	गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई १९१३
२२. याज्ञवल्क्य स्मृति	मिताक्षरा सहित नि. सा. प्र. १९१८
२३. अमरकोश	क्षेमराज श्रीकृष्णदास बम्बई संवत् १९९०
२४. अशोक के अभिलेख	डा. राजवली पाण्डेय ज्ञानमण्डल वाराणसी प्रथम संस्करण २०२२
२५. संस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गौरेला संक्षिप्त संस्करण सन् १९६७
२६. " "	बलदेव उपाध्याय, हिन्दू विश्व विद्यालय काशी १९६०
२७. वृत्तरत्नाकर	भट्ट केदार प्रणीत, चौ. सं. सी. १८८४
२८. 'महाकविमाघ' उनका जीवन तथा कृतियां	डा. मनमोहन जगन्नाथ शर्मा नव प्रकाशन दिल्ली ६
नैषधपरिशीलन	डा. चण्डिका प्रसाद शुक्ल—इलाहाबाद १९६०

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हर्ष चरित—एक सांस्कृतिक अध्ययन वासुदेव अग्रवाल विहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना १९५३

भारतीय नाट्य शास्त्र की परम्परा और दशरूपक हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा पृथ्वीनाथ द्विवेदी राजकमल प्रकाशन दिल्ली पटना सं. । १९६३ ।

दशरूपक—धनंजय— व्याख्याकार डा. भोलाशंकर व्यास, चौ. वि. वाराणसी वि. सं.२०१९

हिन्दी

१. वीरविनोद कविराजा श्यामलदास

२. उदयपुर राज्य का इतिहास गौरीशंकर हीराचन्द ओझा प्रथम भाग वि. स. १९८३, द्वितीय भाग—१९८८

३. मेवाड़ का इतिहास रामनारायण दूगड़

४. वीर भूमि चित्तौड़ " "

५. मेवाड़ परिचय विपिन बिहारी वाजपेयी विद्यापीठ प्रकाशन उदयपुर सन् १९४५

६. टॉड लिखित राजस्थान का इतिहास अनुवादक केशवकुमार आदर्श हिन्दी पुस्तकाल सन् १९६५

६. राजस्थान के कवि (संस्कृत) पं. पुरुषोत्तम शर्मा चतुर्वेदी पं. लक्ष्मीनारायण पुरोहित साहित्य अकादमी उदयपुर ।

८. महाराणा कुम्भा राम वल्लभ सोमानी

९, वीर भूमि चित्तौड़ " "

१०. राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल—जयपुर

११. श्री द्वारकाधीश प्राकट्यवार्ता विद्या विभाग काँकरोली

१२. श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता विद्याविभाग नाथद्वारा

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३. बनेड़ा राज्य का इतिहास — नारायण श्यामराव चिताम्बरे वैदिक यन्त्रालय अजमेर सन् १९६४

१४. संगीतराज — डा. प्रेमलता, हिन्दू विद्यालय नेपाल राज्य संस्कृत ग्रन्थमाला सन् १९६३

१५. राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज — श्रीधर रामकृष्ण भण्डार

१६. श्रीमद्वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त — व्रजनाथ भट्ट

१७. श्री हरिरायजी जीवन चरित्र — श्री पुष्टिमार्गीय पुस्तकालय नडियाद

१८. उत्तरभारती तैलंग भट्ट वंशवृक्ष — विद्याविभाग कांकरोली

१९. हरिराय वाङ्मुक्तावली—१ श्री पुष्टिमार्गीय पुस्तकालय नड़ियाद।

२०. ओझा निबन्ध संग्रह भा. १ से ४ तक पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा

२१ मुंहता नेणसीरी ख्यात भाग १ राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान जोधपुर वि. सं. २०१६

२२. „ „ भाग २ „ „ वि. सं. २०१८

पत्रपत्रिकाएं

१ भावनगर प्राचीन संग्रह

भावनगर इन्सक्रिप्शन्स

३. नागरी प्रचारिणी इण्डिका

४. एपिग्राफिया इण्डिका

५. इण्डियन एण्टेक्केरी

६. जनरल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी

७. आर्कियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिका

८. राजस्थान भारती—बीकानेर (राजस्थान)

९. वरदा—राजस्थान साहित्य समिति बिसाउ (राजस्थान)

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१०. शोध पत्रिका—साहित्य संस्थान विद्यापीठ उदयपुर

११. मरु भारती—बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट पिलानी

१२. अन्वेषणा प्राच्य विद्या त्रैमासिकी उदयपुर

ENGLISH

1. A History of Hindu Dharm Shastra P.v. Kane
2. A History of Sanskrit Literature A. B. Keith
3. A History of Indian Literature Winternits
4. Annals and Antiquities of Rajasthan cpl. Tod
5. Maharana Kumbha H. Sarda
6. Maharana Sanga ,,
7. Contribution of Kerala to Sanskrit Literature K. Kunjunni Raja
8. Contribution of Jaipur to Sanskrit Literature (Un-published) Prabhakar Sastri
9. Contribudtion of Kashmir to Sanskrit Literature K. S. Nagraja
10. Sanskrit Drama A.B.Keith
11. Indian Philosophy—Vol, I & II S. Radhakrishan
12. History of Indian Philosophy Das Gupta

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Vidyapith
809

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Bhawan's Sri S... racharya Sanskrit Mahavidya ...

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Funding by IKS-MoE

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ALL MAHAPURANAS

Text with Shloka Index & Introduction

Agni Mahapurana
664 pp 450.00

Bhagavata Mahapurana-
4vols 2304 pp Set 1500.00

Bhavishya Mahapurana
3vols 1400 pp Set 1200.00

Brahma Mahapurana
728 pp 450.00

Devi Bhagavata Mahapurana
1154 pp 800.00

Ganesha Purana
832 pp 1993 450.00

Garuda Mahapurana
668 pp 400.00

Harivansha Purana
1802 pp 2vols set 900.00

Kurma Mahapurans
298 pp 300.00

Linga Mahapurana
774 pp 400.00

Markandeya Mahapurana
828 pp 450.00

Narada Mahapurana
932 pp 600.00

Padma Mahapurana
2381pp 4vols set 1600.00

Shiva Mahapurana-
1504 pp 2vols set 900.00

Shiva Mahapurana (Small Type)
412 pp 400.00

Skanda Mahapurana
5600 pp 8 vols set 4000.00

Skanda Mahapurana-3vols
(small Type) 1500.00

Vamana Mahapurana
472 pp 400.00

Vayu Mahapurana
540 pp 400.00

Vishnudharmottara Mahapurana
1246 pp 900.00

Vishnu Mahapurana-with two commentaries
680 pp 500.00

Maha Bhagavat Devipurana Press

Kalki Purana
316pp 120.00

Vasuki Purana
260 pp 100.00

Saura Purana
290 pp 100.00

Narsimha Purana
380 pp 100.00

Ekamara Purana
490 pp 150.00

Ashtadasha purana Darpana Contents of 18 Puranas
432 pp 180.00

PURANAS WITH TEXT, TRANS & NOTES IN ENGLISH VERSWISE

Vishnu Purana–*H.H. Wilson*
1065 pp 2 vols Set 500.00

Matsya Purana–*N.S. singh*
1252 pp 2 vols 500.00

Narasimha Purana –*Dr.S.Jena*
1100 pp 400.00

Kalika Purana
Prof. Biswanarayan Shastri
(Shloka & Name Index)
3vols set 1992 900.00

NAG PUBLISHERS
11 A, U.A. Jawahar Nagar, Delhi-110007

Funding by IKS-MoE